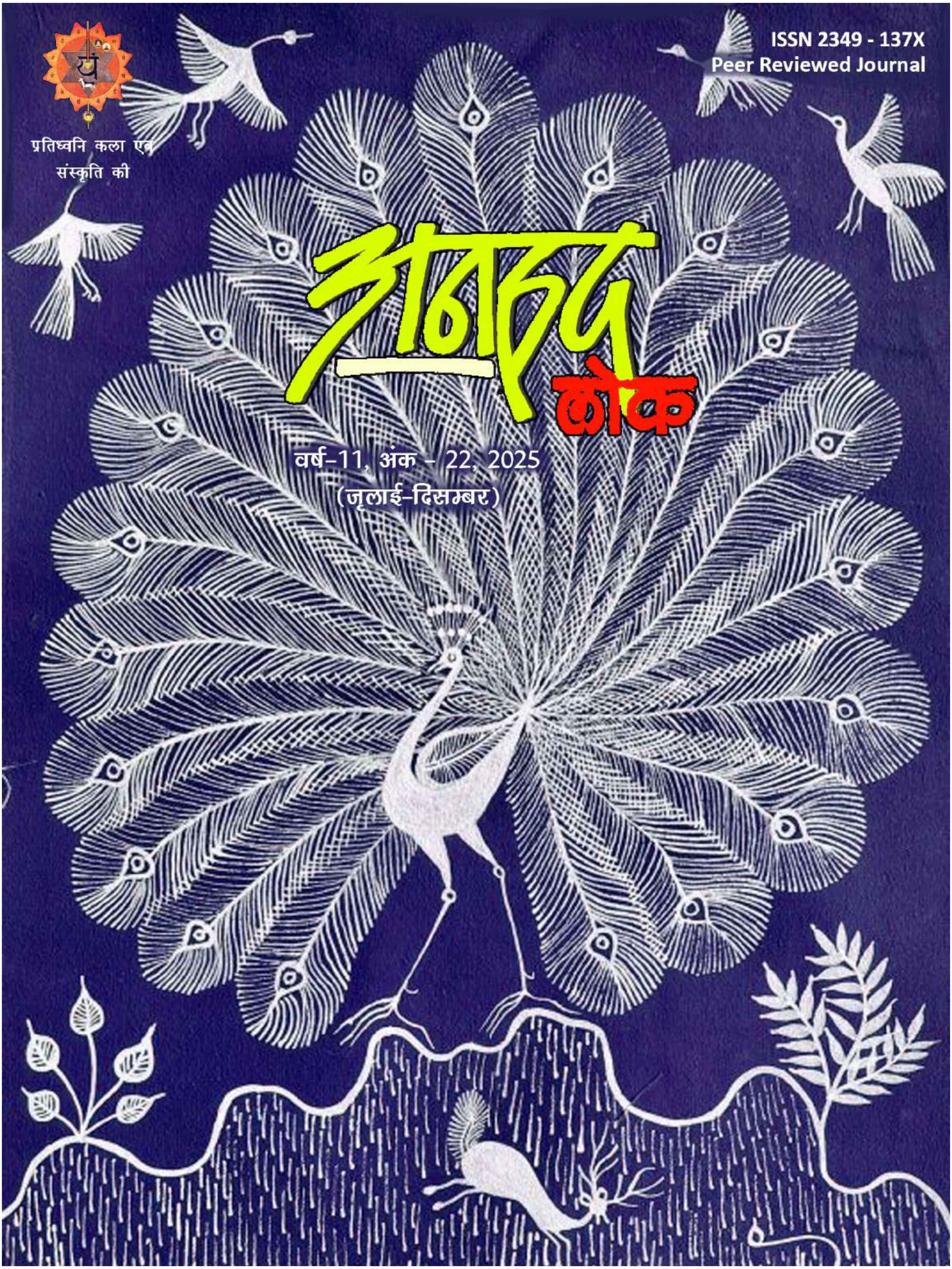

ISSN 2349 - 137X
Peer Reviewed Journal
प्रतिध्वनि कला एव
संस्कृति की
अनहद लोक
वर्ष–11, अंक – 22, 2025
(जृलाई–दिसम्बर)

ISSN 2349-137X
Peer Reviewed Journal

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

वर्ष-11, अंक-22, 2025
(जुलाई - दिसम्बर)
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक

डॉ॰ मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ॰ मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ॰ धनंजय चोपड़ा, डॉ॰ ज्योति सिन्हा

सह सम्पादक

सुश्री शाम्भवी शुक्ला

व्यंजना
आर्ट एण्ड कल्चर सोसाइटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर, सुलेम सरांय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ॰ मधु रानी शुक्ला
सम्पादक मण्डल : डॉ॰ मनीष कुमार मिश्रा, डॉ॰ धनंजय चोपड़ा, डॉ॰ ज्योति सिन्हा
सहायक सम्पादक : सुश्री शाम्भवी शुक्ला
मल्टीमीडिया सम्पादक : श्रेयस शुक्ला

प्रकाशक एवं वितरक :
व्यंजना (आर्ट एण्ड कल्चर सोसाइटी)
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर
सुलेम सरांय, प्रयागराज - 211 001
मो॰ : 9838963188, 8419085095
ई-मेल : anhadlok.vyanjana@gmail.com
वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

मूल्य : 300/- प्रति अंक, पोस्टल चार्जेज अलग से
सदस्यता शुल्क
वार्षिक : 700/-
तीन वर्ष : 2,100/-
आजीवन : 15,000/-

संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से प्रकाशित

© सर्वाधिकार सुरक्षित
- रचनाकारों के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा।

मुद्रक :
गोयल प्रिन्टर्स
73 A, गाड़ीवान टोला, प्रयागराज

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ॰ सोनल मानसिंह, पं॰ विश्वमोहन भट्ट, प्रो॰ ऋत्विक् सान्याल, प्रो॰ चित्तरंजन ज्योतिषि, पं॰ रोनू मजुमदार, पं॰ विजय शंकर मिश्र, प्रो॰ दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो॰ के॰ शशि कुमार, प्रो॰ (डॉ॰) गुरप्रीत कौर, डॉ॰ राजेश मिश्रा

सहयोगी मण्डल :

प्रो॰ संगीता पंडित, प्रो॰ लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या', प्रो॰ निशा झा, प्रो॰ प्रभा भारद्वाज, प्रो॰ अर्चना अंभोरे, डॉ॰ राम शंकर, डॉ॰ इंदु शर्मा, डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार, प्रो॰ भावना ग्रोवर, डॉ॰ स्नेहाशीष दास, डॉ॰ शान्ति महेश, डॉ॰ कल्पना दुबे, डॉ॰ बिन्दु के॰, डॉ॰ अभिसारिका प्रजापति, डॉ॰ मिठाई लाल

सम्पादकीय

बंदिशों में सौन्दर्य

'अनहद लोक' अंक-22 आप सभी के शुभ हाथों में सौंपते हुए अत्यंत हर्षित हूँ, आपकी मिल रही सकारात्मक प्रतिक्रियाओं से अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ, इसी प्रकार अपनी समीक्षात्मक दृष्टि से प्रतिक्रिया देते रहें। प्रस्तुत अंक में कला संस्कृति से जुड़े विभिन्न विषयों का समावेश है।

'पदस्तु स्वर संघातः' अर्थात आघात के साथ ही शब्द है जो स्फोट का ही प्रतिरूप है और शब्द का अर्थ तत्व है 'प्रतिभा' प्रतिभा शक्ति अनन्त व अनिवर्चनीय है उसे ही वाक् तत्व कहा गया है सृष्टि में जितना भी कुछ चैतन्य है वह वाक् तत्व है जो व्याकरण के लोगों ने जिस स्फोट सिद्धांत की परिकल्पना की वह प्रतिभा के 'नित्ययांश' व 'अनित्ययांश' दो भागों का है।

वाक् वैखरी मध्यमा पश्यन्ति तीन रूपों से होते हुए 'परा' तक पहुँचता है अर्थात स्थूल से सूक्ष्म होते हुए वह परमानन्द की प्राप्ति कराता है। एतरेय ब्राम्हण, शतपथ ब्राम्हण, जैमिपियोपनिषद, गोपथ ब्राम्हण आदि समस्त उपनिषदों तथा ब्राम्हण ग्रंथों में वाक् को ब्रह्म कहते हैं।

चेष्टा तथा नाद के सम्मिलित समायोजन से प्रभावशाली नाट्य की सृष्टि होती है उनके आश्रित समस्त कलाएं मनुष्य को व्यक्तिगत राग-द्वेष से दूर कर ब्रह्मानन्द का अनुभव कराती है जो मुक्ति मार्ग है शब्द, स्वर और चेष्टा की सम्मिलित शक्ति रस की सृष्टि में सहायक है रसानुभूति और सौन्दर्य समानार्थी शब्द है। मनुष्य के हृदयास्थित स्थायी भाव उदीप्त होकर भाव कलाजन्य सौन्दर्य से रसाभिव्यक्ति में समर्थ तत्व है जो सहृदय द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है।

संगीत के सौन्दर्य स्वर, राग, लय, ताल, काकु भेद से व्यक्त होते हैं संगीत अनुभूति का विषय है शब्द जहाँ अर्थ बोध कराते हैं वहीं स्वरों का अनुभव किया जाता है लय अनुभव जन्य 'आनंद' को रक्त और प्राण के माध्यम से मन को आह्लादित करती हैं। सौन्दर्य नाद व लय के सूक्ष्म तत्वों पर आधारित है।

नादेन व्यंजते वर्णः वर्णात् पदाद् वचः।
वचसो वरूव्यवहारोह्मम् नादाधीनमिदं जगत्॥

अर्थात वर्ण से पद, पद से वाक्य, वाक्य से सम्पूर्ण जगत का व्यवहार संचालित होता है अतः समस्त संसार नादाधीन है। स्वर ताल एवं शब्द में निबद्ध रचना 'बंदिश' या चीज नाम से संज्ञापित है। इन बंदिशों में काव्यात्मक गुणों से सुसज्जित रचनाएं भावानुभूति का सहज सुलभ माध्यम है। धर्म, अध्यात्म तथा समाज की विवेचना, व्यक्ति विशेष की अनुशंसा, प्रकृति चित्रण से संदर्भित अनेक तत्व इन बंदिशों के वर्ण विशेष होते हैं।

शब्द रचना सार्थक व निरर्थक दो प्रकार से होती। निरर्थक रचनाओं को निर्गीत भी कहते हैं। इन पदों का शाब्दिक अर्थ तो नहीं निकलता किन्तु ध्वनि व टोन से अर्थ व्यक्त हो जाता है। टोन जिसमें स्वर, लय एवं आघात् आते हैं ये अर्थ तथा भाव-राम की प्रतीति करा देते हैं। प्रारम्भ उन शब्दों का प्रयोग मंगल सूचक शब्दों ॐ, अनन्त, हरी, नारायण इत्यादि से हुआ जो परिवर्तित होते हुए दारा, दिरं, दिर, तुम, नोम, तोम आदि बना यही तंत्र व सुषिर वाद्य में प्रयोग प्रयोग किए जाते हैं तबला पखावज पर धा, तिरकिट, धीना, कत्ता, तूना आदि अनेक वर्ण है जिन्हे पाटाक्षर कहते हैं उन निर्गीत से बनी बंदिशों को गत कहते हैं जो विलम्बित व द्रुत किसी लय में हो सकती है ये रचनाएं राग एवं स्वर सन्निवेशों, राग नियमों का पालन करते हुए मधुरता के साथ निर्मित होती है इनमें राग भाव, राग समय सिद्धांत का पूर्णतः पालन होता है।

ऋतुओं के अनुसार भी रचनाएं प्राप्त होती है जो ऋतुकालीन रागों में अधिकांशतः निबद्ध होती है। शृंगार, वीर, करूण भावों से रची बसी अनेक रचनाएं प्राप्त होती हैं कुछ रचनाओं में शान्त रस तथा अनेक रचनाएं शब्द सौन्दर्य, लय, ताल, चमत्कार, स्वरसन्निवेशों की अनुपम छटा से अद्भुत रस का संचार करती है। बंदिशों की रचनाओं में गीत प्रकार (धुपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पों, भजन आदि) के अनुकूल तालों का चयन भी किया जाना अनिवार्य अंग है।

राग रूप व स्वर सन्निवेश बंदिश का आधार तत्व है दूसरे शब्दों में कह सकते हैं की सम्पूर्ण राग रूप का विदेशी बंदिशों में होता है ये बंदिशें या निबद्ध रचनाएं गीत, शैलियों का आश्रित होती हैं। जैसे ध्रुपद में बंदिश के आर मार्ग स्थायी, अन्तरा, संयारी व आमोग होते हैं। उसी प्रकार ख्याल, ठुमरी, टप्पा, त्रिवट, चतुरंग में स्थायी व अंतरा दो भाग तथा भजन, गजल, गीत में एक स्थायी व कई अंतरे प्राप्त होते हैं।

'बंदिशे' संगीत सौंदर्य की वृद्धि में अपना अमूल्य योगदान देती है अपनी कलात्मक राग रूप के समुचित समन्वय, लय छन्द ताल को उचित समावेश, देश, काल परिस्थिति भाषा के अनुकूल सृजित रचनाएं संगीत सौन्दर्य को समृद्ध बनती है व सहज भाव बोध का माध्यम बनती है।

बंदिशों में सौन्दर्य :

1. **सापेक्षता :** 'वस्तु' या रूप का वह गुण है जो एक दूसरे के सापेक्ष हों। स्थायी अंतरा, संचारी, आभोग राग संचार का यथोचित प्रयोग वः शब्द रचना एक दूसरे से समृद्ध हो।
2. **सम्मात्रा :** विभाग तथा खण्डों के अनुरूप मात्राएं हों और उन पर खूबसूरती के साथ शब्द पिरोये गए हों। आभोगी-कमल लोचन मीठी मीठी चंचल
3. **संतुलन :** शब्द, स्वर, लय, कषर्ण धनाक्षरी सभी का एक संतुलन हो। खेलन चली।
4. **विरोधाभास :** वैचित्र्य संगीत का विशिष्ट गुण है वादी-विवादी तिरोभाव-आविर्भाव, अतीत-अनागत इन सांगीतिक तत्वों का प्रयोग करके बंदिशों का निर्माण किया जाता है जो श्रोता एवं प्रयोक्ता दोनों में अद्भुत रस का संचार करती है।
5. **विविधता :** विविधता सौन्दर्य का पर्याय है शब्द, भाव, छन्द, आकार-प्रकार, लय-स्वर सन्निवेश जो नित नवीन देह रूप में निर्मिती होती है।

संगीत में वर्ण क्रिया विस्तार का सूचक है भावाभिव्यक्ति में स्वर अकेला समर्थ नहीं स्वर सन्निवेश आवश्यक है भिन्न भिन्न रागों के भिन्न भिन्न स्वर संचार होते हैं जो रागों की अपनी पहचान होती है। अपनी

निजता होती है जैसे राग यमन में नि रे ग म प रे ____ ग रे सा नि, तथा गौड़ सारंग में ग रे म ग प म ध प आदि स्वर समूह आते हैं इसी प्रकार समस्त रागों के अपने स्वर समूह है। ये स्थायी, अंतरा, संचारी आभोग चार प्रकार से होगा वर्ण पद का निर्माण करते हैं और अर्थ बोध के लिए पद बनना जरूरी है। महर्षि भारत ने कहा है :

यस्याक्षर समृद्ध तत्सर्व पद संज्ञितम्

वाक् तीन शक्तियों पर (शब्द शक्ति) अमिधा लक्षणा और व्यंजना पर आश्रित है अमिधा वृत्ति का प्रयोजन वाक्य का सामान्य अर्थ तथा लक्षणा वृत्ति विशिष्ट अर्थ बोध कराये किन्तु व्यंजना वृत्ति से भावों का विस्तार है संगीत में शब्द ध्वन्यात्मक उत्कृष्टता ग्रहण करके भावभिव्यंजना करता है यही काव्य का उत्कृष्ट रूप व्यंजना शक्ति है ये सूक्ष्मतम् होती जाती है। अब उसको समझने के लिए हम देखे 'राग' का अर्थ है रंगना/लक्षणा से तन्मयता और व्यंजना शक्ति अर्थात अलोकिक आनन्द।

ये शब्द शक्तियां संगीत में कैसे प्रयुक्त होंगी-प्रबंध में सार्थक, निरर्थक शब्दों का प्रयोग होता है जो ध्वन्यात्मक विशिष्ट गुणों का ग्रहण करके शब्द शक्तियों को समृद्ध करती है। कुछ उदाहरण जैसे :

1. **ध्रुपद तथा ख्याल की बंदिशों में लय वैविध्य रूप में :** ध्रुपद तथा ख्याल दोनों में छन्द वैविध्य तथा लय वैविध्य की अनेक बंदिशें मिलती हैं समा विषम विभागीय तालों में शब्दों का स्थापित करना भी अतिविशिष्ट होता है जो बंदिशों का सौन्दर्य वर्णित करता है।
2. **मुक्त विस्तार तथा विभिन्न लयों में गीतियों की बात आती है :** शुद्धा, भिन्ना, गौणी, बेजरा और साधारणी ये पाँच गीतियों हैं जो रागों के शैलियों के संदर्भ में प्रयुक्त की जाती है जो बंदशिों का अनुपम रूप प्रदान करती हैं।
3. **लयात्मक विविधता :** बंदिशों के संदर्भ में देखे तो अति विलम्बित, विलम्बित, मध्य, मध्य-द्रुत, द्रुत अति द्रुत आदि अनेक लय आ जाती है जो बंदिशों को विशेष कलेवर प्रदान करती है एक ही बन्दिश अगर भिन्न लय में प्रयुक्त हो तो अलग-अलग प्रभाव छोड़ेगी यही उसकी लयात्मक विशिष्टता भी है।
4. **स्थायित्व :** निश्चित स्वर सन्निवेश से अनेक बंदिशों का निर्माण होता है हर राग के अपने स्वर संचार हैं जो उसकी पहचान होते हैं उनका प्रयोग करके बंदिशें बनि जर कलाकार, रचनाकार ने उसे अपनी कलात्मक प्रतिभा तथा भावानुरूप बांधा जैसे राग बिलासखानी तोड़ी में रे नि सा रे ग, रे ग म ग रे सा मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है वो देखा गया है कि इस राग की बंदिशों का सौन्दर्य शब्दों के प्रयोग से भिन्न है जैसे तज रे अभिमान जान गुनिजन को जहाँ अध्यात्म से जोड़ता है वहीं जगदम्बा अम्बिका भक्त की भावना को व्यक्त करते हुए धर्म से जोड़ता है, मान मोरी बात मीत पियरवा से बंदिश शृंगारिक रचना है तो उसी भाव को व्यक्त करती है।
5. **जटिलता :** बंदिशों में विभिन्न प्रकार के प्रयोगों से जटिल रूप भी प्रदान किया जाता है जो उसे सुंदर बनाता है कहीं ध्वनि भेद से, मीड के प्रयोगों से, खटका, मुर्की आदि प्रयोगों से, स्वरों के कर्षण से, धनाक्षरी शब्दों से अद्भुत रूप प्रदान किया जाता है। ये बंदिशें यद्यपि गाने में कठिन होती हैं किन्तु यदि सही से निर्वहन हो गया तो अभिरे छापे भी छोड़ती है।

बंदिश को सुंदर 'कहन' अर्थात नाट्य शास्त्रीय काकु भेद

नाहक लाए गवानवा
चला रे परदेसिया

सौन्दर्य का संचालन वही है और उसमें ही लीन हो जाना ही सौन्दर्य है वैखरी, मध्यमा, पश्य से परा की ओर ले जाता हो।

अलंकारों का प्रयोग : अनेक बंदिशों में यमक, उपमा जैसे अलंकार का प्रयोग करते हैं जो बंदिशों को अनुपम रूप प्रदान करते हैं जैसे राग अहिर भैरव की बंदिश के बोल हैं :

पूरब, प्रभाकर, प्रात, पधारे, प्रखर, प्रचंड, प्रबल, प्रणपालक।

इस बंदिश में प्र शब्द की पुनरावृत्ति हो रही है अतः यह यमक अलंकार है।

बंदिशों में 'कहन' का अंदाज जिसे हम नाट्यशास्त्रीय काकु भेद की दृष्टि से देखें तो बंदिश भी अद्भुत रूप प्रदान करता है। हम किस शब्द का ध्वनि विशेष, लय विशेष, भावानुकूल आवाज कैसे प्रयोग करें की वॉ अर्थ बोध, भाव बोध, कराते हुए रस निष्पत्ति करा दे ये महत्वपूर्ण है किसी भी रचना की उत्कृष्टता यदि उसके शब्द सृजन से है तो प्रस्तुतिकरण भी उतना ही उत्कृष्ट होना चाहिए तभी वह रचना प्रभावी होगी तथा मन मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ेगी देश के प्रख्यात कलाकारों के प्रस्तुतिकरण में ये बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

इन समस्त सौंदर्यवर्धक तत्वों के प्रयोग से बंदिशों का प्रयोग प्रभावी होता है। संगीत की इन्हीं बारीकियों से रचा-बसा यह अनहद लोक अंक-22 आप सभी के शुभ हाथों में सौंपते हुए आपकी प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा रखती हूँ।

- डॉ॰ मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

1.	The *Tutinama* : Texts, Ideas and Paintings	*Dr. Anjali Duhan-Gulia*	1
2.	Bagurumba Dance in the Context of Globalization	*Dr. Arati Basumatary*	9
3.	सदरे आलम के वॉश चित्र : एक अध्ययन	*डॉ॰ देवता प्रसाद मौर्या*	12
4.	Analysis of Rasas or Literary Sentiments in The Performing Arts of Saṅkaradeva : Special reference to *AṅkīyāNāṭ*	*Aligunjana Sarma*	17
5.	Cultural and Spiritual Transformation : Effects and Influences on The Bhakti Movement in Kerala	*Dr. Krishnakumar A.*	23
6.	कला, संगीत, वाद्ययंत्र और सांस्कृतिक दृष्टि से सिलप्पधिकारम् का अध्ययन	*डॉ॰ आर॰ कविथा*	28
7.	Rai Dance of Bundelkhand : Tradition, Resistance and Cultural Revival	*Dr. Ahfaz Khan*	34
8.	The Embodiment of Ashta-Nayika in Thumri : A Study with Reference to the Rasikpriya of Keshavadasa	*Sakshi Yadav*	40
9.	प्रिंट विज्ञापन की सृजन यात्रा : एक कलात्मक अध्ययन	*डॉ. चारू यादव*	48
10.	छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियाँ : लोकपर्व एवं पारंपरिक पूजा-पद्धति	*डॉ. चुन्नीलाल*	55
11.	A Rare Varna in The Raga Kedaragoula Set to Misra Jathi Jhampa (Two Kala) by Rudrapatnam Venkittaramayya – An Outlook	*Dr. Dileep Kumar V R*	65
12.	हिन्दी ग़ज़लों में लोक सांस्कृतिक तत्वों के निरूपण की दिशा एवं दशा	*डॉ॰ गजेन्द्र भारद्वाज*	70
13.	जय झरोटिया के चित्रों में रहस्य तत्व	*डॉ॰ ललित मोहन सोनी*	80

14.	The Yoga Upanishads and Holistic Health : A Textual and Neurophysiological Synthesis	*Dr. Namrata Chouhan* *Mr. Chanchal Surywanshi*	86
15.	The Unique Beauty of *Jhoola* Shabdas by the Saints of Ra Dha Sva Aa Mi Faith	*Dr. Neetu Gupta* *Mahima Sinha*	92
16.	Neoliberal Feminism in the Shopaholic Series by Sophie Kinsella	*Dr. R. Saktheswari* *Ms. S.Vinitha*	98
17.	Tribal Dances of Jharkhand : Celebration of Culture, Nature and Community	*Dr. Sangeeta Chauhan* *Prof. Raj Sharan Shahi* *Michael Trances Suraj*	103
18.	Impact of Globalization on Indian Novelists	*Dr. S. Sudha*	109
19.	Dynamic Aspects of Indian Classical Music	*Dr. Monali J. Masih*	117
20.	कला के पारंपरिक मूल्य और आधुनिकता की चुनौतियाँः एक संतुलन की खोज	*आकाश वर्मा*	121
21.	रामचरितमानस में लोकतत्व	*डॉ॰ अनीता शुक्ल* *तिवारी अनुराग प्रेमचंद*	126
22.	Romantic aspects of the composition 'Yugmaganam' with the musical form 'Javali' - A Study	*Anjo P. Thomas* *Dr. S. Seethalakshmi*	132
23.	From Walls to Web : The Digital Evolution of Madhubani Art as a Rural Business Model	*Anu Jha* *Dr. Nikhil Anand Giri*	139
24.	उत्तर भारतीय संगीत के अंतर्गत छंदों एवं तालों का अंतर्संबंध	*डॉ॰ शिल्पी नाहर* *श्वेता मिश्रा*	144
25.	'लक्ष्मण रेखा' उपन्यास में चित्रित पर्यावरण प्रदूषण	*गायत्री* *डॉ॰ कमलेश कुमारी*	150
26.	'किन्नर कथा' उपन्यास में सोना उर्फ चन्दा की पीड़ा : सामाजिक तिरस्कार और मानसिक शोषण का विश्लेषण	*ग्लोरी जॉनसन सिंह* *डॉ॰ बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री*	158
27.	योग एवं संगीत चिकित्सा का संयुक्त प्रभाव : एक शोध अध्ययन	*हनुमान प्रसाद गुप्ता*	163
28.	लोक संवेदना के चितेरे : डॉ॰ रामशब्द सिंह की चित्रात्मक दृष्टि	*इन्दल यादव*	169
29.	भारतीय संस्कृति और मूल्यों पर आधुनिकता का प्रभाव : अशोक कुमार 'आस' के काव्य-संग्रहों के परिपेक्ष्य में	*इंदु रानी* *डॉ॰ विनोद कुमार*	174

30.	Kathakali as a Medium of Liberation in Anita Nair's Mistress	*J. Safiya Banu* *Dr. A. K. Muthusamy*	178
31.	मल्ल-युद्ध : खेल, संस्कृति और चित्रकला में प्रतिबिंब	*जयदीप हुड्डा* *डॉ॰ अंजली दूहन*	183
32.	Trauma and Behavioural Responses to Gender-Based Violence in Colleen Hoover's It Ends With Us : An Analysis	*Joelin Sherril J.* *Dr. N. Kalaivani*	189
33.	कमलेश्वर की कहानियों में सांस्कृतिक यथार्थ	*ज्योति* *प्रो॰ मीना सिंह गौर*	194
34.	Adaptation of the Violin in Indian Classical Music : An Analysis of Structural Innovations and Stylistic Integration	*Khush Paul*	198
34.	मिट्टी से मूर्ति तक : बुंदेलखंड के पारंपरिक टेराकोटा शिल्प का विश्लेषण (देवीदीन प्रजापति के विशेष संदर्भ में)	*ख्याति अग्रवाल* *वरुण रावत*	203
35.	वल्लभ सम्प्रदाय के नित्य (अष्टयाम) एवं वर्षोत्सवों में सांगीतिक प्रयोग की उत्कृष्टता	*कुसुम सिंह* *प्रो॰ संगीता सिंह*	211
36.	समकालीन भारतीय रंगमंच पर मेथड एक्टिंग का प्रभाव	*मनीश जोशी*	217
37.	Threads Reimagined : Chamba Rumaal and Phulkari Embroidery in Contemporary Fine-Art Practice (2015-2025)	*Jyoti* *Paramjit kaur* *Chatter Singh*	224
38.	The *Akshayapatra:* Unraveling the Myths of Indian Culinary Traditions	*Ms. Miraclin Nivesha M* *Dr. ArunPrabu*	235
39.	The Hesitation and Despondency of Arjuna in Bhagavadgita : A Character Strength Perspective	*Muraleedharan Pillai T. K.* *Dr. Anand Sadasivan*	240
40.	देशी नर्तन विधि - 'शुद्धपद्धति' का विविध ग्रंथों मे किए गए वर्णन का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन	*पायल रोहन गोखले* *डॉ॰ नंदकिशोर कपोते*	247
41.	Musical elements in Samaveda : Svaras, Shrutis and Veena	*Poorva Joshi*	254

42. परंपरा से आधुनिकता तक : हिंदुस्तानी संगीत में मेवाती घराने की भूमिका — *आभा त्रिपाठी*, *प्रो॰ अलका नागपाल* 259

43. रामचरितमानस में अभिव्यक्त आध्यात्मिकता की उत्तर आधुनिकतावादी युग में प्रासंगिकता — *पुनीत कुमार*, *रोबिन* 263

44. रेखांकन का विवेचनात्मक अध्ययन : भारतीय पारम्परिक लघुचित्रों के सन्दर्भ में — *राधिका विश्वकर्मा* 270

45. Manifestation of Women in Anita Desai's Novels : A Reading — *S. Gnanaraj*, *Dr. Mohan. K.* 277

46. Temporal Design Across Art Forms : An Ethnographic Study of Rhythm in Performance Traditions — *Sahithya V.*, *Dr. U. Bhavani* 283

47. Saint Meerabai - In The Lens of Vedanta — *Sanghamitra Chakravarty*, *Prof. (Dr.) Bhawna Grover*, *Dr. Gautam Chatterjee* 287

48. ध्रुपद में डागर वाणी की भूमिका – एक अवलोकन — *सीमा कुमारी*, *डॉ॰ दीप्ति बंसल* 291

49. काशी के संगीत महोत्सव एवं आयोजन : परंपरा और आधुनिकता का संगम — *श्रेया मिश्रा*, *प्रो॰ संगीता सिंह* 296

50. सामाजिक न्याय और समुदाय सहभागिता में कला शिक्षा की भूमिका — *श्री सुशील कुमार* 300

51. Songs of Separation : A Study of Biraha as a Folk Song Genre — *Ms. Shubhangi Srivastava* 310

52. वर्ली लोक चित्रकला की उन्नति व सफलताएँ — *शुभ्रा बरनवाल*, *डॉ॰ नीलम कान्त* 315

53. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय संगीत शिक्षा — *सोनाली केशरी*, *प्रो॰ संगीता सिंह* 321

54. Protest Songs Beyond Boundaries : Transnationalism Through Music — *Urmi Samaddar*, *Dr. Sangeeta Pandit* 324

55. Music and Cultural Representation in 777 Charlie Film : An Analysis of Diverse Musical Styles — *Varnika Sharma*, *Dr. Karuna Sharma* 330

56. अंजलि इला मेनन के चित्र सृजन में नारी-अंकन — *विनीता देवी* 336

57. Folk Arts and Crafts of Shantiniketan : A Study of Birbhum District of West Bengal — *Dr. Rajesh Ekka* 343

58. भारतीय जनजीवन और लोक संस्कृति के सच्चे साधक जायसी — *डॉ॰ राजेश कुमार चौधरी* 350

59. The Rhythms of Music in Jatra, the Traditional Folk Theatre of Bengal — *Suparna Chatterjee* 357

60. Technical terms on Music in Bharatakosa — *Prof. V. Premalatha*, *Mr. Arutla Rohith* 365

61. मामूलीपन में निहित असाधारण कथा कहने वाला कवि : केदारनाथ सिंह — *शिवानी शर्मा* 372

62. ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों में संगीत — *मेघना कुमार*, *डॉ॰ दीपक सिंह* 378

63. महाकवि कालिदासप्रणीत श्रुतिसाधनात्मक साहित्य में राष्ट्रीय संचेतना के स्वर — *डॉ॰ राजीव रंजन* 382

64. Maternal Silence and Violence : A Feminist Reading of A. Revathi's *The Truth About Me : A Hijra Life Story* — *Dr. Haripriya R. J. Nair*, *Dr. Manjula K. T.* 389

The *Ṭūṭīnāmā* : Texts, Ideas and Paintings

Dr. Anjali Duhan-Gulia
Associate Professor,
Department of Visual Arts,
Maharshi Dayanand University, Rohtak, Haryana

Abstract :

This article examines the Ṭūṭīnāmā text which is assumed to be a Persian translation of the Sanskrit text Śukasaptati (Seventy Tales of the Parrot). The latter is a collection of stories which were put in the mouth of a pet-parrot who recites them each night to stop her mistress Prabhāvatī from committing an adulterous act in her husband Madana's absence. The Sanskrit text in prosimetrum belongs to the kathā genre where the frame story engulfs several anecdotes. It was translated into several languages including the Ṭūṭīnāmā in Persian which was rendered by Ẓiyā' al dīn Nakhshabī not necessarily from the original Śukasaptati but from a version based on this Sanskrit text in about c. 1329 CE.

After a detailed study, it is postulated that the Ṭūṭīnāmā is a rich collection of tales having varied and colourful themes. There are several stories which focus on guiding the women and curtailing their desires, some on the ideas of kingship, or ethics, etc. This research traces how these themes are catered to in the Persian in comparison with the Sanskrit text. Further, two versions of the Ṭūṭīnāmā text were produced for Mughal Emperor Akbar (r. 1556–1605 CE) which would be discussed from the lens of art history. A story from the text is discussed in detail by drawing from the Sanskrit and Persian texts and the visual depictions to understand how the ideas of chastity and loyalty in a female are represented. The conclusion will examine the reasons of its production in the Mughal atelier and its subsequent reception in the Mughal court/household.

Key words :

Ṭūṭīnāmā, Śukasaptati, edification, Mughal painting, advice literature for women.

The *Ṭūṭīnāmā* (*Tales of the parrot*) text is assumed to be a Persian translation of the Sanskrit text *Śukaspatati* (*Seventy tales of the parrot*) (Fig. I).[1] *Śukaspatati* belongs to the *kathā* genre where the frame story engulfs several anecdotes which pre-

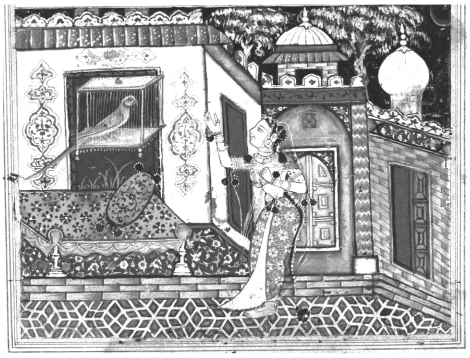

dominantly deal with sexual liaison outside of marriage, the problematic but exciting situations one finds oneself in these relationships and the ingenious ways to escape from those crises. It also borrows from multiple preceding texts like the popular *Pañcatantra* - tales of the crocodile and the monkey and the two friends Dharmabuddhi and Pāpabuddhi and the talking tree are embedded in this text.[2] Additionally, the text includes verses or quotations from epics and *Purāṇa*-s, *Kāmasūtra* and also from the *Arthaśāstra*, *Kumārasambhava*, *Mṛicchakatika* and *Mudrārākṣasa*.[3] Current scholarship believes that *Śukaspatati* in its present form belongs to the twelfth century CE[4] and was subsequently translated into several languages pointing to its immense popularity. This article is concerned with the Persian version of *Śukaspatati* known as the *Ṭūṭīnāmā*, some of its ideas, and how they are represented in the visual medium.

The *Śukaspatati* was translated into Persian for the first time by 'Imād al-Din T̲aġarī, a court secretary of 'Alā al-Dīn Khaljī (r. 1286–1306 CE) with the title of *Jawāhir al-asmār*. Pegah Shahbaz has noted that the translator increased the number of tales to 86 (from the original 70) and adapted them into the Persianate world. T̲aġarī did not include every tale from the *Śukaspatati*. He was selective - eliminated some and replaced them with other stories and fables from other Sanskrit sources such as *Pañcatantra*, *Kathāsaritsāgara* and *Vetālapañcaviṃśati*.[5] So the *Jawāhir al-asmār* translated some stories from the *Śukaspatati*.

Subsequently, Ẕiyā' al dīn Nakhshabī who was a Chishtī Sufī and an author, living in Badayun, Uttar Pradesh perhaps accessed the *Jawāhir al-asmār* (may be *Śukaspatati* also) and composed his own version of these tales in about *c.* 1329 CE which is the *Ṭūṭīnāmā*. He retained the original frame story but altered the ending where Madana who is now Maimūn, the husband, kills Khojasṭa who was Prabhāvatī in Sanskrit for her desire to be unfaithful. He also reduced the number of tales to only 52.[6] It is often projected about this text that it 'exclusively' consists of tales which present amorous relationships and focus on guiding the women and curtailing their desires. This research, however, suggests that it is a rich collection of the tales having varied and colourful themes. Of course, there are tales about women and their sexual desires, and beyond doubt the *Ṭūṭīnāmā* is one of the standard texts to understand the condition of women in the early modern India. Nevertheless, the nature of tales having women as the main protagonist has been altered. If in the *Śukaspatati* the females are adventurous, open and accepting about their sexual desires, in the *Ṭūṭīnāmā* most of them are presented as virtuous and faithful and if they commit adultery are justified to be punished. The disobedient, manipulative, and adulterous women are either whipped as in the parable narrated on the twenty-fourth night,[7] stoned (on

tenth night and forty-second night) and burnt and trampled by an elephant (on twenty-second night), or their lovers desert them midway and they return back to their husbands (on sixteenth night) – theme/ sub-theme of several stories from this text. What has been noted here with the study of the *Ṭūṭīnāmā* is that the numbers of tales from *Śukaspatati* are considerably reduced. Some of them are present in the narration of the eight night as subtexts. The main narrative of this night is about a prince and the astrologers have predicted that he will die in his thirteenth year. In order to prevent his death, he has to remain silent for one week but due to deceit of a woman from the haremò, the king orders his execution. But the execution is stayed by a series of tales about female deceit recounted by seven ministers. Here, each of the females as scheming, witty wives having affairs, enjoying themselves, and deceiving their husbands.

Alternatively, some stories in the *Ṭūṭīnāmā* also present the ideas of chastity and loyalty in a female as one told on the fourth night, illustrated with four paintings, it is about an astute lady who was a wife of a soldier; jealous and anxious, he always doubted her chastity. In order to impress upon him the fact that if a wife intends to betray her husband, she will find ways, whatsoever tricks the man employs to stop her. To prove her point, she narrates a story of a skilled Indian yogi who through his practice had reached such level that he could transform himself into anything he desire. Being overprotective about his wife and stopping her from committing adultery, he transformed himself into an elephant and carried his wife all the time on his back in a howdah and lived in the thick forest away from the presence of any male. Still his spouse had managed to form relationships with hundred men of whom she kept a count by tying knots in a long string. Fig. II. a half page illustration is devoted to this part of the story in which the elephant realistically rendered is engrossed in eating the lush green leaves from a tree, however, behind his back his wife is in the close embrace of a her lover. Their figures balancing the large form of the elephant on the other side in the composition, the middle has a outsized curtained howdah, the living space of the female amidst the deep jungle represented here by a cluster of trees created by applying patches of shades of green and yellow. In this manner, the yogi's wife had several encounters with men and she kept a count of all of them by tying knots in a string. Although the string is absent here, in the Chester Beatty version the wife is actually displaying the string with multiple knots to her lover while the yogi-elephant is pulling a branch off a tree.[8]

After listening to this story, the soldier finally agrees to his wife's advice and went on his business. As an additional proof of her chastity, she gives him a garland of flowers that will remain fresh until the

time she will stay loyal to her husband. Her act of handing down the garland is painted on the three-fourth section of folio 27a of the Cleveland Museum *Ṭūṭīnāmā*, Fig. III. The composition is divided into three sections – the now empty bedroom suggesting the painful parting between the two protagonists on the proper right, the middle has the lovely, adorned, young wife passing on the floral garland to her man who is completely attired in the paraphernalia of a soldier and the part on the proper right divided from the central portion with a simple floral motif has the figures of the horse and its attendant standing outside suggesting the immediate departure of the warrior. The horizontal format, two-dimensional architectural feature, flat background lacking spatial depth and the wife with angular features and garments which are adorned with bold patterns all point towards a pre-Mughal style.

In the soldier's absence his wife proves her character as a chaste woman by remaining faithful despite several attempts to seduce her. Once the King of that province, to test her sent two handsome cooks to her house to entice her, however, she trapped them into a pit by making them sit on a charpoy made of weak strings. This scene is vividly painted on folio 29a (Fig.-IV here) of the Cleveland Museum *Ṭūṭīnāmā* – a cook already lying on the ground and the other one in the motion of falling. The clever lady standing on the top delighted on her success. Subsequently, she brought them out of the pit, shaved their heads,

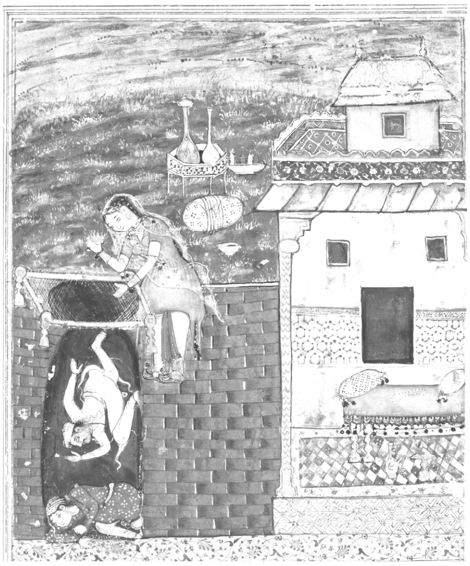

made them dress as maidservants and kept them in her prison until the King became worried and enquired about their situation. Figure-V here represents the King seated, supported by the bolster on a stool, surprised to see the condition of his men now ashamed of their act, bald and dressed as females, paying homage to him and seeking his forgiveness. He finally understood the power of a chaste woman.

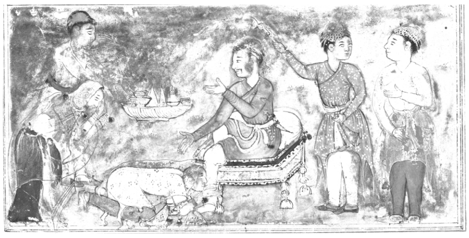

Although there are several stories on these lines in the text, there are also narratives edifying us on pragmatism, humility, kingship and courtly etiquettes, friendship, human nature, dependence on fate, etc. The ones focusing on practical wisdom are drawn primarily from Indian *nītiśāstra* texts. Like, a story narrated on thirty-fourth night is of a merchant from Kabul, his

daughter and her three suitors: a painter, a poet, and a valorous man, each promised her hand in marriage. They by employing their skills rescue her, but the daughter marries the brave youth who risked his life for her. This narrative is borrowed from the *Vetālapañcavimśati* (the story of Somaprabhā and her three suitors), and in both the versions instructs that a man should be brave enough to protect his wife and face any difficulty to save her. Then the parable on the thirty-seventh night is borrowed from the *Pañcatantra*, where a wren and its friends the bees and the frog collectively with their wit take revenge from an elephant by making him fall into a ravine and is killed. Another anecdote from the *Hitopadeśa* where there is a foolish donkey braying which alarms a thief but the master thrashed the donkey. Here the dog was his friend, but in *Ṭūṭīnāmā* it is the deer that ran away from the donkey and saved himself, whereas, the gardeners are beating the donkey. It is important to record here that the stories from *Pañcatantra* which we had noted in the *Śukaspatati* like the crocodile and the monkey are absent in *Ṭūṭīnāmā*. So, Nakhshabi had also been selective about the content of his book and he has eliminated or replaced stories, even though he was referring to same texts.

Other significant ideas which are present in the *Ṭūṭīnāmā* are etiquettes of kingship and statecraft which are absent in the *Śukaspatati*. The stories devoted to these themes are most likely borrowed from an Islamic/Sufi milieu. For instance, the two stories narrated on the seventh night reveal an exemplar about the munificence of a King who is mentioned in the text as the King of the Kings. The first is a tale of an impecunious dervish who was in love with the princess of Bahilistan. The King of that region was obliviously against this match and in order to divert the hermit's obsession he sought from him an elephant laden with gold. So the dervish went in the court of the King of Kings and requested for the tribute to which the King of the Kings obliged. Thereafter, the King of Bahilistān again demanded to bring forth the head of the King of the Kings. The latter happily agreed to even this obnoxious demand and permitted the hermit to tie a rope around his neck and lead him to the King's court. When the King of Bahilistān witnessed this modesty of the King of Kings who is far superior from his status and power but is deferential to the pious dervish, he felt ashamed and married his daughter with the King of the Kings (Fig.-VI). This beautiful tale presents the qualities of an ideal monarch as projected from a Sufi lens. Similarly, a story narrated on the seventh night again about the King of Kings exemplifies the idea of the merciful ruler when he sacrifices his life by jumping into a cauldron filled with boiling oil for the love of a woman and a *jinn*.

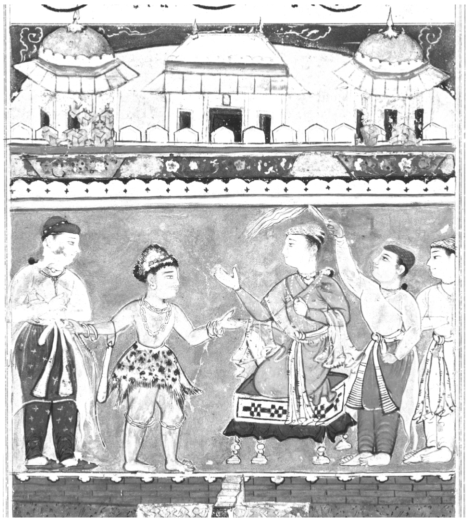

Therefore, this text presents a fine conflation of Indian wisdom presented by the fables of clever and urban personified animals, perfected yogis, gorgeous women and merchants representing all shades of an everyday Indian life with Islamic ideals about kingship, ethics, humility and chastity. Perhaps this encyclopaedic knowledge about the contemporary mundane life and the lessons of practical wisdom, kingship, and morality embedded in this text attracted the attention of Emperor Akbar and perhaps because of this, two illustrated examples of this text survive from his atelier.

In both the manuscripts, the prose is frequently punctuated with verses of celebrated Persian poets without acknowledgement, which encapsulates and reiterates the message of the prose. The palimpsest *Ṭūṭīnāmā* manuscript preserved in the Cleveland Museum of Art (1962.279) is nearly complete with 218 miniatures on 341 folios. John Seyller in a seminal article on this manuscript has postulated that it is dated to *c.*1570 and almost half of its miniatures are over-painted. He added that this *Ṭūṭīnāmā* was formerly illustrated in the *Candāyana* style many decades before it was refurbished in the Mughal atelier.[9] This could be discerned by examining the background of Fig.-V here which has portions of the previous yellow coloured background visible due to the flaking of the now lavender coloured base on the proper top right corner. Further, the earlier drawings of the throne and the bolster are also noticeable. The miniatures are ascribed to several Mughal artists, like Gujarātī, Śravaṇa, etc., who reworked on the existing paintings by either rubbing off the previously painted versions, or they directly painted on the earlier ones. They also added new paintings where the manuscript had been left incomplete. Most of the illustrations belonging to this manuscript are small size paintings which usually have flat backgrounds before which the figures are suspended. The two-dimensional interior scenes are adorned with brilliant-coloured sections, bold textual patterns and tile work. Figures are simple, often small – the males dressed in Mughal *jāmā* and turban, whereas, the females are mostly garbed in the Indian attire of *lehangā* and *colī*.

Another illustrated version of the *Ṭūṭīnāmā* was created in *c.*1580 and it is partly preserved in the Chester Beatty Library, Dublin (Ms.21). It has 143 folios including 102 miniatures and the remaining leaves are scattered in various Western and some Indian collections.[10] Produced for Emperor Akbar, this manuscript remained in the Imperial library at least through the reign of Shah Jahan.[11] The paintings which are part of this version of the *Ṭūṭīnāmā* are mostly full-page compositions and are generally free from any major influences from the earlier Cleveland paintings. The painters have created coherent, expressive, and lively compositions. By the eight decade of the sixteenth century, the painters had gained experience in visualising narratives with realism by their increased knowledge of the spatial depth and curating figures in action and in relation to each other. They were also capable of adding psychological nuances to a scene. In comparison to the paintings of the Cleveland *Ṭūṭīnāmā*, the Beatty paintings are more attuned according to the Mughal style. As was the norm in that decade, more than one painter contributed to a scene and perhaps their names were written by a librarian

on each folio – these are lost to us due to re-margining of the folios in the eighteenth or early nineteenth century.

The *Ṭūṭīnāmā* never gained such popularity as the rather thematic similar *Anvār-i Suhaylī* in the royal circles. One reason is at some places, the text appears an assortment of unrelated miscellaneous material. It seems, the author has intentionally created this selection of stories in order to make it useful to a large number of people. The language and structure of these parables are direct and easy so that it may even be understood by the uneducated. This brings us to the question of the reception of the *Ṭūṭīnāmā*. When we take into consideration, the theme, context and the means of transmission of these tales through an illustrated manuscript, we may conclude that even though these tales have some information about mundane life and the common folk, but, in fact, these are elite tales, carefully collected here for the exclusive consumption of the elite-for the edification and entertainment of the Mughals. Perhaps, the text consisted of material for the emperor and the members of his inner circle and was received on similar lines. For example, several of the stories have portrayals of ideal kings – Nakshabī tries to educate the readers/audience to learn from the wisdom and lives of the preceding rulers and their interactions with men of God and their subjects. Further, this work must have directly spoken to the women in the harem because of the strong presence of females in this work, where they have acted as strong protagonists in the text illustrated exquisitely in the accompanying miniatures. Supposedly, it was also considered an appropriate reading material for the edification of females on matters of chastity, familial relationships, love, etc and was meant to be read aloud at court/ harem gatherings, which also included women.

Bibliography :

Manuscript Sources :

1. *Ṭūṭīnāmā*, *c.* 1570, Cleveland Museum of Art, Persian, MS. 1962.279. https://www.clevelandart.org/art/collection/search?search=1962.279&filter-include-parts=1
2. *Ṭūṭīnāmā*, *c.* 1580, Chester Beatty Library, Dublin, Persian, MS. 21.

Primary Sources :

1. *Pañcatantra* by Viṣṇuśarman. Translated by Franklin Edgerton. Vol. II. New York: Kraus Reprint Corporation, 1924, 1967.
2. *Suka Saptati: Seventy Tales Of Parrot*. Translated by A.N.D. Haskar. New Delhi: Rupa.co., 2009.
3. *Tales of a Parrot – The Cleveland Museum of Art's Ṭūṭīnāmā* by Nakhshabī, Ziyā' al-Dīn. Translated and edited by Muhammed Ahmed Simsar. Cleveland, OH: The Cleveland Museum of art 1978.

Secondary Sources :

1. Chandra, Pramod, and Daniel J. Ehnbom. *The Cleveland Tuti-Nama Manuscript and the Origins of Mughal Painting*. Cleveland, OH: The Cleveland Museum of Art, 1976.
2. Leach, Linda York. *Mughal and other Indian Paintings from the Chester Beatty Library*. Vol. I. London: Scorpion Cavendish,1995.
3. Losty, Jeremiah P. *The Art of the Book in India*. London: The British Library Board, 1982.
4. Seyller, John. "Overpainting in the Cleveland Ṭūṭīnāmā." *Artibus Asiae*, 1992, Vol. 52, No. 3/4 (1992) : 283-318.
5. Pegah Shahbaz. http://perso-indica.net/work/tuti-nama-1. Accessed on 15 June 2024 at 6.30 pm.

Footnotes :

1. Both the Sanskrit and Persian framework stories are too well-known to repeat here, so I will directly go to the two texts.
2. *Pañcatantra* by Viṣṇuśarman, trans. by Franklin Edgerton, Vol. II (New York: Kraus Reprint Corporation, 1924, 1967), Books I, IV, 322–325, 393–397, verses 1–52, 499–554.
3. *Shuka Saptati: Seventy Tales Of Parrot*, trans. by A. N. D. Haksar (New Delhi: Rupa.co, 2009), Intro., 17.
4. *Shuka Saptati*, Haskar, Intro., 18. The author mentions that there are two known versions of the Ś*ukasaptati*: a simpler version is attributed to a *Śvētāmbara* Jain ascetic and the other much ornate version is assigned to *brāhmaṇa* Cintāmaṇi Bhaṭṭa.
5. Pegah Shahbaz, http://perso-indica.net/work/tuti-nama-1, accessed on 15 June 2024 at 6.30 pm. According to Pegah Shahbaz, the only surviving manuscript of this text is preserved in the Majlis Library of Tehran.
6. *Shuka Saptati*, Haskar, Intro.,18.
7. The disguised Arab substituting for Habbaza is whipped by her husband for refusing a bowl of milk.
8. Chester Beatty Library, Dublin, manuscript no. 21, folio 19r. Previously published in b/w by Linda York Leach, *Mughal and other Indian Paintings from the Chester Beatty Library*, Vol. I (London: Scorpion Cavendish, 1995), 28.
9. For further details, *see*, John Seyller, "Overpainting in the Cleveland Ṭūṭīnāmā", *Artibus Asiae*, 1992, Vol. 52, No. 3/4 (1992), 283–318. The author has examined the small-size paintings under the microscope and the infra-red light.
10. For codicological, thematic, and art-historical details, *see*, Leach, *Mughal and other Indian Paintings,* Vol. I, 22–74.
11. The manuscript eventually came in the hands of General Jean Francois Allard who served Ranjit Singh in Lahore and lived in India for twenty years. Probably in Lahore he obtained the *Ṭūṭīnāmā* and gave it to his fellow Frenchmen, Baron de Coiches. The subsequent history of this manuscript is unknown. Leach, *Mughal and other Indian paintings*, Vol. I, 24.

Bagurumba Dance in the Context of Globalization

Dr Arati Basumatary
Associate Professor,
Assamese Department,
Kaliabor College

Abstract :

Globalization is the process of transforming the whole world into a village by influencing different cultures, economies, social concepts, etc. The Boro people are one of the ethnic groups of Assam who have contributed significantly to the formation of the Assamese nation. They live in all regions of Assam both in the hills and plains dance. The dance costumes and poses are an introduction to the life of the Boro people. However, in the present era of globalization, the Bagurumba dance has undergone significant changes. This paper will discuss the changing aspects of Bagurumba dance and the role of the Boro community in this regard.

Bagurumba is the most popular folk dance of the Boro people. This dance is also called the 'Butterfly' dance. This dance is mainly performed in groups by Boro women wearing traditional costumes during Bihu or Basanta festivals. The women perform this dance in order to the beat of songs and instruments

Keywords :

Bodo, Assam, Culture, Bagrumba Dance, transformation.

Introduction :

The Boros are the most simple and cultured ethnic groups in Assam. They are believed to have spread throughout eastern India around the 15th century BC, north of the Himalayas and in China. They are currently found in the districts of Kokrajhar, Baxa, Odalguri, Karbi Anglong, Goalpara and Nagaon in Assam.

Bagurumba is one of the strongest cultures of the Boro people. This dance is mainly performed by Boro women during Bihu or spring festivals. The dance is performed by women in groups to the beat of songs and instruments. The Bagurumba dance reflects the Boro ethnic lifestyle in harmony with heritage and nature. During the dance, the artists wear traditional costumes like dokhona , arnai, fasra etc. Various instruments such as kham (drums), chifung (flute), jhutha etc. are used as musical instru-

ments. The Bagurumba dance is not only a musical performance, but also a means of preserving the life, culture and traditions of the entire nation. The dance reflects the connection and love of the Boro society with nature. However, the influence of globalization has also affected the traditional Bagurumba dance.

Globalization is a global process in which cultures, economies, technologies and social concepts move from one country to another expands to a country. However, in the course of globalization, the spread of this dance is a positive aspect. This is because the Bagurumba dance has been performed at various national and international festivals. The dance has become known to the world through various digital platforms such as YouTube, Facebook and Instagram. Currently, various workshops, training camps etc. have been created for dancers which have helped them in employment and income generation. This dance has recently been performed on international stages and recently entered the Guinness Book of World Records as the largest group to perform the dance.

Globalization, on the one hand, has given the Bagumba dance an opportunity to give it global glory, but on the other hand, it has also indicated the possibility of distorting the true form and tradition of this dance. Therefore, it is important to understand the importance of these dances in the development of the country. Therefore, it is important to understand the importance of these dances in the development of the country. Similarly, the tradition and spirituality of Bagurumba dance has been weakened due to modern costumes and sophisticated cosmetics. Sometimes they perform Bagurumba dance on many stages without the permission of the Boro community, which is a matter of great pride. But in the dance style and the style of wearing the dress (especially the dokhona). Without accuracy, the seriousness of the real dance seems to be reduced. The younger generation is attracted to the dance through digital platforms but only as a performing art. They are not interested in the original history, meaning or importance of the dance. Therefore, the true meaning of the dance seems to be gradually declining. It must be admitted that it is due to globalization that the youth have recently become proud of the Bagurumba dance. The dance has become popular in many institutions and institutions. However, the worrying thing is that dance videos available on the Internet are confusing with wrong gestures and costumes. Globalization has enabled this dance to reach the world stage. This is truly a glorious aspect. However, it is essential to preserve the identity of culture along with such opportunities in today's context. The Bagurumba dance is a symbol of the emotions and culture of the Boro people. This dance is a shining example of unity, love of nature and survival of heritage in the diversity of Assamese society. In the era of globalization, there is a great need for Bagurumba dance to preserve its uniqueness. It is essential to preserve the true spirit of this dance which reflects the culture of the Boro nation through its characteristics, beauty, etc. It is always important to be aware that this culture is not distorted by commercialization or misrepresentation. There is more to be done by the conscious community in this regard.

Conclusions :

Bagurumba dance must be preserved through respect, study and research. Everyone should be aware and pay attention to whether the dance is actually being promoted on the Internet. From the elderly people who know this dance in the villages to training or preserving it by making videos, it can be said that it will be fruitful. Similarly, they must bear the responsibility of preparing books, articles and research papers on Bagurumba dance and sending resources to the younger generation. The songs, gestures and costumes associated with the dance should not be distorted I think there is a need to develop a cultural policy for that. Similarly, if the importance and dignity of Bagurumba dance continues to be discussed in villages or social functions, Bagurumba will continue to become not only a tradition but also a living cultural heritage.

Finally, I hope everyone will do their utmost to preserve this fascinating Bagurumba dance for future generations.

References :

1) Doley, Basanta Kumar (2009) . Asamar Janagosthi Eti Parichay, Asam Sahitya Sabha
2) Das, Angsuman (2014), Asamar bareboroniya Sanskriti. Aak baak Publication
3) Kalita,Niranjan (2022). Axomar Barnadhya Gosthijiwan,Rekha Prakashan
4) Neog, HariPrasad aru Gogoi (2003). Axomiya Sanskriti, Asam Sahitya Sabha.

सदरे आलम के वॉश चित्र : एक अध्ययन

डॉ० देवता प्रसाद मौर्या
स्वतंत्र चित्रकार,
अयोध्या, उत्तर प्रदेश।

सारांश :

भारतीय चित्रकला में यदि हम वॉश शैली चित्रण विधा की बात करें तो सर्वप्रथम इसकी शुरुआत शान्तिनिकेतन बंगाल स्कूल से मानी जाती हैं। उत्तर-प्रदेश में वॉश शैली का बीजारोपण 'लखनऊ आर्ट कॉलेज' से प्रारम्भ होती है। इसी बीजारोपण एक अंश के रुप में 'सदरे आलम' जी एक वट वृक्ष बनकर तैयार हुए और अपनी कला रुपी छाया से इस संसार को खूबसूरत बना रहे हैं। 'सदरे आलम' जी विश्व प्रसिद्ध कला गुरु 'बद्रीनाथ आर्य' जी से वॉश विधा की बारीकियां सीखी तथा अपने धरातल को एक नया रुप दिया। इनके बनाये चित्र कुछ सामाजिक और कुछ भारतीय संस्कृति के मूल उत्सवों पर आधारित हैं, 'आलम' जी लगभग सभी माध्यमों में काम किया है लेकिन इनका प्रिय माध्यम (जल रंग) यानी वॉश पेन्टिंग रही है। इनको विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्टीय प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाज़ा गया है। इन्होंने अपना जीवन कला गुरु के रुप में 'जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय' नई दिल्ली में पूर्व विभागाध्यक्ष एवं संकाय प्रमुख के रुप में अपनी सेवायें दी और अभी स्वतन्त्र कलाकार के रुप में कार्य कर रहे हैं। शोध पत्र के लिए प्राथमिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

शब्द संकेत :

वॉश चित्रण, भारतीय परम्परा, बंगाल स्कूल, कला विरासत, पौराणिक कथाएं।

हमे गर्व है कि हम भारतीय है हमारे भारतवर्ष की यह पावन भूमि ने न जाने कितने ही ऐसे कलाकार को जन्म दिया है, जो अपनी महान् कला कृतियों के लिए हमारे बीच जाने जाते है। भारतीय कला जगत में ऐसे ही जाने-माने कलाकार का जन्म हुआ जिस प्रकार एक जौहरी किसी पत्थर को काट-छांट कर मूल्यवान रत्न बना देता है, उसी प्रकार इन्होंने अपनी कला को मेहनत और लगन से निखारा है। इनकी कलाकृतियाँ अपना एक अलग ही स्थान रखती है। इन्होंने विशेष परिस्थितियों में चित्रकला का सृजन किया है। इनकी प्रत्येक कलाकृतियाँ मानव हृदय को स्पर्श करने वाली है। इनके चित्रों में कभी न टूटने वाली आस्था है, जो कर्तव्य परायणता को परिलक्षित करती है। इन्होंने अपने चित्रों के माध्यम से भारतीय मूल संस्कृति एवं परम्परा को जीवित रखने का भरसक प्रयास किया है। जितना इनके चित्र कोमल और हृदय ग्राही है, उतना ही इनका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली है।

'सदरे आलम' जी ऐसे कलाकार है जो आज के प्रसार-प्रचार एवं आडम्बर से दूर रहकर चित्रों एवं कविताओं का सृजन करके अपने जीवन का अनुभव

समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। जो अत्यन्त सराहनीय है। इनकी कृतियाँ मूलतः आध्यात्मिक, सामाजिक, दैनिक जीवन और मूल भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत है। इनके चित्रों को देखकर नैसर्गिक सुख की अनुभूति होती है। इनके कुछ चित्र जीवन के विभिन्न रूपों को इंगित करते है जैसे- लकड़हारा, ड्रीम ऑफ लाइफ श्रृंखला, ए मैन होल्डिंग बर्ड, लैबरिन्थ, राधा-कृष्ण, कपल, बहेलिया, रेनी सीजन आदि चित्र बनाये जो मन को छू लेते हैं।

वैसे तो जन्म के साथ ही कला जन्म लेती है परन्तु जीवन का अन्त होता है, कला का नहीं। बड़े से बड़े कलाकार भी जीवन पर्यन्त अपनी कला के माध्यम से अपने अराध्य तक पहुंचने की साधना करते रहे है, यही आध्यात्मिकता युक्त चेतना विचार करके हम यथार्थ के साथ-साथ उस ब्राह्मण्ड की परिकल्पना करते है जो रेखाओं और शून्य के बीच से गुजरता है। यह भावना कलाकार के मन में निहित रहती है। ऐसी चित्रकला जो ज्ञान, धर्म, संस्कृति और सभ्यता का दिग्ददर्शन करा सकें वही सफल चित्रकार है केवल कुछ बिन्दुओं और रेखाओं का अभ्यास कर लेने से ही कोई व्यक्ति चित्रकार नहीं हो सकता, इसके लिए दिव्य दृष्टि और गहन अनुभूतियों की पकड़ होना अनिवार्य है कुछ ही कलाकार उस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए है, जहाँ मोक्ष की प्राप्ति होती है क्योंकि उनके चारों तरफ प्रकृति का इतना विस्तृत रूप फैला हुआ है कि उसे चित्रित करते-करते कलाकार स्वयं अधूरा रह जाता है लेकिन उसकी कला पूर्णता को प्राप्त नहीं होती।

हम यहाँ उस महान् चित्रकार की स्पन्दित एवं मुखारित रेखाओं की चर्चा करना चाहते हैं जो स्वभाव से अति विनम्रशील है वे जितना ही अपनी कला में प्रेम करते है उतना ही प्रेम दूसरे कलाकारों की श्रेष्ठ कृतियों से भी। वह अन्य कलाकारों से भी कुछ ग्रहण करने में आनन्द का अनुभव करते है। इनके सभी चित्रों में कोमलता एवं सौन्दर्य और हृदय को स्पर्श करने की अटूट क्षमता है। इनके चित्रों में एक अजीब सा आकर्षण है जो दर्शक को बार-बार देखने के लिए मजबूर करता है।

सदरे आलम जी के कृतियों के बारे में इतना कुछ जानने के पश्चात् इनके बारे में भी जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। छरहरा बदन, औसत कद, गोरा वर्ण और आँखों में कला की एक अतिरिक्त प्यास वाले इन कलाकार का जन्म बिहार के गोपालगंज जिले में 18 जुलाई सन् 1959 में हुआ था। इनके पिता 'रेलवे' में एक कर्मचारी थे तो इस कारण उनका ट्रांसफर अलग-अलग शहरों में होता रहा। आजमगढ़ जिला में एक अमबारी जगह थी जहाँ से इन्होंने 'अमबारी जनता कॉलेज' से अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की 'सदरे आलम' जी अपनी कला की प्रतिभा का परिचय बचपन से देना प्रारम्भ कर दिये थे। यह प्रारम्भ से चित्रों का अंकन करते थे, किसी भी चित्र को देखकर बनाने की प्रवृत्ति थी और उसे अपने ड्राइंग टीचर को ले जाकर दिखाते थे। तो वह इन्हें प्रोत्साहित करते थे। चित्रों का अंकन करने के लिए यहीं से उनकी कला यात्रा शुरू होती है।

उसके पश्चात् कला की शिक्षा के लिए इन्होंने 'लखनऊ कॉलेज ऑफ ऑर्ट एण्ड क्राफ्ट' से इन्होनें 1980 में बी.एफ.ए. किया। 'बद्रीनाथ आर्य' जी के मार्गदर्शन में उन्हें यह अपना आदर्श गुरू मानते है। 1985 में एम0एफ0ए0 की पढ़ाई इन्होंने ''जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय' नई दिल्ली से किया। यहीं पर एम0एफ0ए0 की पढ़ाई खत्म होते ही इनका चयन असिस्टेन्ट प्रोफसर के पद पर हो गया। 'सदरे आलम' जी लगभग सभी माध्यम में काम किया। जैसे-जल रंग, तैल रंग, पोस्टर रंग, एक्रेलिक रंग, पेस्टल रंग आदि लेकिन सभी माध्यमों में जल रंग यानी 'वॉश पेन्टिंग' इनकी सबसे प्रिय विधा है। इसके साथ-साथ जल रंग में लैण्डस्केप भी बहुत ही आकर्षक तरीके से बनाते है जो हृदय तथा आंखों को शान्तमय वातावरण प्रदान करते है। इतनी

खूबसूरत इनकी मन की दिव्य दृष्टि है।

इनके चित्रों को देखकर जीवन की गहराई में डूबने को अनायाश विवश हो जाते है ईश्वर ने जितनी कल्पनायें पवित्र भावनायें इनके विचारों को दी है, उसी का परिणाम है कि इनके चित्रों में वही पवित्रता देखने को मिलती है। मूलतः माटी से जुड़ी लोक संस्कृति, धार्मिक, प्रवृत्ति और आध्यात्मिक स्वरूप को पहचानने की कोशिश की, इसका यह प्रभाव हुआ कि उनके चित्र सूर, तुलसी, कबीर, की तरह भाव और दिशा बोध देने लगे।

इनके बनाये चित्र कुछ सामाजिक और कुछ भारतीय संस्कृति के मूल उत्सवों पर आधारित है। अपनी महान् अनुभूतियों अथक प्रयास और कला की निरन्तर साधना से ही इन्होंने सृजन किया है।

सदरे आलम जी के चित्रों की रेखायें स्पष्ट और जल की धाराओं की भांति गति और लयात्मकता लिए हुए है। रंगों का चुनाव भी अद्भुत है जो चित्रों में प्राकृतिक वातावरण की सजीवता प्रदान करती है, इनके चित्रों में रंगों की ताजगी और चमक को बरकरार रखा गया है। चित्रों के विषय के अनुसार वातावरण और परिस्थिति को दिखाया गया है और उन्हीं के अनुरूप रंगों का चयन भी किया गया है। हल्के और गहरें रंगों का सामंजस्य बहुत ही कुशलता से किया गया है। इनके सभी चित्र दैनिक जीवन के अनुरूप दिखाई पड़ते है, रंगों का तालमेल और उनका सामंजस्य चित्रों को नवीनता प्रदान करता है। रंगों के द्वारा भावों की उत्पत्ति और रसों का संचार करने में 'सदरे आलम' जी सफल रहे। इनके रंग ही चित्रों की आत्मा है जो भाव एवं रस की उत्पत्ति कर उन्हें जीवित कर देते है।

इनके चित्रों में आंखें बोलती है मुखमण्डल कान्तियुक्त है, भाव भंगिमाओं में चंचलता है, हाथ एवं पैरों की मुद्रायें अनोखी है तथा हाथों की ऊंगलियां सेम की फली की भांति है और पैर की बनावट इतनी पवित्र है कि देवी-देवताओं सी प्रतीत होती है। भारतीय वेशभूषा और केश सज्जा देखने लायक है, संयोजन में जो बैकग्राउण्ड है उसे भी बहुत सुन्दर ढंग से बनाया गया है। दृश्य चित्रों में जितनी सुन्दरता से फोरग्राउण्ड को दिखाया गया है, उतनी ही कलाकारी से चित्र के बैकग्राउण्ड को भी दिखाया गया है। इनके चित्रों में गहराई दिखती है, दूरी को दिखाने के लिए बहुत हल्के रंगों का प्रयोग किया गया है यह रंग भी अपनी ताजगी लिए हुए है जो इनके रंगाकन शैली की विशेषता है।

'सदरे आलम' जी ने भारतीय सामान्य जनजीवन को बहुत नजदीक से देखा है और उससे प्रभावित होकर कला सृजन में उन्हें स्थान दिया है। इनके चित्र वास्तव में राष्ट्र के धरोहर है। उन्होंने अपने सभी चित्रों का निर्माण अपनी कल्पनाओं की स्मृतियों से किया कहीं से देख करके नहीं बनाया है इसलिए इनके चित्र मौलिक तथा श्रेष्ठ है। इन्होंने कुछ समय परम्परा में काम करते हुए 'नव प्रयोग' भी किया जो काफी आकर्षक है जैसे- ड्रीम ऑफ लाइफ श्रृंखला तथा भूल-भुलैया, चित्रों का निर्माण कर अपनी विलक्षण अमूर्तन परिकल्पना को जन्म दिया है।

इन्होंने कई एकल प्रदर्शनियाँ की जो नई पीढ़ी के कलाकारों और समाज में भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रति रूचि और विश्वास पैदा करने में सफल रही जैसे कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट, आर्ट गैलरी पटना- 2001, ताज आर्ट गैलरी, मुम्बई-1992, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, हुसैन आर्ट गैलरी, नई दिल्ली-1986 इसके अतिरिक्त इन्होंने सामूहिक प्रदर्शनियाँ भी अलग-अलग शहरों में की है। इसके साथ ही साथ यह बहुत सारे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं में भी भाग लेते रहते है।

इनको विभिन्न प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाजा गया है, जिसमें इनको कला रत्न पुरस्कार, अगनी पथ-2006, श्यामला नन्द सम्मान, शिल्पी संघ

पटना-2005, राज्य स्तरीय पुरस्कार (AIFACS) बिहार-2003, गौरव सम्मान, इण्डियन सोसाइटी ऑफ क्रिएटिव आर्ट, पटना-2002, मेरिट सर्टिफिकेट पुरस्कार, कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट, लखनऊ-1975, 76, 79 इत्यादि जगहों से सम्मानित तथा पुरस्कृत किया गया है।

इनके चित्रों का संग्रह भारत समेत पूरे विश्व के देशों में अलग-अलग जगहों पर आप को देखने को मिलेगा जिनमें मलेशिया, ताइवान, कनाड़ा, इजराइल, पाकिस्तान इत्यादि।

कुल मिलाकर हम कह सकते है कि अपनी रचना प्रक्रिया के साथ ही साथ देश के विभिन्न स्कूल तथा कॉलेज के प्रवेश परीक्षा का पेपर बनाने से लेकर महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में एक साक्षात्कार निर्णायक सदस्य के रूप में भी इनकी भूमिका सर्वश्रेष्ठ रही है। यह 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय' नई दिल्ली में पूर्व संकाय तथा विभागाध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। यह अपने समय में संकाय को एक नई ऊँचाइयाँ प्रदान की, अभी वर्तमान में प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होकर कला जगत में अपनी सेवायें प्रदान कर रहें हैं।''

सदरे आलम के चित्र

चित्र सं॰-1 : सदरे आलम जी के साथ साक्षात्कार करते हुए (डॉ॰ देवता प्रसाद मौर्या) 15.06.2024

चित्र सं॰-2 : राधा-कृष्ण, वॉश (जल रंग), 42.5''×31.5''
सौजन्य : सदरे आलम (निजी संग्रह)

चित्र सं॰-3 : बहेलिया, वॉश (जल रंग), 14.5''×18''
सौजन्य : सदरे आलम (निजी संग्रह)

चित्र सं०-4 : बरसात का मौसम, वॉश (जल रंग), 20''×28''
सौजन्य : सदरे आलम (निजी संग्रह)

चित्र सं०-5 : ए मैन होल्डिंग बर्ड, वॉश (जल रंग), 16''×12''
सौजन्य : सदरे आलम (निजी संग्रह)

चित्र सं०-6 : कपल, वॉश (जल रंग), 42.5''×31.5''
सौजन्य : सदरे आलम (निजी संग्रह)

सन्दर्भ सूची :

1. यह तथ्य वरिष्ठ वॉश चित्रकार, नई दिल्ली, (सदरे आलम) जी से व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा प्राप्त किया गया है 15-06-2024

Analysis of Rasas or Literary Sentiments in The Performing Arts of Śaṅkaradeva : Special reference to *Aṅkīyā Nāṭ*

Aligunjana Sarma
Ph.D. Research Scholar, Department of Sanskrit,
Gauhati University, Jonaki Nagar,
Near CRPF Camp, Golaghat, Assam

Abstract :

Rasa theory, a fundamental concept in Indian aesthetics, refers to the emotional essence or sentiment evoked in the audience through artistic expression. This study delves into the realm of Assamese literature, specifically examining the application of rasa theory in the dramas of Śaṅkaradeva, a 15th-century playwright from Assam. Śaṅkaradeva's dramas, known as Aṅkīyā Nāṭ, are admired for their spiritual and philosophical themes, as well as their rich literary and artistic merit. Through a critical analysis of Śaṅkaradeva's dramas, this study will demonstrate how the rasa theory is applied to convey spiritual and philosophical themes, and how it contributes to the overall aesthetic appeal of his works. The findings of this study will provide insights into the artistic and literary genius of Śaṅkaradeva and shed light on the significance of rasa theory in understanding the cultural and artistic heritage of Assam.

Keywords :

Rasa, Aṅkīyā Nāṭ, Śaṅkaradeva, Śṛṅgāra, Vīra.

Introduction :

A drama can simply be called an audio-visual composite performing art form which encompasses the process of producing and presenting a theatrical work performed in front of an audience. In this performing art the audience hears the dialogues of the characters with their ears and observes the physical gestures and postures including the costumes by their eyes and thereby experiences a joy in their minds. It is a combination of several forms of art amongst the sixty-four arts mentioned in the *Kāmasūtra* of Vātsyāyana.[1] In Sanskrit language, drama is typically referred to as *Nāṭya*, *Dṛśya kāvya*, *Rūpaka* and *Nāṭaka*. According to the *Sāhityadarpaṇa*, *Rasa* is the deep aesthetic delight or essence that a responsive reader feels when art prompts emotions, converting underlying sentiments or bhāvas into an exceptional, singular,

and ecstatic emotional condition. It's the vital emotional taste of an art piece that a viewer enjoys, leading to an intense, absorbed bonding with the story or show.[2] Bharata Muni, the propounder of *Rasa* theory, accepted eight types of *rasa*. They are- *Śṛṅgāra*, *Hāsya*, *Karuṇa*, *Raudra*, *Vīra*, *Bhayānaka*, *Bībhatsa*, *Adbhuta*.[3] *Śānta* is accepted as the ninth *Rasa* later by the rhetoricians.[4]

According to Indian aesthetics, *Śṛṅgāra rasa* refers to romantic love, erotic love, deep attraction to an individual etc. It is divided into two types- *Saṁbhoga* and *Vipralaṁbha*. *Saṁbhoga* refers to showing affection towards each other and *Vipralaṁbha* refers to expectation, separation, jealousy from each other. It is considered as the king or queen of rasas as it includes a variety of emotions related to love and beauty. The word *Hāsya* means laughter. So, *Hāsya rasa* reflects to gladness which comes from within. The sentiment of pathos and compassion is called *Karuṇa rasa* in the context of Indian dramatology. *Karuṇa rasa* is evolved by depictions of sorrow, grief and empathy. *Raudra rasa* represents the emotions of anger, fury etc. This *rasa* evokes the feelings of fierceness in the minds of audience. A heroic sentiment characterized by courage, self-confidence, enthusiasm is called *Vīra rasa*. The word *Bhayānaka* means terrible or fearful. So, the rasa which evokes fear, terror etc. within the audience is called *Bhayānaka rasa*. The Sanskrit word *Bībhatsa* means horrible or shocking. So, *Bībhatsa rasa* represents the sentiment of disgust or aversion. The *rasa* which is evoked in the minds of the audience by the situations which are extraordinary, miraculous, unnatural is called *Adbhuta rasa.* Therefore, *Adbhuta rasa* is the senti-ment of wonder, amazement etc. The senti-ment of peace, calmness and serenity is called *Śānta rasa* in the context of Indian performing arts. It represents a state of balance and detachment of worldly desires.

Life and works of Śaṅkaradeva :

Śaṅkaradeva was born in 1449 AD in Ālipukhurī, Assam, to Kusuṁbara Bhuyān and Satyasandhyā. After losing his parents in childhood, he was raised by his grandmother Khersūtī. He showed remarkable learning ability, mastering vowels and consonants in just a few days at Mahendra Kandalī's *Ṭol*. He later married Sūryavatī and had a daughter, but her death after nine months led Śaṅkaradeva to renounce worldly life and embark on a pilgrimage. Upon returning, he introduced *Eka-śaraṇa nāma dharma*, a new spiritual path emphasizing devotion to Kṛṣṇa.[5]

The core of his teachings was *eka deva eka seva eka bine nāi keo*, meaning there's only one God i.e. Kṛṣṇa. His doctrine promoted equality, treating all animals with kindness and attracted people from all castes and religions. Śaṅkaradeva made significant contributions to Assamese culture and literature. They are- Poetic works- *Kīrtanaghoṣā*, *Hariścandra-upākhyāna*, *Rukmiṇīharaṇa*, *Ajāmilopākhyāna*, *Balicalana*, *Kurukṣetra yārtā*, *Gopī-uddhava saṁvāda*. *Bhakti* works- *Bhakti-pradīp*, *Anādi-pātana*, *Nimi, navasiddha saṁvāda.*

Bhaktiratnākara, Guṇamālā. Transliteration works : *Bhāgavatapurāṇa*, *Rāmāyaṇa Uttarākāṇḍa*. Songs- *Bargīt*, *Bhaṭīmā*. Dramas : *Kālidamana*, *Patnī-prasāda*, *Keligopāla*, *Rukmiṇīharaṇa*,

Pārijātaharaṇa, *Śrīrāmavijaya*. Dance-*Satrīyā* dance.[6]

His teachings and art forms continue to influence Assam's spiritual and cultural landscape. He passed away in 1568 AD at the age of one hundred and twenty in Cooch Behar.[7]

Dramas: The events described through the dramas were taken from the ancient Sanskrit scriptures like the *Rāmāyaṇa* and the Ś*rīmadbhāgavatapurāṇa* and other sacred texts. The dramas of Śaṅkaradeva are given a generic name *Aṅkīyā Nāṭ*. *Cihṇayātrā* was the first drama composed by Śaṅkaradeva, the performance of which took place with painted settings. After *Cihṇayātrā*, he composed six other dramas the names of which are given below-

1. ***Kālidamana*** **:** The story of the drama *Kālidamana* was adopted from the sixteenth chapter of the tenth *skandha* of the *Bhāgavatapurāṇa*.
2. ***Patnīprasāda*** **:** This drama is composed on the basis of the story of the twenty-third chapter of the tenth *skandha* of the *Bhāgavatapurāṇa*.
3. ***Keligopāla*** **:** The drama is based on the *Rāsalīlā* described in the twenty-nine to thirty-third chapters *Viṣṇupurāṇa* and the *Harivaṁśapurāṇa*.
4. ***Rukmiṇīharaṇa*** **:** This source of this drama is the fifty-third chapter of the tenth *skandha* of the *Bhāgavatapurāṇa* and forty-seventh chapter of the *Viṣṇuparva* of the *Harivaṁśapurāṇa*.
5. ***Pārijātaharaṇa*** **:** This drama is composed on the basis of the fifty-ninth chapter of the tenth *skandha* of the *Bhāgavatapurāṇa,* third chapter of the fifth part of the *Viṣṇupurāṇa* and the sixty-third chapter of the *Viṣṇuparva* of the *Harivaṁśapurāṇa.*
6. ***Śrīrāmavijaya*** **:** This drama narrated the story of the *Rāmāyaṇa*.

Analysis of Rasas in the dramas of Śaṅkaradeva :

Mahāpuruṣ Śaṅkaradeva composed his dramas with a view to uplift the minds of the people spiritually and thereby tried to propagate his neo vaisnavite religion the *Eka-śaraṇa nāma dharma*. His aim was to unite the people of the society irrespective of caste and creed and to make them true devotees of lord Kṛṣṇa, whom he considered to be the Supreme Being. Through the performance of his dramas he tried to instill the sense of devotion in the minds of the audience. In fact, he considered *Bhakti* as *rasa*. But the experts of dramatology do not acknowledge *Bhakti* to be *rasa* as it is not mentioned in the *Nāṭyaśāstra*. Rather they consider *Bhakti* to be a precursor of *Śānta rasa* which is one of the nine rasas mentioned in the *Nāṭyaśāstra*. In the performance of the dramas, Śaṅkaradeva used at least one dominant sentiment in each of his dramas.

The dominant sentiment in the drama *Kālidamana* is *Bhayānaka* i.e. terrible and *Karuṇa* i.e. pathetic. The appearance *Kālināga* in the Kālindī lake, with his hoods expanded, Evokes a sense of fear in the minds of the audience.[8] After Kṛṣṇa's cosmic dance on the expanded hoods, making Kāli almost dead,[9] when his wives, with folded hands, pray to lord Kṛṣṇa, some sort of *Karuṇa rasa* arouses in the minds of audience.[10]

In the drama *Patnīprasāda*, the audience get a taste of *Karuṇa rasa*. Due to strong opposition, one wife of a Brāhmaṇa could not proceed to meet Kṛṣṇa. In deep grief that Brāhmaṇī breathed her last. The wailing of her husband on the death of the Brāhmaṇī creates a sense of sympathy in the audience.[11]

In the *Keligopāla* drama, the dominant *rasa* is *Śṛṅgāra.* On the moonlit night of the autumnal season, when Kṛṣṇa plays his flute in *Vrindāvana*, the Gopīs feel some short of affinity for the company of Kṛṣṇa. The dances of the Gopīs in Vrindāvana, Kṛṣṇa's watersports with the Gopīs arouses a sense of *Śṛṅgāra* in the minds of the audience.[12]

In the *Rukmiṇīharaṇa*, the *Śṛṅgāra* and *Vīra* rasas are predominant. Hearing the description of Rukmiṇī's physical beauty from Surabhi Bhāṭ, sent from Kuṇḍina nagar, Kṛṣṇa's mind became saturated with the sense of love for Rukmiṇī.[13] Likewise, hearing the description of Lord Kṛṣṇa from Haridās, coming from Dvārakā, Rukmiṇī had the sense of *Śṛṅgāra* in her mind.[14] These two events arouse a feeling of *Śṛṅgāra* in the minds of the audience. Rukmiṇī was deeply disappointed to hear that Rukmavīr had arranged her marriage with Śiśupāla. Therefore, sending a letter to Kṛṣṇa, expressing her sorrow, she requested him to rescue her from that situation. Here, the sense of *Vipralaṁbha Śṛṅgāra* is found.[15] The fight between Śrīkṛṣṇa and other kings and his victory over the kings including Rukmavīr, who challenged him, creates a sense of *Vîra rasa* in the minds of audience.[16]

In the drama *Pārijātaharaṇa*, audience experience *Vîra rasa* and *Śṛṅgāra rasa*. While putting the *pārijāta* flower in the hair bun of Rukmiṇī with deep affinity by Lord Kṛṣṇa, the audience feels the taste of *Śṛṅgāra rasa*.[17] The fierce battle between Naraka and Kṛṣṇa and Kṛṣṇa's victory and Naraka's death feel the hearts of audience with *Vīra rasa*.[18] The same sentiment is produced in the minds of audience when Indra gets defeated by Kṛṣṇa.[19] The verbal battle between Śaci, Indra's wife and Kṛṣṇa's wife Satyabhāmā, expresses the sentiment of *Raudra*.[20]

In *Śrīrāmavijaya*, the principal sentiment is *Vīra* and *Śṛṅgāra*. While protecting the place of *yajña* of Viśvāmitra, the heroism shown by Rāma and Lakṣmaṇa against the demons Mārīc and Subāhu, gives a taste of *Vīra rasa*[21] which is again felt while breaking the bow of Lord Śiva[22] and defeating Paraśurāma.[23] The emotions shown by Rama hearing the descriptions of Sītā from Viśvāmitra[24] and expression of Sītā after hearing the beauty of Lord Rāma from Kanakāvatī[25] impart a feeling of *Śṛṅgāra* in the minds of the audience.

Analyzing the rasas in the dramas of Śaṅkaradeva, Madhusudana Saraswati remarked that *Bhakti* is the real rasa because one can get ineffable bliss only from it and not from any other rasa like the *Śṛṅgāra* etc. are secondary sentiments like glow worms in front of *Bhakti*, which is the complete *Rasa* and like the sun.[26]

Conclusion :

The performance of *Aṅkīyā* Nāṭs in front of an audience establishes a direct connection between the emotions of the actors and that of the audience. Besides, the masks, effigies and other accessories like costumes, makeup etc. help an actor to produce a particular *Rasa*. The accessories, required for the performance of an

Aṅkīyā Nāṭ gave birth to a number of small scale industries like mask making, colour preparation, costume designing, metal ornaments making etc. Through these, some people got the opportunity to earn their livelihood. The masks, made in Chamaguri Satra of Majuli, are still attracting the mask lover tourists coming from different parts of India and abroad. The new set of dance and music with different types of rāgas and tālas which are different from those established schools of Indian music and which is known as *Satrīyā* music of Assam, is a living tradition, practised, preserved and performed consistently in the satras of Assam. The *Satrīyā* dance form has already received the status of Indian classical dance and thus helped in the propagation of Assamese culture in different parts of India and abroad. According to some experts, some distortions are taking place in the performance of *Aṅkīyā* Nāṭs. It is our moral duty to preserve the originality and purity of the performing arts. So, the learners of these art forms should be given proper training before performance.

References :

1. nāṭakākhyāyikādarśanam/ Sarma, Dr. Ramananda. (2001). *Vātsyāyana- Kāmasūtra*, p.12
2. vibhāvenānubhāvena vyaktaḥ saṅcāriṇā tathā/

   rasatāmeti ratyādiḥ sthāyī bhāva% sacetasām// Regmi, Acharya Sheshraja Sharma. (2013). *Sāhityadarpaṇa of Sri Vishwanatha Kaviraja*, 3.1
3. Śṛṅgārahāsyakaruṇaraudravīrabhayānakāḥ/ vibhatsādbhutasañjou cetyaṣṭau nāṭye rasāḥ smṛtāḥ// Sharma, Acharya Shrinivas. *Ācāryamammaṭaviracita Kāvyaprakāśa*, 4.29
4. nirvedasthāyibhā'sti śānto'pi navamo rasaḥ/ *Ibid*., 4.47
5. Neog, Maheshwar. (1988). *Śaṅkaradeva and his times*, p.65
6. *Ibid*., pp.37-39
7. *Ibid*., p.22
8. dhruṁ āvata kāla kāli baliyārā/

   karata tuli phena phoṭakārā//

   pada- garaji darape sarpa biśāla/

   pekhi nirekhaya rūpa gopāla// Medhi, Yashodhara. (2017). *The Plays of Śaṅkaradeva*, p.87
9. dhruṁ- kāla kāṇu nāce caraṇa calāi

   karatu kotuka nṛtya keśavarāi//

   pada- kāla kālika māthe śiriṣa bariṣe

   hariṣe hariguṇa gāi re//*Ibid*., p.98
10. sūtra- he parama iśvara; tohāri pada prahāre; svāmī mari jāi; ohi durjne; tohāka najāni daṅśala; ihāka doṣa bāreka maraṣa gosāñ// *Ibid*., p.118
11. sūtra- aicana prakāre brāhmaṇī prāṇa tejala/ tadanantara brāhmaṇe dekhiye, hā hā buli hṛdaye muṭhi hāni, brāhmaṇīka gale bāndhiye, jaice kāndite lāgala/ Bora, Mahim. (1989). *Śaṅkaradevar Nāṭ*, p.42
12. dhruṁ- akhaṇḍa maṇḍala śaśī śarata rātit/

    śaśāṅke komala Vrindāvana bikaśita//

    pada- lahu lahu bahe amnda malayā pavan/

    rāsakṛīḍā karate kṛṣṇar man// *Ibid*., p.196
13. dhruṁ- priyākeri kāhinī śuniye murāri/

    bidahanu citta ākula kiñcit

    mānasa madana bigāri/ *Ibid*., p.146
14. śloka- kṛṣṇasya rūpalāvaṇyaśravaṇena bimohitā/

    dadhau tacccaraṇāmbhojaṁ bhajanīyaṁsatyāṁ satīṁ// *Ibid*., p.149
15. Rukmiṇī bola - he guro, śrīkṛṣṇa svāmīka caraṇe Prathama praṇāma kahabi/ tadanantara hāmāka dukh nibedava, tohari kiṅkarī Rukmiṇī aicana bolala: he svāmī kṛṣṇa,

bhikṣuka mukhe tohāka rūpaguṇa śuniye hāmu kāyavākyamane tohāka patibhāve barayichi/ tathi Śiśupāla pāpī hāmāka nite cāhe/ jāni prāṇanātha, satvare āsi hāmāka rakṣā karaha/tohoka chāḍi hāmāra gati nāhi// Ibid., p.156

16. dhruṁ- Kṛṣṇa bākya śuni Rukmavīr/

hānala bāṇa kope kāṁpe śir/

pada- kāṭala bāṇa kṛṣṇe śar māri/ garaje rukmī punu śara prahāri/

rukmī astra jahi hāna/ tāhe cesdala puruṣ pradhān// *Ibid*., p.178

17. Sūtra- tadanantara rukmiṇīka ati kātara bāṇī śuni śrīkṛṣṇa hāsi hāsi hāte tuli priyāka gaurave kole baiṭhāi koutuke jagataka nāthe rukmiṇīka māthe pārijāta pindhāvala/ Ramaṇīka bāñcā saphala bhela//*Ibid.*, p. 62

18. Sūtra- he sura, narakak māri kahu śrīkṛṣṇa jaśa sādhala/ dekhi devasava ānande dundubhi bajāi, jaya kṛṣṇa jaya kṛṣṇa boli śire kusuma baraṣil/ śrīkṛṣṇa sabhārye ānande rahala/ *Ibid*., 76

19. śloka - tataḥ kṛṣno ruṣā cakraṁ satruṁ prati gṛhītavān/

indro bhīta ibhād drutastaṁ paścād vihasan yayau// *Ibid*., p.88

20. śloka- niśamya garvvavākyaṁ sā satyabhāmā haripriyā/

kopena kaṁpitavatī sacīmābhāṣya balagati// *Ibid*., p.85

21. āva raghunāth karahu mohe trāṇ/śuniye rāma dharala dhanu bāṇ/

berala hṛdaya śaraka sandhāne/ urala rākṣasa rāmaka bāṇe/

bheli subāhu sāgar pāt/mārīc paraka prāṇe laṅkāt// Medhi, Yashodhara. (2017). *The Plays of Śaṅkaradeva,* p.399

22. sūtra - se kṛpāmaya rāmacandra, sītāka sakaruṇa bhāva pekhi tatkāle līlāye dhanuta guṇa lagāvala/ se īśvar puruṣ Rāmacandra hāsi hāsi aprayāse karṇamāne ṭāni dhanut ṭaṅkāra karala/ ṭhāṭkāra śavade madhyakhāne dhanu bhāgi pacāre chiḍala/ *Ibid*., p.423.

23. dhāve dhari śāraṅga raghunātha/ tarāse ṛsika kaṁpaya pāva hāta//

paraśu khasala dūra bhela rāga/ parala daṇḍavate rāmaka āga// *Ibid*., p.439

24. śloka- śrutvā sakhīmukhādrāmacandrasya caritamṛtam/

mūrcchitā patitā sītā sumahāharṣa dharṣitā// *Ibid*., p.412

25. śloka- sītāyāḥ rūpalāvaṇyam śrutvā niḥśvasya rāghavaḥ/

ṛṣimābhāṣya bhagavān jagāma mithilāmprati// *Ibid*., p.404

26. Chakravarty, S. (2011). *Studies in Sanskrit Literature Culture and Art*, pp.63-64.

Cultural and Spiritual Transformation : Effects and Influences on The Bhakti Movement in Kerala

Dr. Krishnakumar A.
Assistant Professor
Department of History
N S S College, Pandalam, Kerala

Abstract :

The Bhakti Cult emerged as a significant ideological element of the developing the social order in South India during the Time of life of the Perumals. Unlike their forerunners from the Sangam Age, the Perumals were devout Hindus who worshipped Vishnu and Siva. The primary pathway to personal bliss was seen as absolute devotion to the Supreme God, which increasingly focused on the newly established temples. Hindu deities such as Vishnu and Siva became the central figures of worship. The Bhakti movement played a crucial role in the cultural transformation of South India in various ways. It either replaced or integrated popular cults and specifically reformed the Tinai-centered ritual practices. Additionally, it offered an ideological backbone for the rising authority of temples, introducing new types of worship and ritual. The movement contributed to diminishing the influence of Buddhism and Jainism in South India. Furthermore, it reinforced the power of temples over local rulers.

Keywords :

Bhakti Cult, Perumals, Tinai, Sangam, spirit of live, Alwars, Adiyars, Brahmins, chandalas, Thirthamkaras, Bhakta kulam.

The beginnings of the Bhakti cult can be traced back to ancient periods, likely originating during the Indus Valley civilization. The Bhakti movement represents the tangible and external manifestation of the Bhakti cult in Kerala. In this regard, the religious history of Kerala has rejected extremes, showcasing a unique embrace of tolerance and acceptance. The people of Kerala revered deities in Shiva and Vishnu temples, which became the focal points for the Bhakti cult in the region. These temples played a significant role in both political and social life while promoting various temple art forms.[1] Until almost the fifth Century A.D., different religious groups

in South India lived together harmoniously and with mutual regard. Their interactions were defined by the principle of Letting others be free to live as they choose. However, soon after, a significant shift occurred, particularly in the Tamil region. There was a growing anxiety that Jainism and Buddhism would dominate the entire land. In response, the followers of Shiva and Vishnu felt compelled to counter this encroaching wave of deviation. The primary characteristic of this new era was the simultaneous rise in deep emotional devotion, or Bhakti, towards Siva or Vishnu, alongside significant and widespread resistance to Jainism and Buddhism. Groups of followers, guided by monks, traveled across the region repeatedly, engaging in singing, dancing, and discussing the merits of unwavering devotion to either Siva or Vishnu. This fresh surge of religious fervor Excitement peaked in the early seventh Century and continued to play a significant role in the religious life of South India for an extended period.[2]

An outbreak of religious enthusiasm swept across the country, eventually resulting in the weakening of Buddhism and Jainism, while firmly entrenching Hinduism as the principal spiritual influence in the lives of most people. A look at the Shaiva and Vaishnava saints highlights the bhakti movement in the southern regions. The Shaiva saints were referred to as Nayanars otherwise Adiyars, while the Vaishnava saints were named Alwars. The term Nayanars translates to leaders and Alwars means 'those who plunge into the divine attributes of God.'[3] The Nayanars and the Alwars were knowledgeable devotees or Bhaktas who traveled throughout the country, singing the hymns and verses they had composed in the straightforward language of the common people. They originated from diverse classes and backgrounds. Their efforts generated significant enthusiasm among various groups of people across all regions of southern India.

The Nayanars came from diverse backgrounds, they rejected the philosophies of caste, sect and creed within the community and in their worship practices. Prabhakara and Sankara's determinations in the Hindu Reformation had certain confines. Their interpretation of Hindu teachings was conducted in Sanskrit, making it unreachable to the normal person. As a result, they could only impact the more educated segments of society, leaving the larger population unengaged. The responsibility of incorporating these masses into Hinduism was fulfilled by the saints of the Bhakti Movement. The saints of Bhakti were certain that the perseverance of Buddhism and Jainism among the masses hindered the progress of Hinduism. In this context, the Bhakti saints chose to overcome competing sects by creating and promoting a fresh devotion to Bhakti, characterized by deep emotional submission to a personal deity such as Vishnu or Shiva.[4]

The community of devoted poets who promoted the new faith wandered through the countryside, singing devotional songs that they had created from their personal spiritual experiences. The upfront Tamil used in these verses reverberated with the everyday person. The well-known deities of Siva and Vishnu were vividly brought to life in these hymns, sparking widespread interest in Hinduism. The Bhakti saints of the time also invited representatives from opposing sects to engage in public debates

and discussions regarding the superiority of their beliefs, ultimately overcoming them. Consequently, a surge of religious fervor emerged across the nation, contributing to the decline of Buddhism and Jainism while solidifying Hinduism as the predominant faith among the masses.[5]

The Bhakti movement in southern India had two major factions, among the twelve Alwars and sixty-three Nayanars, one Alwar and two Nayanars originated from Kerala. The Alwar from Kerala was Kulasekhara Alwar, who established the second Chera Empire. An esteemed scholar of Tamil and Sanskrit, he composed numerous devotional pieces celebrating Vishnu as Rama and Krishna. The Bhakti movement achieved its highest expression in Kulasekhara Alwars Mukundamala written in Sanskrit and Perumal Tirumozhi in Tamil. His writings and teachings played a significant role in shaping Vaishnavism in Kerala.[6]

The association of the Perumal with the divine showcases the impact of Bhakti. The Perumal has taken the title 'Deva' and provided an extended lifetime, reigning for many centuries. The Perumal is associated with the religion centered on the temple. The Bhakti movement generated a wealth of literature and artistic expressions focused on devotion. The Ramayana, Mahabharata and Puranas underwent numerous adaptations in regional languages over time. Performance arts such as Koothu and Kudiyattam were organized to popularize these puranic tales. The Margi tradition of Sanskrit art was localized into the Indigenous form to ensure that the performances were understandable to the audience.[7]

There existed various forms of Bhakti. The rituals associated with them also reflect aspects of Bhakti. The inscription in Tiruvalla references local deities, indicating the integration of indigenous customs and beliefs. Nevertheless, it is inaccurate to label the Hindu religious movements of this period as a revival or renaissance. There was no resurgence of Hinduism, merely a state of stagnation. What transpired was not a revival but the consolidation of Hinduism as the dominant faith in the region.[8] The Bhakti saints were not solitary ascetics but part of a collective.

The concept of Bhakta kulam, transcended divisions and emerged as both a spiritual and social force. Nevertheless, historians debate the degree to which Bhakti offered space for marginalized communities, including lower castes and women. The notion of the Bhakta kulam fostered a feeling of unity, as groups of saints traveled together, chanting hymns and spreading their message. Unlike Buddhism and Jainism, which advocated complete renunciation for the ascetic, the Nayanars and Alwars maintained that a life of devotion to God was compatible with being a householder.[9]

It offered women and individuals from lower castes and untouchable communities a path to spiritual salvation that was inclusive. They came from diverse social backgrounds. The poets traveled, undertaking constant pilgrimages, in search of their Lord. Throughout these journeys, they visited temples in every village and town, often writing hymns to celebrate these places. Some of these hymns provide stunning depictions of deities and rituals. By the ninth century, the Cholas kings

systematically began to utilize Bhakti shrines and centers as foundations for their temple construction. Temple complexes like those in Tanjavur and Gangaikonda-cholapuram transformed into major centers, serving both sacred and secular functions.[10]

It is indisputable that the bhakti movement has immense popularity across all segments of society. The Bhakti movement represented a spiritual transformation in medieval Hindu society in Kerala, shifting from Vedic rituals and ascetic practices aimed at achieving moksha to a more personal and affectionate relationship with an individually defined god. Salvation, once thought to be attainable solely by individuals of higher castes, became accessible to everyone.[11]

The journey of the saints did not depend on vast wealth or extensive knowledge. All that was necessary was a genuine love for God. The poet-saints played a significant role in the development of Malayalam literature through their devotional poems and songs. The hymns are written in a form of Malayalam that remains understandable even today. They also helped advance the philosophy of Saivism. New forms of rituals, such as puja and pilgrimage, emerged, creating a sacred map throughout the Kerala region. The Bhakti saints dismissed orthodox practices, highlighting the emptiness of ritual actions.[12]

The worship of images gained significance during this time. Both Shiva and Vishnu could manifest in various forms, but this did not diminish their overarching universal presence. Idols served as focal points for devotees, allowing them to visualize God and channel their devotion more effectively. While the Bhakti hymns are not purely about iconography, they offer vibrant and immediate imagery that brings the deities to life. These poetic representations inspired sculptures, idols, and artwork in medieval temples. Their depictions helped establish the divine presence in specific regions, with temples dedicated to particular deities. The saints journeyed throughout the land, glorifying numerous locales. The Bhakti saints were part of a broader community rather than isolated ascetics. The concept of Bhakta kulam, or a 'community of believers,' transcended boundaries and emerged as a powerful spiritual and social movement. Scholars continue to debate how much Bhakti opened avenues for socially marginalized groups, including lower castes and women. The notion of Bhakta kulam fostered a feeling of unity, as groups of saints traveled together, singing hymns and sharing their beliefs. Unlike Buddhism and Jainism, which advocated complete renunciation for ascetics, the Nayanars and Alwars held that a householder's life could coexist with devotion to God.[13]

The Bhakti movement provided women and individuals from marginalized castes and untouchable communities a nurturing path to spiritual emancipation. The poets embarked on a relentless journey, seeking to connect with their divine. As they traveled, they visited temples in numerous villages and towns, often creating hymns to celebrate these holy sites. Many of these hymns feature beautiful depictions of images and rituals. Temples became pivotal to both religious and everyday life. They accumulated substantial landholdings

alongside their tenants and staff and even began investing in land, trade guilds, and commerce. The saints captured a broad appeal among all layers of society.[14] The Alwars and Nayanars are believed to have experienced miraculous conclusions, merging with their chosen deity, yet their hymns continue to be an honored part of the cultural and social landscape of Kerala society.

References :

1. P. P. Narayanan Nambudiri Bhakti cult in Kerala, Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 42 (1981), pp. 157-162
2. Ibid., pp. 157-162
3. Sastri, Nilakanta, K.A., A History of South India, New Delhi, 2005, P. 422.
4. Ibid., 423.
5. S. N. Sadasivan, A Social History of India, A.P.H Publications, New Delhi, 2000, p.151.
6. Ibid., 152.
7. Swami Sivanada, Sixty Three Nayanar Saints, Divine Life Society Publications, TehriGarhwal (U.P), 1997, P.15.
8. Ibid., 17.
9. Dr. S.N. Kandaswamy, The Concept of God in Saiva Siddhanta, Tanjavur, 1997, p.1.
10. Ibid., 3.
11. Chatterji, Suniti Kumar (ed)., Cultural Heritage of India, Volume V, Calcutta, 1978, p. 608.
12. Ibid., 609.
13. Sreedhara Menon, A., A Survey of Kerala History, Kottayam, 2008, P.131.
14. Ibid., 132

कला, संगीत, वाद्ययंत्र और सांस्कृतिक दृष्टि से सिलप्पधिकारम् का अध्ययन

डॉ॰ आर॰ कविथा

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)

अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषा विभाग

एस॰ आर॰ एम॰ आई एस॰ टी॰, विज्ञान एवं मानविकीय संकाय

रामापुरम्, चेन्नई-600073

परिचय :

भारत का शास्त्रीय साहित्य बहुत बड़ा और समृद्ध है, जिसमें अलग-अलग क्षेत्रों और संस्कृतियों की झलक मिलती है। इस परंपरा की खास रचना हैं- दक्षिण भारत के इलंगो अडिगल का 'सिलप्पधिकारम्'। प्राचीन तमिल साहित्य के पाँच महान महाकाव्यों ऐंपेरुमकाप्पियंग) में से एक सिलप्पदि्कारम जो प्रारंभिक तमिल समाज की समृद्ध सांस्कृतिक, कलात्मक और संगीत परंपराओं का एक जीवंत दस्तावेज है। सिलप्पदि्कारम,की कहानी कण्णगी और कोवलन के इर्द-गिर्द घूमती है। इसमें एक स्त्री के साथ हुए अन्याय, उसकी पवित्रता, और अंत में सच्चाई की जीत दिखाई गई है। कण्णगी को अंत में देवी के रूप में पूजा जाता है, जो समाज के लिए नैतिकता का संदेश देती है।जैन भिक्षु और चेरण राजा सेनगुट्टुवन के भाई इलंगो अडिगल द्वारा रचित यह महाकाव्य केवल प्रेम, विश्वासघात और दिव्य न्याय की कथा नहीं है, बल्कि संगम और उत्तर-संगम काल के दौरान तमिल्नाडु की जीवंत कलात्मक अभिव्यक्तियों की भी एक अमूल्य विरासत है। यह निबंध दृश्य कला, संगीत और वाद्ययंत्रों की भूमिका को समझने की कोशिश करता है। इसमें बताया गया है कि ये तत्व केवल सुंदरता बढ़ाने के लिए नहीं हैं, बल्कि कहानी को आगे बढ़ाने, पात्रों के भावों को दिखाने और समाज की सोच को सामने लाने में भी मदद करते हैं।

बीज शब्द :

1. सिलप्पदिकारम्, 2. इलंगो अडिगल, 3. दक्षिण भारत, 4. तमिल्नाडु, 5. कला, 6. संगीत, 7. वाद्ययंत्रों।

सिलप्पधिकारम् के सिद्धांतों :

'यह काव्य तीन नैतिक सिद्धांतों को व्यक्त करता है।'

- मनुष्य के जीवन का आधार धर्म होना चाहिए। कोवलन और कण्णगी की कथा में न्याय, निष्ठा और कर्तव्य को प्रमुख स्थान दिया गया है।
- यह सिद्धांत बताता है कि व्यक्ति को जीवन निर्वाह हेतु धन अर्जित करना आवश्यक है, परंतु वह धर्म और न्याय के अनुरूप होना चाहिए।
- यह सिद्धांत बताता है कि मनुष्य के जीवन में

भोग, प्रेम और आनंद भी उतने ही आवश्यक हैं, लेकिन वे भी धर्म और मर्यादा के भीतर होने चाहिए।

அரசியல் பிழைத்தோர்க்கு
அறக்கூற்று ஆவதும்
உரைசால் பத்தினியை உ
யர்ந்தோர் ஏற்றலும்,
ஊழ்வினை உருத்து வந்து
ஊட்டும் என்பதுவும் 1

इसका अर्थ है :

राजनीति के पथ में जो अपराधी बन जाए, उसे उपदेश देकर ही दंड से बचाया जाए।

वाणी की चतुरता से, नारी को सिंहासन मिले, न हो योग्यता, फिर भी सम्मान उसे मिले।

और घूस का जाल बुना जाए चुपचाप, न्याय की जगह भ्रष्टाचार हो प्रचलित आप।

सिलप्पधिकारम् में दृश्य कला :

इलंगो अडिगल ने सिलप्पधिकारम् में तीन तमिल नगरों–पूमपुहार, मदुरै और वंची – का बहुत ही सुंदर और चित्रों जैसा वर्णन किया है। इन नगरों के बाज़ार, मंदिर, महल और गलियाँ इस तरह से दिखाए गए हैं कि पाठक को वे जगहें सजीव और रंगीन लगती हैं। यह नगर न केवल धन-सम्पन्न हैं, बल्कि उनकी आत्मा में एक गहरी सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना भी बसती है।

उदाहरण के लिए :

पूम्पुहार कांडम् में बंदरगाह नगर पुहार की भव्यता का वर्णन इस प्रकार मिलता हैः

- 'सड़कों को झंडों और बंदनों से सजाया गया था, घर चित्रों से अलंकृत थे और राजमहलों के सभागारों में स्वर्ण स्तंभ चमक रहे थे।
- 'मंदिरों, बाजारों और शाही दरबारों की दृश्यात्मक सौंदर्यता केवल समृद्धि ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक परिष्कार को भी प्रतिबिंबित करती है।
- मंदिरों की कलाकृतियों में सम्मिलित देवताओं, नर्तकियों और पौराणिक दृश्यों को दर्शाने वाले भित्तिचित्र और मूर्तियाँ।
- संगीत वाद्ययंत्रों और प्रदर्शन करने वाले कलाकारों से अलंकृत नक्काशीदार स्तंभ।

सिलप्पधिकारम् में संगीत कला :

संगीत सिलप्पधिकारम् की सबसे खास और मुख्य कला है। यह महाकाव्य संगीत की एक खास शैली में लिखा गया है। इसके अध्यायों को 'कत्तलै' कहा जाता है, जो लय (ताल), छंद (कविता की बंधी हुई रचना) और धुन (सुर) को दिखाते हैं।पूरी कहानी में गीत, भजन (स्तुति) और मंत्र शामिल हैं, जो इस रचना को एक सुंदर और संगीतमय महाकाव्य बना देते हैं। इसमें कई ऐसे हिस्से हैं जिन्हें वाद्ययंत्रों और नृत्य के साथ मंच पर पेश किया जाता था।इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है- माधवी का अरंगेत्रम, यानी उसका पहला नृत्य प्रदर्शन। यह महाकाव्य का सबसे महत्वपूर्ण संगीतमय दृश्य माना जाता है।

इसी तरह, जब कण्णगी दुःख में शोकगीत गाती है, तो वह अपने संगीत के ज़रिए दर्शकों को गहरी करुणा और दर्द से जोड़ देती है।

इस महाकाव्य में संगीत का उपयोग भावनाओं को दिखाने के लिए किया गया है, पुहार शहर में, जहाँ खुशी और त्योहार का माहौल है, और मदुरै शहर में, जहाँ दुःख और गुस्से की भावना है।

इन सभी भावों को भारतीय कला के रस सिद्धांत के अनुसार प्रस्तुत किया गया है, जिसमें हर भावना को संगीत और कला के माध्यम से महसूस कराया जाता है।

सिलप्पधिकारम् में संगीत की शैलियाँ :

सिलप्पधिकारम् में कई तरह की संगीत शैलियों

(धुनों की परंपराओं) का ज़िक्र किया गया है। इसमें तमिल शास्त्रीय संगीत की धुनों को 'पण इसाई' कहा गया है, जो आज के कर्नाटक संगीत में राग जैसे होते हैं। हर पण किसी खास भावना या मन की स्थिति को व्यक्त करता है।

उदाहरण के लिए :

सेव्वाड़ी पण	:	वीरता और युद्ध के भाव को दिखाता है।
पालई पण	:	विरह (जुदाई) और दुःख की भावना को प्रकट करता है।
मुल्लई पण	:	प्रेम और घर-परिवार के शांत जीवन से जुड़ा है।

इसके अलावा, वेट्टुवा इसाई नाम की एक अलग संगीत शैली का भी ज़िक्र है। यह पहाड़ी जनजातियों की परंपरा से जुड़ी है, जिसमें ढोल बजाना और नृत्य करना शामिल होता है। यह शैली तमिल समाज की विविध और रंग-बिरंगी संगीत परंपराओं को दिखाती है।हालाँकि तेवघ्रम् और दूसरे भक्ति गीत बाद में आए, लेकिन सिलप्पधिकारम् में इन भक्ति संगीत शैलियों के शुरुआती रूप दिखाई देते हैं, जिनका इस्तेमाल खास तौर पर मंदिरों में किया जाता था।सिलप्पधिकारम् न सिर्फ एक महाकाव्य है, बल्कि यह प्राचीन तमिल संगीत की विविधता और गहराई को भी सामने लाता है।

सिलप्पधिकारम् में वाद्ययंत्रों का उपयोग :

इलंगो अडिगल ने सिलप्पधिकारम् में कई वाद्ययंत्रों का विस्तृत वर्णन किया है। ये वाद्ययंत्र प्राचीन तमिल संगीत परंपरा के अनुसार चार वर्गों में बाँटे गए हैं, जो नाट्यशास्त्र में बताए गए वाद्ययंत्रों की श्रेणियों से मिलते-जुलते हैं।

1. तुला करुवी (तार वाद्य) :

प्रमुख तार वाद्य है 'याल' जो तमिल संगीत की पहचान है। यह वीणा जैसा एक अर्धचंद्राकार वाद्य है और इसके कई प्रकार हैं – पेरियाझ् (बड़ा), सिरियाझ् (छोटा), तथा मकर याझ् (मगरमच्छ के आकार की सजावट सहित)। यह वाद्य माधवी के अरंगेत्रम और शाही संगीत सभाओं में प्रयुक्त होता था। एक अन्य तार वाद्य किन्नारम् है, जिसे प्रायः भिक्षुक गायक और घूमने वाले गीतकार बजाते थे।

"பேரியாழ் பின்னும்
மகரஞ்சகோடமுடன்,
சீர்மொழியுஞ் செங்கோட்டு
செப்பினர் தார்மொழிந்து,
மன்னும் திருமார்ப வன்கூ
டார் கோமானே,
பின்னும் முளவோ பிற"2

'जब ध्वजाएँ लहरा रही हैं, वीणा की मधुर ध्वनि गूंज रही है, सुंदर कन्याएँ मंगल गीत गा रही हैं, और ऐसे प्रभु जिनके वक्षस्थल पर महालक्ष्मी स्वयं वास करती हैं- उस वन्कूदार के स्वामी जैसे कोई और हो ही नहीं सकता।'

यह श्लोक विष्णु भगवान के प्रति गाया गया पवित्र भक्ति गीत है।इन वाद्ययंत्रों में तार होते हैं, जो उंगलियों या पिक से बजाए जाते हैं।

याल (YAZH): यह एक खास तमिल वाद्य है, जो देखने में वीणा जैसा लगता है और इसका आकार आधे चाँद जैसा होता है। इसके कई प्रकार होते हैं:

पेरियाल (YAZH)	:	बड़ा याल 21 तार का बना।
सिरियाल (YAZH)	:	छोटा याल 14 तार का बना।
मकर याल (YAZH)	:	इसमें मगर के आकार की सजावट होती है 19 तार का बना।
सेन्गोटु याल (YAZH)	:	चक्र आकार का याल 7 तार का बना।

यह वाद्य माधवी के नृत्य कार्यक्रम (अरंगेत्रम) और राज दरबार की संगीत सभाओं में बजाया जाता था।

ஒன்றுமிருபது பொன்
மாது பத்துடனே
நின்ற பதினாங்கும்
பின்னேழும் குன்றாத,
நால்வகை யாழிற்கு
நன்னரம்புச் சொன்முறையே,
மேல்வகை நூலோர விதி. 3

हिंदी अनुवाद :

इक्कीस सुनहरी तारों के साथ,

उनके साथ स्थित चौदह और फिर सात जो कभी कम न हों,

चार प्रकार की वीणा (याज़) के लिए उत्तम तारों की विधि यही है,

यह श्लोक बताता है कि याज़ (तमिल वीणा) में 52 तार होते हैं जिनकी व्यवस्था चार प्रकार की याज़ के लिए अलग-अलग होती है। इन तारों की ध्वनि संगीत के सात स्वरों पर आधारित होती थी। इस नियम को महान शास्त्रकारों ने विधि के रूप में निर्धारित किया था।

किन्नारम् : यह भी एक तार वाला वाद्य है, जिसे घूमते हुए गायक और साधु (भिक्षु) बजाते थे।

2 . थडै करुवी (ताल वाद्य) :

इसमें परई एक प्रमुख पारंपरिक ढोल है, जो युद्ध घोषणाओं, शोक संदेशों और राजकीय आदेशों के प्रसार में बजाया जाता था। मुरसु एक विजय-घोष ढोल था, जिसे मंदिरों और उत्सवों में बजाया जाता था। तुडुम्बु नामक जनजातीय ढोल का प्रयोग लोक नृत्य और पर्वों में होता था।

இடக்க ளியாய் வலக்கண் குரலாய்
நடப்பது தோலியார் கருவியாகும் 4

हिंदी अनुवाद :

बाईं ओर की चालाकी और दाईं आँख की आवाज़ बनकर

जो चलता है, वह किसी और का औज़ार (साधन) बन जाता है।

इन वाद्ययंत्रों को पीटकर बजाया जाता है।

परई : यह एक पारंपरिक ढोल है। इसका उपयोग युद्ध की घोषणा, शोक समाचार या राजकीय सूचनाएँ देने के लिए होता था।

मुरसु : यह विजय और उत्सव के समय बजाया जाता था, खासकर मंदिरों और त्योहारों में।

तुडुम्बु : यह आदिवासी समुदायों में लोक नृत्य और उत्सवों में बजाया जाने वाला ढोल है।

3. सुद्ध करुवी (वायु वाद्य) :

इस श्रेणी में प्रमुख है कुज़ल (तमिल बाँसुरी), जो प्रेमपूर्ण और ग्रामीण दृश्यों में प्रयुक्त होती थी। यह प्रेम और प्रकृति का प्रतीक मानी जाती है। वहीं संगु (शंख) को मंदिर अनुष्ठानों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा राजसी या दैवी आगमन के समय फूंका जाता था।

इन वाद्ययंत्रों को मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

कुज़ल : यह एक बाँसुरी जैसा वाद्य है। इसे खासतौर पर प्रेम, गाँव के जीवन और प्रकृति से जुड़े दृश्यों में बजाया जाता था।

संगु (शंख) : यह मंदिरों में पूजा के समय, राजसी जुलूसों और देवी-देवताओं के आगमन पर बजाया जाता था।

4. कट्ठ करुवी (घन वाद्य) :

इसमें तालम का उपयोग नृत्य प्रस्तुतियों में लय बनाए रखने के लिए होता था। कट्टाई एक लकड़ी की ताली होती थी, जो लोक गीतों और नाटकों में

प्रयुक्त होती थी। घंटी प्लेट धार्मिक अनुष्ठानों तथा नाट्य मंच पर ध्वनि प्रभाव के लिए प्रयोग में लाई जाती थी।इन वाद्ययंत्रों को आपस में टकराकर ध्वनि निकाली जाती है।

तालम : यह नृत्य के समय ताल या लय बनाए रखने के लिए उपयोग होता था।

कट्टाई : यह दो लकड़ियों की ताली होती थी, जिसका उपयोग लोकगीत और नाटकों में होता था

घंटी प्लेट : यह धार्मिक समारोहों और नाट्य मंच पर विशेष ध्वनि प्रभाव के लिए बजाई जाती थी।

इलंगो अडिगल ने अपने महान ग्रंथ सिलप्पधिकारम् में कई तरह के वाद्ययंत्रों का सुंदर और विस्तृत वर्णन किया है। ये वाद्य प्राचीन तमिल संगीत परंपरा के अनुसार चार भागों में बाँटे गए हैं, जो नाट्यशास्त्र में बताए गए वाद्ययंत्रों से मिलते-जुलते हैं।

सिलप्पधिकारम् सिर्फ एक कहानी नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा ग्रंथ है जो प्राचीन तमिल समाज की संगीत परंपरा और वाद्ययंत्रों की समृद्ध विरासत को दिखाता है। हर वाद्ययंत्र को सही समय, स्थान और भावना के अनुसार इस्तेमाल किया जाता है। इससे यह ग्रंथ तमिल कला, संस्कृति और संगीत का एक अमूल्य खजाना बन गया है।

सिलप्पधिकारम् - नृत्य और नाट्य कला :

सिलप्पधिकारम् में नृत्य और संगीत को एक-दूसरे से अलग नहीं माना गया है। इलंगो आदिगल ने माधवी के नृत्य का वर्णन बहुत सुंदर तरीके से किया है, जो आज के भरतनाट्यम जैसा शास्त्रीय नृत्य है। इस नृत्य में न केवल शरीर की चाल, बल्कि चेहरे के भाव, हाथ की मुद्राएँ, ताल और संगीत- सबका मेल होता है।

माधवी का अरंगेत्रम (पहला सार्वजनिक नृत्य प्रदर्शन) :

माधवी के पहले नृत्य को एक बड़ा सांस्कृतिक उत्सव माना गया है।

उसने सुंदर कपड़े पहने थे और उसकी हाथों की मुद्राएँ, चेहरे के भाव और चाल-ढाल सब कुछ दर्शकों को बहुत पसंद आया।उसके नृत्य में लय और संगीत के साथ तालमेल बहुत अच्छा था। बीच-बीच में संगीत की मधुर धुन और ताल उसके नृत्य को और आकर्षक बनाते थे।

தேய்வமால் வரை த்திருமுனி யருள
எய்திய சாபத்து இந்திர சிறுவனோடு
தலைக்கோல் தானத்து சாபத்து நீங்கிய
மலைப்பருஞ் சிறப்பின் வானவர் மகளிர்

हिंदी अनुवाद :

दैव से निश्चित ऋषि-मुनि के वरदान से प्राप्त

शाप के कारण इन्द्रपुत्र के साथ,

तलैकोल मैदान में शाप से मुक्त होकर पर्वत-सा महान वैभव पानेवाली देवलोक की कन्याएँ,

उनकी शोभा में कमी न रखनेवाली, विशाल भुजाओं वाली युवती,

सुगंधित फूलों से सजी घुँघराली केशराशि वाली माधवी।

सिलप्पधिकारम् में संगीत और नृत्य, कथा का अभिन्न अंग हैं। माधवी का 'अरंगेत्रम्' (प्रारंभिक प्रस्तुति) में 11 प्रकार की नृत्य मुद्राओं और तालों का वर्णन है। 'पण् इसै' (तमिल संगीत) की विधियाँ, ताल-संगति, और गीतों के प्रयोग विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

सिलप्पधिकारम् में उस समय के लोकप्रिय नाटक जैसे कूथु (तमिल लोकनाट्य) और सदिर (भरतनाट्यम का पुराना रूप) का उल्लेख मिलता है।ये नाटक गीत, संगीत, संवाद और नृत्य का मेल होते थे।इनका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ समाज की घटनाओं और नैतिक संदेशों को दर्शाना था।सिलप्पधिकारम् में नृत्य केवल कला नहीं बल्कि भाव, कहानी और संस्कृति को दर्शाने का एक जीवंत माध्यम है।

निष्कर्ष :

इलंगो अडिगल समाज में न्याय और सच्चाई को ईश्वरीय शक्ति से जोड़ते हैं।

इसमें संगीत और नृत्य का प्रयोग संकेत के रूप में हुआ है, और वाद्ययंत्रों का थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है। शकुंतला को एक आदर्श प्रेमिका के रूप में दिखाया गया है, और इसकी धार्मिक दृष्टि वैदिक-हिंदू परंपरा से जुड़ी है।

सिलप्पधिकारम् तमिल भाषा में लिखा गया महाकाव्य है, जिसका मुख्य विषय न्याय और नैतिकता है। इसमें संगीत और नृत्य की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वाद्ययंत्रों का विस्तार से तकनीकी वर्णन किया गया है। कण्णगी को एक न्यायप्रिय देवी के रूप में दर्शाया गया है। इसकी धार्मिक दृष्टि जैन, हिंदू और तमिल परंपराओं का मेल है।

रचनाओं में कला, संगीत और प्रदर्शन सिर्फ सजावट नहीं हैं, बल्कि वे सत्य और सौंदर्य को व्यक्त करने के साधन हैं।ये ग्रंथ हमें भारत की विविध और समृद्ध सांस्कृतिक चेतना की झलक देते हैं, जहाँ प्रेम, न्याय, धर्म और कला एक-दूसरे से जुड़कर समाज को दिशा देते हैं।

सन्दर्भ सूचि :

1. அரங்க சுப்பையா,இலக்கியத் திறனாய்வு P-113 'अरंग सुब्बैय्या, साहित्यिक आलोचना

2. சோமசுந்தரனார் பொ. வே சிலப்பதிகாரம் மூலமும் அரும்பதவுரையும்
'सोमसुंदरनार् पो.वे. – सिलप्पधिकारम् (मूल पाठ और सरल व्याख्या)' P-114 'सैव सिद्धांत प्रकाशन संस्था'

3. வேங்கடசாமி நாடார் ந மு சிலப்பதிகாரம் புகார்க்காண்டம்
'वेंकटा सामी नाडार् न. मु. – सिलप्पधिकारम् (पुकार्काण्डम्)' P-102, Saradha Publication, Chennai

4. வேங்கடசாமி நாடார் ந மு சிலப்பதிகாரம் புகார்க்காண்டம்
'वेंकटा सामी नाडार् न.मु. – सिलप्पधिकारम् (पुकार्काण्डम्)' P-70, Saradha Publication, Chennai.

5. வேங்கடசாமி நாடார் ந மு சிலப்பதிகாரம் புகார்க்காண்டம்
'वेंकटा सामी नाडार् न.मु.- सिलप्पधिकारम् (पुकार्काण्डम्)' P-70, Saradha Publication, Chennai.

6. சோமசுந்தரனார் பொ.வே இளங்கோவடிகள் சிலப்பதிகாரம்
'सोमसुंदरनार् पो。 वे。 'इलंगो अडिगल का सिलप्पधिकारम्'- सैव सिद्धांत प्रकाशन संस्था'

7. எளிய உரையில் சிலப்பதிகாரம் -மணிசங்கர்
'सरल भाषा में सिलप्पधिकारम् – मणि शंकर' Pachchaiyamman Publication Vellore.

8. इलंगो अडिगल, सिलप्पधिकारम् (अनुवाद : आर。 पार्थसारथी)

Rai Dance of Bundelkhand : Tradition, Resistance and Cultural Revival

Dr. Ahfaz Khan
Project Associate
Indira Gandhi National Centre for the Arts,
New Delhi

Abstract :

Rai dance, a vibrant folk tradition of Bundelkhand, is more than an aesthetic performance. It is a layered expression of identity, gendered resistance, spiritual devotion, and cultural continuity. Historically rooted in the valor of Bundeli warriors and the mourning rituals of women, Rai evolved into a medium of social cohesion and sacred offering, especially within marginalized communities like the Bedias. Colonial commodification and societal stigma once threatened its integrity, reducing it to entertainment. However, artists such as Padma Shri Ram Sahay Pandey revived Rai's cultural dignity, bringing it from village courtyards to global stages. Today, Rai is performed across international festivals, yet its essence remains embedded in the devotional soil of Karila Dham and the lived experiences of Bedia women. Despite growing recognition, the dance form demands institutional support for training and preservation. This article explores Rai as both a historical artifact and a living, dynamic tradition-symbolizing Bundelkhand's cultural soul and ongoing struggle for dignity and representation.

Keywords :

Rai Dance, Bundelkhand, Bedia Community, Folk Art, Cultural Revival, Gender and Resistance, Devotional Performance, Indian Folk Traditions, Intangible Heritage

The region of Bundelkhand is not merely a land of valor and historical struggles; it is equally enriched by a profound cultural heritage. Its folk songs, traditional arts, and dance forms have served not only as modes of entertainment but also as vehicles for social dialogue, cultural transmission, and the preservation of deeply rooted beliefs and customs. Among these expressive traditions, the Rai dance emerges as a prominent and emblematic form, embodying the very spirit of Bundelkhand. The region of Bundelkhand, embedded within the rich tapestry of Bundeli folk culture, Rai dance holds a place of unique significance. Far beyond its surface as a

performative art, Rai symbolizes the social, religious, and historical consciousness of the region. It has long functioned as a medium for collective expression, communal harmony, and spiritual communication with local deities. Through its evolving aesthetic, Rai has reflected the lived experiences of Bundelkhand's people, especially those on the margins. It has become a dynamic symbol of resilience and identity.

Understanding the origin, development and present-day status of Rai dance necessitates a nuanced examination of its diverse dimensions that are cultural, historical, and ritualistic. The dance form cannot be viewed in isolation from the sociocultural matrix that sustains it. Rather, it must be explored as a living tradition that has continually adapted, resisted and redefined its purpose in response to the transformations within the community and the wider society.

Historical Trajectory : From Battlefield to Performance Stage :

The origins of Rai dance are deeply rooted in the ancient heroic ballads and socio-political structures of Bundelkhand. This culturally vibrant region has long been safeguarded by legendary warriors such as Alha, Udal and Maharaja Chhatrasal, whose valorous exploits continue to be recited during traditional Rai performances. Rai dance, in its earliest form, emerged as a symbolic expression of collective euphoria following military victories. When Bundeli warriors returned home after triumphs in battle, villages would erupt in celebration. During such festive gatherings, men and women would come together to perform Rai, not merely as entertainment but as a ritual of communal joy and honor.

Over time, this performative tradition extended beyond the battlefield and found space within both royal courts and village festivals, spanning the full spectrum of social and political life. Rai's association has historically been strongest with the Bedia tribe and other communities proficient in singing and drumming traditions. While formal written records documenting its origin remain scarce, oral narratives and local traditions offer a compelling alternative genealogy. According to these accounts, the inception of Rai dance is attributed to a woman who, in mourning the martyrdom of her husband in war, transformed her grief and love into dance. Through this symbolic act, she gave rise to a tradition that captured both personal sorrow and collective memory.

During the medieval period, when Bundelkhand was embroiled in waves of invasions and internal conflicts, Rai emerged as a powerful cultural idiom of female agency. Women, often excluded from dominant discourses, began to channel their sorrow, resistance, and protest through this form of expressive movement. In this sense, Rai was not merely a dance, but it became a space of articulation, a medium for women to assert autonomy and preserve collective dignity amid a backdrop of violence and displacement. It served as a resilient mode of storytelling, embedding within its rhythms both the turbulence of its times and the subtle assertion of identity by those who performed it.

Colonial Disruption and Cultural Reclamation :

The onset of colonialism in India brought with it a shift in how indigenous cultural expressions were perceived and

practiced. Under the imperial mindset, Rai dance was gradually reduced to a mere form of entertainment, stripped of its symbolic and ritualistic depth. As market forces and colonial aesthetics began to influence folk practices, Rai which was once an emblem of spiritual and communal assertion, became vulnerable to commodification. In this process, the dance form increasingly became a site of the objectification of women performers, particularly those from marginalized communities like the Bedias, reinforcing stereotypes rather than challenging them. However, it was through the resilience and cultural consciousness of Bundeli folk artists that Rai was restored to its sacred and authentic form. These artists endeavored to re-establish the dignity of the art, disengaging it from commercial exploitation and reclaiming its place in the collective cultural imagination of the region.

Folk etymologies and local historiographers offer insightful interpretations regarding the very term "Rai." According to oral traditions, the word "Rai" is closely linked to three conceptual roots. The first is *Ragi*, referring to something imbued with melody and passion (*raag-yukt*). The second is *Radhika*, whose vernacular and Prakrit variant *Raiya* evolved into *Rai* in Bundeli dialects. The third and most compelling derivation is *Rajsi*, indicating royal patronage, suggesting that the dance form once enjoyed significant courtly support.

With time, Rai evolved from a symbol of valor into a cultural staple woven into the everyday rhythms of agrarian and spiritual life. It came to be performed during harvest celebrations, weddings, rural fairs (*melas*), and religious rituals involving the worship of local deities. No longer confined to the narratives of war and heroism, Rai adapted itself as a dynamic tradition that connected the sacred with the secular, the festive with the devotional and the personal with the collective. Its enduring presence at both domestic ceremonies and public festivals is a testament to its integrative role in the socio-cultural fabric of Bundelkhand.

Rai Dance in Religious Faith and Folk Belief :

For the people of Bundelkhand, Rai dance is not merely a form of entertainment, but it is a profound medium of devotional expression and cultural reverence. It occupies a sacred place in the spiritual consciousness of the region, often functioning as both ritual and performance. A particularly unique manifestation of Rai can be observed in the Ashoknagar district, located at the border of Madhya Pradesh and Rajasthan. In the village of Karila, the famous temple of Karila Mata becomes the sacred stage for this tradition, where young women from the Bedia community who are locally referred to as *Bedniyan*-perform Rai as an act of religious offering.

These performers put on traditional attire like *lehengas, odhnis, saris*, and embroidered blouses (*cholis*), adorned with heavy ornaments and distinctive *bindis* on their foreheads. Male accompanists, dressed in Bundeli turbans, *saluka* (tunic), and *dhotis*, play instruments such as the *dholak*, *nagada*, *manjira*, and *harmonium*. The accompanying music often includes indigenous instruments like the *bansuri* (flute), *nagadya*, and *dhol*, creating a rhythm that fuses devotion with folk vibrancy.

The ritual structure of this performance is spiritually significant. Devotees seeking fulfillment of their desires must express their wish by sponsoring a Rai performance in the temple courtyard. The offering of gifts to the performing *Bedniyan* is seen not as payment, but as part of the sacred vow. According to prevailing belief, the devotee's wish is only granted once the Rai performance is completed in the sanctified space of the temple. What unfolds here is far more than a religious ceremony. The Rai performance at Karila Dham has come to symbolize a layered intersection of devotion, gendered agency, and social identity. For the Bedia women, dancing Rai is not merely participation in a ritual, but a public assertion of their cultural legitimacy in a society where their identities have long been stigmatized. Thus, Rai at Karila emerges as a spiritual assertion and a socio-political statement- a confluence of bhakti (devotion) and dignity.

Social Realities : The Bedia Community and Their Struggle :

Rai dance has traditionally been performed by women of the Bedia community, a group that has historically occupied the margins of Indian society. Positioned at the intersection of caste, gender and occupation-based discrimination, the Bedias have often been viewed through a lens of moral suspicion. Their performances which are especially in the context of Rai, have at times been mischaracterized as ethically ambiguous or even indecent, reinforcing stigmas rather than acknowledging the cultural depth of their art.

Yet, despite these prejudices, numerous individuals and cultural advocates have worked tirelessly to legitimize Rai as a serious folk art form. These efforts have not merely been about aesthetic recognition, but about challenging systemic marginalization and asserting the artistic dignity of a community long excluded from dominant cultural narratives.

Even today, when Bedia women take the stage to perform Rai, their movements carry layered meanings. The performance becomes more than a display of rhythm and grace, it transforms into a declaration of identity, agency, and historical memory. Through Rai, these women reclaim space, narrate their community's journey, and defy the social hierarchies that have confined them.

In this light, Rai is not just a dance but a socio-cultural assertion. It embodies the lived realities of resistance and resilience, functioning as a means through which the Bedia community negotiates respect, visibility, and inclusion in a society that has long denied them all three.

From Struggle to Recognition –Unsung Artists and the Renaissance of Bundeli Rai Dance :

The soil of Bundelkhand has given birth to numerous cultural luminaries who remain undocumented. Various distinguished artist and cultural revivalist who have been a victim of under representation have shown relentless dedication, unwavering commitment, and artistic vision. These artists have played a pivotal role in transforming Rai dance from an informal, community-based performance to a nationally and internationally recognized art form.

Through his efforts, Rai was elevated from the *chaupals* (village courtyards) and narrow alleys of rural settlements to presti-

gious cultural stages across India and abroad. His leadership not only redefined Rai as a performative tradition but also legitimized it as a serious art form within the main-stream cultural and academic discourse. Under his stewardship, Rai transitioned from being categorized merely as folk entertainment to being acknowledged as a structured and sophisticated stage art.

Some of the artists popular in the Bundelkhand region are Dhaniram Sen and Ramsahay Pande. The Government of India recognized Pande's monumental contributions by conferring upon him the Padma Shri award in 2022. This accolade was not only a personal achievement for an artist but also a symbolic recognition of the larger legacy of Bundelkhand, the Bedia community, and the centuries-old Rai tradition.

Their work represents a crucial moment in the journey of Rai from marginalization and misrecognition to cultural affirmation and institutional acknowledgment. Ram Sahay Pandey's life and contributions stand as a testament to how individual agency, when coupled with community memory and artistic devotion, can reshape the narrative of a folk tradition and bestow upon it the respect it has always deserved.

Contemporary Status of Rai Dance : From Local Stages to Global Platforms :

In its current form, Rai dance has transcended the confines of village court-yards, aristocratic mansions, and the devotional rituals of Karila Dham. It is no longer restricted to the sacred or the rural; rather, it has emerged as a vibrant cultural expression represented on both national and international stages. Today, Rai is performed at Indian cultural festivals in countries such as the United Arab Emirates, Singapore, and the United States, serving as a symbol of India's intangible cultural heritage.

This global journey of Rai reflects not only its aesthetic richness but also the resilience of the communities that have preserved and reinvented it. Contemporary Rai artists now actively participate in state-sponsored cultural festivals and have become regular contributors to prestigious institutions like the Sangeet Natak Akademi and the Centre for Cultural Resources and Training (CCRT). Their presence at these platforms marks a significant shift in how folk arts are recognized, curated, and celebrated within and beyond the borders of India.

The growing institutional engagement with Rai dance indicates a promising trajectory of cultural diplomacy, artistic legitimacy, and scholarly interest. As the dance form travels from Bundelkhand's dusty plains to the auditoriums of global metropolises, it carries with it the layered histories, struggles, and spiritual ethos of its region and performers. Rai today is not just a dance, but it is a cultural ambassador of Bundeli identity on the world stage.

Conclusion :

Although Rai dance has gained rene-wed recognition in recent decades, there remains an urgent need for its sustained preservation and formal transmission. Many rural performers, despite possessing deep cultural knowledge and artistic skill, are unable to access major performance platforms due to persistent economic hardship and lack of institutional support.

To ensure the vitality of this cultural heritage, Rai must be integrated into the

framework of education, supported by cultural academies, and strengthened through collaboration with local governance bodies such as Panchayats. These collaborative efforts can create sustainable ecosystems for training, documentation, and performance, thereby safeguarding Rai not just as a folkloric relic but as a living tradition.

Today, Rai has broken through the geographical confines of Bundelkhand and has earned a place on global cultural stages. Yet, its essence continues to reside in the sacred soil of Karila Dham, in the rhythmic footwork of Bedia women, and in the lifelong dedication of cultural custodians like Ram Sahay Pandey. The global expansion of Rai may amplify its visibility, but it is the rooted spirit of Bundeli devotion, resilience, and artistry that sustains its soul.

As Rai dance journeys across borders, it reminds us that folk traditions are not static, but they are evolving repositories of memory, identity and cultural resistance that must be honored, protected, and carried forward with dignity and care.

References :

1. Centre for Cultural Resources and Training (CCRT). (2017). *Bundelkhand ke lok geeton aur nritya ki parampara par shodh report*. Cultural Resources and Training Centre, Government of India, New Delhi.
2. Gupta, N. (1995). *Bundelkhand ki lok sanskriti ka itihas*. Radhakrishna Prakashan, New Delhi.
3. Gupta, A. P. 'Kumud'. (2021). *Bundelkhand ki lok sanskriti aur sahitya*. National Book Trust, New Delhi.
4. Pandey, R. P. (2016). *Bundelkhand: Sanskriti aur sahitya*. Kitabghar Prakashan, New Delhi.
5. Tiwari, B. (1972). *Bundeli-kavya-parampara, dvitiya khand (Aadhunik kavya)*. Bundeli Peeth, Department of Hindi, Sagar University, Sagar (M.P.). Retrieved from https://archive.org/details/dli.language.0043/mode/2up

The Embodiment of Ashta-Nayika in Thumri : A Study with Reference to the Rasikpriya of Keshavadasa

Sakshi Yadav
Ph.D. Research Scholar
Faculty of Music and Fine Arts
University of Delhi

Abstract :

The Ashta-Nayika, i.e, eight archetypal heroines classified according to their emotional states in love, have long served as a foundational aesthetic framework in classical Indian literature and art. This paper explores the nuanced intertwining of these feminine archetypes within the lyrical tradition of thumri, a semi-classical genre of Hindustani music renowned for its emotive depth and romantic expressivity. Drawing on the Rasikpriya of Keshavadasa, a 16th-century Braj Bhasha poet, this study examines how the Nayikas' emotional landscapes are recontextualized in thumri compositions, both in lyrical content and musical rendition. Keshavadasa's classification of the ashta-nayika serves as a critical lens to analyse how thumri not only reflects but also transforms classical ideals of love, longing, separation, and union through its performance aesthetics.

Keywords :

Ashta-Nayika, Nayika, Thumri, Rasikapriya, Pahari painting.

Introduction :

The classification of heroes and heroines, known as nayak and nayika has always been a topic of interest for Indian writers. It was initially developed in the Sanskrit treatises such as the Natyashastra of Bharata, Sahitya Darpan of Viswanatha Kaviraja and Kamasutra of Vatsyayana. "Nayika", in its literal translation in English language, means "heroine". The Oxford dictionary defines "heroine/nayika" as follows :

1. A woman admired for her courage, outstanding achievements, or noble qualities.
2. The chief female character in a book, play, or film, who is typically identified

with good qualities, and with whom the reader is expected to sympathize.

The Ashta-Nayika, or heroines cast in different moulds, represent women in several moods and circumstances relating to her lover, known as nayak. The Rasikpriya, composed by Keshavadasa in the 16th century is considered as one of the first vernacular literatures in Braj Bhasha, which discusses the topic of nayak-nayika in detail. It is also regarded as one of the oldest and most important Hindi works on love poetry, particularly Raas-Leela. A painting is a visual medium, and music is an audible medium. Most of the Pahari paintings of the 17th and 18th century (particularly from the Kangra district), conform to his definitions and a considerable number of them are actually inscribed with extracts from 'Rasikpriya'. The Pahari embroidery also employs the central theme of ashta-nayika to decorate the Chamba Rumal where the eight panels of the rumal represent the eight nayikas.

The Rasikapriya of Keshavadasa is divided into sixteen chapters. Chapter seven named the "Ashta-Nayika Varnana" deals with the different types of Heroines. His classification of ashta-nayika, or manifestation of the eight heroines is as follows:

"Yeh sab jitni nayika, varni mat anusar
Keshavrai bakhaniye, te sab aath prakar"

"Swadhinpatika utkala, vasakshakhya naam
Abhisandhita bakhaniye, aur khandita vaam"

"Kashava proshitpriyasi, labdhvipra sujan
Ashtanayika ye sab, abhisarika bakhan"

Svadhinapatika : she whose beloved is "in her bandon", is subject to her.

Utkala/Virohkanthika : she who is alone and expectant or yearning .

Vasakasajja/Vasakasayya : she who waits by her bed.

Abhisandhita/Kalahantarita : she who is separated from her beloved by a quarrel, i.e, as a result of her own unkindness.

Khandita : she who is offended.

Prositapatika : she whose beloved has gone abroad.

Vipralabdha : she who has made an appointment and is disappointed.

Abhisarika- she who goes out to meet her beloved.

The ashta-nayika explore the concept of romantic or erotic love (sringar), which is the central theme of their emotional states. The word "sringar," which signifies love in its sensual aspect can be interpreted as a variation of the word "sringa", which means "horn" or "teak" and also refers to the excitation of desire. It indicates mutual participation and is derived from the verb "sri", which refers to being committed. The verb "sri" also means "to trouble" or "to kill" which gives the term "sringar" the connotation of a lethal force, providing undertones of unrequited love. It is divided into two types: vipralambha/viyog sringar, or love in separation and sambhoga sringar, or love in union. The entire crux of the ashta-nayika theme of emotions finds its expression in the diverse complexities of the psychological states experienced during viyog and sambhoga sringar.

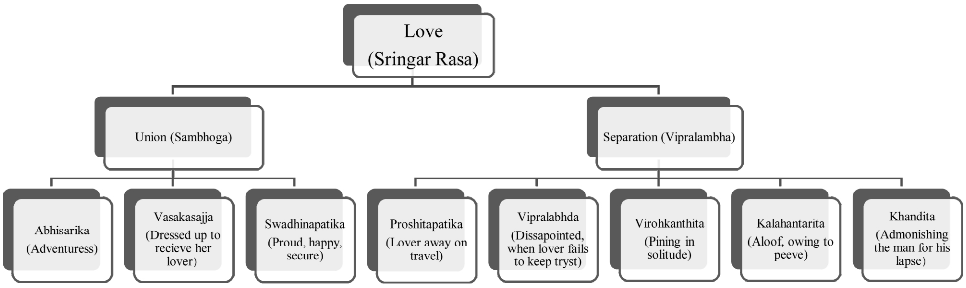

Fig-1.1 : Evolution of Ashta-Nayika

Thumri, its Lyrics and the Ashta-Nayika :

In Hindustani Semi-Classical music genres, such as thumri, eternal love between Radha and Krishna is depicted through the consciousness of Radha as the leitmotif that dominates the lyrics, thus, directly drawing parallels from Keshavadasa's description of the Raas-Leela of Radha and Krishna through ashta-nayika. In the Bhakti tradition, the ashta-nayika represent the various moods, situations and manifestations of Radha, in relation to her love for Krishna.

Apart from her depiction in the Bhakti tradition, the nayika existed through several women performers who interacted and performed in various cultural spaces of India over centuries. Such female performances were known as 'Ganika', 'Dhadhi', 'Patur', 'Domni', 'Kanchani' and 'Tawaif'. The tawaifs popularised Thumri during the 18th and 19th century. The word 'Thumri' originates from the devanagari alphabets 'Thu', 'Ma', and 'Ri', where 'Thu' stands for 'thumakna' or dance like movements, 'Ma' stands for 'mana', referring to the heart and 'Ri' stands 'rijhana' meaning enchantment. This confluence of music and dance, along with literary richness, make thumri an ideal vehicle for the expression of moods and emotions, which is the basic theme of the ashta-nayika. The real 'kehen' of thumri refers to the personification of a particular nayika through 'bhav-abhivyakti' which was previously shown through both music and dance (kathak). Words like 'piya', 'balam', 'kanha', 'shyam', 'mohan' and 'saiyaan' are important parts of the lyrics and are used to address the lover/nayak. The main lyrics of the thumri are usually women-centric, representing the feminine emotions, therefore adeptly highlighting the sringar rasa.

Vocalists like Naina Devi and Rita Gangoly do emphasise the relevance and importance of the eight basic heroine-types in thumri. Devi writes, "A study of the 'Nayika Bhed' is necessary and very helpful in rendering thumri effectively". Similarly, most authors of thumri texts appear to have been influenced, even indirectly, by the nayika bheda theory. More importantly, most traditional thumris were written specifically to accompany abhinay (representational dance) in kathak dance, which generally portrays a particular nayika. Therefore, many thumris can indeed be classified into these eight, depending on the character and situation of the heroine portrayed. The descriptions of the ashta-nayika are given below :

Svadhinapatika Nayika :

"Keshava Jaake Gun Bandho, sada rahe patisang
Swadhinapatika tasuko, barnat premsang"

The Swadhinapatika nayika is proud of her beloved's unwavering love and loyalty. Her lover is consumed by her devotion, and she is delighted by his unwavering dedication and commitment to her. She takes pride in the fact that her nayak has fulfilled her expectations in love, being loyal and always taking her favour. Of the eight nayikas, Swadhinapatika is the only one whose hero clings to her like a shadow and she is the fortunate one whose lover remains with her at all times. In contrast, under other categories, nayak is separated from the nayika, either by circumstance or choice. She becomes alive through the thumri give below:

"Tum Radhe bano Shyam, hum Nandala
Paao peyjaniya, choli, sohe,
Kar churiya bindi bhal."

Utkala/Virohkanthika :

"Kaunahu hetan aaiyo, preetamjake dhaam
Taako shochti shoch hiye, Keshava utkabaam"

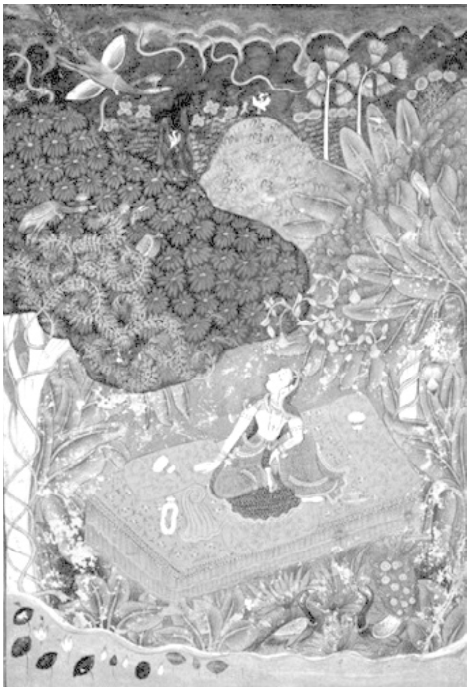

Utkala, or Virahotkanthita nayika, on the other hand, is distressed by her lover's absence and suffers the pangs of separation. She is saddened by his absence and becomes disturbed when he tarries without being at fault. Due to the non-arrival of her lover or hero, she openly demonstrates her distress, exhaustion, and discontent. She is usually described as a lady expressing her anxiety to her servants, weeping, disheartened, restless, and exhausted. However, she does not doubt her hero and usually considers various reasons for his delay, such as being detained by duty or business. Her pain is shown in the thumri below:

Thumri: Koyelia mat kar pukar
Karejwa laage kataar
Koyelia ja piya ke des

Unko de na yeh sandes

Tum bin liya jogiya bes

Tyag diya sansaar re

Vasakasajja/Vasakashayya :

"Vasakashayya hoyaso, kahi Keshava savilas
Chite rahiye grehdwaratiyon, piya aawanki aas"

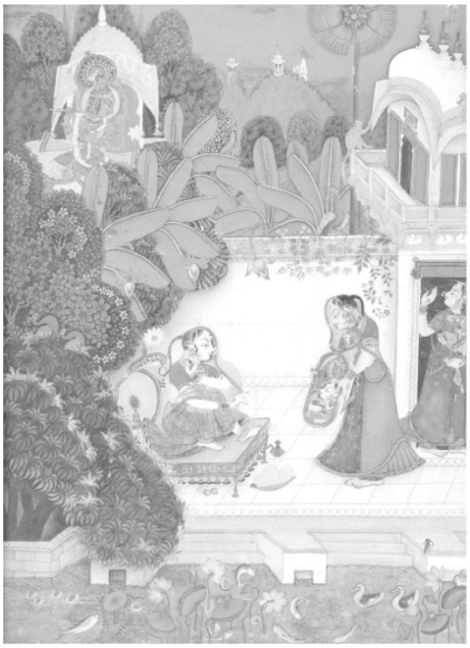

Vasakasajja nayika is a personification of love and adorns herself with joy in anticipation of her lover's arrival. She is aware of his opportune arrival and awaits him eagerly, assuming the persona of Rati. She adorns herself with ornaments and makeup, preparing the venue where she will meet her nayak and arranging items he favours within the room. She is depicted as delightfully embellishing herself, admiring her beauty in the mirror, beautifying the bed with flowers, and patiently waiting for her lover. Upon his arrival, she gives him an affectionate and adoring welcome. She is also known as Vasakasajjika and Sajjita. One can relate to her through the thumri, "Malati gundhaye kesh pyaare ghungaraale

Maang motina sajaaye, choti peeth par kari

Sab ban than aayi shyam pyaari re."

Abhisandhita/Kalahantarita :

"Maan manaavathoon kare, maanadko apmaan

Duno dukhta vin lahe, Abhisandita bakhaan"

Kalahantarita, also known as Abhisandhita, is a nayika who is separated from her lover due to a quarrel. She experiences remorse after repulsing her lover in indignation. The name Kalahantarita encapsulates the heroine's character, as "Kala" signifies anger, "Anta" denotes the end, and "Aritha" signifies repentance or apology. She is quarrelling with her lover for

trivial reasons. Initially, she insults the nayak and subsequently regrets her actions after his departure, aptly shown in the thumri, "Balam tere jhagre mein rain gai

Ghul gaye badra chhitak gaye târe

So ab ginata rahi."

Khandita :

"Aavan kahi aave nahi, aave pritam prat
Taake gharso Khandita, kahe subhuvidhi baat"

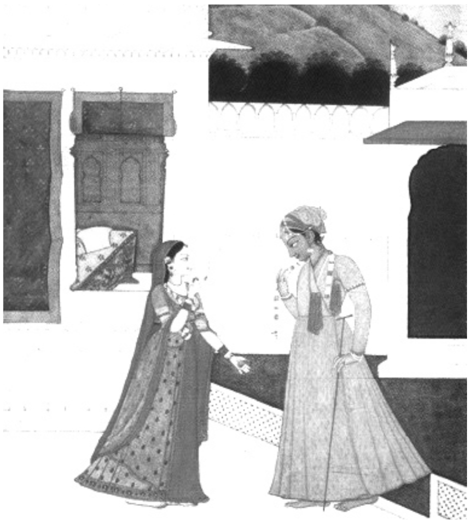

Khandita Nayika, characterised by intense anger and jealousy, discovers her hero's infidelity. Her hurt and disappointment are compounded by the revelation of his extramarital affairs, as she had heard him described in poetry and texts with explicit references to his infidelity. Upon seeing him, she responds with anger, suspicion, and jealousy, reproaching him for his lack of faithfulness. She refuses to allow him to approach her or engage in conversation. The term 'Khandita' refers to being cut or shattered, and in this instance, the nayika is shattered by her anger. She employs hatred and strangeness as her weapons against her lover. Her pain is clearly depicted in the thumri "Piya jao jao mose na bolo

Sautan ke sang raho

Bhor hot ghar aaye ho saiyaan

Karata dhang naye naye."

Prositapatika :

"Jaake pritam de avadhi, gayo kaunhun kaaj
Taako proshit preyasi, kahi barnat Kaviraj"

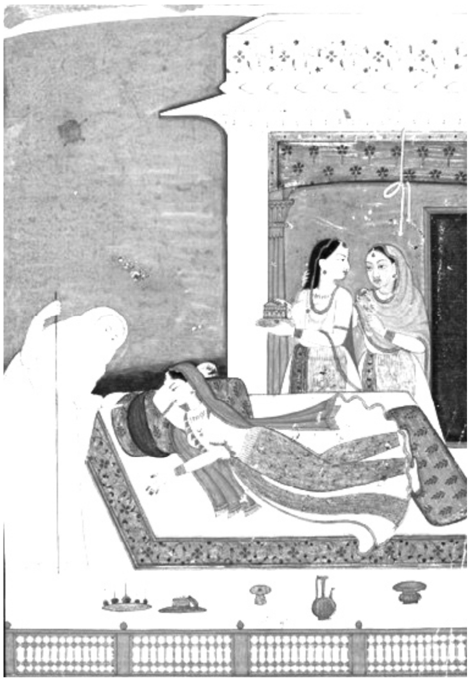

The Prositapatika nayika experiences the throbbing pain of separation and the longing for her lover's return after a journey. These unbearable pangs cause her to lose interest in grooming herself. She becomes restless, shattered and careless towards her appearance, counting the days of his return and feels discontented without him. The separation is attributed to pertinent circumstances, such as a mission, livelihood, or education of the hero, making it both justified and distressing. The thumri below personifies the prositapatika nayika:

Naina more taras gaye
Aaja balam pardesi
Mujh birhan ka jiyara dole
Kale baadal garaj rahe
Aja balam pardesi

Vipralabdha :

"Dootiso sanket badi, lain pathai aap
Labdh Vipraso jaaniye, ana aaye santap"

Vipralabdha Nayika is the one who is deeply offended by her lover's failure to meet their agreed-upon rendezvous. She begins to feel that her youth and beauty are of no consequence. She is usually standing beside a bed of leaves discarding her jewelled armlet in disgust, expressing her exhaustion of waiting for her lover, whom she had adorned herself for. The Thumri which beautifully describes this nayika is "Baju band khul khul jae

Saawariya ne kaisa jaadu dara
Jaadu ki pudiya bhar bhar maara
Ka Karega ved bechara?"

Abhisarika :

"Hittain ke madmadantain, piyaso mile jujayi
So kahiye Abhisarika, barni trividhi banayi"

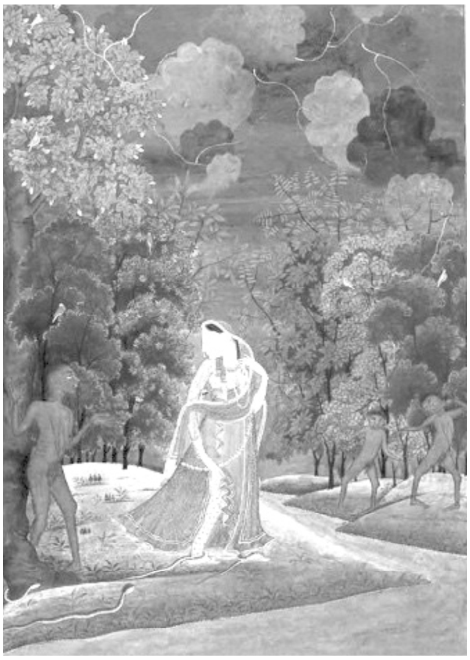

The Abhisarika nayika is resolute in her desire to meet the nayak. Undeterred by the challenges of a stormy night, she ventures out to meet him, dedicating considerable time to her adornment and making bold attempts to secure a meeting. Despite the obstacles posed by snakes, malevolent spirits, torrential rain, and lightning, she remains steadfast in her pursuit. She is typically depicted at the entrance of her residence or on her way to rendezvous with the nayak. One of the most famous thumris representing Abhisarika Nayika is,

"Mora saiyaan bulaave aadhi raat
Nadiyan bairi bhayi
Sun re mallah, Hun to teri chali
Naiyaan laga dijo paar
Kewat matwaara, sune nahi baat"

Conclusion :

Thumri acts as a living embodiment of the Ashta-Nayika theory, translating classical Sanskrit and Braj Bhasha aesthetics into the popular but sophisticated semi-classical music. The emotional complexity and subtlety of each Nayika's feelings find voice in the nuanced thumri style, which thrives on improvisation and emotional expression.

References :

1. Keshavadas. (1920). The Rasikapriya of Kesava Das, Khemraj Shrikrishnadas Publishers.
2. Coomaraswamy, A. K. (1914). The Eight Nayikas. The Journal of Indian Art, 1886-1916, 16 (122-128), 99-128.
3. Srinivasan, K. S. (1985). The Nayikas of Indian classics : their genesis and rise to glory.
4. Manuel, P. (1989). Ṭhumrī in historical and stylistic perspectives. Motilal Banarsidass Publishers.
5. Banerjee, P. (1986). Dance in Thumri, Abhinav, New Delhi.
6. Shukla, S. (1991). Ṭhumrī ki Uttpatti, Vikas aur Shailiyan, Hindi Mandyam Karyanvaya Nideshalaya, University of Delhi.
7. Rao, V. (April 28, 1990). Thumri as a Feminine Voice, Economic and Political Weekly. Vol.25. No.17, pp. 31-39.
8. Randhawa, M. S. (2017). Kangra Valley Paintings. Publications Division Ministry of Information & Broadcasting.

प्रिंट विज्ञापन की सृजन यात्रा : एक कलात्मक अध्ययन

डॉ. चारू यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर
पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बठिंडा, पंजाब-151401

सारांश :

मानव समाज अपने विकास क्रम में अपने वन्य स्वरूप को पार करता हुआ तकनीकी विकास क्रम को भी आगे बढ़ा रहा है, नित नवीन प्रिंट विज्ञापन की सहायता से सम्प्रेषण की सुविधा समाज को प्रेषित कर रहा है। प्रिंट विज्ञापन भरोसेमंद, स्पष्ट एवं स्मरणीय होते हैं, ऑनलाइन विज्ञापन से लगभग दो गुना अधिक प्रिंट विज्ञापन याद रखे जाते हैं। यह जितना आकर्षक एवं रचनात्मक होगा उतना ही अधिक उसका प्रभाव रहेगा। प्रिंट विज्ञापन की सृजन क्रिया में उपभोक्ता मनोविज्ञान, बजट, माध्यम, समय-काल, उपभोक्ता मांग, स्थान आदि के साथ-साथ मुद्रण माध्यम एवं मुद्रित कागज का भी विशेष ध्यान रखा जाता हैं। इसके अनेक तत्व होते हैं जिन्हें संयोजित करते समय काल्पनिकता, उपभोक्ता मनोविज्ञान एवं व्यापारिक दक्षता की समझ आवश्यक होती हैं। ये तत्व इलस्ट्रेशन, शीर्षक, व्यापारिक चिन्ह, रिक्त स्थान आदि हैं जिनके सही प्रयोग से सफल डिज़ाइन का निर्माण किया जाता हैं।

मुख्य बिन्दु :

प्रिंट विज्ञापन, विजुअलाईजेशन, सृजनात्मक प्रक्रिया, इलस्ट्रेशन, थम्बनेल्स।

प्रिंट विज्ञापन पारम्परिक विज्ञापन श्रेणी में आता हैं। समकालीन दौर में ऑनलाइन दिखने वाले विज्ञापन का विकास तेजी से हो रहा है पर दूसरी तरफ देखें तो प्रिंट विज्ञापन के विस्तार एवं प्रसिद्धि में कहीं कोई कमी नहीं आयी है। प्रिंट विज्ञापन के विभिन्न माध्यम एक ही समय में मुद्रित प्रतिलिपियों के कारण अलग-अलग प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

प्रिंट विज्ञापन के मूलभूत तत्व :

विज्ञापन एक योजनाबद्ध कार्य हैं जिसमे विभिन्न तत्व को संयोजित किया जाता हैं। प्रिंट विज्ञापन के तत्व को श्रेणीबद्ध किया जाये तो यह निम्न हैं (चित्र संख्या-1)

- **इलस्ट्रेशन :** मानवों के भावाभिव्यक्ति का सबसे प्रथम माध्यम चित्र हैं। गुफा चित्र से लेकर इलस्ट्रेशन का सफ़र स्पष्ट रूप से भावनाओं को समझाने के लिए ही रहा। यह एक अशाब्दिक समप्रेषण है, जहाँ शुद्ध भी सन्देश संप्रेषित करने में असमर्थ रह जाये वहाँ चित्र के माध्यम से सम्पूर्ण बात को समझाया जाता है। विज्ञापन विभिन्न प्रकार के सन्देश संप्रेषित करता है, संदेशों के भावों को सटीक ढंग से अभिव्यक्त करने हेतु चित्र भी अलग-अलग भाव के प्रयोग किये जाते हैं। विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य उत्पाद के

विक्रय में वृद्धि करना है इसी उद्देश्य के तहत दृष्तांक चित्रण का निर्माण एवं चयन किया जाता हैं। विज्ञापन इलस्ट्रेशन में रेखाचित्र, फोटोग्राफ्स, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर द्वारा निर्मित चित्र आदि का प्रयोग किया जाता हैं। फ़ैशन से सम्बन्धित विज्ञापन हेतु फ़ैशन इलस्ट्रेशन का प्रयोग किया जाता हैं। इसमें मॉडल का उत्पाद या फर्म विशेष से सम्बन्धित फोटोशूट किया जाता है और विज्ञापन में प्रयोग किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त कुछ इलस्ट्रेशन सूचनाओं के प्रसार के लिए किया जाता है। इसमें सरकारी, क़ानूनी एवं जन जागरूकता वाली सूचनाओं को आकड़ों, चार्ट व नक़्शे द्वारा चित्रित करके प्रदशित किया जाता है। सूचनाओं के लिए दृष्तांक चित्रण सरल एवं स्पष्ट बनाये जाते हैं जो आम जन को आसानी से समझ आ जाये। प्रिंट विज्ञापन का सबसे प्रसिद्ध एवं विश्वसनीय माध्यम समाचार पत्र हैं इनमे प्रकाशित होने वाले इलस्ट्रेशन लिखित सामग्री के अनुसार बनाये जाते हैं। इनमे भावनात्मक चित्रण को ज्यादा महत्व दिया जाता है जिससे लक्षित पाठक फर्म या उत्पाद पर विश्वास कायम कर सके। समकालीन दौर में इलस्ट्रेशन को एनीमेशन के माध्यम से यथार्थ बनाया जाता है जिससे तकनीकी मशीनें एवं अन्य क्रियाविधियों को आसानी से एनीमेशन के माध्यम से देख कर समझा जा सके।[1] इलस्ट्रेशन के प्रभावों पर डॉ॰ जार्ज गलय ने 29000 पाठकों पर शोध किया और यह पाया कि चित्रों के विभिन्न भावों का प्रभाव प्रत्येक पाठक पर अलग-अलग पड़ता हैं।[2]

- **शीर्षक :** शीर्षक द्वारा विज्ञापन का मुख्य सन्देश संप्रेषित किया जाता हैं। यह मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं- मुख्य शीर्षक, उपशीर्षक, बॉडी कॉपी। मुख्य शीर्षक किसी भी विज्ञापन का सबसे बड़े आकार में लिखा हुआ सन्देश होता हैं। विज्ञापन क्या कहना चाह रहा इसका ज्ञान मुख्य शीर्षक द्वारा ही पता लगता हैं। इसके उपरांत उपशीर्षक आता है जो शीर्षक द्वारा दिए गये सन्देश को ही आगे बढ़ाते हुए जानकारी देता है। यह मुख्य शीर्षक से आकार में छोटा एवं विस्तृत होता हैं। उपशीर्षक मुख्य शीर्षक और बॉडी कॉपी के मध्य सेतु के रूप में कार्य करता है। बॉडी कॉपी में उत्पाद या सेवा की पूर्ण जानकारी होती है जैसे- लाभ, मूल्य, किस स्थान से क्रय किया जाये, उपयोग विधियाँ, उत्पाद का विस्तृत स्वरूप, उत्पाद निर्माण सामग्रियाँ आदि। विज्ञापन माध्यम के अनुसार इसका आकार बड़ा या छोटा हो सकता है जैसे समाचार पत्र में 10-12 लाइन का भी बॉडी कॉपी लिखा होता है वही पोस्टरों में 5-6 लाइन में ही लिखा रहता है। उत्पाद, फर्म एवं विज्ञापन के आधार पर शीर्षक को आठ भागों में बंटा गया है : भावनात्मक, चयनात्मक, परिचयात्मक, लाभ सम्बन्धी, प्रश्नात्मक, समाचार सम्बन्धी, नियंत्रण सम्बन्धी, जिज्ञासात्मक, घोषणात्मक।[3]
- **व्यापारिक चिन्ह :** किसी भी ब्रांड का प्रतीक चिन्ह, लोगोटाइप एवं मोनोग्राम व्यापारिक चिन्ह के अंतर्गत आता है। व्यापारिक चिन्ह फर्म के उत्पाद या नाम से सम्बन्ध बनाता हुआ होना चाहिए जिससे व्यापारिक चिन्ह देखते ही लोगों को उत्पाद या फर्म के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके। यह फर्म विशेष के अर्थ को प्रतीक रूप में प्रदर्शित करता है। व्यापारिक चिन्ह में प्रतीक चिन्ह किसी ब्रांड एवं उसके नाम का प्रतीक होता है जो ब्रांड की विशेषता को संक्षेप में प्रस्स्तुत करता है। इसे देखते ही ब्रांड के बारे में पता लग जाता है कि ब्रांड विशेषतः किस उत्पाद से सम्बंधित है। लोगोटाइप किसी व्यक्ति, फर्म या ब्रांड के नाम को एक विशेष प्रकार से लिखा जाता है जो उसके पहचान स्वरूप कार्य

करता हैं। लोगोटाइप प्रत्येक विज्ञापन माध्यम में एक तरह से ही लिखा जाता हैं। मोनोग्राम किसी ब्रांड के नाम से चुने हुए अक्षरों के संयोजन से बनाया जाता हैं।

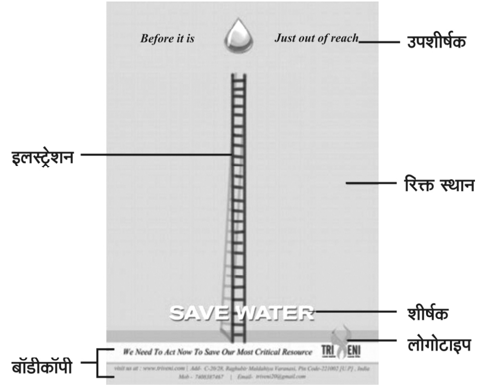

चित्र संख्या-1 : प्रिंट विज्ञापन के मूलभूत तत्व

- **रिक्त स्थान :** उपरोक्त तत्वों के साथ-साथ विज्ञापन में रिक्त स्थान का भी बहुत महत्व होता हैं। विज्ञापन सृजन में सभी तत्वों को संयोजित करते समय संतुलन का ध्यान रखते हुए कुछ रिक्त स्थान भी छोड़ने चाहिए जिनसे बाकि तत्व उभर कर स्पष्टता से सामने प्रस्तुत होते हैं। प्रत्येक तत्व के बीच में रिक्त स्थान होना चाहिए जिससे उपभोक्ता शीर्षक को आसानी से पढ़ सके एवं इलस्ट्रेशन में निहित सन्देश को समझ सके।[4]

प्रिंट विज्ञापन की सृजन यात्रा :

मुद्रित विज्ञापन की सृजन यात्रा का क्रमिक विकास एवं दृश्य रूप प्रदान करने के विभिन्न विकल्पों का सहारा लिया जाता है यह विकल्प ही ले-आउट होते हैं। यह प्रिंट विज्ञापन की एक चित्रित या अंकीय प्रतिरूपण होता है। प्रिंट विज्ञापन के पुनरुत्पादित एवं विभिन्न माध्यमें में संप्रेषित होने से पूर्व सृजन की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता हैं, इन्ही प्रक्रियाओं के फलस्वरूप विज्ञापन की एक समुचित डिज़ाइन तैयार होती हैं। प्रिंट विज्ञापन प्रथम दृष्टया ही उपभोक्ता को आकर्षित करे इसके लिए समाज, समाज की परिस्थितियाँ, उपभोक्ता मनोविज्ञान, समय-काल आदि का विश्लेषण करना होता है जैसे जल संरक्षण कैम्पेन हेतु विज्ञापन तैयार करना हो तो पहले सभी परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा उसके उपरान्त ही डिज़ाइन प्रक्रिया शुरू की जाएगी (चित्र संख्या-2)। विज्ञापन सृजन की विभिन्न प्रक्रिया विभिन्न विभाग द्वारा की जाती है जैसे गीतकार, लेखक,

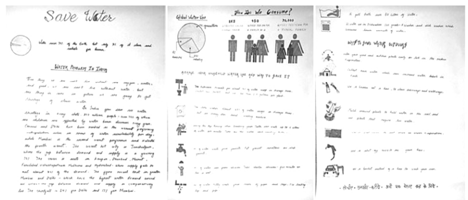

चित्र संख्या-2 : जल संरक्षण कैम्पेन हेतु विश्लेषणात्मक अध्ययन

अभिकल्पनाकर, कॉपी लेखक, फोटोग्राफर, कला निदेशक आदि। विज्ञापन सृजन व्यसायिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए किया जाता हैं इसलिए पूरी टीम द्वारा उपभोक्ता मनोविज्ञान एवं उत्पाद के मध्य व्यसायिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। प्रिंट विज्ञापन की सृजन प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व उपभोक्ताओं की समस्या का सर्वेक्षण किया जाता है उसके उपरान्त उनके समाधान को ध्यान में रखते हुए डिज़ाइन की रुपरेखा शुरू की जाती है। विज्ञापन सृजन से पूर्व माध्यमों का भी विश्लेषण कर लेना चाहिए क्योंकि प्रत्येक माध्यम के अनुसार विन्यास भी अलग-अलग बनेंगे प्रिंट विज्ञापन की सृजन प्रक्रिया में उपभोक्ता मनोविज्ञान, बजट, माध्यम, समय-काल, उपभोक्ता मांग, स्थान आदि के साथ-साथ मुद्रण माध्यम, मुद्रण तकनीक एवं मुद्रित कागज का भी विशेष ध्यान रखा जाता हैं।

- **रचना कार्य :** रचना कार्य को सम्पन्न करने हेतु टीम होती है जिनमे कला निदेशक एवं कॉपी लेखक आदि मिलकर सृजन योजनाओं के आधार पर डिज़ाइन की संकल्पना तैयार

करते हैं। जैसा कि नाम से ही ज्ञात है कला निदेशक दृश्यगत डिज़ाइन का संयोजन देखता है एवं कॉपी लेखक लिखित सामग्रियों का सृजन करता है। इसमें सृजन टीम को विज्ञापन के दृश्यगत एवं लिखित सामग्री के लिए यह निश्चित करना होता है कि यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष होगी। प्रत्यक्ष विज्ञापन प्रस्ताव में उपभोक्ता तक उत्पाद की जानकारी स्पष्ट तरीके से एवं एकसाथ सारी जानकारी प्रेषित की जाती है, यह विधि ज्यादा इस्तेमाल की जाती हैं। अप्रत्यक्ष विज्ञापन प्रस्ताव में उपभोक्ता समाज तक विभिन्न कड़ियों में सूचनाये सम्प्रेषित की जाती है। इस विज्ञापन प्रस्ताव द्वारा उपभोक्ताओं में जिज्ञासा उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है। कला निदेशक द्वारा अप्रत्यक्ष विज्ञापन की कड़ी में सबसे पहले बार-बार ब्रांड या फर्म के व्यापारिक चिन्ह को उपभोक्ता के मनः स्थिति में स्थापित किया जाता हैं। कला निदेशक द्वारा प्रिंट विज्ञापन के मुद्रण हेतु क्रमबद्ध चरण में आगे दृश्यकरण की प्रक्रिया आरम्भ की जाती है जिससे ले-आउट का निर्माण करके विजुअलाईजेशन को रूप दिया जाता हैं।[5]

- **विजुअलाईज़ेशन :** विज्ञापन डिज़ाइन के स्वरूपों की कल्पना को दृश्य रूप में परिवर्तित करने हेतु डिज़ाइनर द्वारा विचारों का विश्लेषण प्रारम्भ किया जाता हैं, इन दृश्य रूपों की कल्पना करना विजुअलाईज़ेशन कहलाता है। विजुअलाईज़ेशन में विज्ञापन डिज़ाइन का सृजन कैसा करना है इसके सन्दर्भ में डिज़ाइनर दिमाग में मंथन करता है, दिमागी मंथन को इलस्ट्रेशन व शीर्षक के साथ कैसे सम्प्रेषित किया जाये इसका विचार किया जाता है। डिज़ाइनर द्वारा यह मंथन उपभोक्ता विश्लेषण एवं उसके स्वयं के अनुभव के आधार पर किया जाता हैं। सामान्य वस्तु को भी सृजनात्मक सौन्दर्य से भरपूर बनाना कुशल कलाकार या डिज़ाइनर की खासियत होती है। एक सामान्य कलाकृति कलाकार की स्वयं की अभिव्यक्ति होती है केवल सौन्दर्य आनंद के लिए सृजित किया जाता है न कि आवश्यकता की पूर्ति के लिए[6] परन्तु वही विज्ञापन कला उपभोक्ता समाज के लिए सृजित की जाती है जिसमें उपभोक्ता की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए डिज़ाइन बनाया जाता हैं। डिज़ाइनर डिज़ाइन को आवश्यकताओं के साथ सौन्दर्यात्मकता प्रदान करता हैं जिससे डिज़ाइन ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन जाती हैं। डिज़ाइनर अवलोकन क्षमता में भी पारंगत होना चाहिए जिसके फलस्वरूप डिज़ाइन में बारीक़ से बारीक़ पक्ष को स्पष्ट व प्रभावी स्वरूप में प्रदर्शित कर सके। विज्ञापन कला में जिन तत्वों का इस्तेमाल डिज़ाइन में किया जाता है उन सभी में अन्तर्निहित भाावार्थ होता है, यह तभी स्पष्ट रूप से उपभोक्ता समाज तक संचारित हो सकता है जब डिज़ाइनर द्वारा बारीकी से अवलोकन के बाद सभी तत्व को संयोजित किया हो। विजुअलाईज़ेशन के ही तहत यह भी निश्चित कर लिया जाता है कि विज्ञापन सम्प्रेषित करने के लिए किन माध्यमों का प्रयोग किया जाना है डिज़ाइन भी उसी के अनुरूप बनाई जाती है जैसे पत्रिका में लिखित सन्देश ज्यादा एवं पत्रिका के अनुसार साप्ताहिक या मासिक होते हैं, साथ ही साथ ऐसे इलस्ट्रेशन प्रयोग किये जाते हैं जिनकी गुणवत्ता अच्छी हो क्योंकि पत्रिका के मुद्रण में इस्तेमाल होने वाला कागज महंगा होता हैं। वहीं समाचार पत्र का जीवन एक दिन का होता है इनमे कम लिखित सन्देश एवं इलस्ट्रेशन भी ऐसे प्रयोग किये जाते हैं जो स्पष्ट दिखे क्योंकि इनके कागज की गुणवत्ता उतनी अच्छी नहीं होती है। इसीि प्रक्रिया के तहत मुद्रित मशीन एवं तकनीक का भी निर्धारण किया जाता है। माध्यम के अनुसार

मुद्रण तकनीक जैसे- अक्षर मुद्रण, स्क्रीन मुद्रण, ऑफसेट, लेज़र मुद्रण, लिथोग्राफी, होलोग्राम, फ्लैक्सोग्राफी आदि का चयन किया जाता है। इन सारे पक्षों की कल्पना स्वरूप में मंथन करके खाको में विकसित किया जाता है।[7]

- **खाका या ले-आउट :** विज्ञापन के मूलभुत तत्वों को किसी विशेष माध्यम हेतु तैयार करने के लिए एक स्थान पर संयोजित करना ले-आउट कहलाता है। खाका शब्द का विशेष रूप से प्रयोग समाचार-पत्र, पत्रिका एवं बाह्य विज्ञापन के लिए किया जाता हैं। सम्पूर्ण डिज़ाइन बनने से पूर्व कई तरह के प्रयोग कर-कर के विभिन्न खाके तैयार किये जाते हैं उनमे से सबसे उचित एवं संयोजित खाके का चुनाव करके डिज़ाइन का विस्तृत रूप दिया जाता हैं। खाका में इलस्ट्रेशन एवं सहायक इलस्ट्रेशन का आकार, स्थान, रंग, शीर्षक का फॉण्ट, आकार, स्थान, उपशीर्षक का आकार, फॉण्ट, स्थान निर्धारण, रिक्त स्थान, डिज़ाइन की सीमा रेखा, बॉडीकॉपी द्वारा घेरा गया स्थान, आकार, सभी तत्वों का रंग आदि के साथ-साथ मुद्रित होने के उपरान्त सटीक होगा या नही, रंग कैसा आएगा, सम्पूर्ण डिज़ाइन मुद्रित होने के पश्चात कैसा दिखेगा आदि पक्षों का बारीकी से अवलोकन किया जाता है। इन्ही अवलोकन के पश्चात ले-आउट का स्वरूप तय किया जाता है।[8] डिज़ाइन सृजित करते समय सभी तत्व उत्पाद या सेवा से सम्बन्धित होने चाहिए, कभी भी डिज़ाइन के माध्यम से उपभोक्ता तक गलत या झूठे सन्देश सम्प्रेषित नहीं करना चाहिए ऐसा होने पर उपभोक्ता समाज सदैव के लिए उत्पाद से विमुख हो जाता है। अतः डिज़ाइन में प्रयुक्त प्रत्येक तत्व सत्य से सम्बन्धित एवं लाभदायक होना चाहिए।[9]

ले-आउट निर्माण की प्रक्रिया को निम्न चरणों में वर्गीकृत किया गया हैं :

थम्बनेल्स : थम्बनेल्स कल्पना में उत्पन्न विज्ञापन डिज़ाइन सम्बन्धित विचारों को रूप देने का कार्य करता है। यह किसी भी डिज़ाइन का आधार रूप होता है, जो छोटे-छोटे स्केच के रूप में निर्मित की जाती हैं। इन्ही में से बेहतरीन डिज़ाइन को चयनित करके विस्तृत डिज़ाइन की ओर बढ़ा जाता है। लघु स्केच में संयोजन, विभिन्न इलस्ट्रेशन, संतुलन, पंक्ति-योजना, टाइप पंक्तियोजना आदि को अभिव्यक्त किया जाता है। इसमें डिज़ाइनर की विचार क्षमता एवं विषय कुशलता का पता लगता हैं।[10] थम्बनेल्स में जितने प्रकार के विचार होते हैं सभी को स्केच रूप में बनाया जाता हैं जिससे उत्तम विचार का चयन किया जा सके जैसे जल संरक्षण कैम्पेन हेतु लोगो एवं इलस्ट्रेशन को कई रूपों में बना कर थम्बनेल्स तैयार करना (चित्र संख्या-3)। इन स्केच में सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक रूप में तत्वों को प्रदर्शित किया जाता है उदहारण स्वरूप लिखित सामग्री जैसे बॉडी कॉपी को सीधी रेखा खींच कर उसके स्थान का निर्धारण किया जाता है जिसे कम्पिंग नाम से जाना जाता हैं।[11]

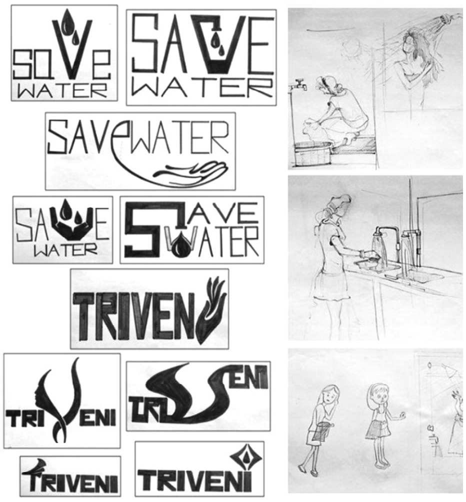

(क) (ख)

चित्र संख्या-3 : जल संरक्षण कैम्पेन हेतु निर्मित थम्बनेल्स (क) लोगो (ख) इलस्ट्रेशन

रफ ले-आउट : यह थम्बनेल्स से आगे की प्रक्रिया है जिसे निश्चित किये हुए वास्तविक डिज़ाइन के आकार में बनाया जाता हैं। थम्बनेल्स में बनाये हुए स्केच में से ही एक या दो डिज़ाइन को चयनित करके आगे की प्रक्रिया शुरू की जाती हैं। रफ ले-आउट में चुने हुए डिज़ाइन को विभिन्न प्रकार से संयोजित करके तत्वों का स्थान परिवर्तित कर-कर के अवलोकन किया जाता हैं कि कौन सा सबसे आकर्षित एवं उद्देश्यपूरक हैं जैसे जल संरक्षण हेतु निर्मित थम्बनेल्स में से कुछ लोगो एवं इलस्ट्रेशन को चयनित कर कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर द्वारा सम्पूर्ण रूप में निर्मित किया गया जिससे आगे की प्रक्रिया हेतु उचित डिज़ाइन का चयन किया जा सके (चित्र संख्या-4)। समकालीन दौर में रफ ले-आउट कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के द्वारा बनाया जाता हैं परन्तु परंपरागत विधि के अनुसार ट्रेशिंग पेपर के ऊपर इसे बनाया जाता था। इस ले-आउट में सभी तत्वों जैसे इलस्ट्रेशन, फॉण्ट आदि को उचित, स्पष्ट एवं वास्तविक डिज़ाइन के आकार में रखा जाता हैं। जिस फॉण्ट का चयन किया गया है उसे वास्तविक रूप में सृजित किया जाता है। बॉडी कॉपी को प्रतीक रूप में प्रदर्शित किया जाता है जिसे ग्रिकिंग कहा जाता हैं। सभी तत्वों के संयोजन के बाद रफ ले-आउट के दो-तीन डिज़ाइनो को विज्ञापनकर्ता के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता हैं।

(क) (ख)

चित्र संख्या-4 : जल संरक्षण कैम्पेन हेतु निर्मित कच्चा खाका (क) लोगो (ख) इलस्ट्रेशन

विस्तृत खाका : विज्ञापनकर्ता द्वारा स्वीकृति प्राप्त करके सर्वांग डिज़ाइन के सृजन का कार्य प्रारम्भ किया जाता हैं समकालीन दौर में यह कार्य कम्प्यूटर द्वारा किया जाता हैं। स्वीकृत डिज़ाइन के लिए फोटोग्राफ एवं इलस्ट्रेशन आदि का निमार्ण आरम्भ किया जाता हैं। विस्तृत ले-आउट में इलस्ट्रेशन, शीर्षक, उपशीर्षक, सहायक इलस्ट्रेशन, बॉडीकॉपी, लोगो आदि को उनके वास्तविक डिज़ाइन के रंग, आकार, स्थान पर व्यवस्थित किया जाता हैं। सम्पूर्ण डिज़ाइन तैयार होने के बाद मुद्रित करके पुनः विज्ञापनकर्ता की स्वीकृति के लिए भेजा जाता हैं।[12]

यांत्रिक कला कार्य : विज्ञापनकर्ता द्वारा कुछ परिवर्तन एवं स्वीकृति प्राप्त कर लेने के उपरांत कला निदेशक द्वारा सम्पूर्ण डिज़ाइन को वास्तविक रूप प्रदान करने का कार्य प्रारम्भ किया जाता है, यह कार्य डिज़ाइनर द्वारा विभिन्न सॉफ्टवेयर जैसे फोटोशॉप, कोरल-ड्रा, इलस्ट्रेटर आदि से किया जाता हैं। उदाहणार्थ जल संरक्षण के कैम्पेन हेतु विस्तृत खाका के उपरांत सुनिश्चित हुई डिज़ाइन को फोटोशॉप सॉफ्टवेयर द्वारा अंतिम रूप प्रदान किया गया हैं (चित्र संख्या- 5)। डिज़ाइन के सम्पूर्ण स्वरूप की निर्मिती के उपरांत अंतिम स्वीकृति हेतु विज्ञापनकर्ता के पास भेजा जाता हैं, स्वीकृति प्राप्त होने के उपरांत मुद्रण हेतु भेजा जाता हैं।[13]

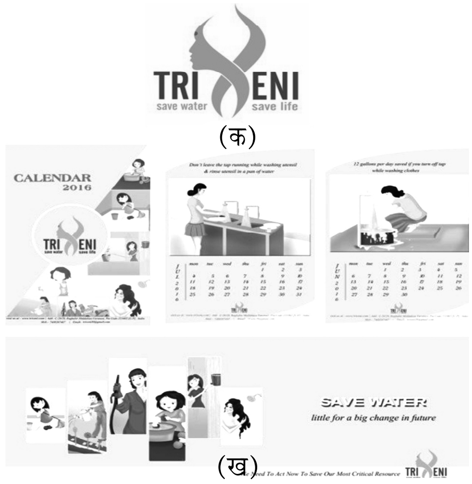

चित्र संख्या-5 : जल संरक्षण कैम्पेन हेतु निर्मित सुनिश्चित डिज़ाइन (क) लोगो (ख) कैलेंडर व बैनर डिज़ाइन

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. यादव, नरेन्द्र सिंह, (2010), ग्राफ़िक डिज़ाइन, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, द्वितीय संस्करण, पृ०-121
2. देवी, सुषमा, ''आधुनिक युग में विज्ञापन निर्माण प्रक्रिया'', *International Journal of Advanced Research and Development*, 2, 5, September 2017, pp 849, www.advancedjournal.com.
3. Admin. "50 Best Indian Brand Slogans." Gracia Marcom, 27 Jan. 2018, graciamarcom.com/blog/50-best-indian-brand-slogans/. Accessed 4 June. 2024.
4. देवी, सुषमा, ''आधुनिक युग में विज्ञापन निर्माण प्रक्रिया'', International Journal of Advanced Research and Development, 2, 5, September 2017, pp 849-850, www.advancedjournal.com.
5. यादव, नरेन्द्र सिंह, (2010), ग्राफ़िक डिज़ाइन, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, द्वितीय संस्करण, पृ०106
6. वाजपेयी, डॉ० राजेंद्र, (2012), सौन्दर्य *Aesthetic Philosophy of Beauty and Arts.* भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ०-11
7. Wigan, Mark. (2006). *Thinking Visually.* AVA Publishing SA, pp 14.
8. देवी, सुषमा, ''आधुनिक युग में विज्ञापन निर्माण प्रक्रिया'', International Journal of Advanced Research and Development, 2, 5, September 2017, pp 850, www.advancedjournal.com.
9. मालवीय, कृष्ण कुमार, (2007), आधुनिक विज्ञापन, इलाहबाद : साहित्य संगम, पृ० 96-97
10. Wigan, Mark. (2006). *Thinking Visually.* AVA Publishing SA, pp 28
11. यादव, नरेन्द्र सिंह, (2010). ग्राफ़िक डिज़ाइन, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, द्वितीय संस्करण, पृ०-111
12. मालवीय, कृष्ण कुमार, (2007), आधुनिक विज्ञापन, इलाहबाद : साहित्य संगम, पृ०-7
13. यादव, नरेन्द्र सिंह, (2010), ग्राफ़िक डिज़ाइन, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, द्वितीय संस्करण, पृ०-112

चित्र स्रोत :

चित्र संख्या 1 से 5 तक सारे चित्र मेरे (डॉ० चारू यादव) द्वारा सृजित किये गए हैं।

छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियाँ : लोकपर्व एवं पारंपरिक पूजा-पद्धति

डॉ. चुन्नीलाल
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ जनजातियाँ शब्द 'TRIBEs' का हिंदी पर्याय है, जो भारतीय संविधान के लागू होने के बाद प्रचलन मे आया। जनजातियाँ संबंधित प्रावधान अनुच्छेद 342/धारा 20 में उल्लेखित है। छत्तीसगढ़ में जनजातियों का नाम मध्यप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 के तहत प्राप्त हुआ है। जनगणना 2011 के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2.55 करोड़ है, जिसके अनुसार छत्तीसगढ़ में 42 प्रकार की जनजातियाँ निवासरत हैं, जिसकी 161 उपसमूह है। संख्या के आधार पर सबसे बड़ी जनजाति गोड (42.98 लाख) है, जिसकी 41 उपजातियाँ है। छत्तीसगढ़ के जनजातियों की जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का 6.2 प्रतिशत है, साथ ही छत्तीसगढ़ में जनजातियों की जनसंख्या राज्य की कुल जनसंख्या का 30.62 प्रतिशत है। इसमें विशेष पिछड़ी जनजातियों की संख्या-7 है, जिनमें केंद्र सरकार की 5 (अबूझमाड़िया, बैगा, कमार, बिरहोर, पहाड़ी कोरवा) एवं राज्य की 2 (भुंजिया एवं पंडोप) है। "जनगणना 2011 के अनुसार छत्तीसगढ़ में निवासरत कुल 42 जनजातियों की जनसंख्या 78,22,902 है, जिसमें पुरुष की संख्या 38,73,191 एवं स्त्रियों की संख्या 39,49,711 है। जनजातियों में साक्षरता दर 50.11 प्रतिशत है, जिसमें पुरुषों की साक्षरता दर 58.85 प्रतिशत एवं स्त्रियों की साक्षरता दर 41.38 प्रतिशत है।"[1] यही मूल कारण है कि छत्तीसगढ़ की संस्कृति आदिवासी संस्कृति एवं लोक-संस्कृति का मिला-जुला रूप है।

जनजाति शब्द को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार परिभाषित किया है :

गिलिन के अनुसार : "जनजाति किसी भी ऐसे स्थानीय समुदायों के समूह को कहा जाता है, जो एक सामान्य भू-भाग पर निवास करता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य सांस्कृतिक व्यवहार करता हो।"[2]

डी. एन. मजूमदार के अनुसार : "जनजाति को परिवारों का संकलन कहा जाता है, जिसका अपना एक सामान्य नाम होता है जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते हैं, विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में कुछ निषेधों का पालन करते है। तथा एक सुनियोजित आदान-प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं।"[3]

इसी प्रकार मानवशास्त्र की एक पुस्तक 'नोट्स एण्ड फोकरिज़' में जनजाति को एक ऐसा समुदाय बताया गया है जो राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शृंखलाबद्ध स्वायत्त शासन चला रहा हो।"[4]

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि जनजातियों का अपना एक विशेष नाम होता है, पारिवारिक संगठनात्मक इकाई होती है, एक

सुनिश्चित भू-भाग में निवासरत है, उनकी अपनी विशेष बोली/भाषा, वेशभूषा, संस्कृति होती है, जिसमें सामान्यतः मुखिया ही सर्वोच्च होता है। प्रत्येक जनजाति समुदाय की अपनी लोक-मान्यताएँ, पर्व, देवी-देवता एवं पूजन-पद्धति है, जिसे वे पूर्ण श्रद्धा के साथ आयोजित करते हैं। छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाए रखने में जनजाति समुदाय की भूमिका महत्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ के जनजातियों की प्रमुख पूजा-पद्धति एवं लोकपर्व के विविध आयाम उल्लेखित हैं :

- **सरहुल पर्व :**

सरहुल का शब्दिक अर्थ है : 'साल वृक्ष की पूजा'। सरहुल पर्व धरती माता को समर्पित है। यह प्रकृति-पूजन का पर्व है, जिसे प्रमुखता से उराँव जनजाति के लोग चैत्र पूर्णिमा के दिन मनाते हैं। मुख्यतः अप्रैल माह में साल वृक्ष में फूल आने पर यह पर्व आयोजित किया जाता है। इस पर्व में प्रतिकात्मक रूप से सूर्यदेव एवं धरती माता का विवाह रचाया जाता है। पूजा के विधि-विधान में मुर्गे की बलि देने की प्रथा है। इस पर्व के संदर्भ में गीतेश अमरोहित लिखते हैं- ''इस त्यौहार में गाँव के बाहर साल वृक्ष के झुड के आस-पास की जमीन को गोबर से लीप कर पूजा-अर्चना की जाती है। घरों में साल वृक्ष के पत्ते लटकाए जाते हैं। इस अवसर पर प्रतीकात्मक रूप से धरती 'आबा' मतलब धरती माँ व सूर्य का विवाह कराया जाता है। प्रसाद के रूप में साल वृक्ष के पत्ते ही दिए जाते हैं, जिसे गाँव वाले कानों में खोंच लेते हैं। शोभा यात्रा के बाद सामूहिक भोज की भी प्रथा है।''[5] इस प्रकार यह पर्व जनजातियों के प्रकृति-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है।

बहुतायत में उराँव जनजाति के लोग जो छत्तीसगढ़ राज्य के जशपुर और सरगुजा जिले में निवास करते हैं। उनके लिए यह सरहुल पर्व हर्ष-उल्लास का विषय है। प्रकृति ने जो उपकार किए हैं, उसके प्रति उद्गार का पर्व है। इस पर्व में पूजा-पद्धति के साथ ही नृत्य करने की भी परंपरा है। उराँव जनजाति के लोगों का विश्वास है कि साल वृक्ष में महादेव जी निवास करते हैं इसलिए ये लोग साल वृक्ष की पूजा महादेव और अपने देवतुल्य पितरों के आशीर्वाद के लिए अथवा सुख-शांति व समृद्धि की कामना के लिए चैत्र माह में इस पर्व को मनाते हैं और इसी चैत्र पूर्णिमा के रात्रिकालीन अवसर में नृत्य-महोत्सव का आयोजन करते हैं। जनजाति समुदाय का बैगा सरना वृक्ष की पूजा करके घड़े में पानी रखकर सरना फूल की सहायता से लोगों के ऊपर छिड़क कर शुद्धिकरण करता है तत्पश्चात् सरहुल नृत्य करते हैं। इनके नृत्य-गान का शुभारंभ देवी-देवताओं की स्तुति-वंदन से होता है, नृत्य-संगीत द्वारा मनोविनोद करते हैं। यह पूजा का आदिम रूप जो आज भी इसी रूप में परंपरागत चला आ रहा है। मुख्यतः यह पर्व जनजातियों के प्रकृति-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसके माध्यम से गाँव की रक्षा और खुशहाली के लिए प्रार्थना की जाती है। साल वृक्ष न काटने का संदेश भी दिया जाता है।

- **बाली परब :**

इस पर्व को विशेषकर हल्बा और भतरा जनजाति के लोग भीमादेव को प्रसन्न करने के लिए मनाते हैं और इस पर्व को मनाने की कोई निश्चित तिथि नहीं है। यह लगातार तीन माह तक आयोजित होता है। इस पर्व में सेमल का स्तम्भ स्थापित किया जाता है और रात-दिन नाच-गान आयोजित होता है। पुरुषों एवं महिलाओं पर देवी-देवता सवार होते हैं। आयोजन को जब पंद्रह दिन पूरे हो जाते हैं, तब आरूढ़ देवी-देवताओं को बाजे-गाजे के साथ आस-पास के गाँव में घुमाने ले जाया जाता है। आरूढ़ देवी-देवताओं को लोग पूर्ण श्रद्धा से अन्न भेंट करते हैं, भेंट में मिले कुछ अन्न को मिट्टी के पात्रों में बो दिया जाता है। बोने के बाद उसमें हल्दी पानी का छिड़काव करते रहते हैं, जिससे पौधे का रंग मनभावन लगे। उगाए गए इन्हीं सांस्कृतिक स्वरूप पौधों को बस्तर के वनवासी अंचल में बाली कहते हैं। इसी से बाली

परब का नामकरण हुआ है।

बाली परब का आकर्षक आयोजन, जिसमें भीमादेव का विवाह कोंदनी और रैला देवी के साथ संपन्न कराया जाता है। बाली परब के अंत में बाली बाज़ार होता है, जिसमें विधि-विधान से उपजे हुए बाली पौधे को बाज़ार में बिखेर दिया जाता है, जिसे ग्रामीण आमजन एक-दूसरे को आपस में देकर बाली फूल का बंधना बध लेते हैं। बाली बाज़ार के समापन बाद एकत्रित पूजन-सामग्री, सेमल की टहनी अन्य सामग्री को नदी में ले जाकर विसर्जित कर आते हैं साथ ही इस पर्व में धन की आवश्यकता होती है, जिसे समस्त जनजाति समूह चंदा एकत्रित कर मनाते हैं। अंत में पूजा के उपरांत सामूहिक भोजन करते हैं। इस पर्व की विशेषता पर गीतेश कुमार अमरोहित लिखते हैं- ''इसे ग्राम के भीमादेव गुड़ी परिसर में ही मनाया जाता है। इस पर्व में दिन-रात नाच-गान होता है। देव-देवियाँ आदिवासियों में चढ़ते हैं। देव-देवियाँ जिन पर चढ़ती है, उसमें देव नाचते हैं तो देवियाँ काँटों में झूलती रहती हैं। इस पर्व में सेमल का एक विशेष स्तंभ स्थापित किया जाता है।''[6] साथ ही लोक-विश्वास यह है कि बाली परब मनाने से अन्न-धन और पशुधन की बढ़ोतरी होगी तथा व्याधि संकट आदि दूर होंगे।

- **माटी तिहार :**

यह पर्व बस्तर अंचल में प्रतिवर्ष चैत्र माह में मनाया जाता है। इस पर्व में मिट्टी के वास्तविक स्वरूप की पूजा-अर्चना की जाती है। माटी देवगुड़ी के परिसर में कुँए की तरह एक छोटा-सा गड्ढा खोदकर उसमें सियाड़ी से बँधी बीजधान मिट्टी अर्पित किया जाता है और प्रसाद के रूप में बीजधान वितरण किया जाता है। इस पर्व को बीज पुटनी भी कहा जाता है। यह बस्तर अंचल का प्रमुख पर्व है, जो सीधे तौर पर प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण धरती से जुड़ी हुई है। पूरे छत्तीसगढ़ अंचल में मिट्टी को जननी एवं पालन-पोषण करने वाली माता का प्रतिरूप माना गया है, जो केवल मनुष्य ही नहीं संपूर्ण जीव-जंतु के जीवन को संरक्षित करती है। हमारे जीवन से जुड़े मूलभूत सुविधाओं की पूर्ति इसी मिट्टी से होती है और इसी मिट्टी को देवतुल्य मानकर बस्तर निवासी हर्ष-उल्लास से इसकी पूजा करते हैं। इस पर्व के आयोजन की कोई एक निश्चित तिथि नहीं है, किंतु ''प्रति वर्ष चैत्र मास में मिट्टी के वास्तविक स्वरूप की पूजा कर मनाया जाने वाला त्यौहार है। माटी देवगुड़ी के परिसर में कुँए की तरह एक छोटे से गड्ढे में सियाड़ी रस्सी से बँधी बीजधान मिट्टी को अर्पित किया जाता है। प्रसाद के रूप में बीज धान ही लिया जाता है। कई जगहों पर इस पर्व को बीज पुटनी भी कहते हैं।''[7]

बस्तर क्षेत्र के प्रत्येक गाँव में एक निश्चित स्थान माटी देवगुड़ी पर्व आयोजित करने के लिए होता है साथ ही इसके पुजारी को माटी पुजारी कहा जाता है। इस पर्व को विधिवत संपन्न कराने के लिए गाँव के मुखिया, कोटवार, पटेल, आमजन सभी मिलकर माटी पुजारी के पास जाते हैं और एक निश्चित दिन तय कर यह पर्व मनाते हैं। तय तिथि में माटी पुजारी सूर्योदय से पूर्व उठकर स्नान आदि क्रियाकलाप से निर्वरीत होकर पूजा संबंधित सामग्री लेकर देवगुड़ी परिसर में पहुँचता है, वहाँ जाकर गाँव के समस्त जन को आमंत्रित करता है। माटीगुड़ी परिसर में महिलाओं का प्रवेश निषेध रहता है, इसमें केवल पुरुष वर्ग ही भाग लेते हैं। लाला जगदलपुरी के अनुसार- ''माटी पुजारी निश्चित तिथि को सूर्योदय से पूर्व उठकर और तैयार होकर माटी देवगुड़ी पहुँच जाता है और पूजा का दीपक जलाकर अपशब्दों का उच्चारण करता बैठा रहता है। पुजारी उस दिन उपवास साधना का पालन करता है। थोड़ी ही देर बाद माटी देवगुड़ी की शरण में ग्रामवासी भी घर-घर से पहुँचते हैं। इस अवसर पर ग्रामवासी भी अपशब्दों का उच्चारण करते हैं। माटी देवगुड़ी में स्त्रियों को प्रवेश नहीं दिया जाता है।''[8] साथ ही इस पर्व में प्रत्येक घर से एक

पुरुष पलाश के पत्ते का दोना बनाकर उसमें धान के बीच, चावल, दाल, शराब को देवगुड़ी पूजा स्थल में ले जाकर रखते हैं। पुजारी विधिवत पूजन कार्यक्रम को संपन्न करता है, पूजन उपरांत भाव-उल्लास से परिपूर्ण लोग एक-दूसरे को कीचड़ में धकेलते हैं, मस्तक पर मिट्टी का तिलक लगाते हैं तत्पश्चात् माटी देवगुड़ी के पुजारी को ससम्मान श्रद्धापूर्वक उनके गृह निवास तक लोग छोड़ने जाते हैं।

सार शब्दों में कहें तो यह धरती की गोद में पल रही प्रकृतिक और हमारे भरण-पोषण करने वाली धरती (मिट्टी) की पूजा है, जिसमें सभी वर्ग के लोग, जाति, संप्रदाय, धर्म की भावनाओं से ऊपर उठकर एक साथ एक जगह पर एकत्रित होकर विधि-विधान से पूजा संपन्न करते हैं और भाईचारा, प्रेम एवं समन्वय का संदेश देते हैं।

- **ककसाड़ पर्व :**

माटी पर्व के बाद अबूझमाड़ कुटुंब गर्मी और बरसात के मौसम में प्रतिवर्ष ककसाड़ पर्व मनाते हैं। इस पर्व में दोरला एवं डंडामी माड़िया जनजाति के लोग भी सम्मिलित होते हैं। इस पर्व में मुख्य रूप से अच्छी फसल एक गाँव के सुखमय जीवन के लिए 'गोत्रदेव' की पूजा-याचना की जाती है। यह पर्व विशेष रूप से 'गोत्रदेव' पूजन का पर्व है। इस पर्व में नृत्य समारोह का भी आयोजन होता है। गीतेश अमरोहित के अनुसार- ''इसे वैसे तो अबूझमाड़ जनजाति ही मनाती है, लेकिन दोरला और माड़िया जनजाति के लोग भी इस त्यौहार में शामिल रहते हैं। इस त्यौहार को मनाने का प्रमुख ध्येय अच्छी फसल के लिए 'गोत्रदेव; से मनौती माँगना है।''[9]

आदिवासी समुदाय के लोगों के अनुसार ककसाड़ का हिंदी अर्थ देव-क्रीड़ा है। यह एक सामूहिक पूजा-पद्धति है। इस पर्व में पूजा के साथ सामूहिक नृत्य-गान भी होता है। पुरुष वर्ग ढोल बजाते हुए नृत्य करते हैं और महिलाएँ रिलो गीत गाती हुइ नृत्य करती है साथ ही सिरहो के ऊपर देवता सवार होकर मंदिर परिसर में खेलते हैं। इसी संदर्भ में शिवकुमार पांडेय लिखते हैं- ''यह एक तरह से उत्साहित पर्व है, जिसे देखने के लिए आस-पास के गाँव वाले बड़ी तादाद में उपस्थित होते हैं। लड़के- लड़कियों की टोली नृत्य करते हैं, पुरुष लोग ढोल बजाते हुए नाचते हैं और महिलाएँ हाथ डाले गले में बाँह डाले रिलो नृत्य एवं गीत का प्रदर्शन करते हैं, जो कि देव अराधना का गीत है। उन गीतों के माध्यम से देवी-देवताओं के जस का वर्णन किया जाता है। मधुरता के प्रसार के लिए विशेष वाद्य-यंत्र नगाड़ा और मोहरी का प्रयोग किया जाता है साथ ही इस पर्व के आयोजन के अवसर में बजने वाले मांदर की थाप से लोगों के ऊपर देवता सवार होते हैं।''[10] साथ ही दूसरे पहर सुबह जो कि ककसाड़ पर्व का महत्वपूर्ण दिन होता है, नृत्यगान समाप्त होने के बाद मुख्य देवता के साथ आगत देवताओं की पूजा होती है और गाँव में घुमाया जाता है। प्रत्येक घर के चौखट के सामने गोबर से लिपाई किया जाता है, जिसे शुद्धिकरण माना जाता है। देवता को गाँव के प्रत्येक घर ले जाया जाता है साथ ही विधिवत पूजन-संस्कार होता है तत्पश्चात् सामूहिक भोजन का व्यवहार होता है। तीन दिनों तक निरंतर ककसाड़ का यह पर्व चलता है, तीसरा दिन अंतिम रस्म देवताओं की ससम्मान विदाई का होता है, जिसमें पशु बलि देने की प्रथा है- ''यह देवताओं की बलि का दिन होता है। परगना के लोग अपने मंडादेव के सम्मान में पहले से निर्धारित बलि देते हैं, इसके बाद गाँवों से आए देवों को मानने वाले बलि देते हैं। वध्य पशु पूर्व से तय होता है। बलि पशु के सिर को मंडादेव को अर्पित करके धड़ को उस गाँव के लोगों को दिया जाता है, उसे वहीं बना कर खाते हैं। दोपहर भोजन के बाद सब अपने देवताओं के साथ अपने गाँव की ओर प्रस्थान करते हैं।''[11] इस प्रकार ककसाड़ में देवताओं की वार्षिक पूजा होती है, जिसे जातरा कहा जाता है, किंतु तीन-चार

साल में आयोजित होने वाले पर्व को ही ककसाड़ कहा जाता है।

सार शब्दों में कहें तो ककसाड़ बस्तर अंचल में निवासरत आदिवासी समुदाय का स्थानीय पर्व है, जिसे सामूहिक रूप से मनाया जाता है और इस पर्व के प्रमुख देवता लिंगोपेन की पूरे विधि-विधान से पूजा कर, महिला और पुरुष वर्ग रिलो नृत्य-गान का प्रदर्शन करते हैं। इस पर्व के प्रति आदिवासी समुदाय की आस्था को देखने के लिए बड़ी संख्या में लोग उपस्थित रहते हैं।

- **चइत पर्व :**

इस पर्व को बस्तर अंचल के भतरा-ध्रुव जनजाति के लोग नववर्ष का आगमन मानकर मनाते हैं। इसे नुवाखानी पर्व भी कहा जाता है। यह पर्व उड़ीसा राज्य की संस्कृति से प्रभावित हैं, जिसे छत्तीसगढ़ के आदिवासी समुदाय सामूहिक रूप से मनाते हैं। इस पर्व का मुख्य उद्देश्य- अन्न-धन का भंडार भरा रहे, अन्न से संबंधित समस्याएँ न हो, घर गृहस्थी में सुख- शांति बनी रहे। जिसके संदर्भ में करूणेश सिंह बघेल लिखते हैं- ''बस्तर अंचल की भतरा-ध्रुर्वा आदिम जनजाति बस्तर के मध्य में केन्द्रिभूत है। यह जनजाति चैत्र मास में माँ अन्नपूर्णा जी की पूजा-अर्चना कर नया खाते हैं, जिसे 'नुवाखानी' कहा जाता है। इस अवसर पर भतरा-ध्रुर्वाआदिम समाज सामूहिक रूप से एकत्रित होकर अन्नपूर्णा देवी की पूजा करते हैं तथा यह कामना करते हैं कि हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी हमारी कोठियों को धन-धान्य से भर देना तथा प्राकृतिक आपदाओं से हमारी रक्षा करना। बैगा सिरहा बीजों को अभिमंत्रित करता है और अभिमंत्रित बीजों को पूरे गाँव में वितरित करता है। इस अभिमंत्रित बीज को प्रत्येक सदस्य अपने घर की कोठियों में पूर्व से रखे बीजों में मिश्रित करते हैं। भतरा-ध्रुर्वा आदिम समाजों में ऐसी मान्यता है कि इस अभिमंत्रित बीज से हमारे धन-धान्य की कोठी दुगुनी हो जाती है तथा घर-परिवार और समाज खुशहाल हो जाता है।''[12] इस पर्व में पूजा के साथ ही गायन-वादन और नृत्य का प्रदर्शन होता है, जिसे परब नृत्य कहा जाता है। सार शब्दों में कहें तो यह पर्व अन्नपूर्णा देवी को समर्पित है, जिससे घर में अन्न का भंडार भरा-पूरा रहे।

- **मेघनाद पर्व :**

मुख्य रूप से गोड़ एवं कोरकू जनजातियों के द्वारा फाल्गुन प्रथम पक्ष में होली के दूसरे दिन मनाया जाता है। गोड़ (आदिवासी) लोग रावण पुत्र मेघनाद को अपना आराध्य देव मानकर उनकी पूजा करते हैं। मेघनाद के प्रतीक स्वरूप पाँच खम्भ में बाँस-बल्ली की सहायता से उस पर लटक कर घूमते हैं। संजय अंलग के अनुसार- ''फाल्गुन में गोड़ आदिवासियों द्वारा यह पर्व मनाया जाता है। रावण पुत्र मेघनाद को गोड़ सर्वोच्च देवता मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं। आदिवासी मेघनाद के प्रतीक के रूप में मेघनाद खम्भ (पाँच खम्भों का) बनाते हैं, पाँचवे खम्भे में बल्ली बाँधकर, उस पर लटक कर चारों दिशाओं में घूमते हैं।''[13] यह पर्व हस्तशिल्प और साहसी खेल आदि को बढ़ावा देता है। इस पर्व के आयोजन का मुख्य उद्देश्य भगवान मेघनाथ से सुखमय जीवन के लिए मन्नत (मनौती) माँगना है। इसके लिए जानवर की बलि देने की भी प्रथा है।

- **अँमूस पर्व :**

इसे बस्तर लोक-जीवन का प्रथम पर्व भी कहा जाता है। साथ ही छत्तीसगढ़ के मैदानी हिस्सों में इसे हरेली पर्व या गेड़ी तिहार कहते हैं और बस्तर अंचल के आदिवासी-हल्बी परिवेश में अमूँस पर्व कहा जाता है। एक तरह से देखें तो यह किसानों के लिए खुशहाली का पर्व है, जिसके संदर्भ में भागेश्वर पात्र लिखते हैं- ''सावन महीने में वर्षा ऋतु के कारण खेत-खलिहान पानी से भर जाते हैं, जिससे चारों ओर वातावरण हरा-भरा हो जाता है। किसान खेत में अपने श्रम से उपजे लहलहाती फसल को देखकर फूला नहीं समाता और अपनी खुशी को त्यौहार के रूप में मनाता है।''[14]

बस्तर अंचल में एक रूढ़िगत विश्वास यह है कि श्रावन माह में जादू-टोना का प्रकोप अधिक होता है साथ ही गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत तंत्र-मंत्र साधना की शिक्षा भी इसी श्रावण अमावस्या से नागपंचमी तक सीखते-सीखाते हैं, जिसके संदर्भ में भागेश्वर पात्र लिखते हैं- ''सावन महीने में अमावस की रात्रि से टोना-टोटका से संबंधित तंत्र विद्या को सीखने की परंपरा है। इसी रात्रि से गुरु इंद्रजाल, काला जादू जैसी तांत्रिक विद्या संबंधी ज्ञान अपने शागिर्दों को देते हैं। मान्यता है कि श्रावण अमावस्या की रात को कई मंत्रों को जागृत किया जाता है। ग्रामीण वैद्य और सिरहा-गुनिया जड़ी-बूटियों, औषधियों को अमावस की रात को ही आनुष्ठानिक विधि से जोगाने की प्रक्रिया प्रारंभ करते हैं। तांत्रिक विद्या और जड़ी-बूटियों के जानकार गुरु इस विद्या को अनुयायियों को श्रावण अमावस्या की रात्रि से नागपंचमी तक सीखाते हैं।''[15]

अमूँस पर्व की सामाजिक उपयोगिता के अध्ययन अंतर्गत यह भी जानकारी प्राप्त होता है कि गाँव में निवासरत राउत जाति के चरवाहे और लोहार की भूमिका महत्वपूर्ण है। घर-परिवार एवं पशु-सुरक्षा की दृष्टि से विधिवत उपाय करते हैं, जिसके लिए प्रत्येक घर से उन्हें अन्न का उपहार दिया जाता है- ''गाँव-देहात में मवेशियों को चराने का कार्य आमतौर पर राउत जाति के चरवाहे करते हैं, जिन्हें 'धोरई' कहा जाता है। वर्षाकाल में खुरा-चपका, गलघोंटू एवं अन्य रोग चौपाये जानवरों को होते हैं। धोरई अपने औषधीय ज्ञान के आधार पर इनका उपचार भी कर लेता है। अँमूस तिहार के दिन प्रातःकाल भेलवापान में सतावरी और रसना जड़ी को कुमी (स्थानीय वनस्पति) घर के मुख्य दरवाजे के चौखट के ऊपरी हिस्से में बाँध देता है।लोहार प्रातःकाल गाँव के सभी घरों के चौखट में दुर्गागोटी (लोहमल का चूर्ण) को ठोंकता है, जिसे लोकभाषा हल्बी में 'खुंटी ठेंचतो' कहते हैं। लोहार एवं राउत को सेवा के एवज में रोसई (सूखा, राशन, दाल-चावल) अथवा नकद राशि देने की परंपरा है।''[16]

साथ ही बस्तर अंचल में वैज्ञानिक चिकित्सा का अभाव है और यहाँ के लोग जड़ी-बूटी से उपचार को ज़्यादा प्राथमिकता देते हैं। पशु संबंधी उपचार के लिए ये लोग सतावरी, रसना का उपयोग करते हैं साथ ही अँमूस पर्व के अवसर पर पशुओं को सियाड़ी के पत्ते में सतावरी और रसना जड़ी को नमक में मिलाकर पशुओं को खिलाते हैं। गीतेश अमरोहित के अनुसार- ''हरेली अमावस्या को मनाया जाने वाला त्यौहार है, इसमें पशु औषधियों की पूजा की जाती है। देखा जाए तो ये दोनों औषधियाँ पशु चिकित्सा में प्रमुख भूमिका निभाती है।''[17] साथ ही इस दिन किसान कृषि उपकरणों की पूजा करते हैं। बच्चे मनोरंजन के लिए गेड़ी चढ़ते हैं और पोला पर्व तक गेड़ी का आनंद लेते हैं। हम देख पा रहे हैं कि बस्तर की सांस्कृतिक परंपरा अपने रीति-रिवाज के लिए बहुत प्रसिद्ध है। बस्तर दशहरा 75 दिनों तक चलता है, जिसे देखने के लिए लोग दूसरे प्रदेशों से भी आते हैं। इसकी शुरूआत हरेली अमावस्या से ही होती है।

सार शब्दों में कहें तो यह पर्व प्रमुख रूप से इष्टदेव की पूजा के साथ अच्छी फसल की कामना, पशुधन की सुरक्षा, कृषि संबंधित औजारों की पूजा और बच्चों के मनोरंजन खेल गेड़ी को समर्पित है।

- **करमा पर्व :**

यह मुख्य रूप से उराँव जनजातियों का पर्व है, जिसे धान रोपाई से लेकर धान कटाई के मध्य भादो माह में सरगुजा अंचल में मनाया जाता है। इस पर्व के अवसर पर विशेष रूप से करमा गीत एवं नृत्य का आयोजन होता है। करमा पर्व के संदर्भ में संजय अलंग लिखते हैं- ''भादो एकादशी को करमा मनाया जाता है। इस दिन व्रत रखा जाता है। तदुपरांत करम वृक्ष की टहनी या वृक्ष को रोपा जाता है। करम वृक्ष की पूजा से यह प्रारंभ होता है, तब उसे करम राजा कहा जाता है। नवान्न अर्पित किया जाता है। इसे बलि भी दी जाती है। अगले दिन पुष्प, चावल और

दही चढ़ाया जाता है। लाल रंग की टोकनी में अन्न अर्पित किया जाता है।''[18] मुख्य रूप से करमा पर्व वन्य-जीव एवं कृषि पर आधारित है, जिसके माध्यम से साज-सज्जा, गायन, नृत्य, वस्त्र-विन्यास, पाक-कला, हस्तशिल्प आदि को महत्व दिया गया है।

करमा केवल एक पर्व ही नहीं अपितु यह लोकगीत एवं लोकनृत्य भी है, जिसे आदिवासी समुदाय बड़े धूमधाम से आयोजित करते हैं। यह पर्व जनजातियाँ संस्कृति का प्रतीक है और भादो माह से आरंभ होकर दशहरा तक चलता है। कहीं-कहीं इस पर्व में एक दिन तो कहीं सात या नौ दिनों तक आयोजित होता है। इस पर्व में एक विशेष प्रकार का नृत्य आयोजित किया जाता है, जिसे करमा नृत्य कहा जाता है, जो कि छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक पहचान है। पहले पहल यह पर्व किसी विशेष जनजातियाँ समुदाय तक सीमित था, किंतु अब छत्तीसगढ़ के गोड़, मुण्डा, कमार, कंवर, बिंझवार, बिरहोर, कोरवा, बैगा, पंडो आदि जनजातियों में भी प्रचलित है। यह पर्व प्रमुख रूप से करम देवता को समर्पित है। इस पर्व में गीत-संगीत, नृत्य के पूर्व करम देवता की पूजा की जाती है। इस पर्व के आयोजन के पीछे अनेक कहानियाँ भी प्रचलित हैं। संजय अलंग के अनुसार- ''यह माना जाता है कि बहुत पहले करमसेन नामक राजा था, उस पर अचानक विपघि आ गई। राजा ने हिम्मत नहीं हारी। उसने भगवान से मन्नत माँगी और इसके लिए भगवान के सामने नृत्य किया, गीत गाया। धीरे-धीरे उनकी सारी समस्याएँ दूर हो गई। उसी समय से उस नृत्य और गीत को उसी राजा के नाम से जाना गया।''[19] साथ ही यह पर्व भाई-बहन के प्रति अगाध प्रेम, स्नेह एवं सद्भावना का भी प्रतीक है। कुँवारी कन्या एवं महिलाएँ इस पर्व को विधिवत मनाती हैं, जिसके संदर्भ में संजय अलंग लिखते हैं- ''यह पर्व तीन दिनों तक चलता है, जिसमें पहले दिन महिलाएँ व कुँवारी युवतियाँ संयत करती हैं, दूसरे दिन निर्जला उपवास किया जाता है। इसी दिन मुख्य पूजा आयोजित होती है। शाम को आँगन में करम पौधे की डाली गड़ाकर फल, फूल आदि से पूजा की जाती है। इस दौरान महिलाएँ करमडाली के चारों ओर घूम-घूम कर गीत गाती हैं। भाई खीरा लेकर बहनों से सवाल करते हैं कि करमा पर्व किसके लिए करती हो? बहनें जवाब देती हैं कि भाइयों की मंगल कामना के लिए। बाद में भाई खीरे से मारता है। तदुपरांत महिलाएँ और युवतियाँ फलाहार करती हैं। अगले दिन सुबह में करम की डाल को पोखर में विसर्जित कर दिया जाता है। विवाहित महिलाएँ अपने मायके में करमा पर्व को मनाती हैं।''[20]

श्रद्धा-भाव से परिपूर्ण कुँवारी कन्याओं के द्वारा करम देवता के नाम से जँवारा बोया जाता है। करम वृक्ष की टहनी काटने के पूर्व पूजा करते हैं। उपवास साधना का पालन करती हैं। दयाराम भानु के अनुसार- ''श्रद्धालु कुँवारी लड़कियाँ अपने घर में गेहूँ, जौ (ज्वार) बोए रहते हैं। अपने सगे संबंधियों, पड़ोसियों को करमा के लिए निमंत्रण दिए रहते हैं। कर्मा उत्सव के दिन अविवाहित लड़कियाँ-लड़के कुछ समानों के साथ करम वृक्ष (कलमी वृक्ष) को निमंत्रण देते हैं। शाम को उसी करम वृक्ष (कलमी वृक्ष) की एक टहनी को काटते हैं, जिसे ज़मीन पर नहीं गिरने दिया जाता हाथ में उठाकर रखा जाता है। वहीं से मांदर-मंजीरा बजाते और करमा गीत गाते हुए करम वृक्ष (कलमी वृक्ष) की टहनी को आँगन में लाकर गाड़ दिया जाता है। इस दिन कुँवारी लड़कियाँ करम देवता के लिए उपवास रखती है, फिर सभी व्रत रखी लड़कियाँ अपने-अपने घर जँवारा लाकर करम वृक्ष की टहनी के सामने रखती है। गाँव के लोगों और बैगा के आने के बाद करम देवता की पूजा की जाती है। करम देवता की कथा भी सुनाई जाती है, जिसका सारांश अच्छे कर्म का परिणाम अच्छा और बुरे कर्म का परिणाम बुरा होता है।''[21]

इस तरह की साधनाओं के फलस्वरूप करमा नृत्य एवं गीत आरंभ होता है। गीत की शुरूआत

समस्त देवी-देवताओं के सुमिरन से होता है। रात भर करमा गीत संचालित रहता है। सुबह करम डार और जवारा को विसर्जित करते हैं। करम गीत के माध्यम से जीवन के विविध प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है। साथ ही नई फसल के प्रति शुभकामनाओं का संदेश भी है। दयाराम यदु के अनुसार- ''करमा गीत की शुरूआत अपने कुल देवी-देवताओं के साथ सभी देवी-देवताओं के सुमरनी करमा गीत (आवाहन) से शुरू होता है। जीवन के सभी पहलुओं, घटनाओं, रिवाज का बहुत ही सुंदर गीत के माध्यम से अपने भाव को व्यक्त किया जाता है। उस करम वृक्ष) के चारों ओर घूम-घूमकर रात भर करमा गीत गा-गा कर नृत्य किया जाता है और सुबह पास के ही किसी नदी में करमा गाते हुए करम डार और फसल आने की खुशी में लोग नाच-गा कर मनाया जाने वाला मुख्य उत्सव है।''[22]

करमा गीत और नृत्य मादर की थाप पर ही संचालित होता है, जिस जगह पर यह कार्यक्रम आयोजित होता है उसे अखाड़ा कहा जाता है। पुरुष मादर बजाते हैं और महिलाएँ एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर गीत गाती हुई नृत्य करती हैं। संजय अलंग के अनुसार- ''करमा गीत गाते वक्त मादर बजाया जाता है। मादर सुनकर गाँव के सभी लोग दौड़कर चले आते हैं, नाचने लगते हैं। करमा गीत और नृत्य जिस स्थान पर होता है उसे अंखरा (अखाड़ा) कहते हैं। यह नृत्य रात भर चलता है। पुरुष मादर बजाते हुए नृत्य करते हैं। स्त्रियाँ कतार में एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर या कमर में हाथ डालकर झुक-झुक कर नाचती हैं। जब महिलाएँ गाती और नृत्य करते हुए आगे बढ़ती हैं तो पुरुष मादर बजाते हुए पीछे हटते हैं। जब पुरुष मादर बजाते गाते और झुक-झुक कर नृत्य करते आगे बढ़ते हैं, तब महिलाएँ पीछे हटती हैं। इस क्रम को पाली खेलना कहते हैं। कुँवारी लड़कियाँ सिर खुला रखती हैं और विवाहिताएँ सिर ढँक कर नृत्य करती हैं।''[23] सार शब्दों में कहें तो करमा पर्व छत्तीसगढ़ का लोक-पर्व एवं लोक-गीत और नृत्य है, जिसका उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही कर्म प्रधान संदेश देना है।

- **छेरता पर्व :**

इस पर्व को पूस पूर्णिमा के दिन विशेषकर आदिवासी समुदाय 'गोड़' जनजाति के लोग मनाते हैं। इस पर्व में विशेषकर बच्चे घर-घर जाकर 'धान' का दान माँगते हैं। कृषक- समाज इस दिन अपने बहीखाते का हिसाब-किताब करता है। छेरता पर्व के महत्व के संदर्भ में संजय अलंग लिखते हैं- ''छेरता छत्तीसगढ़ का स्थानीय त्योहार है। छेरता का अर्थ 'धरती'। इस त्योहार को जनजातीय समुदाय के लोग विशेषकर गोड़ आदिवासी मनाते हैं। यह त्योहार पूस मास के अंतिम दिवस अर्थात् पूस पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस दिन पुराने बहीखातों को बंद कर नए बहीखाते बनाए जाते हैं। कृषक इसी दिन लेखा और हिसाब-किताब का बंदोबस्त करतस है। बच्चे टोलियों में घर-घर जाकर गीत गाते हैं। यह प्रचलित बोली 'छेर छेरता कोठी के धान हेर लरिका' बोलते हैं और मुट्ठी भर अनाज माँगते हैं।''[24] छत्तीसगढ़ के मैदानी भाग में इसे छेर-छेरा पर्व और बस्तर संभाग विशेषकर आदिवासी गोड़ समाज में इसे 'छेरता पर्व' कहा जाता है।

- **गोंचा पर्व/बस्तर दशहरा :**

संपूर्ण भारतवर्ष में दशहरा पर्व माँ दुर्गा की प्रतिमा विसर्जन एवं रामलीला झाँकी के साथ रावण-वध करके समापन की जाती है। इसे पूरे देश के भीतर एक तरह से विजय-पर्व के रूप में मनाया जाता है, किंतु बस्तर अंचल का दशहरा पर्व माँ दंतेश्वरी के प्रति आस्था एवं समर्पण का पर्व है। यह पर्व प्रमुख रूप से 75 दिनों तक चलता है श्रावण अमावस्या से अश्विन शुक्ल त्रयोदशी तक।

इस पर्व के आयोजन के पीछे एक जनश्रुति यह है कि काकतीय वंश के राजा भैराजदेव के पुत्र

पुरुषोत्तम देव एक बार जगन्नाथ धाम तक पदयात्रा करके वहीं मंदिर में सौ स्वर्ण मुद्राएँ एवं अन्य सामग्री अर्पित किए तत्पश्चात् पुजारी को भगवान जगन्नाथ का स्वप्न आया कि राजा पुरुषोत्तम देव को रथपति घोषित किया जाए। जब राजा पुरुषोत्तम देव पुरी धाम से वापस बस्तर आए तभी से दशहरा पर्व में रथ चलाने की परंपरा शुरू हुई। ''दशहरा पर्व का प्रारंभ पाठ जात्रा के रूप में हरेली अमावस्या से होता है। दशहरा के प्रथम दिन माँ दंतेश्वरी को महिषासुर रूप भैंसा अथवा बकरे की बलि देकर पर्व का शुभारंभ किया जाता है।''[25] इस पर्व में प्रमुख रस्म तेरह दिन की होती है, जिसके अंतर्गत पाट जात्रा, काछिन गादी, जोगी बिठाना, रथ परिक्रमा, जोगी उठाना, मावली परघाव, भीतर रैंनी, बाहर रैनी, मुरिया दरबार और ओहाड़ी है। बस्तर दशहरा में लोग तुपकी वाद्य-यंत्र बजाते हैं।

यह पर्व उड़ीसा जगन्नाथ-यात्रा के तर्ज पर ही बस्तर के जगदलपुर शहर में आयोजित होता है। वर्तमान स्थिति में बस्तर का यह दशहरा पर्व राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है। इस पर्व के आयोजन पर न केवल बस्तर अंचल अपितु पूरा छत्तीसगढ़ राज्य गौरवान्वित है। इस पर्व को देखने के लिए दूसरे राज्य से भी लोग आते हैं। हर्ष और उल्लास का यह पर्व समूचे बस्तर अंचल का विशेष त्योहार एवं पहचान है।

मूल्यांकित शब्दों में कहें तो छत्तीसगढ़ एक ऐसा राज्य है, जिसमें 42 प्रकार की जनजातियाँ निवासरत हैं, जिसकी 161 उपसमूह है। राज्य की जनसंख्या का लगभग 30.62 : जनजातियाँ हैं। उनकी अपनी बोली-भाषा, वेशभूषा, जीवन-शैली, सांस्कृतिक परिवेश है तथा प्रत्येक जनजातियों के अपने देवी-देवता, पर्वपरक पूजन संस्कार है, जिसे विधिवत आयोजित करते हैं, जिसमें उनकी पूर्ण आस्था, विश्वास, श्रद्धा जैसे भाव समाहित हैं, जो सामान्य जन-समुदाय के लोगों एवं उनकी पूजा-पद्धति से भिन्न है। एक तरह से कहें तो छत्तीसगढ़ को देश की सांस्कृतिक पटल पर स्थापित करने में जनजातीय समाज एवं लोक-संस्कृति की भूमिका महत्वपूर्ण है।

संदर्भ-सूची :

1. प्रधान, अशोक एवं वर्मा, शैलेन्द्र कुमार, समग्र छत्तीसगढ़. छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, 218, पृ॰-487.
2. वही, पृ॰-487.
3. वही, पृ॰-487.
4. वही, पृ॰-487.
5. अमरोहित, गीतेश कुमार. छत्तीसगढ़ कला एंव संस्कृति. भिलाई : सरस्वती बुक्स, 2021, पृ॰-249.
6. वही, पृ॰-250.
7. वही, पृ॰-251.
8. लाला जगदलपुरी. बस्तरः इतिहास एवं संस्कृति, भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2007, पृ॰-112-113.
9. अमरोहित, गीतेश कुमार. छत्तीसगढ़ कला एंव संस्कृति. भिलाईः सरस्वती बुक्स, 2021, पृ॰-249.
10. दक्षिण कोसल टुडे - बस्तर की सामूहिक पूजा पद्धति ककसाड़, 11 अप्रैल 2021.
11. वही/- बस्तर की सामूहिक पूजा पद्धति ककसाड़, 11 अप्रैल 2021
12. बघेल, करूणेश सिंह. बस्तर की संस्कृति में लोक नृत्य की परम्परा, शोध-प्रबंध, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, 2006, पृ॰-34.
13. त्रिपाठी, संजय एवं चंदन त्रिपाठी, छत्तीसगढ़ वृहद संदर्भ, आगरा : उपकार प्रकाशन, पृ॰-368.
14. पात्र, भागेश्वर, बस्तर लोकजीवन का प्रथम पर्व अँमूस तिहार. दण्डकारण्य दर्पण, 28 जुलाई 2022.
15. वही/- दण्डकारण्य दर्पण, 28 जुलाई 2022.
16. वही/- दण्डकारण्य दर्पण, 28 जुलाई 2022.
17. अमरोहित, गीतेश कुमार, छत्तीसगढ़ कला एंव संस्कृति. भिलाईः सरस्वती बुक्स, 2021, पृ. 250-251.

18. अलंग, संजय एवं सुमिता अलंग, छत्तीसगढ़ : त्यौहार और उत्सव. इलाहाबादः उत्सव मानस पब्लिकेशंस, 2016, पृ॰-36.

19. वही, पृ॰-37.

20. वही, पृ॰-37-38.

21. दक्षिण कोसल टुडे - करमडार परब : करमा, 21 नवंबर, 2020.

22. वही/- करमडार परब : करमा, 21 नवंबर, 2020.

23. अलंग, संजय एवं सुमिता अलंग, छत्तीसगढ़ : त्यौहार और उत्सव. इलाहाबादः उत्सव मानस पब्लिकेशंस, 2016, पृ॰-38-39.

24. वही; 21.

25. त्रिपाठी, संजय एवं चंदन त्रिपाठी. छत्तीसगढ़ वृहद संदर्भ, आगरा : उपकार प्रकाशन, पृ॰-366.

साक्षात्कार :

- डॉ॰ आर॰ के॰ पाण्डेय : संत गुरु घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला-धमतरी (छ.ग.). विषयः छत्तीसगढ़ का लोक जीवन, 15 जनवरी, 2024.
- डॉ॰ राजन यादव : इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, विषयः छत्तीसगढ़ का प्रमुख लोक पर्व, 25 जनवरी, 2024.
- डॉ॰ अखिलेश त्रिपाठी : बस्तर लोक जीवन एवं प्रमुख पर्व, 20 जनवरी, 2024.

A Rare Varna in The Raga Kedaragoula Set to Misra Jathi Jhampa (Two Kala) by Rudrapatnam Venkittaramayya – An Outlook

Dr. Dileep Kumar V R
Assistant Professor
Department of Music
Central University of Tamil Nadu, Thiruvarur

Abstract :

Rudrapatnam Venkittarammayya, A well-known composer of varnas and other compositions, has kept a unique place in the sphere of Carnatic Music. He was very experimental in composing compositions and varnas in rare talas. He has composed varnas in rare talas, like Sarasijakshi in Nayaki raga, Khanta Jathi Triputa tala, and Viriboni, Kedaragoula raga, Misrajathi Jhampa tala. It reveals his mastery in handling such intricate talas. It is not an easy task to compose compositions and set to such complex structured talas without losing its melodical entity. In this wonderful varna, viriboni, he dexterously portrayed the very essence of the raga kedaragoula in its real sense. He has incorporated some very rare melodic variations in kedaragoula, which are not often found in other compositions of kedaragoula. Through this varna, the composer tries to maintain a balanced melodic equilibrium between middle and upper octave. Panchama svara comes as nyasa at many times instead of Rishabha. This gives a special charm and beauty to kedaragoula. He adopted Dharmapuri as mudra for his compositions as he was an ardent devotee of God Manjunathesvara of Dharmasthala, near Mangaluru, Karnataka.

Keywords :

Viriboni, Khanta jathi triputa, Misra jathi jhamba, Kedaragoula, Varna.

Method of Study : Analytical method is employed for this study.

An Introduction to Raga Kedaragoula :

Raga Kedaragoula is a Major Janya raga in Carnatic Music. It is a raga which is capable of producing dual emotions or rasa such as Veera (courage) and karuna (sorrow). A traditional raga having an asymmetric nature is considered as the basic raga of kathakali music. In old treatises, raga kedaragoula has been described as the mela having 7 notes. In Svaramela-

kalanidhi of Ramamatya has described this raga as mela having kakali nishada which would correspond to the present Dheerasankarabharanam. Ragatalatcinthamani- written by of Poluri Govindakavi also gives the same description on kedaragoula. Ragasudha of Govinda Dikshitha also describes kedaragoula as mela but suggests kaisiki nishada instead of kakali nishada. All the treatises that mention kedaragoula as a mela also mention a raga in the same name as a janya under the mela, which suggests a mela is considered to be different from a raga. Chaturdantiprakashika of Venkatamaghi written during the early part of the 17th century is the first treatise to describe kedaragoula as a janya raga. He describes kedaragoula is the janya of mela kamboji, which would suggest the 28th melakartha of present day Harikamboji. The 18th century treatises namely Ragalashana of Muddu Venkitamakhi and Sangrahachudamani describe kedaragoula as almost similar to the present-day form. According to these treatises, kedaragoula is an oudava sampoorna raga. All types of musical forms starting from varna to Kriti are shining as the ample source of its melodic majesty. Though this raga falls under the group of major janya, it enjoys the wide scope for expansion. Kedaragoula is very similar to ancient Tamil pann Gandhara Panchama. Harikedaragoula is similar to Harikamboji in Asampoorna system followed by Dikshithar. Kedaragoula is an Oudava Sampoorna raga having the typical aesthetic features. This raga appeals equally to listeners in vilamba and madhyama kala. Rishabha itself can exude the ragabhava to some extent, when it is rendered as nyasa swara, the gamaga is originated from Gangadhara. This peculiarity is the hallmark of kedaragoula. The elongated rendering of rishabha alone is the awesome beauty of kedaragoula.

This raga shines more in upper sthayi wherein rishabha plays a vital role in producing the ragabhava in its real sense. Delineation of raga is mostly focus on rishabha and Panchama. Panchama and Rishabha are the most appealing nyasa swaras in kedaragoula. This raga is rich in aesthetic appeal and is very closely allied to raga surutty. Though gandhara is having less importance in kedaragoula, the relationship between gandhara and rishabha is interwoven. The perfect blend of gandhara and rishabha are the noteworthy feature of kedaragoula by which the raga itself is elevated into such a melodic height. This raga shines as a gigantic figure in the realm of kalpitha sangitha as well as manodharma Sangita. Though kedragoula is considered a Gamakavariga raga, sometime, key notes like madhyama, rishabha are rendered as plain notes. This dual identity itself is the unique feature of this raga. Madhyama, when it is rendered along with Panchama is having more charm due to its elongated rendering. Rishabha in kedaragoula has a special melodic beauty due to its own majestic identity. Nishada is also plays a vital role in bringing the uniqueness of this raga.

The phrase like M G S., R M G S…. add beauty and charm to this raga. Many compositions in kedaragoula used to start from the notes rishabha and panchama. Some compositions are commenced from upper shadja. Viriboni, an excellent varna in kedaragoula starts in panchama. This is a rare feature which is not often seen in other compositions. N S R MGS….

NSR…S…. these upper sthayi prayogas are more pleasing melodies in kedaragoula. The melodic equilibrium between lower and upper sthayi give a special charm to kedaragoula. The excellent padam composed by kshetrayya "bamaro" is a typical one having this melodic combination of two sthayis. It starts like…. PMPNS…R …….RPMGR……. In Tulasi bilva, a composition by Tyagaraja, we can find the mellifluous combination of melody between lower and upper sthayis. In Saragunapalimpa, composition by Ramanathapuram Srinivasa Iyengar, is having the rich variety of melodic and rhythmical embellishments. All these compositions stand as unsurpassed in the sphere of kalpitha sangitha with its own overwhelming fragrance.

Varna Notation :

Raga: Kedaragoula **Tala: Misra Jhampa**

Composer: Rudra pattanam Venkitaramayya **2 kala**

Pallavi

	X	1	2	3	4	5	6		X	X	V	
‖	p,m,	mgrm	p,,,	p,,,	pmpn	dpmg	rrgr	|	sṇḍp	p̣ṇsr	mgrm	‖
	viri	*bo*	*ṇi*		*ni*			|	*pai*	*sa*	*la*	
‖	pmmg	rsgr	sṇḍp	pṇsr	rmgr	rmpn	dpmg	|	rssr	sṇḍp	pṇsr	‖
	mama	*ta*		*jan*	*thi*	*yu*		|	*unna*	*thi*	*rā*	

Anupallavi

‖	p,nd	pmdp	mgrm	p,mg	rsṇs	rmp,	ndpm	|	rmpn	ṡṙṡn	ṡ,,,	‖
	Sara	*su*		*da*	*dha*		*rma*	|	*pu*	*ri*	*ni*	
‖	pnṡṙ	ṁġṙġ	ṙṡnṙ	ṡndp	pṙṡ,	,ndp	p,,m	|	grs,	, ṇḍp	ṇsrm	‖
	ve	*la*	*yu*		*srichen*	*nna*	*keśa*	|	*va*			

Chittasvara

‖	p,,d	pmgr	m,,m	pmgr	s,,g	rsṇḍ	p̣,,p̣	|	ṃp̣ṇs	r,,r	nsrm	‖
‖	p,,n	dpns	ṙ,,ṁ	ġṙṡṙ	ṡ,,ṡ	ndpd	p,,m	|	grsr	s,,p̣	ṇsrm	‖

Charaṇa

‖	ṡ , ṡ ,	ndpm	p,,,	mpnd	dpmg	mgrg	rsṇs	|	rmp,	ndpm	rmpn	‖
	Sara	*sa*	*kṣi*	*ni*	*nu*	*ramma*		|	*ne*		*rā*	

Charaṇasvaras

1.	‖	ṡ ,,n	,,d,	p,m,	n,,d	,,p,	m,g,	r,s,	|	,,r,	,,m,	p,,n	‖

2.	‖	ṡ, nd	pmpn	dpmg	r,pm	grs,	ṇsrm	grmp	|	,ndp	ṡndp	rmpn	‖
3.	‖	p,dp	mgrm	p,mg	rsrm	p,sr	mgrm	p,ṇs	|	rsrm	p,p̣ṇ	srmp	‖
	‖	rmpn	dpmp	ṡndp	pnṡn	dpġṙ	ṡndp	pmpn	|	dpdp	mgrs	rmpn	‖
4.	‖	ṡ,ṙṡ	ndpn	ṡ,nd	pmpn	ṡ,nd	pmgr	s,rs	|	s,ṇḍ	p̣ṇs,	rmpn	‖
	‖	nṡṙṁ	ġṙṡ,	nṙṡn	dpṡ,	ndpn	ṡ,nd	pmp,	|	mgrs	s,ṇs	rmpn	‖

Musical Analysis of the Varna – Viriboni – Misra jhampa :

The first two lines of the Pallavi are confined to madhyasthayi alone. There is a perfect melodic blending of Madhya and manthra sthayi phrases. Eg…M G R M P…. S N D P P N S R. R R G R is a rare parayoga in kedaragoula. These mandra, maddhya sthayi combination is an elegant beauty of kedaragoula. In chittaswara we can find an excellent jathi pattern of 8 (5+3) p…D P M G R, M, M, M P M GR, etc. (.Dhee.m Takitataka). The chittaswara is full of these types of excellent melodic rhythmic groupings. The composer intents to project the importance of nyasa swaras like R M P through which raga bhava are being outflowed in a great manner.

In Charanam there is an excellent grouping of Chaturasra phrases, which stands as a unique melodic extravaganza having the Panchama svara as nyasa. For eg: S. S. NDPMP. MPND, DPMG, NSRMP.... Raga kedaragoula, when it is rendered in upper sthayi with an amazing elongation of rishabha gives or produces veera rasa (courage) with majestic grandeur. Whereas in lower sthayi or octave, it feels like shanta rasa or peacefulness free from all disturbances. This is a rare feature of ragas regarding its emotional entity. The melodic nature of microtones which stands as unparalleled in each raga with its own charismatic power are the ever-green beauty of Indian Music. In this varna we can find a judicious combination of Panchama svara as nyasa in the Pallavi and charanam. For eg. P….M…. MGRMP …., in charanam, S…. S…. ND PDP……, these two melodic groupings are typical as its intents to project Panchama svara and its supremacy in middle octave. In this varna some prayogas or variations are really challenging for musicians as it is having some complex combinations. The musician ought to have a thorough knowledge about the patterns and combinations of phrases in this raga. For eg: In first charana svara, S……N…..D…..P…., This nishada is having more oscillation and elongation needs to be handled very carefully. Otherwise, the raga bhava itself may get spoiled. Th combination of Nishada and Dhaivatha are really awesome. All these types of combinations are perfectly metered.

Conclusion :

Through this enchanting composition, the composer tries to brings out the elegant beauty of raga kedaragoula in a unique way. The composer intends to trace out the essence of kedaragoula in lower, middle and higher octave with appropriate melodic phrases. Pallavi, Anupallavi, Chittasvara and charana are having remarkable verities

of kedaragoula raga sancharas. The composer skillfully employed rhythmical embellishments which is melodically blended with svaras. It is not an easy task to employ such rhythmic variations in tala like misrsa jhampa. The majestic beauty of Chaturasra nada is portrayed mellifluously. The medium tempo is most suitable for this varna. With all these powerful melodic and rhythmical varieties, this varna shines as an ever-green gem in the horizon of Musical compositions.

Bibliography :

1. Dr. Rajshri Ramakrishna, Lakshmipriya R. Raga Lakshana of Kedaragaula -An Overview. Smrti. Vol. III – June 2023, Issue 1, pp13-20
2. Prof. N. S. Ramachandran. The Raga of Karnatic Music. The trinity MusicBook Publishers, Chennai; 2003. Pp190.
3. Lalita Ramakrishna. Aesthetics of Karnatak Music. B R Rhythms: Delhi, 2016. Pp 75.
4. Vijayalakshmi. S. Indian Karnatic Music Higher-Grade-Theory Book -IV. Sri Sai Krishna Gana Publishers: Chennai, 2007. Pp 143, 170
5. Ravindranath, A. K. Dakshinedian Sangeetham. Kerala Bhasha Institute, ISBN 81-7638-796-7; Thiruvananthapuram, 1985.

हिन्दी गज़लों में लोक सांस्कृतिक तत्वों के निरूपण की दिशा एवं दशा

डॉ॰ गजेन्द्र भारद्वाज

सहायक प्राचार्य (हिंदी)

मारवाड़ी महाविद्यालय, (ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय), दरभंगा, बिहार

शोध-सारांश :

प्रेमिका के सौन्दर्य की प्रशंसा में, समूचे प्रेम-व्यापार के दौरान चौकड़ी भरते हिरण की तरह कलात्मक बुनावट से भरे हुए कसीदे पढ़ने के कारण 'ग़ज़ल' की संज्ञा से विभूषित यह काव्य-विधा अरबी-फारसी संस्कारों को लेकर अपनी जिस साहित्यिक यात्रा को प्रारंभ करती है, वह आदिकालीन अमीर खुसरो की हिंदवी, कबीरदास की सधुक्कड़ी, मीराबाई की राजस्थानी, मीर तकी मीर की रेख़्ता, प्यारेलाल शोकी की हिंदुस्तानी, मिर्ज़ा ग़ालिब की उर्दू से होती हुई उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली हिंदी के भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भक्ति, इकबाल, रामप्रसाद बिस्मिल और अश्फ़ाक़ उल्ला खाँ के देशप्रेम, शकील बदायूँनी से जिंदगी की रंगीनियत, फ़ैज अहमद फ़ैज से रोमानियत और साहिर लुधियानवी से ग़म की तासीर लेकर दुष्यंत कुमार, शमशेर और गोपालदास 'नीरज' जैसे गज़लकारों तक आते-आते जाने कितने पड़ावों से गुजरती हुई सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि मोर्चों पर उठ रही आवाजों को समेटकर आम आदमी की भाव-संवेदना और जीवन को प्रतिबिम्बित करने में सफलता प्राप्त करती है।

हम देखते हैं कि बीसवीं शताब्दी से ही हिंदी ग़ज़लों में जीवन के संत्रास, सांप्रदायिकता, सत्ता, शोषण, असमानता, अपराधवृत्ति, गरीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार, पर्यावरण आदि का चित्रण आरंभ हो गया था जो अदम गोंडवी, राम मेश्राम, विनय मिश्र, ज्ञान प्रकाश विवेक, रामकुमार कृषक, वशिष्ठ अनूप, रोहिताश्व अस्थाना, देवेन्द्र आर्य आदि की गज़लों तक अनवरत् जारी रहता है। वहीं जहीर कुरैशी जैसे गज़लकारों की ग़ज़लों में गाँव-घर से जुड़े खेत-खलिहान, फसलों की बुआई-कटाई, कुँअर बेचैन जैसे ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में लोक प्रतीकों, लोकाचारों, तीज-त्योहारों, वस्त्राभूषण जैसे लोक सांस्कृतिक तत्वों की उपस्थिति भी परिलक्षित होती है। हमारे कृषि प्रधान देश में आम आदमी का समूचा तानाबाना उसके लोक जीवन के सापेक्ष गतिमान रहता है। जिसमें उसके लोक व्यवहार, लोकानुष्ठान, लोक विश्वास, लोक साहित्य, क्रिया-व्यापार, लोक पर्वोत्सव, मनोरंजन, किस्से-कहानी, कहावतें, कला-संगीत, मान्यताएँ-परंपराएँ आदि सम्मिलित रहते हैं, हिंदी गज़लकारों ने इस लोकजीवन को कई अंशों को अपने कथ्य का विषय बनाकर प्रस्तुत किया है। इन्हीं तथ्यों के आलोक में प्रस्तुत शोधपत्र हिंदी गज़लों में लोक सांस्कृतिक तत्वों के निरूपण की दिशा एवं दशा के अध्ययन-विश्लेषण को प्रस्तुत करता है।

उपलब्ध साहित्य : *ग़ज़ल संग्रह- कुँअर बेचैन- 'शामियाने काँच के' (1983), 'महावर इंतजारों का' (1983), 'रस्सियाँ पानी की' (1987), 'पत्थर की बाँसुरी' (1990), 'दीवारों पर दस्तक' (1991), 'नाव बनता हुआ कागज' (1994), 'आग पर कंदील' (1995), जहीर कुरैशी - 'लेखनी के स्वप्न' (1975), 'एक टूकड़ा धूप' (1979), 'चाँदनी का दुःख' (1986), 'समंदर ब्याहने आया नहीं है' (1992), 'भीड़ में सबसे अलग' (2003), 'पेड़ तन कर भी नहीं टूटा' (2010), 'बोलता है बीज भी' (2014), 'निकला न दिग्विजय को सिकंदर' (2016), 'रास्तों से रास्ते निकले' (2017), 'जिन्दगी से बड़ा जिन्दगी का समर' (2019), 'दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक' (2019); ग्रंथ - 'भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-2 (ब्रजरत्न दास, संपादक, 1953), 'हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम' (डॉ.सरदार मुजावर, 1993), 'हिंदी ग़ज़ल का परिप्रेक्ष्य' (वशिष्ठ अनूप, 2018); पत्रिकाएँ- अपनी माटी; इंटरनेट- कविता कोश, साहित्य विमर्श, रेख़्ता।*

शोध प्रविधि : *प्रस्तुत शोधपत्र लेखन हेतु तथ्याख्यान विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि को आधार बनाया गया है।*

संकेताक्षर :

ग़ज़ल, शेर, लोक-संस्कृति, कृषि, लोकप्रतीक, लोकमिथक।

प्रस्तावना :

ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि चार-पाँच शेर के तश्बीब से आरंभ होने वाले कसीदों को फारसी शायर 'रोदकी' ने समूचे ईरान में पहचान दिलाई। इन गज़लों की मूल प्रकृति वस्ल, फिराक़, इश्क़, इश्तयाक़, हसरत और कयास अर्थात् मिलन, विरह, प्रेम, चाहत, कामना, आशा, निराशा से भरे कोमल भावों के बिम्ब एवं प्रतीकों से निरूपित विप्रलंभ श्रृंगार या सौन्दर्य वर्णन भले ही हो पर हिंदी क्षेत्र में आते-आते साहित्य की इस विधा का मिज़ाज पूरी तरह बदल जाता है और यह उर्दू, हिंदी, बंगाली, राजस्थानी, मराठी आदि भाषा-संस्कृति के प्रभाव से बिल्कुल नयी रंगत में भारतीय परिधान पहनकर उपस्थित होती है। हिंदुस्तानी ग़ज़ल में अमीर खुसरो के सुखनों वाली अदावत, कबीर की फ़कीरी, मीराबाई का विरह, ग़ालिब का दर्शन, बहादुरशाह ज़फ़र की वतनपरस्ती की तासीर आ गई तो उसमें अख़लाक मोहम्मद खान 'शहरयार' का चिंतन, बशील-बद्र की सपाटबयानी, निदा फ़ाजली की बेचैनी और वसीम बरेलवी 'ज़ाहिद हसन' का लोकतत्व भी समाहित होता चला गया, जिसके कारण हिंदी ग़ज़ल साहित्य इतना अधिक समृद्ध हुआ कि शायद ही जीवन का कोई अंग हो, जिसका प्रतिबिम्ब हिंदी ग़ज़ल में दिखाई न देता हो। लोकजीवन का यही विकास परवर्ती युग की ग़ज़लों में कुँअर बेचैन, जहीर कुरैशी, बलवीर सिंह 'रंग', बल्ली सिंह चीमा, अशोक अंजुम, लाला भगवान दीन, अश्विनीकुमार पाण्डेय, प्यारेलाल शौकी जैसे गज़लकारों की गज़लों में मिलता है। इन ग़ज़लकारों ने ग्रामीण लोक जीवन की मान्यताओं, परंपराओं, रीतिरिवाज, संस्कार-संस्कृति आदि के प्रतीक, बिम्ब, मिथक और संदर्भ उठाकर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक प्रसंगों के रंग में रंगते हुए अपनी ग़ज़लों की वैचारिकी को समृद्ध किया है।

जहीर कुरैशी के ग़ज़ल संग्रहों 'दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक', 'निकला न दिग्विजय को सिकंदर', 'बोलता है बीज भी', 'रास्तों से रास्ते निकले', 'जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर', 'भीड़ में सबसे अलग', 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा', 'चाँदनी का दुख' एवं कुँअर बेचैन की 'महावर इंतजारों का', 'शामियाने काँच के', 'दीवारों पर दस्तक' आदि में

संकलित ग़ज़लों में इन लोक रंगों को देखा जा सकता है। इन ग़ज़लों में कभी ये भारतीय ग्रामीण एवं लोक संस्कृति के महत्व का रेखांकन करते हुए उसकी सहकारिता, साझे की संस्कृति और मिलनसारिता के संरक्षण के लिए चिंतातुर दिखाई देते हैं तो कभी नगरीय सभ्यता ओर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से होने वाले बदलावों की ओर संकेत करते हुए सांस्कृतिक संक्रमण के दुष्प्रभावों से सावधान करते नज़र आते हैं। वोट बैंक की राजनीति, सांप्रदायिकता, बेरोजगारी और पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव का जनमानस की पीढ़ियों पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति चेतना जागृत करते ये गज़लकार की कोमल वाणी को तीखे स्वरों के नाद से भर देने से भी नहीं चूकते। अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़ल 'भूख दे या प्यास दे या मौत दे, गाँव की मिट्टी मेरी तकदीर है', विनय मिश्र की 'शहर की इस भीड़ में चल तो रहा हूँ, ज़हेन में गाँव का नक्शा रखा है, गरिमा सक्सेना की 'गाँव की भी आदतों में अब शहर बसने लगा, गाँव में भी दिल दुःखाना आम मंजर हो गया', प्रेम किरण की ग़ज़ल 'अब के मायूस ही लौटा है खिलौने वाला, एक बच्चा न मिला गाँव में रोने वाला' आदि यही सिद्ध करती हैं।

विमर्श :

बदलते लोक जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं से जनित विकारों और विषमताओं को अभिव्यक्त करते हुए आधुनिक युग की हिंदी ग़ज़ल जितनी प्रौढ़ होती जा रही है उसकी सार्थकता की दर भी उतनी ही अधिक बढ़ती दिखाई दे रही है। आज की जिस ग़ज़ल विधा में सामाजिक अव्यवस्थाओं, चुनौतियों और विंगतियों का चित्रण मिलता है उसकी शुरुआत भारतेन्दु युग में ही हो गई थी जब खड़ी बोली हिंदी के पितामह भारतेन्दु ने 'रसा' उपनाम से ग़ज़लें लिखते हुए कथ्य में प्रेम की अभिव्यक्ति, दार्शनिकता और व्यंजना के साथ-साथ लोक सांस्कृतिक तत्वों पर भी अपनी क़लम चलाई। उनकी ग़ज़लों में लोकपर्वोत्सवों के कई संदर्भ मिल जाते हैं। उनकी ग़ज़लों में होली जैसे त्योहारों का चित्रण मिलना आम बात है। उदाहरण के लिए एक ग़ज़ल में वे लिखते हैं :

"गले मुझको लगा लोऐ मेरे दिलदार होली में,
बुझे दिल की लगी मेरी भी तो एक यार होली में।

गुलाबी गाल पर कुछ रंग मुझको भी जमाने दो,
मनाने दो मुझे भी जाने-मन त्यौहार होली में।

है रंगत जाफ़रानी रूख अबीरी कुम कुम कुच है,
बने हो खुद ही होली तुम ऐ दिलदार होली में।"[1]

लोक पर्वोत्सवों के चित्रण में डॉ॰ कुँअर बेचैन भी पीछे नहीं रहे हैं उन्होनें दीपावली और होली जैसे त्योहारों के संदर्भ अपनी 'सच्चा फ़क़ीर आज तक बूढ़ा नहीं हुआ' जैसी ग़ज़लों में प्रस्तुत किए हैं। लोक संस्कृति में लोकमिथक या मिथकीय लोककथाओं का अपना ही महत्व है। एक मिथकीय कथा के अनुसार गजेन्द्र नामक हाथी पर मकर का आक्रमण होने पर उसके द्वारा रक्षार्थ विष्णु से प्रार्थना किए जाने पर वे मकर का शिरोच्छेदन कर उसकी रक्षा करते हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र इसी मिथकीय लोककथा का संदर्भ लेकर अपनी बेखटके गज़ल में लिखते हैं :

"यह अपनी नाथ दयालता तुम्हें, याद हो कि न याद हो।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें, याद हो कि न याद हो।

सुन गज की जैसे ही आपद न, विलम्ब छन का सहा गया।
वही दौड़े उठ कि पिया दे पा तुम्हें, याद हो कि न याद हो।"[2]

कुँअर बेचैन की ग़ज़ल 'आजकल राजा की हम पे महरबानी बंद है' एवं 'हाथ में 'शाकुंतलम' है और मन में प्रश्न है' में दुष्यंत और शकुंतला की प्रसिद्ध लोककथा का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है जिसमें दुष्यंत द्वारा शकुंतला की पहचान के लिए दी गई अँगूठी मछली निगल जाती है, और राजा उसे पहचान नहीं पाते। अपने एक अन्य ग़ज़ल संग्रह 'शामियाने काँच के' में कुँअर बेचैन ने समुद्र सेतु से जुड़ी

लोककथा का हवाला देते हुए राम द्वारा समुद्र से मार्ग प्रदान करने का निवेदन किये जाने वाले प्रसंग को उद्धृत किया है। ग़ज़लकार जहीर कुरैशी के ग़ज़ल संग्रह 'भीड़ में सबसे अलग' की एक ग़ज़ल में 'आदम' और 'हव्वा' की लोककथा मिलती है जिसके माध्यम से वे स्त्री-पुरुष की पारस्परिक अनुपूरकता और साहचर्य के संबंध की वकालत करते हुए बताते हैं कि सृष्टि के निर्माण से दोनों ही प्रकृति की गतिशीलता के लिए अनिवार्यतः साहचर्यगामी बनाए गए हैं, लेकिन जबसे इस साहचर्य के बीच असंतुलन पैदा हुआ है तभी से भावी संततियों के अस्तित्व पर संकट के बादल मँडराने लगे हैं। जहीर कुरैशी के ग़ज़ल संग्रह 'भीड़ में सबसे अलग' में वे लिखते हैं :

''आदम' की दृष्टि 'हव्वा' से टकराई पहली बार,
उस एक पल में सैकड़ों सदियाँ गुजर गईं।''[3]

आशय यह है कि 'आदम' और 'हव्वा' इस सृष्टि का प्रथम युगल था जिससे मानव जीवन अस्तित्व में आया। उस समय से लेकर आज तक दोनों ही एक-दूसरे के आकर्षण का प्रमुख केंद्र रहे हैं। लेकिन जब से इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है तब से स्त्री जाति वासना, दुराचार, शोषण, दमन, अन्याय और अत्याचार का शिकार होती आई है। स्त्री जाति के किए जाने वाले ऐसे भत्सर्नापूर्ण व्यवहार के उन्मूलन की मंशा से लोक प्रचलित मिथकीय प्रतीकों के माध्मय से हिंदी गज़लकारों ने अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। जहीर कुरैशी की एक अन्य ग़ज़ल 'बोलता है बीज भी' में भी सीता के लिए खींची गई लक्ष्मण-रेखा के प्रसंग को लेकर स्त्री पर आरोपित बंधनों की बात करते हैं। बलवीर सिंह 'रंग' ने अपनी ग़ज़ल 'सारा जीवन गँवाया, तुम्हारे लिए' में अश्कों की नदी के लिए भागीरथी का तो शमशेर ने 'राह जो एक थी हम दोनों की' जैसी ग़ज़लों में राम-रावण के युद्ध से जुड़े रामकथा के विभिन्न संदर्भों के माध्यम से नारी शक्ति का पक्ष लिया है। ग़ज़लकार राजेश रेड्डी की ग़ज़लों में भी लोक प्रचलित रामकथा से जुड़े अग्नि परीक्षा जैसे संदर्भ आए हैं जिनमें स्त्री की गरिमा और आत्म-सम्मान के संरक्षण का पक्ष लेकर ग़ज़लकार यह आशय व्यक्त करते हैं कि जिस प्रकार सीता, राम के सम्मुख अपने सतीत्व की परीक्षा देने खड़ी कर दी गईं थीं उसी प्रकार आज भी स्त्री को अपने हर कदम पर अपने सतीत्व का प्रमाण देने हेतु बाध्य किया जाता है। वे लिखते है :

''रावण के जुल्म सह के अदालत में राम की
सीता खड़ी हुई है गुनहगार की तरह।''[4]

महाभारत में द्रोपदी का चीर-हरण भी एक ऐसा ही प्रसंग है जिसके माध्यम से स्त्री जाति पर होते कुठाराघात के प्रति पाठकों की संवेदना जागृत करने का प्रयास जहीर कुरैशी ने किया है। उनके गज़ल संग्रह 'समंदर ब्याहने आया नहीं है' की ग़ज़लों में द्रोपदी-चीर-हरण जैसे प्रसंगों के समावेश से वे लोक प्रतीक का सहारा लेकर यह बताने का प्रयास करते हैं कि स्त्री जाति की गरिमा से ही हमारे समाज और संस्कृति की गरिमा है। यदि उसके गौरव को क्षति पहुँचती है तो उसका परिणाम महाभारत के कौरवों की तरह पूरे समाज को भोगना होगा। लेकिन आज के देहलोलुप मनुष्य इन गंभीर परिणामों को अनदेखा कर अत्याचार और शोषण में संलिप्त हैं। लोगों की भीड़ के सामने आज भी स्त्री का चीर हरा जा रहा है। ग़ज़लकार के शब्दों में :

''डूबते ही परी-कथाओं में,
हम भी उड़ने लगे हवाओं में

अपने तन-मन को बेच देने की,
होड़ है, इन दिनो, कलाओं में

आज भी द्रौपदी का चीर-हरण,
हो रहा है भरी सभाओं में।''[5]

स्वाधीनता से पूर्व विभिन्न कारणों से बालविवाह, पर्दाप्रथा, सतीप्रथा जैसी कई कुप्रथाएँ प्रचलित थीं। सतीप्रथा का उन्मूलन राजा राममोहन राय के अथक प्रयासों के फलस्वरूप तत्कालीन समाज से हो सका।

सतीप्रथा की भयावहता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि उसमें किसी विवाहिता के पति का निधन हो जाने पर उसकी पत्नी को सती के नाम पर जीवित ही अग्निस्नान के लिए बाध्य कर दिया जाता था। आज के समाज में स्त्री की अस्मिता भी ऐसे ही कुसंस्कारों की अग्नि में जला दी जा रही है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुप्रथा पुनर्जीवित होकर अथवा रूप बदलकर समाज में पुनः पैर जमा चुकी है। स्त्री जाति पर हो रहे अत्याचारों को देखकर लगता है कि यह प्रथा कभी समाप्त ही नहीं हुई बल्कि उसका स्वरूप बदल दिया गया है। दहेज, प्रताड़ना, संतति आदि ऐसी ही समिधाएँ हैं जिनकी वेदी पर आज भी स्त्री को सती बनाया जा रहा है। जहीर कुरैशी के ग़ज़ल संग्रह 'चाँदनी का दुःख' की एक ग़ज़ल इसी प्रथा की ओर संकेत करती है जिसमें वे कहते हैं :

''कल सती होकर जली थी, आज पति के हाथ,
बन गई जीवित जलाने की 'प्रथा' औरत!''[6]

इसी प्रकार कुँअर बेचैन की 'दीवारों पर दस्तक' में मोरपंख और कुंभकरण जैसे लोक प्रतीकों के माध्यम से आज की विद्रूपताओं को दिखाने का प्रयास किया गया है। लोकप्रचलित लोककथाओं के इन मिथकीय लोक प्रतीकों में सीता और द्रोपदी जैसी सतीव्रत्रा स्त्रियों के प्रतीकों का उदाहरण देते हुए ग़ज़लकार स्त्री की सशक्तता की ओर संकेत करते हुए यह भी बताने से नहीं चूकते कि यदि अत्याचार का यह क्रम नहीं रुका तो 'कैकई के अभी तीन 'वर' शेष हैं' (जहीर कुरैशी की ग़ज़ल)। लोकसंस्कृति के अंगों में सर्वाधिक लोकप्रिय लोक गीत माने जाते हैं। लोकगीतों के परिवार में भजन और कीर्तन भी शामिल किए जाते रहे हैं। डॉ॰ कुँअर बेचैन के गज़ल संग्रह 'महावर इंतजारों का' में वे उनकी धर्मपत्नी श्रीमती संतोष कुँअर को 'भजन की किताब' कहते हुए सम्मान देते हैं तो 'कृष्ण के भजन बनके बज रही है बाँसुरी' और 'ज़िंदगी यूँ भी जली, यूँ भी जली मीलों तक' जैसी ग़ज़लों में राधा-कृष्ण के लोक प्रतीकों का प्रयोग करते हुए प्रेम की गहराई और स्त्री-पुरुष की पारस्परिक संपूर्णता का अंकन करते हैं। कृषि भारतीय लोकजीवन का आधार और केन्द्र बिंदु है। भारत देश का दो तिहाई से भी अधिक भाग आज भी प्रत्यक्षतः कृषि पर निर्भर रहकर जीवन यापन करता है इसलिए हिंदी ग़ज़लों में कृषि से जुड़े संदर्भों का आना स्वाभाविक ही है। जहीर कुरैशी के ग़ज़ल संग्रह 'बोलता है बीज भी' में फसलों की बुआई और कटाई से जुड़े संदर्भ मिलते हैं तो 'रास्तों से रास्ते निकले' में खेत-खलिहान और गाँव की मिट्टी को लेकर किसान की भावनात्मक संवेदना को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। वे लिखते हैं :

''खेत-खलिहानों में उड़कर रह गई
गाँव की मिट्टी शहर आई नहीं।''[7]

यह सर्वविदित है कि जल के अन्य स्रोतों के होते हुए भी कृषि का अधिकांश भाग वर्षाजल पर निर्भर होता है। जहीर कुरैशी की ये पंक्तियाँ संकेत करती हैं कि वर्षा का अभाव हो जाने पर इसका विपरीत प्रभाव फसलों पर होगा जिसके कारण पैदावार कम होगी और कृषि से जुड़े सभी कार्यों में किसान का संघर्ष प्रारंभ हो जाएगा फलतः मिट्टी से उसे अपेक्षानुरूप फसल प्राप्त नहीं हो पाएगी जिससे वह किसान उस फसल का विक्रय कर परिवार का पेट पाल सके अथवा दो जून की रोटी की व्यवस्था कर सके। कृषि जीवन के ऐसे ही संदर्भ ग़ज़लकार किशन तिवारी के ग़ज़ल संग्रहों 'भूख से घबराकर', 'आपकी सेवा में', 'सोचिए तो सही', 'मैं तुम हो जाऊँ', 'सारथी मैं हूँ' आदि की ग़ज़लों में मिलते हैं। ग़ज़लकार किशन तिवारी की ग़ज़लों के महत्व का रेखांकन करते हुए डॉ॰ वशिष्ठ अनूप लिखते हैं ''उनकी संवेदना का प्रसार गाँव से लेकर महानगर तक हं। उन्होंने किसानों और मज़दूरों के जीवन-संघर्ष को देखा है। शहरों में बड़ी मुश्किल से निम्न-वर्ग और निम्न-मध्यवर्ग को पसीने से लथपथ और लहूलुहान होकर किसी तरह

परिवार की गाड़ी को खींचते हुए देखा है और उसके दर्द-संवेदना को धरातल पर आत्मसात् किया है।... वह खुद भी नये-नये विषयों पर लिखते हैं और दूसरों को भी प्रेरित करते हैं :

''इक नया किरदार अब इस लेखनी को चाहिए,
और पैनी धार अब इस लेखनी को चाहिए।

खेत में जोते गये हैं बैल भी, हम लोग भी,
फ़स्ल का त्योहार अब इस लेखनी को चाहिए।''[8]

इसी प्रकार तहज़ीब हाफी, मधुवेश, बल्ली सिंह चीमा, रामकुमार कृषक, लवलेश दत्त, हरेराम समीप, श्याम वशिष्ठ, डॉ॰ वशिष्ठ अनूप, ज्ञानप्रकाश विवेक, डी॰ एम॰ मिश्र, विनय मिश्र, डॉ॰ भावना, आर॰ पी॰ घायल, तहज़ीब हाफी, अनिरुद्ध सिन्हा, देवमणि पांडेय, रामचरण राग, विनीता गुप्ता, राहुल शिवाय, विज्ञान व्रत, पुरुषोत्तम यक़ीन आदि हिंदी के कई ग़ज़लकार हैं जिनकी ग़ज़लों में ग्राम, ग्रामीण जीवन और उसकी लोक संस्कृति, गाँव का परिवेश, नगरीकरण का प्रभाव, आँचलिकता आदि कथ्य बनकर उपस्थित हुई है। मैथिलीशरण गुप्त की 'अहा ग्राम जीवन भी क्या है' को देखा जा सकता है जिसमें संपूर्ण ग्रामीण जीवन का सार समाहित हो गया है :

''अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे
सबका मन चाहे,
थोड़े में निर्वाह यहाँ है,ऐसी सुविधा और कहाँ
है?...........
.............सीधे-साधे भोले-भाले, हैं ग्रामीण
मनुष्य निराले।
एक-दूसरे की ममता हैं, सबमें प्रेममयी समता है,
अपना या ईश्वर का बल है, अंतःकरण अतीव सरल है।
छोटे-से मिट्टी के घर हैं, लिपे-पुते हैं, स्वच्छ-सुघर हैं,
गोपद-चिह्नित आँगन-तट हैं, रक्खे एक और जल-घट हैं।
खपरैलों पर बेलें छाई, फूली-फली हरी मन भाई,
अतिथि कहीं जब आ जाता है, वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे, कोई संबंधी हो जैसे,
जगती कहीं ज्ञान की ज्योति, शिक्षा की यदि कमी न होती
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते पूर्ण शांति रस में सन जाते।''[9]

अदम गोंडवी की ग़ज़ल 'मुसलसल फन का दम घुटता है इन अदबी इदारों में', सलीम बेताब की ग़ज़ल 'शहरों की खाक़ छान कर आया हूँ गाँव में', नीरज गोस्वामी की ग़ज़ल 'मेरे बचपन का वो साथी है अभी तक गाँव में', देवमणि पांडेय की 'सावन की पुरवइया गायब' जैसी ग़ज़लों को कृषक जीवन की झाँकी का प्रभावशाली चित्रण कहा जा सकता है। फसल अच्छी न होने पर दो जून की रोटी का इंतजाम कठिन हो जाता है। इस कठिन समय में किसान नून-तेल-रोटी से ही अपना गुज़ारा कर संतुष्टि करते हुए अगली फसल के लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार करने लगते हैं। डॉ॰ वशिष्ठ अनूप जी की ग़ज़ल में आर्थिक अभाव की तुलना में माँ की ममता रूपी संपत्ति के धनी गरीब की यही झाँकी दिखाई देती है। वे लिखते हैं :

''गाँव-घर का नज़ारा तो अच्छा लगा,
सबको जी भर निहारा तो अच्छा लगा।

गर्म रोटी के ऊपर नमक-तेल था,
माँ ने हँस कर दुलारा तो अच्छा लगा।''[10]

गाँवों में गुल्लक बैंक का काम करती है और आर्थिक अभाव की स्थिति में घर के खर्च का भार उठाकर गाढ़े वक्त में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। हिंदी गज़लकारों की सूक्ष्म दृष्टि किसानों के गाढ़े की साथी इसी 'गुल्लक' पर गई और उन्होंने इसे अपनी कहनी का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत कर दिया। जहीर कुरैशी अपनी कई गज़लों 'जन-कथाओं के नायक बनें', 'जिन्दगी से बड़ा जिन्दगी का समर', 'पेड़ तन कर भी नहीं टूटा' आदि में गुल्लक का महत्व बताते हुए उसके कई संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है :

1) ''दिन में सौ बार खनखनाती है
एक बच्चे की बंद गुल्लक है।''[11]

2) ''बच्चे का स्वप्न टूट न जाए ये सोच कर
गुल्लक को खनखनाने की हिम्मत नहीं हुई।''[12]

3) ''जन-कथाओं के नायक बनें, 'राम' खुशबू-से व्यापक बनें
मनचली तितलियों के लिए, फूल ही सिर्फ चुंबक बनें
यार, कितना मज़ा आएगा- हम भी बच्चों की गुल्लक बने!''[13]

अशोक अंजुम की ग़ज़ल ग्रामीण जीवन के संस्कारों की वह सूरत दिखाती है जिससे यह संतोष होता है कि अभी भी पाश्चात्य जगत् और शहरीकरण की दूषित आब-ओ-हवा ने ग्रामीण संस्कृति को पूरी तरह संक्रमित नहीं किया है। जहाँ कई ग़ज़लकारों ने यह बताया है कि जैसे-जैसे गाँव खाली होते जा रहे हैं वैसे-वैसे ग्रामीण बुजुर्गों की माली हालत दयनीय होती जा रही है वहीं चकाचौंध भरे जमाने में अशाके अंजुम की गज़ल का यह शेर आशान्वित करता है कि हमें अपनी संतति के प्रति आशा अभी त्यागनी नहीं चाहिए। वे लिखते हैं :

''डूबती उम्मीद को फिर रोशनाई दे रहा है
वो पिता के हाथ में पहली कमाई दे रहा है।''[14]

गाँवों के लोक जीवन में अपनी बात को धारदार बनाने के लिए बड़े-बुजुर्गों द्वारा कहावतों और मुहावरों का सामान्य रूप से बोल-चाल की भाषा में निरंतर प्रयोग किया जाता रहा है। इसी से प्रभावित होकर हिंदी के कई ग़ज़लकारों ने इन लोक प्रचलित मुहावरों और कहावतों का प्रयागे कर अपनी गज़लों में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने का प्रयास किया है। कुँअर बेचैन के ग़ज़ल संग्रह 'शामियाने काँच के' में 'भौंहें तानना', 'आँखें तरेरना' जैसे मुहावरों के साथ-साथ 'जो डर जाते हैं डर जाने से पहले, वो मर जाते हैं मर जाने से पहले' तथा 'जिनकी नाभि में कस्तूरियाँ हैं, उन्हें जलता हुआ जंगल मिलेगा' के माध्यम से कहावतों का प्रयोग करते हुए ग्रामीण जीवन को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास मिलता है। जहीर कुरैशी के गज़ल संग्रह 'दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक' में भी 'जो बोया, वो काटना' जैसी कहावतों का प्रयोग ग्रामीण वातावरण के बिम्ब को उपस्थित करने में पर्याप्त सक्षम रहता है। ग़ज़लों को हिंदी का परिधान पहनाकर उसे भारतीय संस्कृति की पहचान देने वाले ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में भी लोक भाषिक शब्दावली का प्रयोग मिलता है। वे लपट, ओसारे, छप्पर, खँगाल, ढेला, अलाव, आदि शब्दों का प्रयोग करके अपनी ग़ज़लों के पैनेपन को स्वीकारणीय बना देते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है :

''पुराने पड़ गये डर, फेंक दो तुम भी
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी

लपट आने लगी है अब हवाओं में
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी

यहाँ मासूम सपने जी नहीं पाते
इन्हें कुंकुम लगा कर फेंक दो तुम भी.....''[15]

दुष्यंत कुमार की ही तरह डी॰ एम॰ मिश्र की ग़ज़ल 'गाँव में अपने गली है गैल है' में गैल, छप्पर, खपरैल, देह, बालू, माटी, रेह, पिछौरी, भेली, जैसे लोकप्रयुक्त शब्दों का या जहीर कुरैशी की ग़ज़ल 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा' में आए देशज शब्दों का ही उदाहरण ले लिया जाए तो हम पायेंगे कि इस संग्रह की गज़लों में किवाड़, चौखट, उपले, चूल्हा एवं अन्य ग़ज़लों में धत करम, देहरी जैसी आंचलिक शब्दावली का प्रयोग उनकी ग़ज़लों को जीवंत बना देता है। लोक संस्कृति में लोकानुष्ठानों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये लोकानुष्ठान स्थानीय लोकदेवता-देवी और उनसे सम्बन्धित धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, लोकविश्वासों आदि के माध्यम से समाज को शासित करते हैं। लोक देवी-देवताओं से संबंधित देव-स्थान, चबूतरा, थान आदि मिलते हैं जहाँ उनको मानने वाले, भक्त या अनुयायी समय विशेष पर जाकर उनकी आराधना, भजन-कीर्तन, भोज-भोग आदि करते हैं। ऐसे लोकदेवों से संबंधित कई विश्वास भी प्रचलित हो जाते हैं इन्हें लोक विश्वास कहा जाता

है। लोक विश्वासों में कई रूढ़ियों की श्रेणी में आ जाने के कारण अंधविश्वास भी कहलाने लगे हैं लेकिन अभी भी उनका प्रचलन समाज में दिखाई देता ही है। इनमें तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक, जादू-टोना-टोटका, गंडा-ताबीज जैसी क्रियाओं का समावेश भी रहता है। प्यारेलाल शोकी की एक ग़ज़ल में ताबीज और तूमार जैसी सामग्री का उल्लेख इसी तत्व की ओर संकेत करता है। ग़ज़लकार लिखते हैं :

''जिन प्रेम रस चाखा नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ
जिन इश्क में सर ना दिया, सो जग जिया तो क्या हुआ

ताबीज औ तूमार में सारी उमर जाया किसी
सीखे मगर हीले घने, मुल्ला हुआ तो क्या हुआ...।''[16]

लोकानुष्ठानों की इस समष्टि को लोक धर्म के नाम से भी जाना जाता है। जिसमें लोक देवता के रूप में कभी पूर्वज-पुरखों का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है तो कभी राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश आदि के लोक प्रचलित रूपों को लोक देवी-देवता के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है। हिन्दी ग़ज़लों में भी ऐसे कई संदर्भ हैं जिनमें इन लोक देवी-देवताओं संबंधी अनुष्ठान, पूजन पद्धति, कंठी, माला, तस्वीह, आदि को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हुए भारतीय लोकजीवन में प्रचलित लोकानुष्ठानों की विविधता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। कुँअर बेचैन के गज़ल संग्रह 'महावर इंतजारों का', अश्विनी कुमार पाण्डेय के 'अहसास के साये तले', जहीर कुरैशी की गज़ल 'जन-कथाओं के नायक बनें' और दिनेश शुक्ल की ग़ज़ल 'मौसम तनी गुलेल' आदि में राम, कृष्ण और शिव जैसे देवों से जुड़े के कई संदर्भ प्रयुक्त हुए हैं, जिनकी आराधना से लोक मानस विपरीत समय में प्रेरणा ग्रहण करके अपने कर्तव्यों के पालन का बल प्राप्त करता है। कुँअर बेचैन के गज़ल संग्रह 'शामियाने काँच के' से निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

''राम को शायद उठाना ही पड़ेगा फिर धनुष,
तू ना मानेगा क्षमा से ओ समुन्दर शुक्रिया।''[17]

गाँवों के लोकजीवन का सर्वप्रमुख तत्व उसमें व्याप्त मिलनसारिता, सामूहिकता या सहकारिता की भावना है। इस में एकाधिकार की बजाए सार्वग्राहिकता और सार्वभौमिकता को महत्व दिया जाता है। इस संस्कृति की मान्यताएँ, परंपराएँ, रीति-रिवाज और आचार-विचार किसी एक के न होकर सबके लोकाचार हो जाते हैं और सामूहिक सामान्य स्वीकृति से सबके द्वारा अपनाए जाते हैं। लोक संस्कृति की यही सहकारिता की भावना हिंदी गज़लों में भी मिलती है। इसी के मद्देनज़र प्रसिद्ध गज़लकार मुनव्वर राणा की ग़ज़ल का एक शेर है :

''तुम्हारे शहर में मय्यत को सब कांधा नहीं देते
हमारे गाँव में छप्पर भी सब मिलकर उठाते हैं।''[18]

लोक संस्कृति में लोकाचारों या लोक व्यवहारों का बहुत महत्व है। ये लोकाचार रहन-सहन, आचार-विचार और तौर-तरीकों का प्रतिबिम्ब होते हैं। हिंदी ग़ज़लों में लोकाचारों के कई प्रसंग मिलते हैं। मधुवेश ने अपनी ग़ज़ल 'कदम कदम पर चौराहे' में 'हाथ पीले कर गया घनश्याम बेटी के मगर' और कुँअर बेचैन ने गज़ल संग्रह 'महावर इंतजारों का' की गज़ल 'तुम तो एसे खो गए हो, जैसे विवाह के दिन' में विवाह के लोकाचारों पर प्रकाश डाला है, तो जहीर कुरैशी ने भी 'जिन्दगी से बड़ा जिन्दगी का समर' में विवाह के सात फेरों संबंधी रीति-रिवाजों के साथ-साथ लोक जीवन में प्रणाम-पाती और दुआ-सलाम के महत्व को रेखांकित किया है। वे लिखते हैं :

''गाँवों में हो ही जाती है रुककर दुआ-सलाम
शहरों में देह चलती नहीं, दौड़ती रही।''[19]

कुँअर बेचैन के ग़ज़ल संग्रह 'शामियाने काँच के' की ग़ज़ल 'मत उसको खींच-खींच के बाहर निकालिए' में उन्होंने सीता के पाँव की बिछिया के माध्यम से सुहागिनों के महत्वपूर्ण आभूषणों की ओर संकेत किया है। जो लोक संस्कृति के सोलह शृंगारों में विशेष स्थान रखता है। इसी प्रकार उनके ग़ज़ल संग्रह 'रस्सियाँ पानी की' की ग़ज़ल 'दुलहिनों के

भाल के ऊपर' में माँग भरती दुलहिनों और अविवाहित कन्याओं द्वारा त्योहार एवं अन्य लोक पर्वोत्सवों के समय मेंहदी रचकर श्रृंगार संस्कार किए जाने का उल्लेख किया है। मेंहदी भारतीय लोक संस्कृति की एक महत्वपूर्ण लोककला है जिसे महावर, हल्दी, उबटन के समान ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके अतिरिक्त लोक परिधान की श्रेणी में शामिल वस्त्राभूषों को भी कुँअर बैचेन की ग़ज़लों में समुचित स्थान दिया गया है। उन्होंने 'महावर इंतजारों का' में कंगन और बिछिया जैसे आभूषणों के संदर्भ प्रस्तुत किए हैं, तो जहीर कुरैशी ने 'दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक' में घुँघरू और 'निकला न दिग्विजय को सिकंदर' में पायल के माध्यम से लोक परिधानों संबंधी रिक्तता को पूर्ण किया है। इसी संदर्भ में लाला भगवान दीन के गज़ल संग्रह 'नदी में दीन' की एक ग़ज़ल महत्वपूर्ण है जिसमें वे मेंहदी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :

''तुमने पैरों में लगाई मेंहदी मेरी आँखों में समाई मेंहदी।

है हरी ऊपर मगर अन्दर है लाल, है ये जादू की जगाई मेंहदी।.....

.....चूनरी से है सवाई मेंहदी, दीन को इस हेतु लाई मेंहदी।''[20]

लोक जीवन में जितना आवश्यक घर की लक्ष्मी का श्रृंगार है उतने ही महत्वपूर्ण मनोरंजन के वे साधन हैं जिनका उपयागे जनमानस बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक करता है। इसमें बालक-बालिकाओं के खेल भी आते हैं, लोकसंगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य और लोकनाट्य भी आता है और बड़े बुजुर्गों के चौसर के खेल आदि भी सम्मिलित किए जाते हैं। गज़लकार हस्तीमल 'हस्ती' द्वारा ग़ज़ल संग्रह 'कुछ और तरह से भी' की ग़ज़ल 'मेरे घर के रस्ते में है मस्जिद भी बुतखाना भी' के अंतर्गत लोकवाद्य के रूप में शंख की बात की है तो कुँअर बेचैन ने भी 'महावर इंतजारों का' में लोकवाद्य बाँसुरी और मंजीरे के संदर्भ दिए हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी ग़ज़लकार कुँअर बेचैन ने 'शामियाने काँच के' में संकलित ग़ज़ल 'काँप कर घायल स्वरों की चीख ने हमसे कहा' में गुलेल और कंचों के खेल पर भी प्रकाश डाला है। कुँअर बेचैन 'दीवारों पर दस्तक' की एक ग़ज़ल में मकर संक्रांति पर्व पर उड़ायी जाने वाली पतंग को भी संदर्भित करते हैं। इस प्रकार हिंदी गज़लों में लोक सांस्कृतिक तत्वों में अधिकांश को विभिन्न संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। इन संदर्भों को समायोजित करने पर हमें पूरे भारत की लोक सांस्कृतिक छवि के दर्शन हो सकते हैं। इस दृष्टि से जहीर कुरैशी की निम्न पंक्तियाँ प्रासंगिक हो जाती हैं :

''जब तक चुप रहता है, वो आसान दिखाई देता है

धूल-धूसरित, दुर्गम, सुविधाहीन गाँव की आँखों में

मुझको एक समूचा हिन्दोस्तान दिखाई देता है।''[21]

उपसंहार :

लोक सांस्कृतिक तत्वों के निरूपण की दृष्टि से हिंदी गज़लों के अध्ययन पर ज्ञात होता है कि भारतेन्दु हरिशचंद्र से लेकर इक्कीसवीं सदी के युवा ग़ज़लकारों तक किसी न किसी रूप में हिंदी ग़ज़लकारों ने लोकजीवन के विविध आयामों को अपने कथ्य का विषय बनाते हुए अपनी ग़ज़लों की भावभूमि पर लोक मानस के विभिन्न प्रसंगों को उठाकर उसके संदर्भ प्रस्तुत करने के प्रयास में बहुत हद तक सफलता प्राप्त की है। इन ग़ज़लकारों में ग़ज़ल को 'मुक्तिका' की संज्ञा देने वाले चंद्रसेन 'विराट', कुँअर बेचैन, जहीर कुरेशी, शमशेर बहादुर सिंह, गोपालदास 'नीरज', रामकुमार कृषक, आदि के योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता तथापि लोक सांस्कृतिक तत्वों के संदर्भ और प्रसंगो के निरूपण से यह परिलक्षित होता है कि हिंदी ग़ज़ल में लोक संस्कृति का चित्रण अभी प्रारंभिक अवस्था में है। जिस प्रकार सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों को लेकर गज़लों में गहन चिंतन-मनन और विमर्श देखने को मिलता है उसी प्रकार जब मैथिलीशरण गुप्त की 'अहा ग्राम जीवन भी क्या है' तथा नीरज गोस्वामी की 'मेरे बचपन का वो साथी है अभी तक गाँव में'

जैसी ग़ज़लें लोकजीवन और लोक संस्कृति के विभिन्न अंगों, आयामों, तत्वों, विशेषताओं और प्रवृत्तियों के चित्रण में समर्थ होंगी तभी हिंदी ग़ज़ल को वह प्रौढ़ता प्राप्त हो सकेगी जिसे सच्चे अर्थों में भारतीयता का प्रतिबिम्ब कहा जा सकेगा। हिंदी गज़लों में लोक सांस्कृतिक तत्वों के निरूपण की वर्तमान अवस्था की समीक्षा की जाए तो दिखाई देता है कि अभी भी लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकचित्रकला, लोकचिकित्सा, लोकपकवान, लोकदर्शन, लोकविज्ञान, लोरियाँ, पहेलियाँ आदि की अभिव्यक्ति हिंदी ग़ज़लों से ओझल दिखाई देती है। जबकि लोकगीत, लोकनृत्य, लोकायुध, लोकसुभाषित आदि के यदाकदा कुछ संदर्भ कुछेक ग़ज़लों में दिखाई देते हैं। लोकमिथक, लोक प्रतीक, लोक कथा, लोकानुष्ठान, लोक बोली, लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयागे ग़ज़लों में अब सामान्य रूप से किया जाने लगा है, जिसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिंदी ग़ज़लों में लोक सांस्कृतिक तत्वों का निरूपण निरंतर प्रगति की आरे अग्रसर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. दास ब्रजरत्न (सं॰), भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग-2, काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1953, पृ॰-422
2. दास ब्रजरत्न (सं॰), भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग-2, काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1953, पृ॰-549
3. कुरैशी जहीर, भीड़ में सबसे अलग, दिल्ली : मेधा बुक्स, 2003, पृ॰-69
4. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2009, पृ॰-21 संदर्भित- अपनी माटी, अंक-35-36, जनवरी-जून 2021, https://www.apnimaati.com/2021/07/blog-post_94.html
5. कुरैशी जहीर, डूबते ही परी-कथाओं में, कविता कोश, https://tinyurl.com/245vkjax
6. कुरैशी जहीर, चाँदनी का दुःख, दिल्ली : पराग प्रकाशन, 1986, पृ॰-117
7. कुरैशी जहीर, रास्तों से रास्ते निकले, नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2017, पृ॰-50
8. अनूप वशिष्ठ, हिंदी ग़ज़ल का परिप्रेक्ष्य, नई दिल्लीः राजकमल पेपर बैक्स, 2018 (9वाँ), पृ॰-106
9. गुप्त मैथिलीशरण, अहा ग्राम्य जीवन, साहित्य विमर्श, https://tinyurl.com/p8xp6cvu
10. अनुप वशिष्ठ, गाँव-घर का नज़ारा तो अच्छा लगा, कविता कोश, https://tinyurl.com/mpsvsuac
11. कुरैशी जहीर, पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, नई दिल्लीः अयन प्रकाशन, 2010, पृ॰-35
12. कुरैशी जहीर, ज़िन्दगी से बड़ा ज़िन्दगी का समर, नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2019, पृ॰-24
13. कुरैशी जहीर, जनकथाओं के नायक बनें, कविता कोश, https://tinyurl.com/2d9s8cmt
14. भावना, हिंदी ग़ज़ल में बुजुर्गों की स्थिति, कविता कोश, https://tinyurl.com/yc7um72a
15. कुमार दुष्यंत, पुराने पड़ गये डर, फेंक दो तुम भी, कविता कोश, https://tinyurl.com/4nwnve6d
16. शोकी प्यारेलाल, जिन प्रेम रस चाखा नहीं, कविता कोश, https://tinyurl.com/4bxdcfb2
17. बेचैन कुँअर, शामियाने काँच के, गाजियाबाद : प्रगीत प्रकाशन, 1983, पृ॰-52
18. राना मुनव्वर, तुम्हारे शहर में मय्यत को सब कांधा नहीं देते, रेख़्ता, https://tinyurl.com/ye2af4b9
19. कुरैशी जहीर, जिन्दगी से बड़ा जिन्दगी का समर, नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2019, पृ॰-97
20. मुजावर सरदार, हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, नई दिल्ली, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ॰-63
21. कुरैशी जहीर, जब तक चुप रहता है, कविता कोश, https://tinyurl.com/mu6mmdn3

जय झरोटिया के चित्रों में रहस्य तत्व

डॉ० ललित मोहन सोनी
सहायक आचार्य
चित्रकला विभाग, दृश्य-कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

सारांश :

मनुष्य का जन्म प्रतिबिम्बों के संसार में हुआ है और इस संसार की प्रत्येक वस्तु में कभी न समाप्त होने वाला प्रतिबिम्ब विद्यमान है। हम इन पर कैसे दृष्टि डालते हैं, कैसे इनका सृजन करते हैं तथा इनके विषय में क्या भाव या धारणा रखते हैं, यह हम पर निर्भर करता है। यह सत्य है कि कोई भी रचनाकार किसी वस्तु की उपस्थिति, आकार, प्रकार, रंग आदि को पूर्णतया अनुभव करता है तभी उसके समकक्ष किसी अन्य वस्तु का सृजन कर पाता है। प्रत्येक कलाकार को इस जगत में सदैव ही एक अज्ञात और नवीन प्रतिबिम्ब की तलाश रहती है। दर्शन, विज्ञान और कला विभिन्न प्रतिबिम्बों के निर्माण में आवश्यक सहयोग करते हैं। परन्तु कला, विभिन्न संस्कृतियों के मध्य इन प्रतिबिम्बों तथा आकारों के आदान-प्रदान में सर्वप्रमुख एवं महत्वपूर्ण कार्य करती है। इन्हीं प्रतिबिम्बों के समान चित्रकार जय झरोटिया को चित्रों में यथार्थ एवं सादृश्य आकृतियों का अभाव है। जय के चित्र कल्पनाजन्य रूपाकारों से पूर्ण हैं। उनके द्वारा रचित बिम्ब अनेक अज्ञात, अबूझ, नवीन और विभिन्न तत्वों के संयोजन से पूर्ण अनुप्राणित आकार हैं जो दर्शकों के अनुभव को शून्य से दर्शन तक पहुंचा देते हैं। चित्रों की विषयवस्तु में उलझ कर रह जाने वाले दर्शक भी इन बिम्बों तथा आकारों में डूबकर, एक कहानी की तरह इनसे आनन्दित हो पाते हैं। जय सामान्य और साधारण दिखने वाले विषयों को त्याग देते हैं तथा अज्ञात और असामान्य की तलाश करते हैं। यह गुण उनके चित्र सृजन करने की प्रक्रिया में दृष्टिगत होता है। उनके रूपाकार रहस्यमयी, असामान्य तथा विलक्षण रूपों में सृजित हैं जो मानव तथा पशु-पक्षियों की प्रजातियों के अंग-प्रत्यंगों से अंतर्गुम्फित हैं तथा इस लोक के नियमों और सिद्धान्तों भिन्न और छिन्न दिखाई देते हैं।

शब्द बीज :
अभिव्यक्ति, रहस्य, प्रतिबिम्ब, अनुप्राणित, अमूर्तन, फंतासी, कायांतरण, कल्पना, संप्रेषण, जादुई सामंज्जस्य।

किसी कालाकार के मूक अभिव्यक्ति करने वाले कार्यों से संबंध स्थापित करने या उनको समझने का सर्वोतम उपाय है कि उस कृति को ही स्वयं का संदर्भ और निर्माण की प्रक्रिया की व्याख्या करने दी जाए और यह अनुभव किया जाये कि चित्र किस प्रकार स्वयं का रहस्य प्रकट करता है।[1] चित्रतल पर आकृति निर्माण के लिए रेखा का अंकन विचरण करता है तो वह चित्र स्वयं की प्रस्तुति संतुलित संयोजन के साथ

करता है तथा अन्य दृश्य या वस्तु की तुलना में दृष्टिगत होता है। ऐसे में दर्शक ऐसी कला से ओत-प्रोत होते हैं जो पिछले निर्धारित अनुभवों को दरकिनार कर, दर्शकों की सुसुप्त चेतन शक्तियों को झकझोरने और उनमें हलचल पैदा करने का कार्य करती है।[2]

जय झरोटिया की आरंभिक कृतियों के विषय में पी॰ एन॰ मागो ने व्यक्त किया है, ''.......70 के दशक के आरम्भ में जय ने शीर्षविहीन रहस्यमयी आकृतियों की रचना की जो आसमान में उड़ती छाया जैसे विन्यासों और आकृतियों में गुम या विलीन हो जाती हैं (चित्र संख्या-01 व 02)। 80 के दशक के मध्य में, ये अधिक लयात्मक नारी आकृतियों में बदल

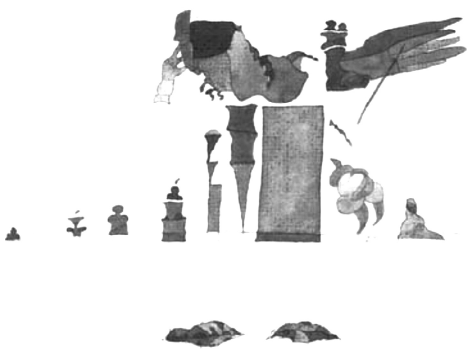

चित्र संख्या-01

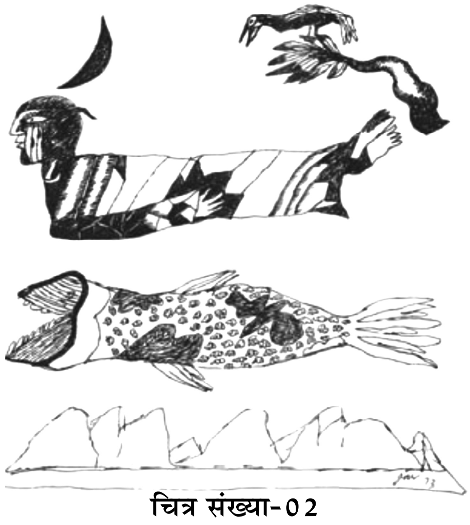

चित्र संख्या-02

गए जो फूलों से बात कर रहीं हैं तथा मानव तथा पशु आकृतियाँ एक दूसरे में विलय हो जा रही हैं......।''[3] जय के कार्यों को देखकर यह समझना कठिन नहीं है कि वे कला की पूर्व निर्धारित मान्यताओं व मूल्यों को अपनी तीव्र रचनात्मक क्रियाशीलता से छिन्न-भिन्न कर देते थे। वे स्वयं सहज बाल सरलता से कहते थे - ''मेरी आँखें मेरे साथ उड़ान भरती हैं। पर कैसे और कहाँ? मैं अपनी नाव को सितारों के पार ले जाना चाहता हूँ, आसमानों में, यहाँ तक कि अज्ञात छोर तक।''[4]

जय के असामान्य से दिखने वाले रेखांकन स्वयं में ही परिपक्वता और पूर्णता की विशिष्टताओं से युक्त हैं। ये विशेषताएं त्वरित क्रिया से अंतस पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। इन आकारों की सर्जनाओं में प्राकृतिक आकारों के विभिन्न रूप एकाकार होते या एक-दूसरे में परिवर्तित होते प्रतीत होते हैं (चित्र संख्या-03)। नजरों के सम्मुख विचित्र अहसास उत्पन्न होता है जैसे कि 'भूतो न भविष्यति' प्रभाव वाला कोई नाटकीय घटनाक्रम चलायमान हो रहा हो। पहले कभी दृश्यमान न हुए रूपों के आकार, अज्ञात ऊर्जा के प्रभाव से गतिमान होने लगते हैं। यही गुण चित्रकार जय के कल्पनाशील सृजन का अप्रतिम, अभूतपूर्व तथा विलक्षण प्रस्तुतिकरण है। जय कहते हैं, ''मेरी आकृतियाँ मस्तिष्क के गहरे क्षेत्रों में सृजित होती हैं जहाँ अगिनत असंख्य आकारों को लगातार उकेर कर विशिष्ट रूप प्रदान किया जाता है। मेरे रेखांकन अंतरतम अवस्था की क्रियाओं के प्रतिबिम्ब हैं और वे

चित्र संख्या-03 : छल योगिनी

अपना स्वयं का कलातमक और अर्थपूर्ण अस्तित्व प्राप्त करते हैं....।''[5]

जय झरोटिया अपनी रचनाओं में जिन कूटों, संकेतों व चिन्हों के माध्यम से सुंदरता, अंतराल और आकर्षण उत्पन्न करते हैं, वे सभी अद्वितीय तथा प्रशंसा के योग्य हैं। जय झरोटिया का मानना था कि अमूर्तन के बिना चित्रकला का कोई आधार नहीं है। चित्र को अर्थपूर्ण और आकर्षक दिखने के लिए अमूर्तन की निश्चित और बाध्य आवश्यकता है। इसीलिए जय की लगभग सभी रचनाओं में संपूर्ण, सरल प्राकृतिक आकार होते हुए भी कहीं-कहीं अमूर्त कलातत्वों के आश्चर्यजनक उदाहरण देखे जा सकते है (चित्र संख्या-04)। उन्होंने समय-समय पर अपनी कल्पनाशक्ति तथा सृजनशीलता के बल पर पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, यहाँ तक कि विभिन्न वस्तुओं को भी मानव रूप में अंकित किया है। अवचेतन में क्रियाशील उनके मन को जिन कारकों ने उनके चित्र सृजन को सहयोग प्रदान किया है, वह है भारतीय पुराण कथाओं तथा महाकाव्यों का विस्तृत ज्ञान, जिनमें अज्ञात, गूढ़ और रहस्मयी अवस्थाओं में मानव के विभिन्न रूपों का अंकन बहुत कुशलता से किया गया है। जय ऐसे चित्रकार हैं जो उस 'गुप्त स्थान', जहाँ आदि शक्ति संपूर्ण सकारात्मक ऊर्जा और सृजन को पोषकता प्रदान करती है, में प्रवेश कर पाते हैं।[6] जय को अज्ञात रहस्यमयी जगत अपनी ओर खींचता है तथा वर्तमान के यथार्थ में कल्पना को सृजित करने की शक्ति और प्रेरणा प्रदान करता है।

यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि सम्प्रेषण हेतु सदैव समान्तर संसार आवश्यक है। जय का निराकार में विश्वास है, फिर भी स्वयं के मूल से परिचय करने हेतु माध्यम जरूरी है। पुराण आदि ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महर्षियों ने उनमें जिन गूढ़ संकेतों को व्यक्त किया है, चेतन मन उनके प्रति विश्वस्त होने का आग्रह स्वीकार नहीं करता। परन्तु फिर भी वे सत्य और तथ्य से परिचित हो पाने के रहस्य से बांधे रखने में सक्षम हैं और अथाह शक्ति से पूर्ण हैं। इसी प्रकार जय के रेखांकन और चित्रकृतियां भी अवास्तविक, अजीब, अबूझ और खूबसूरती से सृजित हैं, जैसे किसी अन्य समान्तर संसार से उनका आह्वान किया गया हो (चित्र संख्या-05)।[7] आवश्यक और अनिवार्य तत्वों के रूप में कल्पना और रहस्य वे गुण हैं जो जय की सर्जनाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अन्य कई योग्य, बुद्धिमान और ज्ञानी व्यक्ति भी इस रहस्य की थाह लेने और व्याख्या करने की सीमाओं में प्रवेश करने में असफल रहे, परन्तु जय ने सफलतापूर्वक उन रहस्यों में गोते लगाए जो उनके गहरे अंतस में छिपे थे, और वे जय चित्रों में एक्रेलिक, टेम्परा, एचिंग, तैलरंग, आदि माध्यमों का सहारा पाकर फंतासी युक्त चित्रावली के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।[8] उनकी कलाकृतियों में उत्पन्न रहस्य इस अनूठे रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन से तारतम्य स्थापित कर लेते हैं। जय के जलरंग माध्यम में निर्मित लघु कार्य अपने अबूझ, अद्भुत और चित को मोह लेने वाले चरित्रों और आकार इस चलाचल जगत की अवलोकन करने की यथार्थ और परंपरागत

चित्र संख्या-04 : सुकून ढूँढ़ते लोग

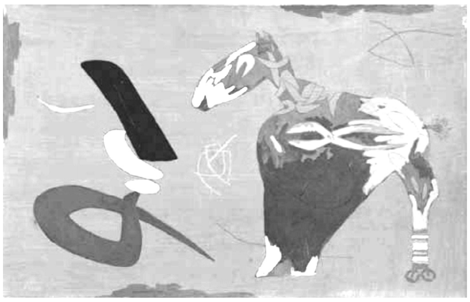

चित्र संख्या-05 : मिस्ट्री

परिभाषा को खण्डित कर, व्याख्या की नवीन अवधारणा को स्थापित करते हैं (चित्र संख्या-06)। जय अपने रहस्यमयी और स्थूल आकारों के लिए अपनी कला में विलक्षण रचनात्मक से रंग-बिरंगे तथा उन्मादी और भ्रमपूर्ण प्रस्तुतिकरण की आड़ में अपनी गहन चिंतनशील दशा को छुपा देते हैं।[9]

चित्र संख्या-06 : मेरी पियारी

जय झरोटिया के कार्य मूक और संवाद के मध्य संचार माध्यम हैं। उनके चित्रों में यथार्थ आकार तथा उनसे संबद्ध काल्पनिक आकार, दृश्यात्मकता से परे हैं। ये आकार, उनके मध्य के संवाद और संचार के विषय में जानने की जिज्ञासा पैदा करते हैं। इसी कारण जय के चित्रों में कला, रहस्य तथा गूढ़ तत्वों को अहसास करने के आनन्द की प्राप्ति होती है। चित्रधरातल के किनारों और कोनों में अंकित लघु आकार के रेखांकन चित्रों का सारा रहस्य खोल देते हैं। एक चित्र में एक मानव का चेहरा है जैसे सांप कुण्डली मार कर बैठा हो और उसके सामने घोड़े जैसी दिखने वाली एक अबूझ सी आकृति है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे दोनों के बीच एक संवाद चल रहा हो (चित्र संख्या-05)। जय के चित्रों में दोहरी आकृतियों के अंकन का निरंतर प्रवाह स्पष्ट होता है, जैसे एक आकृति में पुरूष के सिर में फूलदान के समान चेहरा है, एक खम्भा जिसमें एक स्त्री मुख है, कागज की नाव, चौखाने छापे का वस्त्र पहने एक खड़ी मानवाकृति ओर कठपुतली जैसा विकृत आकार का घोड़ा, मानव के सिर वाला पहाड़ों से भी बड़े आकार का पक्षी जो लाल तथा नीली आकृति वाले मनुष्यों को देख दूसरी ओर उड़ा जा रहा है (चित्र संख्या-08), एक चौकोर डिजायन वाली पोशाक जिसमें चाँद छिपा है तथा एक तने पर स्त्री के चेहरे जैसा फूल एक दूसरे से संवाद कर रहे हैं (चित्र संख्या-07), आदि। तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि जय के चित्रों दिखने वाली तथा पशु-पुरुष की मिश्रित आकृतियों के सम्मुख खड़ी स्त्री, क्या इस बनावटी दुनिया में बुद्धिमता का उदाहरण है? या मोहपाश में उलझााने और छलने के उद्देश्य से मात्र एक छद्म रूप है? जय द्वारा रचित बाद की लगभग सभी रचनाओं में द्विविधता की व्यंजना है।[10] उत्सुक प्रवृति वाले जय, अपने अतीत और कल्पनाओं

चित्र संख्या-07 : मिस्ट्री-2

की गहराई में विचरण करते हैं, तथा बहुत ही सरलता और विनोदप्रियता के साथ, दर्शकों को आश्चर्य और आनंद के सागर में गोते लगाते छोड़ देते हैं।

जय झरोटिया ऐसे जगत की कल्पना और रचना करते हैं जिसमें विचित्र परिस्थितियों में मानव चांद को पकड़ कर उसपर अधिकार कर सकता है, वह हवा में मुक्त उड़ता है, पक्षी मानव से अधिक विशाल और वजनी हो जाते हैं तथा पशु-पक्षियों, तथा पौधों के अबूझ और रहस्यमयी तरीके से मनुष्यों वाले चहरे होते हैं (चित्र संख्या-08)। अपनी कलम और तूलिका के प्रभाव से जय विभिन्न पोत के सतहों का सृजन करते हैं। बुनाई के विभिन्न उदाहरण, तान और रंगों की विभिन्न परतें, भांति-भांति की काव्यात्मक और लयात्मक आकृतियां आदि का फंतासी के रूप में

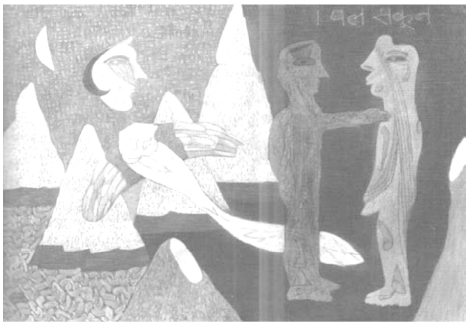

चित्र संख्या-08 : मिस्ट्री सीरीज़-24

परम और चरम अंकन बहुत ही कुशलता और संयमित भाव से उकेरा गया है। चमत्कारिक रूप से उनकी चित्रकृतियां एक ही समय में 'यहाँ और अभी' तथा 'वहाँ और कभी' दोनों भावों का एक साथ अनुभव कराते हैं। कोमलता और कठोरता के विरोधाभास का जादूभरा विलक्षण संयोजन, जय द्वारा जड़ और चेतन के जटिल, आंतरिक और अज्ञात संबंधों की व्याख्या को जानने और समझने के अनवरत् औत्सुक्य भाव का परिणाम है। वे मानते हैं कि मूक प्राणी भी संवाद या संप्रेषण स्थापित करने में सक्षम हैं। वे कहते थे, 'मैं पेड़ों तथा पक्षियों से, तितलियों से, बैल, यहाँ तक कि हवा से संवाद स्थापित करता हूँ तो मुझे महसूस होता है कि एक कागज का टुकड़ा, एक घास का तिनका, यहाँ तक कि दीवारों के धब्बे भी कुछ कह रहे हैं और वही 'कुछ' में अपने चित्रों में लाने का प्रयास करता हूँ।' मार्टिन ब्यूबर के कथन का वे जिक्र करते थे, ''संवाद स्थापित करना संभव है, एक वृक्ष से, बिल्ली से, माइका के टुकडे से, एक कलाकृति से....।'' इस आधार पर जय का विश्वास था कि 'मैं-तुम' का संबंध वस्तु तथा व्यक्ति के मध्य विविधताओं के होते हुए भी दोनों को आपस में जुड़ने का कारण देता है और यह सत्य इस संसार में सभी स्थान पर परिलक्षित होता है।

यथार्थ, रहस्य और फंतासी का विलक्षण और उल्लासपूर्ण संयोजन जय कृतियों में एक सपनों की दुनिया के अहसास के साथ सभी समयकाल तथा अनन्त की भी सटीक व्याख्या प्रस्तुत करता है, उनके विचारों की दुनिया के प्रति उनके नजरिये की श्रृंखलाओं को स्थापित करने का कार्य करता है। उनका यह नजरिया यथार्थ के कठोरतम बोध को अस्वीकार करता है तथा उनकी स्वयं की रहसयमयी प्रवृति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आनंद और आकर्षण से पूर्ण फंतासी का सृजन करता है (चित्र संख्या-09)। यही कारण है कि जय आवेग, उद्देश्य, रहस्य, यथार्थ, कल्पना, कूट, अज्ञात, अबूझ के संयोजन से जो भी रचना करते हैं उसे दर्शक अचंभित और मंत्रमुग्ध होकर निहारते हैं। जय मानते हैं कि विचारों का

चित्र संख्या-09 : अशीर्षक-43

स्वरूप बंधनरहित व असीमित होता है। विचार अपना विस्तार दसों दिशाओं में करते हैं, लययुक्त एकरूपता के साथ अपनी संख्या में वे इस प्रकार वृद्धि करते हैं जैसे कि सपनों की एक निरंतर यात्रा जारी हो। जय कल्पना के साथ इस प्रकार चित्र सृजन करते हैं जैसे वे समय के साथ विचरण कर रहे हों। वे इन कल्पनाओं की विनोदपूर्ण क्रीड़ाओं के साथ संवाद करते हुए उनके साथ एकाकार हो जाते हैं।

जय ने कैनवास को असीमित चित्र-धरातल के रूप में महसूस किया। उन्होंने पाया कि संगीत और सन्नाटा एक साथ गुम्फित हो जाते हैं। वे कहते थे, ''कभी-कभी मैं स्वयं को ज्ञात-अज्ञात के भौतिक और रहस्यमय संसार के बीच विचरण करता हुआ पाता हूँ। जहाँ में ज्ञात रूपों को अज्ञात अमूर्तता और नये यथार्थ में परिवर्तित करता हूँ।''[11] वे यथार्थ और भौतिक आकार में संवाद बनाने हेतु स्वयं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर, नई अवस्था में परिवर्तित कर देते थे।

जिनका सांसारिक रूप में कोई अस्तित्व नहीं था। वे स्थान और अबूझ आकार रहस्यपूर्ण दृश्य चिन्हों के साथ मिलकर विशिष्ट प्रकार के संप्रेषण स्थापित करते थे। इन अज्ञात और अबूझ आकारों ने अन्तः और बाह्य स्थान को अधिकृत कर लिया है, जो स्वयं में सम्पूर्ण संसार हैं और जिनमें आकारों ने एक-दूजे को मजबूती से बांध रखा है (चित्र संख्या-10)। यद्यपि रूप एक दूसरे से नितांत भिन्न हैं तथापि वे आपसी तौर पर दृढ़ता से संबंधित हैं और उनके अदृश्य बंधन उनके पृथक वजूद को कायम रखने की भूमिका में विशेष प्रकार से सहयोगी होते हैं।

चित्र संख्या-10 : अशीर्षक-41

कृतियों में घटने वाली अनंत आकाश की कल्पना, उनसे उद्वेलित प्रतिक्रिया, सृजित पशु-पक्षियों के अंकन का उत्कृष्ट अन्दाज, सब कुछ एक-दूसरे के साथ बोधगम्य ओर योग्य संतुलन का सृजन करता है। यही सत्य है कि जय की रचनाओं में द्विविध आकृतियों का अस्थाई भेद, एक निरंतर संलाप है जिसमें एक ओर उनका सृजनात्मक अंतराल है तथा दूसरी तरफ दर्शक। क्योंकि जय का रचनात्मक प्रक्रम और प्रयास, तर्क और कारण की सीमाओं से मुक्त है, स्वतंत्र है, इसलिए यहाँ प्रत्येक परिस्थित में संवाद संभव है। आकारों और विषयों की परिकल्पना मात्र उसको चित्रित करना नहीं जिसका वर्णन या अर्थ प्रेषित किया जा सके, अपितु उस अज्ञात और रहस्यपूर्ण संसार में गोते लगाना है जो तर्कशील यथार्थ से नितांत परे है।[12]

1. 'अलकेमी ऑफ चांस', शुक्ला सावंत, दिल्ली आर्ट गैलरी, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ संख्या-19
2. 'इवोक सिंगूलैरिटी', रूविना करोडे, टेम्पोररी एग्जीबीशन गैलरी, बिहार संग्रहालय, 2018
3. 'जय झरोटिया : इनोसेंस ऑफ द विजन', प्राणनाथ मागो, आर्ट हेरिटेज, नई दिल्ली, 11, 1993
4. 'झरोटिया : प्राइवेट मिथ एण्ड व्हिम्सी', अमन नाथ, आर्ट टुडे, कनॉट प्लेस, न्यू दिल्ली, 1995
5. 'जय झरोटिया : ए डिस्कसन एण्ड इंटरव्यू विद द ऑथर इन द आर्टिस्ट्स स्टूडियो', अप्रैल, 1993
6. 'भारत की समकालीन कला : एक परिप्रेक्ष्य', प्राणनाथ मागो, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, तृतीय आवृति, 2012
7. 'पैरलल यूनिवर्स : द थियोलोजी बिहाइण्ड जयेज वर्क', अजय झरोटिया, लस्त्रा प्रिंट प्रोसेस, नई दिल्ली, 2011
8. 'मिथ्स एण्ड मिस्ट्रीज', संहिता गुप्ता भुवाल, आर्ट टुडे, नई दिल्ली, 2016
9. 'इवोक सिंगूलैरिटी', अंजनी कुमार सिंह, टेम्पोररी एग्जीबीशन गैलरी, बिहार संग्रहालय, 2018
10. 'पेंटिंग्स 1997', सीमा बावा, कूमार गैलरी, नई दिल्ली, 1997
11. 'रेखाचित्र, लेख और कविताएं', जय झरोटिया, मेरा कुछ सामान, कलानिधि नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या-40
12. 'पेंटिंग्स 1997', सीमा बावा, कूमार गैलरी, नई दिल्ली, 1997

The Yoga Upanishads and Holistic Health : A Textual and Neurophysiological Synthesis

Dr. Namrata Chouhan
Assistant Professor
Department of Paramedical Sciences,
Shri Vaishnav Vidyapeeth Vishwavidyalaya,
Indore, Madhya Pradesh

Mr. Chanchal Surywanshi
Assistant Professor (Yoga)
Kunwar Shekhar Vijendra Medical College of
Naturopathy & Yogic Sciences
Shobhit University, Gangoh, Saharanpur

Abstract :

The Yoga Upanishads, a significant branch of Vedic literature, offer deep insights into holistic health through yogic practices. This study examines selected texts-such as Yogachudamani, Dhyanabindu, Yoga Tattva, and Yogakundalini-to explore how practices like pranayama, Ajapa Japa, Omkara chanting, and Trividha Kukshi diet promote physical, mental, and spiritual well-being.

Using thematic and hermeneutic analysis, the research highlights how these traditional techniques align with modern health science, particularly in stress reduction, emotional regulation, and autonomic balance. Ajapa Japa mirrors mindfulness practices, while Om chanting influences brain wave activity and vagal tone.

This synthesis of ancient wisdom and contemporary research suggests that the Yoga Upanishads offer an integrated framework for sustainable health, valuable in addressing today's chronic health challenges.

Keywords :

Yoga Upanishads, Holistic Health, Ajapa Japa, Pranayama, Omkara Meditation, Yama and Niyama, Trividha Kukshi, Mind-Body Integration, Integrative Medicine.

Introduction :

Yoga, as detailed in Indian spiritual literature, especially the Upanishads, provides a comprehensive system for self-development encompassing physical, mental, emotional and spiritual well-being. Among these texts, the Yoga Upanishads offer focused insights into yogic discipline, presenting sadhanas that promote holistic health by integrating the individual with the cosmic consciousness.

The term "holistic health" refers to the balance of body, mind and spirit (Dossey

et al., 2000). Modern integrative medicine increasingly recognizes the therapeutic effects of traditional practices such as yoga on stress-related disorders, cardiovascular health, immunity, and emotional resilience (Ross & Thomas, 2010; Field, 2011). These outcomes are mirrored in the yogic framework outlined in texts such as the Yogashikha, Dhyanabindu and Yogachudamani Upanishads, where sadhana is said to purify the nadis, calm the mind, and ultimately lead to spiritual liberation.

Scientific research supports the physiological effects of key yogic practices such as pranayama and dhyana. Studies demonstrate that pranayama can improve lung function, increase parasympathetic activity and reduce cortisol levels (Telles et al., 2014). Meditation has been shown to enhance prefrontal cortex activity, regulate limbic responses and improve heart rate variability (HRV), which is considered a biomarker of autonomic balance (Tang, Hölzel, & Posner, 2015).

Yet, despite this scientific validation, the philosophical and spiritual foundations of these practices remain underexplored. The Yoga Upanishads uniquely bridge this gap by offering a coherent integration of yogic ethics (Yama, Niyama), physical regulation (Asana, Pranayama), mental control (Pratyahara, Dharana) and transcendental goals (Samadhi, Kaivalya).

This paper endeavors to contextualize the ancient wisdom of the Yoga Upanishads within modern frameworks of health and integrative medicine. By doing so, it contributes to a deeper understanding of yoga not merely as physical exercise but as a multidimensional approach to optimal well-being and spiritual realization.

Methodology :

This study employs a qualitative, text-analytical research design to explore and synthesize concepts of holistic health as presented in the Yoga Upanishads. The methodology involves the following key components:

a) **Textual Source Selection :** Primary textual materials included 20 prominent Yoga Upanishads such as Yogachudamani, Dhyanabindu, Yoga Tattva, Yogakundalini, Brahmavidya, Mandalabrahman, Pasupatabrahma, and Varaha Upanishads. These texts were selected based on their philosophical relevance to yogic health practices and their classification under the broader Vedic corpus. Translations in Hindi and English were consulted from reputable publishers like Bihar School of Yoga, Motilal Banarsidass, and Gita Press.

b) **Thematic Analysis :** A systematic thematic analysis was carried out, identifying recurring themes related to physical, mental, pranic, and spiritual well-being. Practices like Asana, Pranayama, Yama, Niyama, Dhyana, Samadhi and Ajapa Japa were categorized under physical, psychological and transcendental domains. Each theme was traced across multiple Upanishads to assess consistency and philosophical intent.

c) **Hermeneutic Interpretation :** A hermeneutic approach was employed to interpret symbolic and esoteric terminologies such as nadis, kundalini, moksha, and kaivalya. This interpretation was cross-referenced with commentaries by Swami Sivananda, Swami Niranjanananda and modern scholars

like Georg Feuerstein to ensure conceptual clarity.

d) **Comparative Correlation :** The practices and health-related concepts found in the Upanishads were compared with findings from modern scientific literature. Databases such as PubMed, Scopus and Google Scholar were used to identify empirical studies supporting the physiological and psychological benefits of specific yogic techniques.

e) **Inclusion Criteria for Modern Studies :** Only peer-reviewed studies published between 2000–2024 in English, related to pranayama, meditation, breathwork, mind-body integration and autonomic nervous system regulation, were considered to validate traditional claims.

This integrative methodology ensures both scriptural fidelity and empirical relevance, aiming to bridge traditional yogic insights with modern health sciences for a comprehensive understanding of holistic wellness.

Holistic Health in the Yoga Upanishads :

The concept of holistic health in the Yoga Upanishads is fundamentally rooted in the balanced development of the physical body (sharira), mind (manas), vital energy (prana), intellect (buddhi) and spirit (atman). Unlike the compartmentalized approach of modern medicine, the Upanishadic system envisions health as an integrated and harmonious state of existence.

Several Yoga Upanishads provide direct references to this integrated model. For instance, the Yogachudamani Upanishad outlines dietary principles such as "Trividha Kukshi," recommending that one-third of the stomach be filled with food, one-third with water, and one-third left empty. This guideline ensures digestive efficiency and mental clarity, thus connecting the physical and mental domains of health (Saraswati, 2001).

The Dhyanabindu Upanishad highlights meditation on Omkara as a tool to purify mental impressions (samskaras) and eliminate even deep-rooted karmic residues. The text describes how chanting Omkara in different modulations (short, prolonged, or intermediate) leads to removal of sin, accumulation of virtue, and ultimately to liberation (moksha). Modern studies show that Om chanting is associated with reduced limbic activity, increased parasympathetic dominance and improved emotional stability (Kalyani et al., 2011).

Furthermore, the Yoga Tattva Upanishad classifies four distinct yogas-Mantra, Laya, Hatha, and Raja-each targeting specific psycho-spiritual layers of the individual. Hatha Yoga, for instance, is described as comprising Yama, Niyama, Asana, Pranayama, Mudras and Bandhas, which sequentially refine the body, mind, and pranic energy (Satyananda, 2002).

The Yogakundalini Upanishad introduces the concept of Ajapa Japa-the spontaneous repetition of the mantra "So-Ham" with each breath. According to the text, this practice naturally occurs 21,600 times daily and is said to lead to the realization of the self as Brahman. Neuroscientific investigations have linked breath awareness with enhanced interoception and improved vagal tone, both of which are associated with resilience to stress and better emotional regulation (Brown & Gerbarg, 2005).

The Brahmavidya Upanishad emphasizes the importance of a purified mind (chitta shuddhi) as the gateway to self-realization. It proposes that regular chanting of Omkara and contemplative introspection on Nirguna Brahman (attributeless Absolute) removes all mental impurities. This aligns with mindfulness-based interventions that show consistent improvements in anxiety, depression, and well-being scores (Goyal et al., 2014).

Thus, the Upanishadic framework of health is not limited to curing ailments but aspires toward a comprehensive transformation of the individual. By addressing lifestyle (ahara, vihara), ethics (yama, niyama), energy balance (pranayama), mental clarity (dharana, dhyana) and spiritual insight (samadhi), these texts provide a universal template for sustainable health and well-being.

Discussion :

The insights derived from the Yoga Upanishads offer a comprehensive paradigm that integrates ancient spiritual philosophy with modern concepts of health and wellness. Unlike contemporary health models that often address individual symptoms or diseases, the Upanishadic view is systemic, targeting the root cause of imbalances-be they physical (vyadhi), mental (manovikara), or spiritual (avidya).

A recurring theme in these texts is the purification of the nadis (energy channels), believed to be crucial for pranic regulation and mental clarity. Modern physiological studies have shown that alternate nostril breathing, a practice aligned with nadi shodhana, improves autonomic regulation, reduces blood pressure and enhances cognitive performance (Sengupta, 2012).

The concept of Ajapa Japa, highlighted in the Yogakundalini Upanishad, aligns with the modern principle of breath-mediated mindfulness. It serves as a bridge between involuntary (autonomic) and voluntary (conscious) regulation of the nervous system. Research has shown that breath awareness increases prefrontal activation and decreases amygdala hyperactivity, enhancing emotional regulation and executive function (Zeidan et al., 2010).

The ethical observances (yama and niyama) play a critical role in psychosocial health. Contemporary psychological models such as Acceptance and Commitment Therapy (ACT) and Mindfulness-Based Cognitive Therapy (MBCT) emphasize values-based living and self-discipline-principles inherent in yama and niyama-as fundamental to psychological well-being (Hayes et al., 2006).

The Dhyanabindu and Yogashikha Upanishads advocate Omkara meditation for mental purification. The vibrational and rhythmic repetition of Om has been linked to stimulation of the vagus nerve and increased parasympathetic activity, which support homeostasis and emotional resilience (Telles et al., 2019).

Furthermore, Kundalini awakening-though esoteric in traditional terms-can be interpreted in light of neuroplasticity and the upward movement of consciousness from primal instincts (root chakra) to higher cognitive-emotional centers (crown chakra). This interpretation resonates with Maslow's hierarchy of needs and self-transcendence as the pinnacle of human fulfillment (Maslow, 1968).

In essence, the Yoga Upanishads do not merely present spiritual dogma but

offer a living framework for transformative health. Their integration into modern therapeutic protocols could enrich mental health treatment, lifestyle medicine, and preventive care models.

Conclusion :

The Yoga Upanishads present a holistic paradigm that transcends the limitations of reductionist biomedical models. These ancient texts articulate a sophisticated understanding of the human system, emphasizing that true health arises not only from the absence of disease but from a balanced and integrated alignment of the physical body, vital energy, emotional state, intellect, and spirit. By focusing on sadhanas such as pranayama, asana, meditation, mantra chanting, ethical living (yama and niyama), and inner contemplation, the Upanishads offer an actionable and sustainable path to well-being.

Importantly, many of the practices prescribed in the Yoga Upanishads align with contemporary evidence-based interventions used in integrative medicine, lifestyle medicine, and mental health care. Practices like Ajapa Japa, Omkara meditation, breath awareness and dietary regulation through Trividha Kukshi are not only spiritually transformative but also physiologically beneficial, as supported by recent neurophysiological and psychological research.

In the context of modern healthcare challenges-ranging from chronic diseases and stress disorders to lifestyle-related conditions-the wisdom contained in the Yoga Upanishads offers complementary solutions rooted in self-awareness, inner discipline, and spiritual awakening. Their integration into public health, education, and therapeutic models could revolutionize our understanding of health, healing, and human potential.

Ultimately, the Yoga Upanishads are not relics of the past but blueprints for the future-a future in which holistic health is redefined through harmony between ancient wisdom and modern science.

References :

1. Dossey, L., Keegan, L., & Guzzetta, C. E. (2000). *Holistic Nursing: A Handbook for Practice*. Jones & Bartlett Learning.
2. Ross, A., & Thomas, S. (2010). The health benefits of yoga and exercise: A review of comparison studies. *The Journal of Alternative and Complementary Medicine*, 16 (1), 3–12.
3. Field, T. (2011). Yoga clinical research review. *Complementary Therapies in Clinical Practice*, 17 (1), 1–8.
4. Telles, S., Sharma, S. K., & Balkrishna, A. (2014). Yoga as a therapeutic intervention: A bibliometric analysis of published research studies. *Indian Journal of Physiology and Pharmacology*, 58(3), 287–294.
5. Tang, Y. Y., Hölzel, B. K., & Posner, M. I. (2015). The neuroscience of mindfulness meditation. *Nature Reviews Neuroscience*, 16(4), 213–225.
6. Saraswati, S. S. (2001). *Four Chapters on Freedom: Commentary on the Yoga Sutras of Patanjali*. Bihar School of Yoga.
7. Svoboda, R. E. (1999). *Prakriti: Your Ayurvedic Constitution*. Lotus Press.
8. Satyananda, S. (2002). *Asana, Pranayama, Mudra, Bandha*. Yoga Publications Trust.
9. Kalyani, B. G., et al. (2011). Neurohemodynamic correlates of 'OM' chanting: A pilot functional magnetic resonance imaging study. *International Journal of Yoga*, 4(1), 3–6.
10. Brown, R. P., & Gerbarg, P. L. (2005). Sudarshan Kriya yogic breathing in the

treatment of stress, anxiety, and depression: Part II-Clinical applications and guidelines. *Journal of Alternative & Complementary Medicine*, 11 (4), 711–717.

11. Goyal, M., et al. (2014). Meditation programs for psychological stress and well-being: A systematic review and meta-analysis. *JAMA Internal Medicine*, 174 (3), 357–368.
12. Feuerstein, G. (2001). *The Yoga Tradition: Its History, Literature, Philosophy and Practice*. Hohm Press.
13. Sengupta, P. (2012). Health impacts of yoga and pranayama: A state-of-the-art review. *International Journal of Preventive Medicine*, 3 (7), 444–458.
14. Zeidan, F., Johnson, S. K., Gordon, N. S., & Goolkasian, P. (2010). Effects of brief and sham mindfulness meditation on mood and cardiovascular variables. *Journal of Alternative and Complementary Medicine*, 16 (8), 867–873.
15. Hayes, S. C., Strosahl, K. D., & Wilson, K. G. (2006). *Acceptance and Commitment Therapy: An Experiential Approach to Behavior Change*. Guilford Press.
16. Telles, S., Gupta, R. K., Bhardwaj, A. K., & Singh, N. (2019). Changes in autonomic variables following two yoga-based relaxation techniques. *Clinical and Experimental Pharmacology and Physiology*, 46 (7), 637–642.
17. Maslow, A. H. (1968). *Toward a Psychology of Being*. Van Nostrand Reinhold.
18. Saraswati, N. (2008). *Prana and Pranayama*. Yoga Publications Trust.
19. Saraswati, S. S. (2001). *Tattwa Shuddhi: The Tantric Practice of Inner Purification*. Yoga Publications Trust.
20. Upanishad Ank, Special Issue. (2058). *Kalyan*. Gita Press, Gorakhpur.

The Unique Beauty of *Jhoola* Shabdas by the Saints of Ra Dha Sva Aa Mi Faith

Dr. Neetu Gupta
Associate Professor
Department of Music,
Dayalbagh Educational Institute

Mahima Sinha
Ph.D. Scholar
Department of Music,
Dayalbagh Educational Institute

Abstract :

Jhoola is a traditional folk and semi-classical singing style of North India, sung especially during the rainy season. For centuries, the beauty of nature in these monsoon months has inspired women and children to hang swings, gather in community spaces, and sing songs of joy, love and devotion.

The Saints of the Ra Dha Sva Aa Mi Faith drew upon this living tradition, composing a wealth of devotional poetry in the Jhoola form. By adopting familiar folk and semi-classical styles and reshaping them in their own way, they created compositions that are not only musically rich but also hidden literary gems. These songs blend lyrical charm with deep philosophical insights, elevating Jhoola beyond its festive origins into a medium of profound spiritual expression. This paper explores these Jhoola-based devotional compositions, analysing their unique features and situating them in relation to the traditional Jhoola songs of India.

Keywords :

Jhoola songs, Radhasoami/Ra Dha Sva Aa Mi Faith, Religious music, Devotional Poetry, Seasonal music.

Introduction :

"Join the community of Saints and know the delight of your own soul."

- Saint Rumi

India is a blessed land. In every era, countless great souls, divine beings, yogis, and Saints have incarnated upon its sacred soil, evidences of its spiritual fertility and good fortune. Each of these divine beings, worked for the welfare of the people of their time; uplifting not only their worldly lives but also their higher spiritual existences, life beyond death, and ensuring happiness for those who sought Their refuge. Among this lineage of divine incarnations, a significant place belongs to the Saint-poets.

The tradition of devotional poetry, or Bhakti-Kavya Parampara, is believed to have originated in the eighth century with

the Tamil Alvar Saints of South India. Some scholars, however, trace its beginnings to the 13th century poet Shri Jayadeva. Over time, this literary and spiritual current expanded across regions: flourishing among Telugu-speaking communities through Basava, gaining strength in Maharashtra with poets like Eknath, and spreading further in Bengal through Chaitanya Mahaprabhu. It eventually reached North and Central India in the verses of Meera Bai, Sant Ravidas, Sant Paltu, and many others, finding its most luminous expression in the poetry of Sant Kabir, whose works continue to inspire countless generations.

The principles articulated by these Saints gradually formed the foundation of Sant Mat, a spiritual path whose essence is also echoed in early Vedic thought.[2] In modern times, the Ra Dha Sva Aa Mi Faith, founded in 1818, represents the most progressive expression of this tradition. Successive Saints of this faith have guided seekers while creating a vast body of sacred literature. Their works, both in prose and verse, reflect diverse literary forms and musical styles while conveying spiritual truths along with insights into philosophy, psychology, art, and language. This study focuses on the Jhoola or Hindola compositions from Sarbachan Nazm by Swami Ji Maharaj, the founding Saint of the Ra Dha Sva Aa Mi Faith.

Introduction to the Traditional Jhoola Singing Style :

Among the many traditions of North Indian folk and semi-classical music, *Jhoola Geet*-songs sung while swinging-hold a special place for their lyrical charm, seasonal association, and cultural depth. Performed mainly during the monsoon, especially in Sawan, these songs celebrate love, longing, and reunion against the backdrop of nature's abundance. Beyond entertainment, *Jhoola Geet* serve as emotional expressions, blending devotion, nostalgia, and courtship. They are closely tied to women's voices, portraying domestic joys, sorrows, and yearning for absent loved ones. Often, their imagery recalls the divine love of Radha and Krishna, with the swing symbolizing intimacy, playfulness, and life's rhythms.

This paper highlights a lesser-known set of *Jhoola* compositions found in the sacred poetry of the Saints of the Ra Dha Sva Aa Mi Faith (Dayalbagh, Agra). Preserved in their holy texts, these works mirror traits of traditional *Jhoola* while adding distinctive spiritual and philosophical dimensions, thus enriching their literary, devotional, and cultural significance.

Jhoola or Hindola Shabdas in the Holy Book Sarbachan (Nazm) :

Sarbachan (Nazm) is one of the chief holy books of the Ra Dha Sva Aa Mi Faith. It has a collection of sacred poetry (*Shabdas*) composed by the Founding Param Sant (Supreme Saint) of the Ra Dha Sva Aa Mi-Param Purur sh Puran Dhani Huzur Soami Ji Maharaj (Shri Shiv Dayal Singh). The large collection of poetry is systematised under fifty-two topics in this holy book. Among the fifty-two sections, one section is called *'Savan Hindola Va Jhoola'* ('सावन हिंडोला व झूला'); the name simply indicates towards the singing style called *Jhoola* in Indian Music, specifying it by adding 'Savan', as *Jhoola* style songs we know are based on rainy season imagery and are sung in the same season.

Holy poetry of this section has been selected for study in this paper.

The section *'Savan Hindola Va Jhoola'* ('सावन हिंडोला व झूला') contains of eight *Shabdas*; which is a small collection as compared to the great number of *Shabdas* collected in other sections. The length of these *Shabdas* are of five to eight couplets on an average, with some as short as of two couplets and some as long as of twenty-seven couplets.

Distinctive features of the Hindola hymns by the Ra Dha Sva Aa Mi Saints and Satgurus :

1. Awakening of Spiritual Love :

In Indian culture, the month of Sawan has always been portrayed as a season of love. The surplus natural beauty spread all around, the calls of birds and the freshness brought by new rains awaken emotions of union or separation in the hearts of lovers.

Joyful acts and expressions of love and deep pangs of separation are in the imagery of traditional Jhoola songs.

झूला धीरे से झुलावो बनवारी, अरे साँवरिया ना।

(Swing the cradle gently, O Banwari, Ah! beloved Shyam.)

In the holy hymns of Ra Dha Sva Aa Mi faith, quite similar depictions and imagery are painted, but the love here is between the devotee's soul (Bhakt) and the Eternal Beloved, the Supreme Being. Consider this beautiful and symbolic verse :

सुरत तू चेत री अब सावन आया।
गगन चढ़ झाँक री गुरु खेल दिखाया।

सखी सहेली संग ले जग काम ना आया
मैं बिरहन पिया दरस की गुरु भेद जनाया

घट में कर सिगार पिया को आन रिझाया
सखियन साथ बिलास यह रा धा/धः स्व आ मी गाया।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd -Third, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

Here, the longing devotee is reminded to awaken her feelings of spiritual love to meet with her Eternal Beloved, on the arrival of Sawan. He/She is reminded of the way to meet her Lord, which is by ascending the skies and see the play that the Guru shows. It is told that worldly affairs are of no use, and only the true and able Guru reveals the secret of this divine path to the longing soul. The soul of the Bhakta or Yogi should adorn itself within, and charm its Eternal Beloved in the favourable month of Sawan.

Just as Sawan symbolises worldly union, it also becomes the time for a spiritual union here.

Poetic descriptions of dance and festivities at those higher spiritual regions, longing and travelling of the meditator's soul through those ways and bliss of the divine union are all highly captivating features of these holy songs. The verses move from yearning for the Alakh Purush (A name of Supreme Being), to reaching His palace of infinite light, to merging in His Sound Current, and be with the Nameless One beyond all worlds.

2. The Deeper Meanings of Swinging in the Hindola (swing) :

In these hymns, the "swing" is often used as a symbol of various spiritual activities. Such as in this one :

सूरत आज झूल रही।
गुरु मिले झुलावनहार।।1।।

शब्द हिंडोला पड़ा गगन में।
झूल रही स्तुति नार।।3।।

धुन की डोरी खिंची अधर में।
होत जहां झंकार।।4।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd- Eighth, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

The soul of the meditating Yogi is being lifted by the Guru into the higher realms of consciousness. This act of spiritual uplifting is pictured as though the Bhakta's soul is swinging on a swing and the Guru is cradling him/her. The "rope" of the swing is the inner sound current (shabd), and the joy of swinging is the bliss of hearing the Anahat nad (songs of the spiritual music) within. Such imagery conveys truths spiritual bliss beyond ordinary thought, offering seekers a taste of spiritual ecstacy.

Another such imagery is there where spiritual sounds internally heard by the Yogi is acting as a swing for him .

झूलत शब्द हिंडोल अतूलन।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd -First, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

Here is another imagery where the Lord Almighty Ra Dha Sva Aa Mi Dayal Himself is seated on a massive, majestic swing.

रा धा/धः स्व आ मी झूलत आज हिंडोला।
गगन मंडल धुन अद्भुत बोला।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd -First, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

This extraordinary Shabda basically describes that moment of supreme bliss the spiritual practices of a yogi, when the Almighty Supreme Father Ra Dha Sva Aa Mi Dayal gets pleased by him and reveals to the devotee the vision of His own eternal form.

The following lines of the Shabda are full of symbolism. Elements of that refulgent spiritual sight are symbolised as the elements of a Swing, on which the Supreme Lord is seated. The whole creation is described thundering and resonating.

Lines from the exceptional holy composition are quoted here :

चाँद सूरज दोउ खम्ब सजे रे।
सुषमन चौकी लाल जड़े रे ।4।

चरन धार रा धा/धः स्व आ मी बिराजे।
प्रेम मगन सब प्रीतम गाजे ।5।

अजब समा समा अचरज यह औसर।
हंस हंसिनी छोड़ा सरवर ।6।

देख बिलास मगन हुए भारी।
सुधि बुधि भूले देह बिसारी ।7।

धूम मची अब अमर नगर में।
झूलत रा धा/धः स्व आ मी बैठ आधार में ।8।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd- First, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

3. Depiction of Savan's Beauty and its Spiritual Meaning :

Just as traditional Savan songs sing about the monsoon's lush green scenes, the Hindola hymns describe them too-but with the understanding that all these beauties unfold in at the different higher spiritual Lokas world. Clouds, lightning, peacocks squeaking, and blossoming nature are either metaphors for spiritual awakening or elements of real scene unfolding within and the soul's journey toward the union with God. See one beautiful example :

कहा कहूँ बतियाँ नहिं खूलन।
देख देख छवि मन सुधि भूलन।3।।

गरजत घन और बिजली चमकन।
श्याम घटा मानो अति गज हूलन।।4।।

नई रागनी तान सुनाई।
चमक धमक सँग खेल दिखाई।।3।।

मोर पपीहा रटन लगाई।
अचरज बानी घोर सुनाई।।7।।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd- First, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

There are descriptions of devotees (men and women) celebrating with much joy and excitement.

वर्षा ऋतु सखियाँ (साक्षी) हर्षानी।
लाई सहेली लार।।2।।

सभी सुहागिन गावन लागी।
कर कर प्रेम सिंगार।।5।।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd Eighth, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

Comparison Between Traditional Folk Jhoola Songs and Ra Dha Sva Aa Mi Hindola Hymns-Similarities :

- Both types of songs are set in the monsoon season and are traditionally sung at that time.
- Both types of songs depict the delightful transformations in nature during the rains.
- Both types of songs often have a religious backdrop-folk songs focus on Radha-Krishna's love, while Hindola hymns centre on the soul's spiritual love for the God.
- In both, the beauty of the rainy season act as catalyst, enhancing the longing for union in the heart of lovers.

Differences :

- Hindola hymns are full of deep spiritual symbolism. On the other hand, the Jhoola songs have more worldly imagery and symbolism is not a prominent feature of them.
- In Hindola hymns, the "swing" or "hindola" often has mystical meanings linked to spiritual truths. In Jhoola songs generally swings depict the literal swings, hung in Indian houses and community gathering places.
- Hindola hymns are equipped with the principles of the Ra Dha Sva Aa Mi faith and have several lines didactic in tone. Folk Jhoola songs narrate divine love stories of Lord Krishna and Radha and Gopies but do not generally convey life-guiding teachings.
- Hindola hymns are preserved and sung in their original form as they are composed by the revered Saints of the Ra Dha Sva Aa Mi faith, while traditional Jhoola songs are open to personal feeling based improvisations and often have no known authors.
- In the singing of semi-classical Jhula songs, several classical elements are incorporated. The singer includes techniques like Bol-Banav, Kaaku, Murki etc. The tabla accompanist too displays his/her technical mastery with the work of Laggi and numerous suitable variations in the Theka and so does the accompanying non-percussionist, by showing the skills of his/ her musical instrument. With this all

the artists aim to add and enhance the overall effectiveness and musical level of the performance. The other side, the traditional singing of the religious Jhula Shabdas follow different tunes set in suitable Ragas. In the presentation of these the major aim is to feel and convey the devotional depth of its words. The artistry of the performers are secondary; instead the great message and devotion for the Waqt Sant Satguru are the important factors which must be enhanced by the singing of the Shabdas.

Conclusion :

Just as in the Indian culture the monsoon influence people to swing on swings and sing Jhoola songs, in the Ra Dha Sva Aa Mi faith as well, the season is seen as an awakener of divine love. The joy of the outer world stirs in the devotee-soul a deep longing for union with the Eternal Beloved. The saints describe in their hymns how, guided by the Guru, the soul swings on the Hindola of the inner Sound, hears the divine thunder and melody, and finally attains the ultimate bliss uniting with the Supreme Father. Each verse is filled with profound worldly and spiritual meaning, making these hymns a unique treasure.

This paper closes with the complete text of the Hindola hymn "सुरत तू चेत री, अब सावन आया।", with the hope that its recitation will offer readers deep joy and inspiration.

सुरत तू चेत री, अब सावन आया।
गगन चढ़ झाँक री, गुरु खेल दिखाया।1।

जहँ पड़ा हिंडोला नाम का , धुन डोर बंधाया।
सखी (साक्षी) सहेली संग ले, जग काम न आया।2।

मैं बिरहिन पिया दरस की, कहिं चैन न पाया।
अब खुल खेलूं सुन्न में, गुरु भेद जनाया।3।

रिमझिम वर्षा हो रही, मन मोर बुलाया।
पी की बतियाँ सुन रही, मन चाव बढ़ाया।4।

घाट में कर सिंगार पिया को आन रिझाया।
सखियाँ (साक्षी) साथ बिलास यह रा धा/धः स्व आ मी गाया।5।

(Sarbachan (Nazm), Savan Hindola Va Jhoola, Sahbd -Third, Radhaswami Satsang Sabha, Dayalbagh (Agra))

References :

1. Chaturvedi P. (2024), Bhoomika, 'Uttari Bharat ki Sant Paramparaa', Lokbharati Publication, Third Edition, 14.
2. Kulshreshtha A. . (2014). Sant Mat. 'Chetanaa ke Trividh Ayaam', K. L. Pachauri Publication, First Edition, 109.
3. Banisudha B.. (2025-January) The Interplay of Melody and Rhythm in the Jhula Songs of the Monsoon. Sangeet Galaxy, Vol.-14, No-1, 384, Sangeet Galaxy Foundation.

Neoliberal Feminism in the Shopaholic Series by Sophie Kinsella

Dr. R. Saktheswari
Assistant Professor
Department of English
Fatima College, Madurai

Ms. S.Vinitha
Research Scholar
Department of English
Fatima College, Madurai

Abstract :

Sophie Kinsella, the pen name of Madeleine Sophie Wickham, is one of the most widely read authors of contemporary romantic comedy and chick lit. While her novels are primarily celebrated for their humour and romance. On reading her novels, itis revealed that Kinsella's works carry strong feminist undertones. Through her witty protagonists and narratives that centre on women's everyday struggles, she subtly redefines feminism, not as a political manifesto, but as the celebration of women's voices, choices, and identities in a world that often trivializes them. Feminist writing does not always have to be confrontational or overtly political. Kinsella's feminism is rooted in everyday empowerment. Her characters often begin as insecure, financially careless, or socially clumsy women, but they evolve into stronger, more self-aware individuals. This growth reflects the feminist belief that women should have the freedom not only to succeed but also to fail, make mistakes, and define their own journeys without judgment.Through Becky Bloomwood, Sophie Kinsella crafts a neofeminist narrative that celebrates imperfection, individuality, and freedom of choice. Neofeminism in the series lies in reclaiming traditionally feminine pleasures such as shopping, fashion and romanceas valid aspects of empowerment.

Key Words :

Neoliberal Feminism, consumerism, empowerment, individuality, Freedom.

Neoliberal Feminism in the Shopaholic Series :

Sophie Kinsella is the pen name of Madeleine Sophie Wickham, a bestselling British author. She is best known for her Shopaholic series, which follows the life of the lovable but impulsive Becky Bloomwood. Her novels are celebrated for their humor, wit and relatable female protagonists. Kinsella has also written several successful standalone novels like Can You Keep a Secret? and I've Got Your Number. Her

works often explore modern womanhood, relationships, and self-discovery in a lighthearted yet insightful way. Neoliberal feminism is a modern form of feminism that blends feminist ideas with neoliberal values like individualism, self-empowerment and personal choice. It often emphasizes women's success in the marketplace, encouraging them to be confident, ambitious, and economically independent. Unlike earlier feminist movements that focused more on collective struggle, neoliberal feminism highlights personal responsibility and self-improvement. Critics argue it sometimes overlooks structural inequalities such as class, race and systemic barriers, by placing too much focus on individual achievement. It is visible in popular culture, self-help literature, and even fiction, where heroines often "empower" themselves through careers, consumption, or lifestyle choices. Sophie kinsella's Confessions of a Shopaholic remains as the perfect blend of Neoliberal feminism.

On reading Sophie Kinsella's *Shopaholic* series as a neo-feminist fiction, where empowerment is found not in rejecting femininity but in reclaiming it on one's own terms. Becky Bloomwood, though flawed, represents the modern woman negotiating identity, consumerism, and relationships in a globalized society. Her obsession with fashion and shopping is often criticized as shallow, but it becomes, in a neo-feminist reading, a form of self-expression, individuality, and choice. The series emphasizes that feminism is not only about breaking traditional gender roles but also about affirming women's freedom to embrace joy, imperfection, and personal agency. Through humour, satire, and everyday struggles, Kinsella highlights the pressures placed on women while simultaneously validating their desires. Becky is not a traditional feminist heroine, yet her resilience, growth, and unapologetic embrace of femininity embody the neo-feminist spirit of choice and autonomy. Thus, the *Shopaholic* novels affirm that women's empowerment can exist alongside consumerism, romance, and humour, making them an accessible and relatable form of neo-feminist literature in the 21st Century.

The protagonist, Rebecca Bloomwood, embodies the neoliberal ideal of a woman achieving success through her own efforts in the marketplace. She is a successful financial journalist, demonstrating economic independence and agency. The series portrays shopping as a source of pleasure and identity for Rebecca, aligning with the idea that women's empowerment can be achieved through participation in the consumer economy. She chooses Consumerism as her identity and Empowerment. While celebrating Rebecca's success, the series also acknowledges the potential pitfalls of excessive consumerism, such as debt and the superficiality of defining oneself through material possessions. The series is often categorized as "chick lit," which is seen as operating within a post-feminist framework that acknowledges past feminist gains while also emphasizing individual choice and empowerment within existing social structures. Neoliberal feminism emphasizes individual responsibility and agency in achieving equality, rather than focusing on systemic or structural barriers. This also focuses more on Free Market Ideology. It often aligns with free market principles, viewing economic participation and consumerism as key components of

women's liberation. Neoliberal feminism can be criticized for perpetuating inequalities by individualizing issues and failing to address systemic problems. The Shopaholic series, through its portrayal of Rebecca Bloomwood, reflects some aspects of neoliberal feminism, particularly the emphasis on individual economic empowerment and the celebration of consumerism.

In the Shopaholic series, Becky Bloomwood often measures empowerment through shopping, style and financial independence. This reflects neoliberal feminism, where consumer choices are framed as a form of freedom and identity. Becky insists on making her own financial decisions, even when they are flawed, showing her belief in autonomy and self-expression. Success for Becky is often tied to confidence, personal ambition, and the ability to thrive in the modern marketplace, rather than collective feminist struggles. The novels portray empowerment in terms of individual self-realization, where Becky learns to balance career, family, and personal desires, echoing neoliberal ideals. Through humor, the series suggests that feminist liberation can coexist with consumer culture, where buying, earning, and lifestyle choices become symbols of empowerment.

Becky is a deeply flawed yet charismatic protagonist. Her obsession with shopping reflects both her weaknesses and her resilience. Becky uses Consumerism as her identity. Becky traverses a world where material possessions symbolize status and identity. While critics may view this as shallow, Kinsella presents Becky's consumerism as a form of self-expression and agency. Neofeminism argues that women should not be shamed for enjoying 'feminine' pleasures like fashion and shopping. Unlike traditional heroines who embody perfection, Becky is full of contradictions and financially reckless, impulsive, and chaotic. Yet, her journey is about growth and learning from mistakes, highlighting the neofeminist notion that women have the right to stumble without losing their worth. Being a chaotic person, Becky remains good at balancing her Career, Love and Independence. Across the series, Becky juggles her career ambitions, her romantic relationship with Luke Brandon, and later motherhood. Her story reflects the modern neofeminist struggle to 'have it all,' but on her own terms.

In the *Shopaholic* series, men are present but rarely dominate the narrative. Luke Brandon, Becky's partner, is supportive but not controlling; he often serves as a stabilizing force rather than a patriarchal authority. Becky's voice, decisions, and desires remain central to the story. Furthermore, Becky's friendships with female characters like Suze are portrayed as equally important as romantic relationships. This emphasis on female solidarity reflects a neofeminist perspective, where women's bonds are sources of empowerment. One of the most debated aspects of the *Shopaholic* series is whether Becky's consumerism undermines or supports feminist ideals. Traditional feminist critiques might see shopping addiction as reinforcing patriarchal capitalism, trapping women in cycles of debt and dependency. However, neofeminism interprets Becky's love for shopping differently. Becky demonstrates that femininity, materialism and empowerment are not mutually exclusive. Kinsella's trademark humour transforms Becky's

flaws into tools of resistance. By laughing at her own mistakes and the absurdity of modern life, Becky undermines the seriousness with which consumer culture judges women. Humour here becomes a feminist tool, challenging stereotypes of women as weak, irrational, or dependent. "A man will never love you or treat you as well as a store. If a man doesn't fit, you can't exchange him seven days later for a gorgeous cashmere sweater. And a store always smells good. A store can awaken a lust for things you never even knew you needed. And when your fingers first grasp those shiny, new bags…" (Kinella 110). This line captures the idea of emotional fulfillment through consumption, suggesting stores and purchases are reliable sources of comfort and independence.

Neo-feminism emphasizes the right of women to be imperfect without being discredited or dismissed. Becky fails, stumbles, and embarrasses herself, but she also grows, learns, and redefines herself. Her journey reflects the idea that women should not be measured against unrealistic ideals of perfection but celebrated for their authenticity and resilience. These portrayals reinforce the neo-feminist idea that female bonds and solidarity are as vital as romantic fulfilment. Becky's career aspirations, though often tangled in chaos, also reflect her desire to define herself beyond domestic roles. Whether working as a financial journalist or reinventing herself in different professional contexts, Becky demonstrates ambition and adaptability. Neo-feminism celebrates such freedom to pursue multiple identities as a professional journalist, romantic person, maternal, and social person without being confined to a single role.

A central tension in the *Shopaholic* series is its portrayal of consumerism. Critics argue that Becky embodies the stereotype of the frivolous, shop-obsessed woman, seemingly undermining feminist ideals. Yet Kinsella employs satire to critique the absurdities of consumer culture itself. Becky's shopping sprees often spiral into comic disasters, exposing the instability of a system that equates happiness with material possessions. At the same time, Becky reclaims consumerism as part of her feminine identity, refusing to feel shame for enjoying fashion and luxury. This dual function as critique and reclamation aligns strongly with neo-feminism, which resists the idea that femininity or consumer practices must be inherently anti-feminist. Kinsella's humour is another neo-feminist strategy. By turning Becky's flaws and excesses into moments of comedy, the novels normalize women's imperfections and challenge cultural expectations of female competence and composure. Humour becomes a tool of resistance, allowing Becky to navigate a world that constantly scrutinizes women's choices. In laughing with Becky rather than at her, readers are invited to embrace the idea that imperfection is not failure but part of empowerment. "I can do affordable fashion! I mean, I know where all the sales are!" (Kinsella178). Here, Rebecca asserts her market savvy and autonomy emphasizing she's not just a shopper, she knows how to "make smart consumer choices," emphasizing self-reliance and mastery of the marketplace. Across the different installments of the Shopaholic series, from Confessions of a Shopaholic to Shopaholic Ties the Knot, Becky matures, but she never loses her individuality or her passion

for life. Her evolution reflects the neo-feminist journey: she is not required to renounce femininity, romance or consumerism in order to grow. Instead, she learns to balance them, making her a heroine who resonates with contemporary women navigating similar tensions in real life.

The *Shopaholic* series can be understood as a distinctly neo-feminist text. Through Becky Bloomwood, Sophie Kinsella demonstrates that empowerment can coexist with consumerism, romance, and humour. Feminism here is not about rejecting femininity or adhering to rigid political frameworks but about embracing freedom, individuality, and the right to be imperfect. Becky's life, being a chaotic, comical, yet resilient, mirrors the lives of countless modern women who seek balance between societal pressures and personal desires. Kinsella thus redefines feminist fiction for the 21st century, showing that popular literature can carry feminist messages in subtle, accessible ways. *Shopaholic* affirms that laughter, friendship, love, and even shopping can become acts of empowerment when chosen on one's own terms. In this way, the series not only entertains but also contributes meaningfully to the ongoing evolution of feminism, making Becky Bloomwood a neo-feminist heroine for contemporary times.

References :

1. Kinsella, Sophie (2000). Confessions of a Shopaholic. Dell Publishing.
2. Ann, and Catherine Orr (2012), Women's and Gender Studies. Braithwaite, Routledge.
3. Gill, Rosalind Postfeminist (2007). Media Culture: Elements of a Sensibility. European Journal of Cultural Studies, vol. 10, no. 2, pp. 147–166.
4. Genz, Stéphanie, and Benjamin A. Brabon (2007). Postfeminism : Cultural Texts and Theories. Edinburgh University Press.
5. McRobbie, Angela (2009). The Aftermath of Feminism: Gender, Culture and Social Change SAGE.
6. Tasker, Yvonne, and Diane Negra, (2007). Interrogating Postfeminism: Gender and the Politics of Popular Culture. Duke University Press.
7. Wolf, Naomi (1991). The Beauty Myth: How Images of Beauty Are Used Against Women. HarperCollins.

Tribal Dances of Jharkhand : Celebration of Culture, Nature and Community

Dr. Sangeeta Chauhan
Assistant Professor
Department of Education
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University
(A Central University)
Lucknow- 226025

Prof. Raj Sharan Shahi
Professor
Department of Education
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University
(A Central University)
Lucknow- 226025

Michael Trances Suraj
Research Scholar, Department of Education
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University (A Central University)
Lucknow- 226025

Abstract :

Jharkhand tribal dance is an expression of culture, nature, and community, deeply rooted in the state's indigenous traditions. This article explores the prominent dance forms of Jharkhand, such as Jhumair, Chhau, Paika, Karma, Phagua, and Domkach, highlighting their significance in celebrations, rituals, and social gatherings. These dances are performed to local tribal songs. The use of the musical instrument conveys the message of harvest, valour, devotion, and social unity. Modernisation, urban migration, and waning youth interest have endangered these dance forms. This study emphasises the radical actions through educational initiatives and policy-making to safeguard these cultural treasures. By integrating tribal dances into the curricula, providing funding for artists, and establishing cultural councils, Jharkhand can ensure that these rhythmic traditions continue to resonate, fostering cultural pride and global appreciation.

Keywords :

Jharkhand, tribal dance, culture, preservation, heritage.

Introduction :

Jharkhand is an Indian state located in the eastern side of the country. It home to various tribal communities who reside in its lush forests and hills and take care of the natural resources hidden inside its lands. Due to the presence of a large tribal

community, the state has various forms of cultural richness. The most striking feature of this cultural richness is the tribal dances and traditional songs that showcase the rich history of these communities, such as Munda, Santhal, and Oraon (Guha, 2022). These dances are more than a means of enjoyment for them; they see it as an expression of gratitude, unity, spirituality, and a deep-rooted linking to nature and the changing seasons.

Their dances forms are an important part of people's lives in the state as they are performed during celebrations, religious rituals, and almost every social gathering (Ramakrishnan,2023). These tribal dances carry symbolic meaning in their movements and melodies, representing the community's collective identity. Each dance form is performed by singing folk songs in local languages, such as Santali, Mundari, Kurukh, and Khortha. The themes of these songs cover parsing Mother Nature's abundance, warrior traditions, devotion, and historical narratives (Nilgiris,2024). During the performance local musical instruments like mandar, dhol, nagara, and bansi add depth to these performances, enhancing their rhythmic and spiritual appeal.

This article has tried to deep dive into the rich variety of tribal dances performed in Jharkhand and will include some of the prominent dance forms like exuberant Jhumair, the martial Chhau and Paika, the ritualistic Karma, the celebratory Santhal, the vibrant Phagua and the joyous Domkach. By understanding the meaning and importance of these dance forms to the local people we can gain a better understanding of tribal communities and the need for the protecting of these cultures through education and policy-making.

Jhumair Dance: A Harvest Celebration :

Jumair Dance

Source : *Janani Jhumar Dance of Jharkhand. https://www.auchitya.com/janani-jhumar-folk-dance-of-jharkhand/.*

Jhumair is folk dances of Jharkhand mainly carry out by the Sandan and other tribes like Munda and Santhal during their harvest festival as a festivity of abundance and community growth the song is sung in various tribal languages like Nagpuri, Khortha, and Kurmali narrating their love for the nature and rural like as displayed in the lyrics of one such song which translate into "Swing, oh swing, swing in the fields, the heart swings with the rice" capture the joy of a successful harvest, guiding the dancers with their rhythmic flow. The dance is performed in a circular formation, in which men and women link hands or arms while dancing to the beats of drums and flutes. There are also several variations, such as Mardana Jhumair (men only, often with swords and ghungroos) and Janani Jhumair (women only), which showcase distinct styles. During the performance, the men were adorned in vibrant turbans and dhotis, while the women wore sarees. This dance is a testament to life's simplicity, fostering gratitude and social bonds through its communal spirit (Bhowmik & Biswas, 2024;)

Chhau Dance : A Martial Art in Motion :

Chhau dance Performance

Source : *(The Artists Behind the Scenes of Chhau Dance | Purulia | Solitary Traveller, n.d.)*

A semi-Classical dance from of Jharkhand Chhau is widely recognised worldwide. In Jharkhand, it is practiced in the Saraikela-Kharsawan district**.** It is a blend of martial arts, folklore, and storytelling which has earned it recognition from UNESCO as an important cultural heritage (Cardinale,2019). Chhau is mainly based on instrumental music produced from nagara, shehnai, dhol and mohuri. The background stories are drawn from the Indian religious text and local tales. The performance mainly uses movement and masks of various characters, such as depicting gods, demons, or animals, their acrobatic leaps and spins mimicking combat in place of lyrics(Gupta,2002).The performances were conducted in open spaces under bright light. The Sarikela Chhau style is known for its grace and emphasis on body language over facial expression. The dance form is the honour of the region's tradition and has contributed toward preserving ancient folklore through a engaging visual medium

Paika Dance : Warriors dance form :

Paika Dance Performance

Source : *paika dance jharkhand - Yahoo India Image Search results*

The Munda tribe performs a dance known as Paika to channel the spirits of the warriors. It is performed to honour guests or in a religious procession (Tripathy & Prasad,2019). The Mundari song like "Paika, oh Paika, raise your sword, fight the enemy head-on") to showcase the pride and valor supported by nagara, dhak, and shehnai. The dances mainly comprise men wearing frilled tunics and turbans with peacock feathers, wielding shields and swords, moving in synchronised formations of odd numbers using ghungoors in rhythm. This dance form reflects the Munda's martial heritage showing them as protectors and uniting the community through its disciplined energy

Karma Dance: A Prayer for Prosperity :

People dancing Around Karma Tree

Source : *https://images.app.goo.gl/btpWHMhZjwuUvLqs8*

The karma dance is performed during one of the most prominent festivals of the tribes in Jharkhand. Karma is celebrated by Oraon and Munda Tribes.It comprises of devotional songs sung in Kurukh and Mundari to invoke nature Spirits for prosperity and good harvests with lines like "Karma deity, give us wealth, give us happiness, let the flowers of Karma bloom" with Madal, nagara, and Bansi. The entire performance is centred around the Sacred Tree of Karma. During the dance performance, men and women dance in circles passing the branches of the Karma Tree. The attire worn during the dance comprises white sarees with red borders or dhotis and turbans associated with the cyclical harmony of life and agriculture. This dance represents the tribe's attachment to nature and unites them in shaded hope for abundance. (Bhagvat,2022).

Phagua Dance : The Colors of Holi :

The Phagua dance is performed during Holi, capturing the exuberance of spring in Jharkhand. The phag song is sung in Nagpuri and Hindi, with lyrics like ("Phagua, oh Phagua, shower colours, the days of Falgun have arrived," showcasing a burst of playful joy, fuelled by the mandar, dhol, and bansi. The dances use gulal and water while wearing bright attire. It is a male-only dance that now embraces all, reflecting the evolving tradition and the triumph of good over evil (Ekka, 2020).

Domkach Dance : A Wedding Celebration :

Domkach Dance performed During the Wedding

Source : *Dumkaach | Art & Culture*. (n.d.). https://jharkhandculture.com/node/19

Domkach is a wedding dance performed by the bridegroom's family to bring humour to the matrimonial celebrations. Songs are sung in Nagpuri or Khortha, usually translating to " Domkach, oh Domkach, dance with the groom, listen to the mother-in-law's taunts" using dhol shehnai. dance is performed in a semicircle while improvising the steps during the performance, keeping in mind the festivity (Archer,2021). Domkach eases the transition between families by strengthening ties through light-hearted connections during the performance

The Need for Preservation of Tribal Dances Through Education and Policy Making :

Recently, these tribal dance forms which have a rich cultural and historical heritage, have faced threats (Chatterjee & Dwivedi, 2023). Modernisation, urban Migration, and the Waning interest of tribal youth are the major reasons behind this. Modernisation in the form of digital musical instruments has overshadowed the beats of Mandar and Nagara. Migration

has also affected oral and traditional transmission. The Chhau and Paika dances which rely heavily on masks and martial precision, are facing difficulties due to a lack of dancers and mask makers (Blank, 1973). As the current performers grow old, there is a risk of these art forms fading into time. Preservation is of utmost importance; thus, education and policy-making are key for the survival of these dances.

Education by making it a part of curricula history lessons and extracurricular activities can play a major role in rekindling the interest of youth. In educational institutions, students can learn Jhumair's harvest rhythms or Chhau's storytelling masks, fostering an early appreciation. Schools in states could partner with elders and conduct or organise community dance camps to engage rural youth and inculcate pride in their heritage and culture. Simultaneously, policymakers can provide funds and grants to artists, along with training camps, to develop a more solid base for performers and train upcoming performers. Scholarships can also be given to youth dancers along with the establishment of a Tribal Arts Council to preserve these art forms. NGOs can aid in digitising choreography and songs for global access.

If no action is taken, Paika or Domkach dance and the stories behind them will go missing. Jharkhand can save its tribal legacy through inspiring curricula and helpful policies. With these efforts, the state's dances will continue to be alive expressions of identity that travel beyond its borders.

Cultural Importance of Dances forms of Tribal :

Tribal form of dances are an important part of the people of Jharkhand, as they act as a linking bridge of social, spiritual, and historical life of the region. Social dance, like Domkach, contributes toward the development of Kiship and breaking down the barriers by uniting in celebration and reinforcing shared values like equality.

Tribal dances in Jharkhand transcend mere performance; they are the heartbeat of the region's social, spiritual and historical life. They weave communities together, fostering bonds that withstand the test of time and change. Social dances like Santhal and Domkach, with their inclusive circles and playful satire, break down barriers, uniting people in celebration and reinforcing shared values, such as equality and kinship. The Karma and harvest dances connect tribal people with their land. These dances act as a prayer to nature for a fruitful harvest and renewal of the land.

Dances of bravery with Paika performed in different formations narrate the tale of bravery. Through these dances, they evoke the memory of their warriors' ancestors. It acts as a re-embrace of their glorious past and giving a novel picture of tribal life which helps in the bigger scheme of things. By preserving them, Jharkhand's tribal people keep their uniqueness alive as a rich heritage that they can be proud of and relate to all human beings.

Conclusion :

The various dance forms of Jharkhand, with their historical depth, spiritual resonance, and social vitality, act as luminous threads in the state's cultural fabric. They bind communities in a shared sense of identity and belonging by celebrating everything from nature as a bond to human connection. Thus, it is essential to safeguard

these treasures from extinction. This can only be achieved through government initiatives and educational interventions to plant seeds of cultural pride in the tribal youth of the state to ensure that the rhythmic echoes of Jharkhand's tribes continue to resonate, inspiring awe and unity for generations to come.

References :

1. Archer, W. G. (2021). *The blue Grove: the poetry of the Uraons*. Routledge.
2. Bhagvat, D. (2022). The Karma Festival and Its Songs.
3. Bhowmik, N., & Biswas, S. K. (2024). Harmony in History: Unveiling the History of Women Tea Plantations Workers Through Jhumur Songs.
4. Blank, J. (1973). *The Story Of The Chou Dance Of The Former Mayurbhanj State, Orissa* (Doctoral dissertation, The University of Chicago).
5. Cardinale, S. (2019). *Intangible heritage and livelihoods: a case study on the heritage of Purulia chhau dance from India* (Doctoral dissertation, London Metropolitan University).
6. Chatterjee, B., & Dwivedi, A. (2023). Cultural Crisis, Deteriorating Heritage, and Placemaking: A Study of Rural West Bengal, India.
7. Ekka, R. (2020). Socio-Cultural Transformation, Among the Oraon the Tribe-A Case Study Of Sundargarh District, Odisha, During Post-Colonial Period. *Editorial Board*, 279.
8. Elwin, Verrier (1955) *The Religion of an Indian Tribe.* Bombay: Oxford University Press.
9. Guha, S. (2022). A Status Report of the Tribal Arts within the Central Indian Tribal Belt. In *Tribal Development Report* (pp. 275-338). Routledge India.
10. Gupta, S. (2002). *Dances of India*. Har-Anand Publications.
11. Nilgiris, T. (2024). Tribal Religion Is a Reality. *The Routledge Handbook of Contemporary Readings on Tribe and Religions in India: Emerging Negotiations*, 86.
12. Prasad, R. R. (2014). *Adivasi Lokgeeton ki Sanskriti*. New Delhi: Anang prakashan.
13. Ramakrishnan, M. (2023). Folklore studies in Jharkhand. *Folklore Studies in India: Critical Regional Responses*, 163.
14. Tripathy, B., & Prasad, D. V. (2019). Tribal Religion in Central India: An Overview. *Tribal religion in Central India*, 1-34.
15. Vidyarthi, L. P. (1976). *The Tribal culture of India. Ranchi*: Concept Publishing House.

Impact of Globalization on Indian Novelists

Dr. S. Sudha
Assistant Professor
Department of English and Foreign Languages
Alagappa University, Karaikudi,
Sivagangai dt, Tamilnadu

Abstract :

A work of art is definitely of it's and the milieu. Various forces working in the present age influences people in general and subsequently art thought and life. The previously force is globalization. The purpose here is not to analyse whether Globalization is right or wrong or if it is good or bad. It is rather to see how one might profit by studying how powerful globalization has been and how it has influenced popular Indian fiction in English in the recent times.

A few current Indian novel writers are selected for study. The study seeks to find the influence of Globalization in their fictions which are quite popular with most young readers. The purpose is to promote understanding and advancement in literature and in literary criticism.

Key words :

Globalization, civilization, aesthetic, god.

Introduction :

A briefing on beliefs and newly created myths that ate operative in pushing globalization, whatever be ones religion, country or race. Some beliefs are readily accepted as universal norms for successes in life most people seem to be united in subscribing strongly to these beliefs often without realizing what they're ready do to their consciousness. These beliefs actually and ultimately bring about a stunt in the evolution of the human consciousness. These beliefs are derivations from real progress almost all human activities are designed to suit these beliefs. The concomitant world ideology is what everyone calls as Globalization. These beliefs sustain Globalization. Beliefs which prepare the way for Globalization

1. Every individual is unique and separate enclosed by one's own skin. One has only himself or herself to rely on. Everyone else is either a friend or afore only coinciding interest connects one another temporarily.

2. Everything is reversible. The problems faced are but interludes. Use tried and tested methods of problem solving. Soon everything gets back to normal.
3. Order demands hierarchy. Order can be achieved by rules and laws and their proper enforcement. The system needs a few people on top. They make rules and legislate laws. Everyone else should obey the rules and accept his position. This is the social and political order.
4. Efficiency is the key : Get the maximum out of every person, machine and organization. It is immaterial whether or not the end product serves a humanly useful purpose.
5. Technology is the answer to all problems.
6. New is always letter.
7. My country, right or wrong. One owes allegiance only to one ration, one flag and one government.
8. The more money I have, the happen I am.
9. The future is not my cup of worry. Do not worry about the good of the next generation. Let the next generation look after itself.

The set of beliefs have ushered in Globalization which defines the present civilization. There are some myths that are widely pushed for acceptance through the Media and the World Wide Web. These myths have gained the status of a paradigm. Since the majority of the political class are united in subscribing strongly to these set of ideas. Life Negating Myths :

Nature is in exhaustible: Nature is an infinite source of resources and an infinite sink of wastes. The present civilization wields powerful technologies. The myths give free reign to the over-use and thoughtless impairments of the natural resources of the earth and over load of natures self regenerative capacities.

a. Nature is like a giant mechanism: Engineer nature as if it was a machine.
b. Life is a struggle where only the fittest survive.
c. Be fitter than others, smarter, more ambitious, more daring and richer and more powerful than our competitors.
d. The market distributes benefits : It acts equitably. A successful person benefits himself or herself, his or her family, his or her company, his or her community, his or her country. Wealth "Trickles Down" from the rich to the poor.
e. The more you consume, the better you are: One's ego is satisfied in consumption.
f. Economic ends justify military means :

   That war is the way to achieve economic and polmitical objectives is a life negating myth like all the others mentioned above. The authors and their novels are random selections. The objective is to scrutinize the style, design the piece of life they signify and to see if any profound or valid thought about life is stated.

Chettan Bhagat : One Night at the Call Center :

The major characters at the call centre are Shyam, Priyanka, Radhika, Esha, Vroom, Military uncle, and Shefali. None

of them have grown beyond their adolescent mind set. Even the aged Military Uncle is an exception. The "Deux Ex Machine" element; the God particle at the fag end of the novel is also an adolescent God. They reveal and are representative of the prevailing global culture.

The dialogue between Vroom and Shyam is much interesting.

> "...What happened to the reproposal plan with Priyanka?" Vroom said.
>
> Shyam replies. "I have told you. Not until I become a Team leader".

Love for him needs the support of externals like promotions, cosmetics or goods. Love in all pits manifestations, is a higher order emotion. But, trade and commerce definitely take love as unprofitable. They place material profit and success as the priority over the deeper under currents of life.

The vibrant dramatic scene at the restaurant in Chapter Ten, in which Shyam and Priyanka spend their moments of dating, is a pointer. Priyanka is really the more interesting character than Shyam because he lives her moments in active reactions to the prevailing stimuli. A mother-in-law at the table near was agonizing her daughter-in-law and her granddaughter. The whole scene offers an everyday gossip element. However, the novelist gives a dramatic turn when Priyanka fires on. She turns her self-righteous anger against the mother-in-law and her son who fails to be supportive of his wife. Priyanka threatens them saying that she was a CBI Officer of the women cell.

> "Three years, Harassing women is punishable for three years. Quick trial and no appeal".

The scene is an adolescent thriller, incapable of any profound positioning about life.

In chapter twenty, there is a piece of life worthwhile to study, try and find out if it demands our contemplation and whether or not any valid thought about life in presented. Esha a colleague at the call centre confides to Shyam her sense of guilt and pain.

> "Real Pain is mental pain" Esha said.
>
> "...I don't feel a lot of things" Shyam said.
>
> "Everyone feels pain because everyone has a dark side to their life", said Esha.
>
> To which, Shyam, who is incapable of a real sense of life replies;
>
> "I have so many – like half a dozen darksides.
>
> I am like a dark sided hexagon"

The Novelist and his characters are incapable of a human dialogue, real and of a serious kind because the globalized culture disables thought of a profound kind.

Esha's pain and guilt are real. She has caused them on herself. She does not look for sympathy but seeks an understanding of life and its under currcute. Education and her friends fail to offer. The age has everything else to offer- job, good pay and goods. Esha has thrown a stone into the water of one's consciousness, creating ripples after ripples. The novelist is shrewd enough to portray the predicament of Esha. Her fellow human beings are dehumanized and are incapable of understanding her predicament any further. Shyam fails to see it.

Tricks and unkindness prevail at the call centre. And getting letter off the other

is considered intelligence look how they respond to a situation which is life- literatening and situations which are not. The protagonists of the novel are at the risk of an imminent death. The Novelist is inescapable from using a "Deux Ex Machine" or the God as the only route of escape from a tragedy. The only relevant question before one is to find out, how does the author differ from the classics of one's own culture? If so, what has prompted the difference?

Everyone, in the novel, lives in their self inflated egos, seeking pleasure for himself or herself. And God in the scene is pleased to leave them at it and told them to go ahead and fulfil their selfish urges.

Vroom alone has some inkling of his real need. "I want to have a life with meaning, even if it means a life without bed or daily trips to pizza-hut". Vroom reveals his order of material preferences and none of which has given him the sense of living.

Priyanka tells that let her mother be "Responsible for her own happiness" "My focus should be on my own life and what I want".

Military Uncle wants to be with his son and grandson in the US. Radhika wants to divorce Aunj. Esha wants her parents to love her again. She does not want to become a dumb model.

Shyam wants to set up a small web design company. He wants to be worthy of someone like Priyanka. This is what they say in a moment of immediate death.

God says that he was just amazed and pleased. The reader would be amazed too but definitely not pleased because these blabbering are insignificant trivialities. What profound seeking do they reveal? They love themselves, their drinks and their dines and the things they buy. They are still in their teens. Look at the sexual relationship they exhibit. Love of sports, business, polities or religion and even the love between men and women in the novels are equally same. They are press buttons for pleasure just like their promotions and wage increase. Any conflict in dealing with any of these, one attempts to solve it through technology. If technology fails, one seeks violence of any kind to solve it through technology. One could find plenty of such scenes in the globalized fiction writing. Love and sex, for them do not represent vital life flow. Love and sex are consumable pleasures or profit promoting deals. The ideology of globalization compels a belief that if love and sex are taken too personal or emotional, they are liabilities against success. They only want their relationship whose basis is pleasured beginning and pleasured ending. Almost all these current popular fictions do the same. They are day dream substitutes. Most profound feelings are trivialized and there is a sufficient diet of fun and humour, sizzlers or thrillers. No valid thought about life is presented except jokes about girls crying and girls thank people if they only listen to them.

The God in the novel talks of himself as the winner voice. The idea is too state and very conveniently deceptive. It is deceptive because the commercial advertisers and the media can easily manipulate the winner voice to their advantage. The miner voice is the creation of the external world beginning from home followed by the rest of the machinery of the society like the schools and other institutions of the state

and religion. The God in the scene gives a common pep talk on success saying one need a medium amount of intelligence, a bit of imagination, self confidence and the ability to face failures.

Indian civilization has gods that are aesthetically acceptable, demanding one's contemplation reverence and worship is far from his recluse and such a great civilization could not offer help to the writer is a pity. The novelist God is merely a play to cover his ability to grasp; the being within him God is merely a miner call, an ego satisfying flag posting, very convenient for consumerism. The God character in the novel does not enlighten them of the real infinitive living which is not ego – centric. He encourages them to live at the level of one's own calculative mind aided by technology and with a formula for material success. This is the new age mantra. The idea of God presented in these pages only goes to trivialize religion and God and level them down to make a highway for globalization.

There is a motivational element to some of these novels and it is sure formula for promoting a reading. The prologues are ingenious and an interesting dragnet. While the epilogues are add-ons. Both are imaginative and creative too. But the question is : what profound thoughts do they provoke about the pieces of life as presented by the novel?

The novels are as interesting as the human interest stories of journalism carriers details of please, dates and answers to all "wh" questions. So does the novel ensuing the ploy of a reality show bringing in everyday news items. Journalism is in the style of a quick interesting gossip. And so is the globalised novel. Its evergreens are supplied by the success of journalism and the reality shows and Tele serials on Television. The foresee elements fulfil the gossip crave of the present milieu. They have a lot of make-believe elements too. Almost all character do not grow beyond adolescence. They show adolescent aspirations. Their reactions to, troubles, pains, sorrows of ever fear do not show any maturity other than adolescent behaviour. And globalisation thrives on gossip loving societies, feeding with stories of macluives, merchandise, success and economic progress how to make money being the top priority. Almost all the protagonist exhibit these inherent tendencies.

Aravind Adiga : The White Tiger :

'The White Tiger is a better novel, artistically racy in language, aggressive in its vituperative stand against the ugly sordidness everywhere in "Darkness" or seen in Laxmangarh or the lives of people at Delhi. One appreciates the skills of artistic imagination in his comparing of powerful and dominant land lords to animals– "the Buffalo", "the Stork", "the wild Boar", "the raven" and "the Mongoose". The picturiaciation of the civilisation of the people at the those places is very realistic but the anger, his resentment and her attitude represents a hate campaign against the very new and women he organically balanced with in his earlier life till the time when he murderously breaks free from his servant master relationship.

The intelligence displayed in the protagonist is diabolise. There is a skilful artistic manovering to justify the entrepreneurial spirit for cash-centred success. The economic ends struggles to justify the anti

human and life negating action. The art here fails miserably for want of a profound reverence for life. The dramatic success and aggressive language post using is quite unhelpful to human continuity on the planet.

Through, it offers a real taste of the human predicated in the area called "Darkness" in the north, the novel is a product of the age of globalling action a product as subjecting and as spicy as the junk food that hangs in the stalls. The relevant questions are, Does the life portrayed in the novel provoke a profound piece of living? It wroth one's contemplation?

The novel may be right in evoking a deep sense of righteous anger against the innumerable incidents of injustice and in human treatment of a large number of innocent rural poor folk. There is real pathos in it. Balram tells that the people before independence were in the cages and are now let into the jungles where politicians are the predators. Balram feels that the poor masses are in a "Rooster Coop". The sentiments are right and are expressed in a fine medium. But, not what light and freedom does the novel suggest people to walk. The diabolic trap is clear. The protagonist in the story walks into the dimming lights of market oriented living and one is clued into an enjoyment of cash, curry and consumerism, a subtle denial of a satisfaction.

The narrative is in the design of a journalistic detailing, categorising people and places in terms of their commercial potentially and industrialization. Nations are judged or labelled on the basic of what they have or have not "No drinking water, electricity, sewage system, public transportation, sense of hygienic, discipline, courtesy or punctuality".

The protagonist prides himself with exuberance that there trivialities matter more than a healthy cultured state of the mind. His jingoistic nationalism is quite clear.

> "Only three nations have never let themselves be ruled by foreigners, China, Afghanistan, Abyssinia... I admire".

The overriding preference for technology and entrepreneurship is quite expressive of the spirit of globalization – "how entrepreneurship is brow, nurtured and developed". The city of Bangalore is assumed an area of "light" in contrast to the North which he calls "Darkness". The darkness is not in the area but in the mind of the protagonists who suffers from and illusion sustained by his unconscious egoistic mind.

> "Tell you the truth about Bangalore! Life in Bangalore is great, rich food, beer, night clubs... I am in the light now but I was born and raised in Darkness".

Globalization has a kick for trivialization of Gods. Goddess Lakshmi - "woman in white sari with gold sovereigns dripping down her feet" – for profit.

> "Which God's arse? There are so many choices. The Muslims have one God. The Christians have three Gods, the Hindu have 36,000,000 Gods. All these Gods do little work – much like our politicians and yet keep winning re-election to their golden thrones in heaven, year after year."

The design and the calculated anger spring from an anger palpable and clean. It is of a mind that springs from ugly and sordid conditions of the present age.

> "Hanuman, everyone's favourite God in the Darkness because he is a shining example of how to serve your masters with fidelity, love and devotion – kindly of Gods the foisted on us".

The prevailing darkness for him is the servant master relationship which is slavery. Who are the masters for him? He presumes that the politicians, land lords and the Gods are the enslaving masters. Though the politicians and the land lords are domineering brutal in pushing the less privileged into "Rooster coop", like conditions, the Gods don't compel any one into slavery. One has a choice whether to admire adore and reverence or reject the Gods with a safe conscience Gods are not compulsive elements. They are the highest forms of creative expressions, art forms whose purpose is to offer a movement of timelessness free from the clamour for mundane pleasures. The globalized civilization may find it unprofitable.

As the story unravels, one finds that Balaram is a coward. Or, is he a hypocrite, sly, villainous and dehumanized in reacting to the domineering social back ground? It does not matter to him to be self critical. The globalized world out there is very powerful, compelling and impressive. The idea of success and the mad joy is clear.

> "I can't tell you how exciting it is to me. General Electric, Dell, Siemens – they are all in Bangalore. And so many more are on their way".

This is the kind of freedom and joys he walks into after having murdered her master without a cause. Dehumanisation begins when one fails to make a sentence upon himself and when one has. Lost-his human consciousness Balram says,

> "I will never say I made a mistake that night Delhie when I slit my master's throat I will say it was all worthwhile to know, just for a day, just for an hour, just for a minute, what is means not to be a servant".

The expression is a mere idea, an illusion that deceives the ego.

There is an inherent weakness in the novel. And in Balram the hero. The character of Balram all along is incompatible with the final act of a bloody murder of his own boss Ashok against whom he goes not harbour anger, animosity or revenge either of Ashok he says.

> "But I do think about him a lot – and believe it or not I do miss him. He did not deserve his fate.
>
> I should have cut the Mongooses neck"

The real character of Balram as built up by the author would be quite incapable of such a blood letting murder and it would be unsuitable for Balram to call himself a "White Tiger". The real Balram reveals himself in these words.

> "The Lizards face came right up to my face; and then it opened its light green mouth and them]n I fainted for the second time in my life".
>
> "Uncle Balram fainted in front of the white tiger in the cage."

And Balram himself confesses,

> "A tingling went from the base of my spine into my groin. My knees began to shake; I felt light. Someone near me shrieked ... "He is going to faint..." My feet were slipping".

So Balram has remained all along too sensitive to life and living every where before him. He was very much alive to the blackness and sordidness around him. The protagonist walks from darkness to utter

darkness. He dupes himself into a illusionary belief of joy in the cash and curry consumerism. The unreflective hubris of Balram is founded on hope in Electronic city, the multinational companies and the business and goods they would offer. The expected pleasure is one of economic dependence which generates a habit, a second nature of globalization. These globalization novels do not purpose themselves to awaken of provoke any new bearings in human consciousness.

Conclusion :

The study of the protagonists of these novels, the narratives of incidents and conversations revel the prevailing practice of the ideologies of Globalization life for them is a struggle and only the fittest survive. They strive endlessly to be more smarter, more ambitious more richer and more powerful than others. They exhibit an endless craze for technologies and gadgets. Love and sex for them are also pleasure giving consumables. Violence and villainy is considered intelligent step for survival or progress.

References :

1. Global Shift in the world mind by Ervin Laszlo.
   A-2 Jash Chambers, 7-A, Phirozshah Mehta Road Fort, Mumbai – 400001. 2009
2. During, Alan. How much is enough? New York : 1992
3. Adida. Not Two is Peace : The Ordinary Peoples way of Global Co-operative order. Middle town, calif;Is peace 723,2007.
4. Adiga, Aravind. The White Tiger. A-53, sector 57, Noida, India, Harper Collins – 2013.
5. Bhagat, Chetan. One Night @ The Call Center. Dargagary, New Delhi; Rupa. 2005.

Dynamic Aspects of Indian Classical Music

Dr. Monali J. Masih
Associate Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Nagpur

Abstract :

Changes in everything visible are inevitable. Nothing remains the same. So far as Indian Classical Music is concerned it has maintained its original form in spite of so many Historical, Political, cultural religious changes in the country. Since the vedic period the country has gone through so many political changes. Given in modern times, because of scientific inventions we see tremendous changes in every walk of life, Indian Classical music has not done away with its original base. So much development in musical forms, styles, ways of performances and renderings have changed but the foundation is unchanged.

Keywords :

Classical Music, Changes, Historical, Political, Cultural, Musical forms.

Change is the law of nature. Nothing has remained untouched from the changes that come spontaneously or in consonance with changing times. So is the case with Music. It is true that Classical Music does not accept changes all of a sudden. Whatever changes have taken place in classical music, they have been very slow and gradual. Other art forms adopt changes conveniently moving forward pacing with time. But the classical music initially stands to defy all the upcoming changes in the course of changing times. The reason may be the unchallenged impact or influence of the long existing traditions or the undaunted faith in their permanent and everlasting quality.

The conspicuous and effective changes in Indian Classical Music began to take place mostly after Independence. The reasons or circumstances were obvious. Science and freedom, coincidentally brought about tremendous changes in the way of life, of people, their choices, their liking's. Inventions changed the whole life style way of cinema, Gramophone, Radio, Tape recorder, T.V. Computer internet created a great source /treasure of knowledge, all kinds of information and most of all entertainment. People got immense opportunity

for great cultural, social art, literary, medical all kinds of exchanges through these means and also this means of transportation Railways, aeroplane - fast means of travelling. Impact of foreign culture-social life-materialistic philosophy of life began to change Indian attitude towards life industrialization and fast means of travelling made life mechanical and unimaginably fast. All this led people to become more and more indifferent towards classical traditional arts specially music.

Before independence Indian Classical Music survived and flourished under the shelter of kings and Emperors Musicians performed to the expectation and satisfaction of the kings and the contemporary audience. It was the tradition those days that a musicians went on rendering one raga for hours together, showing variety of skills mesmerizing the audience and pleasing the kings (an the musicians have such long duration of performance today?)

Then, there were different gharanas having their respective identity and individuality which was asserted through competitions for the superiority or supremacy of one gharana over another. So these gharanas would try to maintain their identity by strictly adhering to their long last traditions shunning any kind of change. (In the face of so much exposure in music, can any individual artist manage to avoid the influences affecting his style or way of singing or playing.

In the past music was not only the medium of devotion, it was a means of entertainment. Means of entertainment as we find today, were not there, there was little exposure and hence there was no scope for any change or innovation except creation resulting from human imagination.

With new scientific advancement, new inventions and modern education system introduced by the Britishers music came out from the confinements of kings and aristocrats and reached the commoners. Science gave many new equipment s of communication like radio, cinema, Gramophone, T.V. Tape Recorder Computer etc. which became the most powerful source of communication and entertainment International exchange of art, music and all kinds of knowledge, cultural adoptions, change in life style, fast and mechanical living due to modern means of transportation-Railways, buses, two wheelers, four wheelers, industrialization etc. all these factors posed great challenges to Indian Classical Music for its popularity and survival. The wave of modern inventions and foreign specially European influences was so strong like psunami that Indian Classical Music too had to make some alterations in order to make it suitable to the ears of modern audience and at the same time not allowing it (music) to lose its identity.

In the past, grammar of music, technicalities had a very important role in any musical performance. But today the picture is different. Expression of feelings, human emotion found prominence in musical compositions and expositions. Ustad Wahid Khan Sahab and Abdul Karim Khan Sahab laid the foundation of rendering deep and sensitive (emotional) musical compositions. Great Maestro Pandit Onkarnath Thakur was not only a singer but also a great thinker. He also evolved a way or style how one could create “Rasa” in music and stir the feeling of the audience. He paved a way for many upcoming musicians who followed it and became known for their

heart touching music. Who does not know the names of Kumar Gandharva, Pandit Bhimsen Joshi, Kishori Amonkar, Dr. Prabha Atre, Manik Verma and perhaps many others. This has been a great welcoming change felt in today's classical music.

Secondly, musicians felt much freedom to be more innovative to new forms of rendering music - a kind of "Gayaki" leading the performer and the audience to "Trance". Emphasis on melodious expression of deep feelings through "Swaras" doing away with the compulsion of observing time sense while singing or playing a Raga, singing or playing Vilambit Khayal with slower speed (Laya), using variety of Tanas, creative use of notations-all these new phenomena elevated Indian Classical Music to high attitudes of its strength, force, beauty and melody.

Gharana in North Indian Classical Music has a very important place Artists assert their identity by their belonging to a particular Gharana. They feel proud of being members of a particular Gharana-Kirana Gharana or Gwalior Gharana or Agra Gharana and so on. This sense of belonging to a particular gharana was natural and justifiable in the past since a learner could learn music only from a Guru. There was no other way.

It has been a coincidence that Independence and scientific advancement in the country gave vent to so many sources of music in all its richness and variety that a learner could learn and develop his musical talent to a large extent. Radio, Gramophone, Tape-recorder, T.V. C.D.s organizing live programme was democratization, decentralization, free access to music performances of all kinds have given free scope to a learner of music to learn and gain knowledge. Of-course even today in spite of the above mentioned facts, inevitability of a Guru and a Gharana cannot be denied. Yet, the question arises whether a learner can hold himself away from the influences of all kinds of music surrounding him! An artist may label himself as belonging to a particular gharana, but can he stop the imperceptive influences stealthily forming his style of singing, giving new form or shape to his music? It would not be so easy to escape the influences and maintain the purity of a particular gharana or gayaki. This apart, an artist also wishes to have his own individuality and identity and therefore he tries to assimilate in his music all appealing elements he finds in each and every gharana and to develop a new style of Gayaki of his own.

A very powerful and effective and revolutionary change in the world of Indian Classical Music is introduction of music as one of teaching learning subjects in schools and colleges. The education of music has become available to all irrespective of their social position or status, unlike the situation in the past in which only music Gurus gave music lessons to the disciples of their choice in their Ashrams. In this respect the contribution of Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande and Pandit Vishnu Digamber Paluskar cannot be left unremembered. These two musicians evolved the notation system of recording music tunes (ragas) on paper. They moved round the country and collected noting down the music they got from the musicians directly or indirectly. It was an Herculean task to listen to musicians and write down the music on the paper using the notations Sa-

re-ga-ma-pa... then a great boon to music learning lovers that is music is included in University curriculum. Now any students with the talent of music and ambition to learn music can offer music to learn and acquire degrees. B.A., M.A., M.Phil., Ph.D. etc. of course, the fact to be admitted is that students are not fully prepared to be considered well versed in music. But it is very clear that universities and colleges have paved the way for them to develop their talents in order to reach the status of an artist. U.G.C. has provided enough scope for research and advanced studies in Music.

In order to encourage the upcoming artists Government of India has founded Central Music, Drama Academy started Various institutions providing music education to all interested to learn. Government also provides scholarship if a student wishes to learn music following Guru-Shishya tradition.

Music is not a common talent. All cannot learn or develop it. Secondly modern trends in the field of art have posed many challenges before Indian Classical Music. But it is the indomitable strength of Indian Classical Music that in the face of most powerful Remix and Fusion music forms, Indian Classical Music has safeguarded its basic and cardinal features.

References :

INSIGHTS IAS

https://www.insightsonindia.com

कला के पारंपरिक मूल्य और आधुनिकता की चुनौतियाँः एक संतुलन की खोज

आकाश वर्मा
शोध छात्र
चित्रकला विभाग
दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

कला, परंपरा और आधुनिकता तीनों एक-दूसरे से गहरे जुड़ाव के साथ मानव जीवन के अनिवार्य अंग हैं। कला मानव अनुभव का एक अद्वितीय प्रतिकृति है, जो भावनाओं, विचारों और संस्कृति को प्रस्तुत करती है। भारतीय कला में शास्त्रीय रूपों से लेकर लोक कला तक, परंपरा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह हमारी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में सहायक होती है। परंपरा ने कला को एक आधार दिया है, जबकि आधुनिकता में तकनीकी विकास और नए विचारों का समावेश होता है। आधुनिकता ने कला के स्वरूप को बदल दिया है, जिससे कलाकारों को नवाचार करने का अवसर मिला है। आजकल, डिजिटल कला, पॉप कला और इंस्टॉलेशन आर्ट जैसे नए रूप उभरे हैं। हालांकि, यह भी सच है कि आधुनिकता के अंधानुकरण से परंपराओं का ह्रास भी हुआ है। इस संतुलन को बनाना आवश्यक है, ताकि हम अपनी

सांस्कृतिक धरोहर को संजोते हुए, भविष्य के लिए प्रगतिशीलता को भी अपनाएं। इसलिए, कला के क्षेत्र में परंपरा और आधुनिकता का समन्वय एक बेहतरीन तरीके से सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को आगे बढ़ा सकता है।

बीज शब्द :

समकालीन कला, परंपरा, आधुनिकता, समीक्षा।

भूमिका :

भारत में कला की उत्पत्ति प्रागैतिहासिक काल से ही मानी जाती है। समय के अनुसार जैसे-जैसे मनुष्य विकास की ओर अग्रसर होता रहा, कला भी अपने उन्नति को प्राप्त करती रही। कला किसी भी काल विशेष की हो वह कला ही होती है। अब कला चाहे प्रागैतिहासिक काल की हो अथवा प्राचीन व मध्यकालीन, आज भी देखी समझी एवं सराही जाती है। कला समाज का दर्पण है और कला के माध्यम से ही हम अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, परंपरा एवं महत्व को जान पाते हैं। कला चाहे किसी भी क्षेत्र की क्यों ना हो, उसने सदैव नवीनता को अपनाया। एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर राजनीतिक,

आर्थिक एवं वैज्ञानिक परिवर्तन के कारण कला भी अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत होती रहीं हैं। गांव में लोक कला विकसित होती है। जंगलों में जनजातिय कला तथा नगरों में आधुनिक कला। आज 21वीं शताब्दी में लोक कला, जनजाति कला एवं आधुनिक कला आदि के अलग-अलग स्वरूप विद्यमान है। अपने-अपने क्षेत्र में सभी समकालीन कलाएं हैं और अपने ढंग से विकसित एवं परिवर्तित हो रहीं है। इन सभी कला के अलग-अलग स्वरूपों को एक दूसरे से तुलना करके न देखा जा सकता है और ना ही समझा जा सकता है। उनको उन्हीं की परिस्थितियों में रखकर ही समझा जा सकता है। कला से तात्पर्य, जो जीवन में आनंद प्रदान करती है, कला कहलाती है। कला में आनंद का रसास्वादन सार्वजनिक नहीं है और इसमें आनंद उसी व्यक्ति को मिल सकता है। जो स्वयं कलाकार हो अथवा जिसमें कला की थोड़ी बहुत समझ हो। यह सत्य है कि भावों के उद्वेग से कला की उत्पत्ति होती है। परंतु भाव से कलाकार पैदा नहीं होते, कलाकार भाव पैदा करते हैं। एक सच्ची एवं उत्कृष्ट कला की रचना तभी हो सकती है जब कलाकार मानसिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो। कला के लिए विभिन्न रंगों, माध्यमों एवं विधाओं की तकनीकी ज्ञान आवश्यक है। परंतु सिर्फ तकनीक सीख लेने से कोई अच्छा कलाकार नहीं बन जाता। चित्रकला भावाभिव्यंजना का एक माध्यम है। जो कलाकार अपनी भावना को सफलता पूर्वक प्रभावशाली ढंग से तकनीक का प्रयोग करके शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्त कर पता है। वही सफल कलाकार होता है। तकनीक मात्र एक साधन है चित्रकला का, और चित्रकला माध्यम है अभिव्यंजना का, अभिव्यंजना ही लक्ष्य है चित्रकला का, तकनीक से तात्पर्य रंग लगाने के तरीके, रेखांकन का तरीका, ब्रश का प्रयोग अथवा चित्र बनाने में काम आने वाले सामानों की तैयारी तथा उचित प्रयोग को कहा जाता है। शैली से तात्पर्य बात को कहने का ढंग, चित्र प्रस्तुति करने का ढंग, चित्र व्यवस्था, चित्र संगठन अथवा कंपोजिशन से है। सभी कलाकारों का अभिव्यक्ति करने का ढंग एवं तरीका अलग-अलग होता है। यह कभी-कभी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, कभी नहीं भी। कलाकृति में भावों की अभिव्यंजना कलाकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए कलाकार स्वतंत्र है। उनकी रुचि एवं स्वभाव कुछ समय के पश्चात उनके अभिव्यंजना का माध्यम एवं शैली बन जाती है। और यही माध्यम एवं शैली एक कलाकार को दूसरे कलाकार से अलग पहचान दिलाती है। परंतु अगर कला में तकनीक या कौशल प्रमुख हो जाता है। तब वह मात्र शिल्प बनकर रह जाता है, कला नहीं। तथा वर्तमान समय में आवश्यकता नहीं कि हम पाश्चात्य कला का अनुसरण करें, आधुनिक बनने के लिए, बल्कि जरूरत है बहकी हुई कला को सही दिशा देने की। मानव को मानव बनाकर मानवीयता के प्रतिस्थापन की। तकनीक और शैली महत्वपूर्ण नहीं है। कला महत्वपूर्ण है। तकनीक और शैली मात्र कला का माध्यम है, अधिष्ठाता नहीं। तथा कला को सही दिशा हम तभी दे सकते हैं, जब हम भारतीय कला परंपरा को महत्व दे, न की अपेक्षा करें। क्योंकि परंपरा समाज का एक आवश्यक अंग है। तथा वह समाज को संगठित एवं मर्यादित करती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्य कला, ज्ञान विज्ञान की परंपरा ने हमें सदैव प्रगति पथ पर अग्रषित एवं प्रेरित करती रहीं हैं।

परंपरा हमारे लिए शिक्षक के समान है तथा परंपरा के द्वारा सीखना एक प्रारंभिक तरीका है। भारत में अंग्रेजी हुकूमत से पहले यहां पर राजस्थानी, पहाड़ी, मुगल कला की परंपरा थी। परंतु धीरे-धीरे इन सभी शैलियों पर पाश्चात्य कला का बादल मंडराने लगा। तथा इन सभी कला शैलियों को अपने अंदर समाहित कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। भारत में आजादी से पूर्व बंगाल शैली के कलाकार ने प्राचीन भारतीय कला परंपरा को पुनः स्थापित करने

का प्रयास किया। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पाश्चात्य यह आंदोलन भी कमजोर पड़ गया, आधुनिक कला आंदोलन के सामने। और सबसे बड़ा प्रश्न चिन्ह उठा परंपरा और आधुनिकता का। तात्पर्य यह है, कि कौन सी परंपरा पर चला जाए भारतीय या पाश्चात्य। परंतु हमारे कला परंपरा तो अंग्रेजी हुकूमत के दौरान ही नष्ट भ्रष्ट कर दी गई थी। वर्तमान समय में शायद ही कोई ऐसा कलाकार होगा जो भारतीय कला परंपरा के आधार पर चित्रकारी करता हो। हाँ शायद यह संभव है कि हम अपनी प्राचीन भारतीय कला परंपरा को पुनः जीवित या स्थापित करें। परंतु इस आधुनिक युग में यह उचित या सार्थक होगा, उदाहरण स्वरूप प्राचीन समय में घोड़े एवं रथों वाली परंपरा थी। परंतु क्या यह अब वर्तमान देश के प्रगति के लिए उचित या सार्थक सिद्ध होगा, विचार करने वाली बात है। और इसी रूप में कला के बारे में भी विचार किया जा सकता है। हाँ हमें अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत पर गर्व होना चाहिए, ना कि इसकी उपेक्षा करनी चाहिए। क्योंकि वर्तमान समय में कुछ कलाकार एवं कला समीक्षक भारतीय कला परंपरा की उपेक्षा करके आधुनिक कला में प्रवेश करना चाहते हैं। और यह बहुत ही निंदनीय कार्य है। अब आवश्यकता है, कि आधुनिक कला की प्रगति के लिए परंपरा के विकसित स्वरूप, उचित मध्यम एवं नवीन आयाम का आविष्कार करना होगा। परंपरा से मुक्त होकर चलने वाले कलाकार वे ही है, जो कला को वास्तविक रूप से और अधिक विकसित एवं प्रगति प्रदान करना चाहते हैं। असल मायने में कला के क्षेत्र में विकास और प्रगति का अपना एक अलग महत्व एवं अर्थ है। परंतु ज्यादातर लोग इसे एक ही शब्द समझते हैं। जबकि विकास का अर्थ होता है, किसी उपस्थित वस्तु की भीतरी क्षमता को बढ़ाना, प्रगति का अर्थ होता है, किसी वस्तु को जहां वह है उसे आगे ले जाना। कला के विकास का अर्थ है, कला की संभावनाओं अथवा उसकी आंतरिक शक्ति को बढ़ाना। जैसे मुगल कला को और परिमार्जित कर उसको और भी विकसित कर देना। प्रगति का अर्थ होता है, मुगल शैली के बाद कोई और शैली प्रस्तुत करना जो आधुनिक जमाने की दृष्टि से और भी उपयुक्त हो। हम चाहे तो कला के प्रगति और विकास के लिए परंपरा से प्रेरणा ले सकते हैं। परंतु यह कोई आसान कार्य नहीं है। वर्तमान समय में बहुत से ऐसे भी कलाकार है, जो परंपरा के संरक्षण के नाम पर प्राचीन प्रतीकों को अपने चित्र में भरने लग गए हैं। लेकिन यह सब खिलवाड़ मात्र है, इसमें कोई गहरी सूझबूझ या समझदारी नहीं है। परंपरा का आधुनिक कला में प्रवेश तभी हो सकता है, जब कलाकार बड़े ही तर्कपूर्ण ढंग से परंपरागत कलाओं का अध्ययन करें। तब शायद जो कला उभर कर सामने आएगी उसमें परंपरागत शक्तिशाली तत्व विद्यमान रहेंगे। आज कला का जो प्रचलित स्वरूप है, अर्थात परंपरागत कला से भिन्न है वह आधुनिक कला हो सकती है। आधुनिक कला या आधुनिकता से पहले हम आधुनिक शब्द को समझते हैं। आधुनिकता मॉडर्निटी शब्द का हिंदी है, यह अंग्रेजी में ग्रीक 'मोडो' शब्द से आया है। जिसका अर्थ है समकालीन, यह पुराने का विलोम है, यह वर्तमान है, अतीत से पृथक। आधुनिकता अपने आप में एक बहुत बड़ी क्रांति एवं युग परिवर्तन है। जिस समाज में असंतोष होता है। वहीं आधुनिकता पनपती है। स्पष्ट है कि आधुनिकता की अवधारणा एक लंबी विचार यात्रा रही होगी। प्रकृति विज्ञान की सर्वश्रेष्ठता और क्षमता, जरूरत की आपूर्ति की योजना क्षमता, उदार जनतंत्रात्मक संस्थानों की व्यवस्था, आधुनिकता के ये तीन मुख्य आधार रहे हैं। आधुनिकता की विजय यात्रा दासता से मुक्ति की यात्रा है। 19वीं और 20वीं शताब्दी में विज्ञान का अत्यंत विकास हुआ परंतु यह बात भी सत्य है, कि जहां विज्ञान का विकास हुआ, वही कला का भी विकास हुआ। विज्ञान के कारण कला का विकास हुआ या कला के कारण विज्ञान का यह

सुनिश्चित करना कठिन कार्य है। लेकिन सच्चाई तो यह है, कि मानवता का विकास हुआ, मनुष्य का विकास हुआ। आज मानव समाज में कलाकार अपने आध्यात्मिक चेतना एवं परंपरा को आत्मसात करते हुए आधुनिक कला की राह पर चल रहा है। आधुनिक कला वही है, जो आज के मानव के लिए उपयोगी, कल्याणकारी एवं प्रगति सूचक हो। आधुनिक कला समकालीन भी है तथा वह आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिक कला से तात्पर्य, वर्तमान में प्रचलित कला से है। इस युग की कला से है अथवा 21वीं शताब्दी की कला। जो नवीनता समाज एवं राष्ट्र के लिए प्रगति सूचक नहीं, वह मात्र मृगतृष्णा है।

आधुनिक सभ्यता का विकास नवीन विचारों, कला व विज्ञान की प्रगतियों एवं नवीनतम खोजों पर आधारित होता है। कला को नया स्वरूप तभी प्राप्त होता है। जब वह नए दृष्टिकोण से प्रभावित होकर सृजित होती है। नया दृष्टिकोण नई मान्यताओं पर आधारित होता है। नई मान्यताओं का जन्म तब होता है, जब नए अविष्कार जीवन और समाज को प्रभावित करने लगती है। अगर एक जैसी समस्याएं अनेक देशों में पाई जाने लगे तो वह अंतरराष्ट्रीय समस्याएं होती हैं। और वहीं अंतर्राष्ट्रीय आधुनिकता का प्रश्न उठाती हैं। परंतु यह आवश्यक नहीं की एक देश दूसरे देश की आधुनिकता की नकल करें। और यही बात कला के क्षेत्र में भी आवश्यक एवं ध्यान देने योग्य है। आज समकालीन कला में आधुनिकता हमारे लिए एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह भी बन गया है। क्योंकि आधुनिकता का मूल उद्देश्य मौलिकता होना चाहिए। और मौलिकता से तात्पर्य, वह विचार एवं सिद्धांत जो समाजहित एवं देशहित के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो। यही मौलिकता का मुख्य पहचान है। परंतु जब कला ने परंपरा से आधुनिकता का सफर तय किया, तब उसने धर्माश्रय एवं राजश्रय का खुलकर विरोध किया, सृजन की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए। परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि कला इतने विस्मयकारी स्वरूप में सामने आई कि वह कलाकार एवं सामाजिक समझ तथा पकड़ से भी पूरी तरह बाहर हो गई, अनबुझ बन गई। क्योंकि कला में सृजन की पूर्ण स्वतंत्रता का मूल उद्देश्य समाज विरोधी तत्वों की उचित समीक्षा, प्रगतिशील समाज के विकास में पूर्ण सहयोग एवं राष्ट्र के कल्याणकारी परिवर्तन से है। परंतु जिस प्रकार पश्चिमी देशों में कला में स्वतंत्रता के नाम पर 'एंटी आर्ट' को बढ़ावा दिया जा रहा है। और इसके साथ ही साथ वहां पर आधुनिक कला के नाम पर तमाम पुस्तकें प्रकाशित होती रही, लेकिन शायद ही किसी पुस्तक में आधुनिक भारतीय कलाकारों का जिक्र हुआ हो। तथा अब आवश्यक है कि भारतीय कलाकार आधुनिक भारतीय कला का पथ स्वयं सही दिशा में निर्धारित करें। कला परंपरा एवं आधुनिकता यह तीनों ही तत्व एक दूसरे से भिन्न नहीं है बल्कि एक है एक दूसरे के पूरक है। और हमारी प्राचीन भारतीय कला शैलियाँ समकालीन कला के प्रगति के लिए एक मध्यम एवं आधार है। तथा आवश्यकता पड़ने पर हम अपने धरोहर एवं प्राचीन कला शैलियों से प्रेरणा ले सकते हैं, वर्तमान कला को शोधित करने एवं समकालीन कला के प्रगति के लिए, बजाय पश्चिमी देशों एवं भारतीय कला परंपरा के पथगामी बने।

निष्कर्ष :

कला, परंपरा और आधुनिकता तीनों एक दूसरे के साथ गहरे संबंध में हैं। कला मानवता की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है, जो अपनी विविधता में संस्कृति, भावनाएं और समाज की सोच को प्रतिबिंबित करती है। परंपरा उन मौलिक मूल्यों और मान्यताओं का संग्रह है, जो पीढ़ियों से चले आ रहे हैं और किसी समाज की पहचान को निर्मित करते हैं। आधुनिकता ने, विशेष रूप से 20वीं सदी के बाद, कला और परंपरा के विकास को एक नया आकार दिया है। यह एक ओर जहाँ प्राचीन परंपराओं में नए दृष्टिकोण

और तकनीकों को शामिल करती है, वहीं दूसरी ओर पुराने रिवाजों को चुनौती भी देती है। आधुनिक कला ने स्वतंत्रता, नवाचार और व्यक्तित्व को प्रोत्साहित किया है, जिससे परंपराओं के संरक्षण और उनके समकालीन संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता बन गई है। निष्कर्षतः कला, परंपरा और आधुनिकता के बीच का संतुलन समाज की सांस्कृतिक पहचान के लिए आवश्यक है। परंपराओं को संजोते हुए और आधुनिक विचारों को अपनाने से हम एक समृद्ध और गतिशील सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण कर सकते हैं। यह केवल एक संघर्ष नहीं है, बल्कि एक समृद्ध संवाद है, जो कलाओं को नया रूप और दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार, ये तीनों तत्व एक-दूस के पूरक हैं और उनके सामंजस्य से समाज का विकास और समृद्धि संभव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. रीता प्रताप, 2013, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास (जयपुर राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी)
2. कृष्णनारायण, कक्कड़, 1980, समकालीन कला संदर्भ और स्थिति (ललित कला अकादमी)
3. रामचन्द्र शुक्ल, 1994, आधुनिक कला समिक्षावाद (नया बैरहना, इलाहाबाद : भार्गव प्रेश)
4. निर्मला जैन, 1999, रस सिद्धान्त और सौंदर्यभाव (नयी दिल्ली वाणी प्रकाशन)
5. तारकनाथ बाली, 1992, आलोचना प्रकृति और परिवेश (नयी दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग)
6. डॉ॰ धीरज मेहरोत्रा, 2021, एन॰ ए॰ पी॰ 2020 एट॰ अ॰ ग्लांस फॉर एजुकेटर (नेशन प्रेस, चेन्नई)

रामचरितमानस में लोकतत्व

डॉ॰ अनीता शुक्ल
सह-आचार्य,
हिंदी विभाग
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

तिवारी अनुराग प्रेमचंद
शोध छात्र,
हिंदी विभाग
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

लोकतत्व मनुष्य की आदिम एवं मौखिक परंपरा के परिचायक हैं। इसमें लोकविश्वास, लोक आचार-विचार, रीति-रिवाज, शिल्प कला, लोक दस्तकारी, लोक संगीत, चित्रकला, खेल-कूद, लोक चेष्टा, लोक भाषा और लोक की सम्पूर्ण मौखिक कलाओं की अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुति का जो तरीका और विधान होता है, उसी में लोकतत्वों की अभिव्यक्ति मिलती है।

''लोकतत्व दरअसल समाज की चेतन अवस्था के मूल में स्थित वे गुण-सूत्र हैं जो चेतन धरातल को, आचरण, और व्यवहार का संजीवक रस प्रदान करते हैं। सामाजिक जीवन का हर ज्ञान, उसकी हर चेतना, उसकी हर पल की आचार संहिता, उसकी प्रयोजनवती भाषा, उसकी उक्ति सम्पदा जो चलते को रोक दे, बैठे को उछाल दे, पानी में आग लगा दे - वह हर बात पोथियों में नहीं होती, वह समाज के लोकतत्वों में होती है और परंपरा, रीति, आचरण, व्यवहार, मान्यता आदि के जरिए से समाज को अनुप्राणित, संचालित और क्रियमाण रखती है। लोकतत्व समाज के हजारों वर्षों के अवचेतन लोकमानस का संकलित संभार होता है जिसमें कौन-सा तत्व किस युग का, किस प्रसंग का, किस संस्कृति का है, इसे पहचानना कठिन होता है।''[1]

तुलसी के राम परमब्रह्म हैं तथापि वे श्रेष्ठतम मानवीय अभिव्यक्ति हेतु सगुण होकर अवतरित होते हैं, जो लोकतत्वों की सुंदर परिपाटी का अनुकरण करते हैं। जहाँ परंपराओं की प्रामाणिकता की पुष्टि करते हुए गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं- रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई। परंपराओं के अनुकरण का सबसे बड़ा लाभ यह रहा कि रामचरितमानस में वर्णित सभी द्वंद्वों, समस्याओं और वेदनाओं से आम जनमानस सहजता से तादात्म्य स्थापित कर पाया। भगवान राम का अपने प्रियजनों के दुःख पर रुदन करना, सीता जी का स्वयंवर में राम जी पर शंकित होना, हठी बालक की तरह लक्ष्मण का परशुराम जी और भरत से विवाद करना, भगवान राम का अनुज लक्ष्मण के अनुचित व्यवहार पर आँखें तरेर कर देखना तथा अयोध्या पुनः आगमन पर माता कौशल्या का अपने सुकुमार बालकों को देख उनकी वीरता पर चकित होना इत्यादि लोककथा जनमानस के उर्वर हृदय से सफलतापूर्वक संपृक्त हो पाती है। ''गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में जन्म से मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारों का चित्रण लोक-जीवन की रीतियों के परिप्रेक्ष्य में किया है। जिसमें से कुछ संस्कारों का सामाजिक उत्सव के रूप में महत्व बढ़ गया है।''[2] भारतीय लोक परंपरा में जन्म से मृत्यु तक षोडश संस्कारों का पालन किया जाता है। रामचरितमानस में विशेष रूप से गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ाकर्म, विद्यारंभ, यज्ञोपवीत, विवाह और अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन मिलता है :

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी।।[3] (गर्भाधान)

नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।।[4] (जातकर्म)

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई।
बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई।।[5] (चूड़ाकर्म)

भए कुमार जबहिं सब भ्राता।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।।[6] (यज्ञोपवीत)

ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू।
लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।।[7] (विवाह)

रामचरितमानस में विवाह संस्कार से संबद्ध लोक परंपराओं के बेहद सुंदर दृश्य देखने को मिलते हैं। जिसमें मंगलगीत, गारी गीत, कोहबर में जाना, महावर लगाना, लहकौर, पान देना, उबटन लगाना तथा कहारों द्वारा पालकी ढोना इत्यादि विषयों का वर्णन भी मिलता है। मंगलगीत और गारी शुभ अवसरों पर विशेष रूप से स्त्रियों, सूत, मागध तथा भाट द्वारा गाया जाता है। डॉ॰ मृदुला गुप्ता के अनुसार, ''गीत लोक मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दुःख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। लोक कथा की भाँति ये भी लोक-कंठ की मौखिक परंपरा की धरोहर और लोकमानस की विभिन्न चिंता-धाराओं का कोश माने गए हैं। इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया गया है :

1) परंपरागत
2) चारणी
3) विकृत
4) साहित्यिक

उपर्युक्त चार वर्गों में से प्रथम कोटि के गीत ही शुद्ध रूप से लोक गीत कहे जाएँगे। इन पर किसी भी प्रकार का कोई परवर्ती प्रभाव जल्दी नहीं पड़ता और ये लोक-कंठ में ज्यों-के-त्यों सुरक्षित रहते हैं।''[8]

जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी।
लै लै नाम पुरुष अरु नारी।[9] (गारी गीत)

विवाह की विविध रस्मों में से एक कार्यक्रम कोहबर पूजन का भी होता है। विवाह वाले घरों में किसी कक्ष की पूर्व दिशा की दीवार पर गेरू द्वारा चौकोर आकृति का कोहबर बनाया जाता है। इस चौकोर आकृति के अंतर्गत उर्वरता व जीवन से संबंधित विविध प्रतीक चिन्ह बनाए जाते हैं, जैसे- शिव-पार्वती, सीता-राम, कमल पत्र, बाँस का पेड़, मछली, नाग-नागिन, स्वस्तिक, दूल्हा-दुल्हन, केले का वृक्ष, सूर्य-चंद्रमा, घोड़े, हाथी इत्यादि :[10]

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि
सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं
करन मंगल गाइ कै।।[11]

इसके साथ ही लहकौर की रस्म भी निभाई जाती है। यह विवाह की एक रस्म हैं जिसमें वर-वधू एक दूसरे को अपने हाथों से कुछ खिलाते हैं और खेल भी खेलते हैं :

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।[12]

''महावर मुख्यतः कथा, अनुष्ठान व वैवाहिक अवसरों पर पतली सींक को तथा तर्जनी उँगली में आलता को डुबोकर स्त्री व पुरुष के पैरों में आड़ी, तिरछी रेखाओं तथा गोल-गोल बिंदुओं से की जाती है।''[13]

जावक जुत पद कमल सुहाए।।[14]

रामचरितमानस में लोकशिष्टाचार के भी अनेक प्रसंग दिखते हैं। जहाँ गुरु, माता एवं पर-स्त्री, ऋषियों एवं संतों, आदिवासियों, तीर्थस्थलों तथा अवधपुरी के प्रत्येक नर-नारी का सम्मान किया गया है। जनमानस के साथ लोक में आचरित रामचरितमानस के पात्रों का व्यवहार अनुकरणीय आदर्श बनता है, जो विशिष्टता के धरातल पर बैठे चरित्रों का सामान्य धरातल के चरित्रों से अभेद संबंध स्थापित करता है। मानस के राम का औदात्य लोकशिष्टाचार की पराकाष्ठा है जहाँ खल चरित्रों को भी राम सर्वप्रथम विनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न करते हैं किंतु उनके अशिष्ट आचरण पर उन्हें दंड देने की नीति का भी उपदेश करते हैं - पर हित घृत जिन्ह के मन माखी अर्थात दूसरों के हित रूपी घी के लिए दुष्टों का मन मक्खी के समान होता है। जिसे लेकर अवध प्रांत में लोकोक्ति भी प्रचलित है

कि न खेलब, न खेलय देब, खेलवय बिगाड़ देब। इसी प्रकार समुद्र द्वारा भी लंका का मार्ग प्रशस्त न करने पर भगवान राम कहते हैं :

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ।।[15]

लोकविश्वास जनता की पीढ़ियों से चली आ रही परंपरा का द्योतक हैं। रामचरितमानस में लोकविश्वास भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि यह भावनात्मक चेतना कथा को इतना सरल बना देती है कि सामान्य जनमानस का अंतःस्थल सहजता से इसे स्वीकार कर लेता है। डॉ. आलमशाह ने लोकविश्वास के तत्वों की व्याख्या करते हुए निम्न तत्वों को स्थान दिया है : "शकुन, स्वप्न, सदाचार, धारणा, कर्मवाद, भाग्यवाद, नेम-धरम, जंतर-मंतर, प्रकृति, भोजन सामग्री तथा प्रयोग पद्धति एवं संयुक्त परिवार चेतना।"[16] रामचरितमानस में लोक-मानस की मांगलिक भावना से ओत प्रोत लोक विश्वास के प्रसंग प्रायः देखने को मिल जाते हैं :

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार ।।[17]
(शकुन)

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करहिं सो
तस फल चाखा।। (कर्मवाद)

तुलसीदास द्वारा 'मानस' में लोक प्रचलित भोजन का भी विशद वर्णन मिलता है, जहाँ सात्विक, राजसिक तथा तामसिक सभी प्रकार के भोग का वर्णन किया गया है। "देवताओं व राजसी भोजन का विवरण व ज्यौनार पद्धति का विवरण राम-सीता विवाह के अवसर पर दिया गया है। जिसके अनुसार भोजन करने से पूर्व पाद-प्रक्षालन होता था और तत्पश्चात पीढ़ों पर बैठकर लोग भोजन ग्रहण करते थे।"[18]

पुनि जेवनार भई बहु भाँती।
पठए जनक बोलाइ बराती।।

परत पाँवड़े बसन अनूपा।
सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा।।

सादर सब के पाय पखारे।
जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे।।

धोए जनक अवधपति चरना।
सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना।।[19]

साथ ही इस विवाहोत्सव में नाना प्रकार के राजसी व्यंजन भी परोसे गए, जिसमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय के अनगिनत प्रकार उपलब्ध थे और विशेष रूप से वर-पक्ष को दाल-भात (सूपोदन) और गाय का घी परोसा गया। राम अपने वनगमन के समय तथा मनु एवं शतरूपा अपनी तपस्या काल में मुख्य रूप से सात्विक भोजन ही ग्रहण करते हैं, जिसमें कंद-मूल और फल की प्रधानता रही :

सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ ।[20]

इसके साथ ही साथ राक्षसों द्वारा तामसिक भोजन किया गया है, जो लोक में उनकी आसुरी प्रवृति का द्योतक है :

कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल
निसाचर भच्छहीं।[21]

महिष खाइ करि मदिरा पाना।[22]

"तुलसी लोकचेता साहित्यकार थे। लोक के साथ उनका यह आत्मीकरण इतना प्रबल और यथार्थ है कि जहाँ भी उन्होंने अपने युग व समाज का चित्रण किया है, वहाँ उनकी पैठ इतनी गहरी सिद्ध हुई है कि वे उस युग और समाज के प्रत्येक पक्ष का सजीव चित्र प्रतिबिंबित कर देते हैं। इसी लोकग्राही दृष्टि के फलस्वरूप उनकी रचनाओं में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का यथार्थ एवं प्रत्यक्ष स्वरूप परिलक्षित होता है।"[23]

क) राजनैतिक दृष्टि : तुलसी अपने समय का सत्य लिख रहे थे, जिसे उन्होंने राम कथा के कलेवर में प्रस्तुत किया। डॉ. उदयभानु सिंह के अनुसार, "रावण के राजतंत्र तथा उनके स्वभावादि के चित्रण द्वारा तुलसी ने अप्रत्यक्ष रूप से

अपने ही युग का चित्रण किया है।''[24] गोस्वामी तुलसीदास ने मानस द्वारा रामराज्य की स्थापना का संदेश दिया, जिसमें तीनों प्रकार के तापों से मुक्ति होगी और राजा का धर्म लोक केंद्रित बताते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि लोक के सुख-दुख के लिए राजा ही प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होता है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।[25]

ख) धार्मिक जीवन : रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने ज्ञान, योग तथा अन्य सभी मार्गों का समागम भक्ति मार्ग में स्वीकार किया तथा भक्ति द्वारा ही तत्वबोध की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया। ''तुलसी पहले संत हैं और उसके बाद कवि, इस कारण उनकी रचनओं में उस काल की धार्मिक स्थिति भली प्रकार व्यंजित हुई है। तुलसी के काल में नाना प्रकार की वाममार्गीय साधनाएँ प्रचलित थीं। उनमें शुभ-अशुभ वेश तथा अभक्ष्य-भक्षण का विशेष महत्व था।''[26]

जाकें नख अरु जटा बिसाला।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।[27]

ग) सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन : तुलसी के युग में सांस्कृतिक विरासत विकृत हो चुकी थी। इसका संकेत करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है- ''जिस युग में उनका जन्म हुआ था उस युग के समाज के सामने कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। समाज के उच्च स्तर के लोग विलासिता के पंक में उसी तरह मग्न थे जिस प्रकार कुछ वर्ष पूर्व सूरदास ने देखा था।''[28] इस समाज में उच्च आदर्श का नैतिक मानक लोकाभिराम के महत्व द्वारा स्थापित किया गया :

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहि बधें कछु पाप न होई।।[29]

मानस के शिल्प विधान में निहित लघु वार्ताएँ भी व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करने में सफल होती हैं। ''काव्य की प्रेषणीयता को बढ़ाने के लिए कवि लोक भाषा में जिन मुहावरों, उक्तियों का समावेश करता है उन्हें पारिभाषिक शब्दावली में लघु वार्ता की संज्ञा दी गई है।''[30] इस प्रकार की उक्तियों का प्रयोग सामान्यतः लोगों द्वारा मिसाल के तौर पर किया जाता है। इनमें सजीवता, लोकगत व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव सन्निहित होते हैं। 'रामचरितमानस' लघु वार्ताओं का आगार है। तुलसी लोक जीवन के प्रत्येक क्षण से परिचित थे। अतः लोकोक्तियाँ या मुहावरे बड़ी सहजता से ही उनके काव्य का अभिन्न अंग बन जाते हैं :

समुझइ खग खगही कै भाषा।[31]

उपर्युक्त सभी लोकतत्वों के अलावा रामचरितमानस में लोक मनोविकारों पर भी ध्यान दिया गया है जो कि इस ग्रंथ की प्रासंगिकता का प्रमुखतम कारण बना है। जो समाज हर्षित और प्रफुल्लित नहीं होगा उसकी मनस्थिति विकृत बनी रहेगी और ऐसा अवसादग्रस्त समाज परंपराओं का निर्वाह नहीं कर सकता। मानस में मुख्य रूप से चार मनोविकारों का स्पष्ट वर्णन मिलता है :

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।[32]

उपर्युक्त सभी मनोविकार मुख्य रूप से जनमानस के दैनिक जीवन का हिस्सा हैं और जब ये मनोभाव व्यक्ति पर हावी होते हैं तो वह अपनी स्थिति से गिर जाता है। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं-

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[33]

लक्ष्मण भी परशुराम जी के क्रोध को इसी प्रकार की उक्ति के द्वारा शमित करने का प्रयास करते हुए कहते हैं :

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल।[34]

'रामचरितमानस' भारतीय लोकतत्वों का उद्गीथ है जो प्रमाणित करता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म को शास्त्रों के घेरे से निकाल जनता के हृदय में स्थापित करने का कार्य किया। मानस की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उसकी लोक-संग्रहकारी प्रवृति ही है जिसमें जीवन की समस्त चुनौतियों का सहज और व्यावहारिक समाधान है। अवधी में 'मानस' की रचना ने इसे जन-जन के लिए सुलभ कर दिया और लोकभाषा को प्रथम श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। अंततोगत्वा यह स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है कि तुलसीकृत रामचरितमानस लोकतत्वों का आगार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. खान, डॉ॰ आलमशाह, मीराः लोकतात्विक अध्ययन, संघी प्रकाशन, उदयपुर, 1987, पृ॰-65
2. गुप्ता, डॉ॰ मृदुला, तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व, भावना प्रकाशन, 1995 (प्रथम संस्करण) पृ॰-167
3. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-167 (बालकाण्ड, 193)
4. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-167 (बालकाण्ड, 193)
5. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-174 (बालकाण्ड, 202,2)
6. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-175 (बालकाण्ड, 203.2)
7. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-260 (बालकाण्ड, 311.3)
8. गुप्ता, डॉ॰ मृदुला, तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व, भावना प्रकाशन, 1995 (प्रथम संस्करण) पृ॰-17
9. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-281 (बालकाण्ड, 328.3)
10. शर्मा, नीतू, फ़ैजाबाद सांस्कृतिक गैजेटियर, वाणी प्रकाशन, 2016 (प्रथम संस्करण), पृ॰-119. (10/11/2024)
11. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-279 (बालकाण्ड, 326.2)
12. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस(मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-279 (बालकाण्ड, 326.2)
13. शर्मा, नीतू, फ़ैजाबाद सांस्कृतिक गैजेटियर, वाणी प्रकाशन, 2016 (प्रथम संस्करण), पृ॰-123, (10/11/2024)
14. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), पृ॰-278 (बालकाण्ड, 326.1)
15. श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), सुंदरकांड, 57 चौपाई ,पृ॰-704,
16. खान, डॉ॰ आलमशाह, मीरा : लोकतत्विक अध्ययन, संघी प्रकाशन, उदयपुर ,1987, पृ॰-67
17. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), बालकांड, 303, पृ॰-254
18. गुप्ता, डॉ॰ मृदुला, तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व, भावना प्रकाशन, 1995 (प्रथम संस्करण) पृ॰-181
19. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), बालकांड 327.2/3, पृ॰-280
20. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस,2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), अयोध्याकांड 89, पृ॰-377
21. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस,2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), सुंदरकांड, 2.3, पृ॰-661

22. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस,2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), लंकाकांड 63.1, पृ॰-762

23. गुप्ता, डॉ॰ मृदुला, तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व, भावना प्रकाशन, 1995 (प्रथम संस्करण), पृ॰-144

24. सिंह, डॉ॰ उदयभानु , तुलसी काव्य मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1966, पृ॰-223

25. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), अयोध्याकांड 70.3, पृ॰-363

26. गुप्ता, डॉ॰ मृदुला, तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व, भावना प्रकाशन, 1995 (प्रथम संस्करण), पृ॰-148

27. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), उत्तरकांड 97.4, पृ॰-921

28. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, 1948 (तृतीय संस्करण) पृ॰-103 https://epustakalay.com/book/6912-hindi-sahitya-ki-bhumika-by-hazari-prasad-dwivedi/ 22/10/2024

29. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), किष्किन्धाकांड 8.4, पृ॰-635

30. गुप्ता, मृदुला, तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व, भावना प्रकाशन, 1995 (प्रथम संस्करण) पृ॰-85

31. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), उतरकांड 61.5, पृ॰-888

32. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), उत्तरकांड 38, पृ॰-689

33. श्रीमद्भगवद्गीता, सांख्ययोग, 2.63, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2013, पृ॰-62

34. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (मझला साइज), गीता प्रेस, 2015 (108वाँ पुनर्मुद्रण), बालकांड 277, पृ॰-234

Romantic aspects of the composition 'Yugmaganam' with the musical form 'Javali' - A Study

Anjo P. Thomas
Corresponding Author, Research Scholar,
Department of Music,
School of Performing Arts and Fine Arts,
Central University of Tamil Nadu, Thiruvarur

Dr. S. Seethalakshmi
Assistant professor, Department of Music,
School of Performing Arts and Fine Arts,
Central University of Tamil Nadu,
Thiruvarur

Abstract :

The state Kerala is rich in cultural and artistic diversity, and it has made significant contributions to various fields, including Karnatak classical music. Even though it has produced many talented composers and lyricists, the academic exploration of those contributions remains limited to a great extent. All these creative attempts to incorporate all aspects of life into Karnatak Music are attempted to be traced in modern times by academicians and researchers. The Kerala Sangeetha Nataka Academy made a great effort in an attempt to expand the thematic scope in Karnatak music beyond its traditional confines. This paper deals with the musical, lyrical, and thematic analysis of one of the compositions 'Yugmaganam', from the text 'Sangeetamapi Saahityam', a publication of Kerala Sangeet Natak academy.

Keyword :

C S Krishna Iyer, Sangeetamapi Saahityam, Musical Analysis, Yugmaganam, Malayalam kriti, Javali.

Introduction :

Indian music consists of different genres. They are mainly folk music, film music, light music, classical music and Indian popular music, etc. Hindustani and Karnatak are the two classical music traditions in India. Karnatak music is a system of music commonly associated with the southern parts of India, namely Andhra Pradesh, Telangana, Karnataka, Kerala and Tamil Nadu.

Palakkad is one of the traditional places of Karnatak music in Kerala. Many great Vaggeyakaras have nurtured and contributed to the world of Karnatak music by their excellence. One among them is C S Krishnayyar who has contributed in various ways by way of transferring knowledge and musical abilities to the next generation.

Scope of this Study :

One of the rare Malayalam compositions in the book "Sangeethamapi Saahityam" authored by P Bhaskaran, composed by C S Krishanayyar has been chosen for this study. The composition is not popular and is quite unexplored in the field of music performance.

Objectives :

This study aims to analyze the various elements of the composition, differences from the other musical form Javali and musical mind to establish the significance of the musical work.

Research Methodology :

A rare composition in raga Saramati is selected. Key aspects of the song, such as language, theme, notation, musical and lyrical elements, relevance, word meaning and similar expressions and overall melody, are analysed.

Material and Methods :

For deeper understanding of the diversity in Karnatak Music, similarity and difference from other traditional musical form Javali, and the musical nuances of the composition, a field work has been done by the researcher at the birth place of C. S. Krishna Iyer and the resource person was interviewed (Ambikapuram Sivaraman, the direct disciple of C S Krishana Iyer) for observing the practical demonstration of the composition and collecting information. Secondary sources were also investigated to substantiate the study with research data.

Study Area :

Javali :

Javali is a musical form performed at the end of the concert. The content and theme of Javali is Sringara (romantic) worldly spirit in nature. The 'Javali' is derived from the kannada word 'Javadi', means romantic songs. Javali generally follows the common structure of kriti like Pallavi, Anupallavi and multiple Charana. Javali does not have any of the madhyamakala sahityam or chittasvara etc. Dharmapuri Subbarayyar, Tiruppanandal Pattabhiramayya, Pattanam Subramanyaiyer, Tirupati Narayanaswami, Vidyala Narayanaswami, Ramnathapuram Srinivasa Iyengar and Swati Tirunal are the foremost Javali composers. Rakti ragas like Paraz, poorvikalyani, Khamas, Kafi, Behag etc. are suitable for composing Javalis. Generally, Javalis are set in Adi, Rupaka and Misra chapu talas.

Example : Javali

Raga : Poorvikalyani Tala: Adi

Composer : Pattabhiramayya Language: Telugu

Pallavi : ni mātālu ē māyanurā sāmi balkarā

Anupallavi : Ēmēmo bōdhincinannē mecci ādina

Charanam 1: Cakkani samivale cekkili nokkirave

Mikkera nlkiccenani Takkulace sokkincina

Meaning :

A woman is yearning for communicating with her lover, requesting him to talk to her and not to get annoyed by her frequent urges for communication. Finally, she is asking him not to delay coming back and talking to her.

Pallavi : Swami, what happened to your words? Please talk

Anupallavi : You taught me several things, and you praised me with words

Charanam-1 : You are a great swami. You pressed my cheek and my nose ring with all those bluffs.

Sangeethamapi Saahityam :

'Sangeethamapi Saahityam' is a significant and enthusiastic effort of the Kerala Sangeetha Nataka Academy to promote diversity in Karnatak compositions by using various secular and devotional themes in the Malayalam language. This collection comprises forty-nine compositions, as part of a broader initiative to enrich the regional repertoire of Karnatak music. The work represents a collaborative effort that brought together some of the most esteemed literary and musical personalities of the time.

As a pioneering initiative, these compositions represent a significant and successful attempt to expand the thematic scope of Karnatak music beyond its traditional confines. Historically, Karnatak kritis have predominantly focused on devotional and philosophical themes, often centred around Hindu deities, mythological narratives and metaphysical reflections in Bhakti bhava. However, this collection ventures into unexplored thematic territories, demonstrating an innovative approach that enriches the genre with new lyrical and conceptual dimensions.

In addition to engaging with universal themes such as spirituality, ethical values, personal relationships and the beauty of nature, these compositions also incorporate references to eminent historical personalities. The inclusion of such figures is particularly noteworthy.

Background :

The song describes the wonder of one couple, how their relationship grew stronger without them even realizing it. The poet beautifully captures these emotions in three parts, which demonstrate the emotional layers of love and connection. This composition is in the form of a conversation between woman and man, communicating the deep sense of love and conveying the universal aspect of love.

Lyrics :

Stanza 1 :

Woman: ñānaṟiyāten prāṇanil vannoru
Vīna kampi muṟukkiyatāro?

Man : Vīna kampi muṟukkānay kkaṇ
Koṇukal niṭṭi viḷiccavaḷāro?

Both : Ārennar1iyeṇam - 3

Stanza 2 :

Woman: Premasvapnaṁ viriyuṁ karaḷil
Tāmasattinu vannavanāro?

Man : Tāmasattinu vannavanil putu
Tāmaramāla cārttiyatāro?

Both : Ārennaṟiyeṇam - 3

Stanza 3 :

Woman: ñānaṟiyāten kaviḷin kuzhiyil
Kaitappūṁ podi pūśiyatāro?

Man : Kaitappūm podi tūvan chuṇṭil
Kanakaviḷakku koḷuttiyatāro?

Both : Ārennaṟiyeṇam - 3

Meaning :

Woman: Who has tightened the lute string that came to my soul without my knowledge?

Man : Who called out to stretch out by showing flirty eyes to tighten the lute string?

Together: I want to know who this is?

Woman: Who has come to reside in the heart where the dream of love will blossom?

Man : Did someone put lotus garlands on the one who came to stay?

Together: I want to know who this is?

Woman: Who put pineapple powder on the hollow of my cheek without my knowledge?

Man : Who lit a big lamp in the garden to sprinkle pineapple dust?

Together: I want to know who is this?

Structural Analysis :

There are three stanzas in this song. It is not fulfilling the normal kriti structure. The three stanzas communicate different romantic incidents by using poetic language not indicating the exact meaning. For example: 'tightened the lute string, reside in the heart, expressions of the lovers'. And this composition is also progressing in the form of dialogue. The woman raises the question first and the man indirectly pointing to her by asking another question. And together they want clarity about it. This composition helps us in connecting with the musical form Javali.

Notation :

Yugmaganam

Raga: Saramati — Tala Adi

Lyricist: P. Bhaskaran — Music: C S Krishnayyar

Aro: SRGMPDNṠ — Avro: ṠDPMGRS

	X	1	2	3	X	V	X	V
1	ṡ , ṙ ġ	ṡ , ṡ n	n d d , ;	d , m ,	p , d n	d , m ,	g m g g	s , s ,
	Ñā	*na ṟi*	*yā*	*ten*	*prā*	*na nil*	*va*	*nno ru*
2	n ṡ ṙ ġ	, ṡ ṡ n	n d d , ;	d , m ,	m p d,ns	d , m ,	g m g g	s , s ,
	Ñā	*na ṟi*	*yā*	*ten*	*prā*	*na nil*	*va*	*nno ru*
1	; ṙ ,	, g , ,	m , ;	p , p ,	d , ;	n , n ,	ṡ , ;	ṡ , ;
	Vī	*ṇa*	*ka*	*mpi mu*	*ṟu*	*ki ya*	*tā*	*ro?*
2	g g r r	, g , ,	p p m m	, p p ,	n n d d	, n n ,	ġ , ṡ ,	ṡ , ;

	Vī	*ṇa*	*ka*	*mpi mu*	│	*ṟu*	*ki ya*	│	*tā*	*ro?*	
‖	; ṙ n	, ṡ , ,	ṙ , ;	ṙ , ṙ ,	│	ġ , ;	ṡ ṙ ġ m	│	ġ , ṡ ,	ṡ , ;	‖
	Vī	*ṇa*	*ka*	*mpi mu*	│	*ṟu*	*kka*	│	*nāy*	*kkaṇ*	
‖	; n ṡ	, ġ ṡ ,	ndd, ;	d , m ,	│	p , ;	n d n ,	│	ṡ , ;	ṡ , ;	‖
	koṇu	*kaḷ*	*nī*	*.ṭṭi vi*	│	*Ḷi*	*cca va*	│	*ḷā*	*ro?*	
‖	; ṡ ,	n d , m	p , d ,	n d n ,	│	ṡ , ;	; ;	│	; ;	; ;	‖
	ā	*re*	*na ṟi*	*ye*	│	*ṇam·*		│			
‖	; s,	n d , ,	m g m ,	g , ;	│	g , s ,	; ;	│	; ;	; ;	‖
	ā	*re*	*na ṟi*	*ye*	│	*ṇam·*		│			
‖	s r g m	p d n ṡ	ṙ ġ ṡ ṡ	n ndd, ,	│	n , ṡ ,	; ;	│	; ;	; ;	‖
	ā	*re*	*na ṟi*	*ye*	│	*ṇam·*		│			

Musical Analysis :

The song commences with the svara 'ṡ' or Tara sthayi Shadja. The melody of the song starting from the tara sthayi then comes to the madhyasthayi Shadja. The apt melodical progressions with first two sangaties highlights the meaning of the song. The interesting phrases are ndd,;d,m, - p,dnd,m, - gmggs,s,. The second line (*Vīna Kampi*…) begins the madhyasthayi Rishabam, occur with Anahata eduppu and goes to tarasthayi Shadja, followed by the mathematical combinations 3+3+ 4+2+2+4+2+2+4+4. The second sangati begins with sama eduppu highligh-ting the musical pattern 'ggrr, g,, - ppmm, pp, - nndd, nn,'. Each syllable having gamakas.

The second sangati (*Vīna Kampi…..)* picturise the janta svara prayogas in the different svaras like 'Gandaram, Rishabam, Pancamam, Madhyamam and Nisadam' "ggrr, g,, ppmm, pp, nndd,nn, g,ṡ, ṡ,,,".

The word " *Ārennaṟiyeṇam..*" is exploring three varieties of melody (1) ; ṡ , n d, m p, d, n dn, ṡ, ;;;;;;; (2) ; ṡ , n d , m g m , g , ; g , s,;;;;;; (3) srgm pdnṡṙġṡṡ nndd,. n, ṡ ;;;;;; . Range of the song is between Madhyasthayi Shadja to Tarasthayi Madyama. Each line concludes with the Shadja. The other stanzas follow the same melody. The lyrics and the melody are matching each other. This kriti clearly explore the musical brilliance of the composer.

Similarities and Differences

Mode	Javali	Yugmaganam
Theme	Devotional aspect	Human aspect
Characters	Hero and Heroine, Krishna and Radha, Muruga and devotee, etc.,	Lovers (Universal aspect of love and emotions)
Structure	Form of Kriti (Pallavi, Anupallavi and multiple Charana) or (Pallavi and multiple Charana)	Not a Particular form
Language	Sanskrit, Telugu, and Kannada	Malayalam
Emotion	Love	Love

Observation :

The study observes that the musical form 'Javali' and the composition 'Yugmaganam' both centres around the theme of love, but the approaches are different. Javali demonstrates devotional love between the Gods and Goddesses like Krishna and Radha. The form uses colloquial languages and structured forms. On the other hand, 'Yugmaganam' explores universal human love in a more contemporary and emotional context. The lyrics is in Malayalam language and communication style is free from formal structures.

Discussion and Conclusion :

Karnatak music system generally deals with the devotional aspects. However, in modern times, many experiments are done to make music accessible to all. This paper observes one of the great efforts of the Kerala Sangeetha Nataka Academy to expand the thematic scope in Karnatak music beyond its traditional set up.

This study exclusively deals with one of the compositions from the text 'Sangeethamapi Saahithyam' composed by C S Krishna Iyer, authored by P Bhaskaran, as an attempt to understand the dynamics, thematic difference, of it keeping his life works as anchor point for exploration. During the study, it has also been possible to establish the identity of the raga reflecting the various elements, lyrical ornamentation, thematic presentation to establish significance of the musical work.

Acknowledgement :

This study has received valuable inputs from Dr. Dileep Kumar V R, Assistant Professor at Central University of Tamil Nadu, Thiruvarur, Dr. Sadhanam Harikumar, the direct disciple of C S Krishna Iyer and Ambikapuram Sivaraman, an A-grade artist and the direct disciple of C S Krishna Iyer, from Palakkad Kalpathi.

Reference :

1. Ravindranath, A. K, Dakshinendran Sangeetham. Kerala Bhasha Institute, ISBN 81-7638-796-7: page (153-154) Thiruvanandapuram; 1985.
2. Ganapathy, K., "Imbued with Tradition", (Interview), The Hindu, August, 2011. https://www.thehindu.com/features/friday-review/music/imbued-with-tradition/article2322001.ece

3. Javalis by T. Brinda, 1960 edition, *Music Research Library*, accessed July 16, 2025, http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/3265

4. Paul, G. S., "Soaring on guru bhakti", The Hindu, August, 2016. https://www.thehindu.com/todays-paper/tp-features/tp-fridayreview/soaring-on-guru-bhakthi/article9033554.ece

5. Sangeethamapi Saahithyam, Kerala Sangeetha Nataka Akademi, Thrissur, Ist Edition: January:1988.

From Walls to Web : The Digital Evolution of Madhubani Art as a Rural Business Model

Anu Jha
Ph.D. Research Scholar
Department of Journalism and Mass Communication,
Maulana Mazharul haque Arabic and Persian University, Patna, Bihar

Dr. Nikhil Anand Giri
Assistant Professor
Department of Journalism and Mass Communication
Maulana Mazharul haque Arabic and Persian University, Patna, Bihar

Abstract :

This study explores the digital transformation of Madhubani art, a traditional practice rooted in the domestic spaces of rural Bihar, into a viable online business model. Based on qualitative fieldwork with five women artists, the research highlights key enablers of this shift-such as digital skill-building within families, strategic use of social media platforms, intergenerational collaboration, and culturally informed content creation. Rather than spotlighting individual achievements, the paper examines how informal networks and digital tools collectively foster cultural entrepreneurship. The findings present a scalable model for rural creative industries and underscore the need for improved infrastructure, targeted training, and supportive policy frameworks.

Keywords :

Madhubani art, digital entrepreneurship, rural women, cultural economy, social media.

1. Introduction :

Madhubani painting, also known as Mithila art, is a centuries-old tradition practiced predominantly by women in the Mithila region of Bihar. Historically created on walls and floors during festivals and rituals, the art form has evolved into a commercial practice using paper, textiles and other media. With the rise of digital platforms, rural artists are now engaging in online commerce, transforming their craft into a viable business.

This paper explores how traditional Madhubani artists-particularly women-are adapting to digital tools to sustain and expand their practice. It focuses on the **processes** that enable this transition: digital literacy through kinship, platform selection, content strategy and informal business models. The study aims to contri-bute to the discourse on rural creative

entrepreneurship by offering a grounded analysis of how tradition meets technology.

Figure-1 : *Screenshot of Vandana Jha's Instagram profile (@withla_art06) Caption: "Digital storefront showcasing Mithila masks and sarees"*

2. Literature Review :

Existing literature on Madhubani art primarily focuses on its aesthetic, ritualistic and cultural dimensions (Jha, 2012; Singh, 2018). Studies have documented its mythological themes, natural dyes, and symbolic motifs, emphasizing its role in preserving regional identity (Kumar, 2015). More recent scholarship has explored its commodification through NGOs and government schemes (Mishra, 2020).

Parallel research on digital entrepreneurship in rural India highlights barriers such as low digital literacy, gendered access to technology, and infrastructural deficits (Mehta & Sharma, 2019; Dey, 2021). However, these studies often treat artisans as passive beneficiaries of top-down interventions.

Gaps Identified :

- Limited focus on **bottom-up digital adaptation** by rural women artists.
- Lack of analysis on **platform-specific strategies** for traditional art forms.
- Absence of research on **intergenerational collaboration** in digital business models.
- Minimal attention to **content creation as cultural labour** in rural contexts.

This paper addresses these gaps by examining how Madhubani artists actively shape their digital presence and business practices through informal networks and creative strategies.

3. Methodology :

This research is based on fieldwork done in the Madhubani and Darbhanga districts of Bihar, where Madhubani art is traditionally practiced. The study uses a qualitative approach to understand how rural women artists are using digital tools to grow their art as a business.

Sampling :

We selected five women artists using purposive sampling. That means we chose participants who were already active on digital platforms like Instagram, Facebook, YouTube, WhatsApp and blogs. These artists were involved in both creating Madhubani art and selling it online. We also looked for those who worked with family members to manage their digital presence.

Data Collection :

We collected data in three ways :

- **Interviews :** Semi-structured conversations with the artists to understand their journey, challenges, and digital strategies.
- **Social Media Analysis :** We studied their online profiles and posts to see how they present and promote their work.
- **Observation :** We took notes while

watching how they create content, interact with buyers and manage orders.

Data Analysis :

We used thematic coding to find patterns in the data. This helped us understand:

- How they learned digital skills (often with help from family)
- Which platforms they use and why
- How they create and share content
- How they run their business informally but effectively

This method gave us a clear picture of how tradition and technology are coming together in rural Bihar.

4. Findings :

4.1 Digital Literacy through Kinship :

All five artists relied on younger family members-Sons, daughters, nieces, sons-in-law-for digital access and literacy. This informal mentorship enabled them to :

- Create and manage social media accounts.
- Photograph and upload artwork.
- Communicate with buyers via WhatsApp.
- Handle digital payments through UPI

For instance, Vandana Jha stated, "*My daughter is my model on social media,*" reflecting both technical and creative collaboration. Another artist shared, "*I make the paintings, and my daughter sells them online,*" illustrating a production-sales split across generations.

4.2 Platform Selection and Usage :

Artists chose platforms based on usability and audience reach :

- **Facebook :** Used for community engagement and direct sales. Anjali Kumari noted, "*I make and display my art on Facebook,*" treating it as a virtual gallery.
- **Instagram :** Favoured for visual storytelling and broader reach. Artists like Bindu Jha rely on organic engagement.
- **WhatsApp :** Used for order management and customer service.
- **YouTube and blogs :** Employed for educational outreach and cultural revival, as seen in Dr. Rani Jha's media strategy.

Platform choice reflects strategic adaptation to content type, audience behavior, and technical comfort.

4.3 Content Strategy and Audience Engagement :

Artists employed varied content strategies :

- Visual storytelling with mythological and seasonal themes.
- Behind-the-scenes videos of the painting process.
- Family modeling to humanize the brand.
- Educational captions and blog posts explaining symbolism.

Dr. Rani Jha, an assistant professor at Mithila Art College, uses blogging to promote media revival: "*I work on media revival of Madhubani art,*" she said, combining academic insight with digital outreach.

4.4 Business Model and Monetization :

Artists avoided paid promotions, relying on organic growth. Pricing was based on :

- Size and complexity of artwork
- Medium (paper, textile, mask)

- Custom orders and commissions

Sales were conducted via WhatsApp and UPI, with local courier services for delivery. One artist specializing in Tantric motifs noted, "*She says I am the rarest of Madhubani painters because I do Tantric paintings,*" indicating niche market positioning.

5. Discussion :

5.1 Process over Personality :

The digital evolution of Madhubani art is driven not by individual heroism but by systemic processes:

- Kinship-based digital literacy
- Platform-specific adaptation
- Content creation as cultural labor
- Informal business models rooted in family collaboration

These processes are replicable and scalable, offering a blueprint for other traditional art forms seeking digital relevance.

5.2 Cultural Continuity through Innovation :

Digital platforms enable artists to preserve traditional styles while experimenting with formats. Tantric motifs, once confined to ritual spaces, are now shared online. Seasonal themes are used to time product launches. Blogging and YouTube allow for cultural education alongside commerce.

This duality-preservation and innovation-challenges the notion that commercialization dilutes tradition.

5.3 Gendered Agency and Visibility :

Selling online increases women's visibility and agency. While they remain embedded in domestic spaces, their art travels globally. This paradox-local production, global consumption-redefines rural women's roles without disrupting cultural norms.

The process empowers without alienating, making it a culturally sensitive model for rural entrepreneurship.

6. Conclusion :

The transformation of Madhubani art into an online business model reflects a broader shift in rural creative economies. Through kinship-based digital literacy, platform adaptation, and content strategy, women artists are crafting sustainable businesses rooted in tradition. The process offers a replicable framework for other art forms and highlights the need for policy support in infrastructure, training, and platform localization.

Future research should explore scalability, copyright protection and integration with formal e-commerce ecosystems to further strengthen rural creative entrepreneurship.

Recommendations :

- **Digital Literacy Support :**

  Organize local workshops for women artists on using social media, UPI payments, and photography.

- **Platform Localization :**

  Encourage tech platforms to offer features in regional languages like Maithili and Hindi.

- **Family-Based Mentorship :**

  Promote intergenerational collaboration-young family members teaching elders digital skills.

- **E-Commerce Integration :**

  Help artists join platforms like Amazon Karigar or Etsy with simplified on-boarding and training.

- **Policy Backing :**

  Advocate for government schemes to include rural digital artisans, offering subsidies and infrastructure.

References :

1. X[21] Jha, R. (2024, January). Blog posts and interview. Mithila Art College.
2. X[22] Kumari, A. (2024, February). Facebook profile and interview notes.
3. X[23] Singh, M. (2023, June). Tantric traditions in Madhubani art. Journal of Indian Folk Studies, 12(2), 45–58.
4. X[2]t Mishra, S. (2020, August). NGO interventions in folk art. Economic and Political Weekly, 55(34), 22–27.
5. X[2]u Mehta, R., & Sharma, P. (2019, November). Digital literacy in rural India. Journal of Development Studies, 18(4), 101–115.
6. X[2]v Dey, A. (2021, March). Gender and technology access in rural economies. Indian Journal of Gender Studies, 28(1), 67–83.
7. X[2]w Field Interviews. (2024, February). Mithila Region, Bihar.

उत्तर भारतीय संगीत के अंतर्गत छंदों एवं तालों का अंतर्संबंध

डॉ॰ शिल्पी नाहर
शोध निर्देशिका
असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

श्वेता मिश्रा
शोधार्थी
शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

सारांश :

वर्ण से पद, पद से वाक्य, वाक्य से भाषा की रचना हुई। तत्पश्चात भाषा के साथ लयबद्धता का विधान हुआ। उसके उपरान्त छन्द रचना एवं उसका विकास माना जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि ताल के बाद छन्द का विकास हुआ होगा।[1]

संगीत तभी सुशोभित तथा मनोमुग्धधारी होता है, जब उसके अंग अपने अपने स्थान पर सुदृढ़ रहते हैं। संगीत के सभी अंगों को मर्यादित रखना ताल का ही काम है। जैसे अंग भंग होने पर शरीर की सुषमा बिगड़ जाती है, वैसे ही ताल के ढीले या विकृत पड़ने पर संगीत का सौन्दर्य नहीं रह जाता। इसीलिए ताल को गीत की शोभा कहा गया है।

प्रसिद्ध पखावज वादक पं॰ रामअशीष पाठक कहते हैं :

ताल प्राण संगीत को, कहे गुणीजन लोग।
पहले ता ते ताल से, ताल शोधना होए।।[2]

छंद एवं ताल के समन्वय से ही कविता गायन योग्य बनती है तथा इसके द्वारा गीत के सौन्दर्य में वृद्धि होती है। ताल द्वारा भावनात्मक अभिव्यक्ति की क्षमता भी विकसित होती है।

उदाहरण :

जिन्ह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।[3]

समस्त 16-16 मात्रा की चौपाई छंद में बद्ध तुलसीदास दास कृत 'रामचरितमानस' में लिखित रचना ताल का समन्वय होने से जब अखण्ड रामायण पाठ आदि मंचों पर गाया बजाया जाता है तो इनके श्रवण से श्रोता गण मंत्रमुग्ध एवं भावविभोर हो उठते हैं।

बीज शब्द :

छंद, ताल, संगीत, सौन्दर्य, अंतर्संबंध, मनोविज्ञान।

विषय प्रवेश :

ताल एवं छन्द वे मूलभूत तत्व हैं जो शाब्दिक संरचना को सौन्दर्य, अर्थ एवं भाव प्रदान करते हैं। जहाँ 'छन्द' हिन्दी काव्य में समय मापने की इकाई है जिसका आधार वर्ण और अक्षर हैं तथा कविता की लय को भी दर्शाता है, वहीं 'ताल' भारतीय शास्त्रीय संगीत में समय मापन की इकाई है जिसका आधार मात्रा, उनकी संख्या व हस्त क्रियाएं हैं।

काव्य में जो स्थान छंद को प्राप्त है वही स्थान संगीत में ताल का है। दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों का उद्देश्य रचना को समय में बांधे रखना है। छंद एवं ताल दोनों सौन्दर्य उत्कर्ष में चमत्कारिक हृदयस्पर्शी एवं अनूठा प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

छंद की व्युत्पत्ति, परिभाषाएं एवं अर्थ :

विद्वानों के मतानुसार छंद (छन्दस) शब्द की निष्पत्ति 'छद' धातु से हुयी है, जिसका तात्पर्य आच्छादन करना या ढकना है। अन्य मतानुसार, चंदि अर्थात् 'आह्लादकारी' एवं छेदि अर्थात 'ढकना' शब्द से छंद शब्द की उत्पत्ति हुई है।

वह शब्द रचना जिसमें निश्चित संख्या वाली मात्राओं या वर्णों से परिपूर्ण नियत संख्या की पंक्ति या चरण हो, 'छन्द' या 'पद' कहलाती है। छन्द शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सामवेद में हुआः-

'यदाच्छादयन् तच्छन्दसाम् छन्दस्त्वंय'[4]

(अर्थात जो ढक ले या आच्छादित कर ले, वह छन्द है)

छंदोबद्ध होने के कारण ही संगीत की अनमोल धरोहर आज तक संरक्षित रह पाई है। साथ ही गुरु शिष्य परम्परा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी संवर्धित होती रही।

''छन्द वह लयात्मक, नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक् (वाणी) पद का रूप धारण कर लेता है।''[5]

ताल की व्युत्पत्ति, परिभाषाएं एवं अर्थ :

'तल्' धातु एवं 'घञ्' प्रत्यय के योग से ताल शब्द निष्पन्न हुआ है अर्थात 'जिसमें प्रतिष्ठित हो।'[6] अतः ताल वह है जिसमे गीत, वाद्य एवं नृत्य प्रतिष्ठित रहते हैं। ताल ही इन तीनों को आधार प्रदान करता है। संगीत रत्नाकर के 'तालाध्याय' के अनुसार :

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धातोर्धञ् स्मृतः।
गीत वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।[7]

लययुक्त वह प्रवाह जो ध्वनि गीत व उच्चारण के संयोग से उत्पन्न होता है, ताल कहलाता है। यद्यपि ताल शब्द संगीत से सम्बन्धित है किन्तु काव्य में इसका महत्व है। ताल के अभाव में काव्य नीरस प्रतीत होता है। शब्दों द्वारा काल या समय की गति को छंद या पदों में विभाजित करने के जो प्रयोग हुए हैं उन्हें ही ताल कहा जाता है।

ताल एवं छंद के प्रकार :

छंद के मुख्यतया तीन भेद माने गये हैं :

1. **मात्रिक छंद :** इस प्रकार के छंद मात्राओं की संख्या के आधार पर बनाये गए थे जैसे- दोहा, सोरठा, चौपाई। इनके तीन उपभेद भी माने गए जो सम मात्रिक, विषम मात्रिक तथा अर्धसममात्रिक छन्द कहलाए।
2. **वार्णिक छंद :** इस प्रकार के छंद वर्णों की संख्या व गुणों के क्रम के आधार पर बनाए गए थे। जैसे- इन्द्रवज्रा, सवैया, त्रोटक आदि छंद। इनके भी तीन उपभेद हुए जो समवृत्त, अर्धसमवृत्त, अर्धसमवृत्त तथा विषमवृत्त कहलाए।
3. **मुक्तक छंद :** इसमें न वर्णों के गण का और न ही मात्राओं का बंधन होता है। ताल को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया गया है :

   1. (i) प्राचीन मार्ग ताल : जो ताल मार्गी संगीत के साथ प्रयोग की जाती है,

मार्ग ताल कहलाती है। इनकी संख्या 5 बताई गई है- चंच्चत्पुट, चाचपुट, षटपितापुत्रक, संपक्वेष्टांक और उदघट्ट। इनकी मात्रा संख्या में कभी भी परिवर्तन नहीं हो सकता।

(ii) **देशी ताल :** जो ताल देशी संगीत के साथ प्रयोग की जाती है, 'देशी ताल' कहलाती है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में इनकी संख्या 120 बताई है। दोनों तालों का स्वरूप लघु, गुरु, प्लुत से बनता है।

2. **आधुनिक ताल :** इसमें लघु, गुरु, प्लुत का क्रम नहीं होता। मात्रा संख्या व विभाजन का विधान होता है। जैसे- तीन ताल, चारताल, झपताल, आड़ाचारताल आदि।

छंद एवं ताल का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

छन्दोबद्ध होने के कारण ही वैदिक ऋचाएं, पुराण, उपनिषद् एवं अन्य सभी ग्रंथ व उनकी रचनाएँ रुचिकर और चमत्कारिक तो हैं ही साथ ही-साथ लंबे समय से अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार "किसी भी भाषा के रूप को संवारने के लिए जिस प्रकार शब्द योजना, पद योजना और शैली आवश्यक है उसी प्रकार वर्णनीय वस्तु को सुचारुपूर्ण बनाने के लिए छन्द योजना भी अत्यन्त आवश्यक हैं।"[8]

वैदिक साहित्य में सप्त छंदों का विवरण मिलता है जो निम्न हैं :

गायत्री, त्रिपिटक, अनुष्टुप, वृहती, त्रष्टुप, जगती, पंक्ति। जिनमें वर्णों की संख्या क्रमशः 24, 48, 32, 36, 44, 48 व 40 हैं। वैदिक कालीन ऋषिगण इन छंदों का उपयोग मंत्रों को लयबद्ध करने के लिए करते थे। भरतमुनि के अनुसार,

'छन्दोक्षरपदानां हि समत्वय प्रकीर्तितम।'[9]

(अर्थात निश्चित संख्या वाले अक्षरों के द्वारा जो रचना की जाये, उसे छंद कहते हैं)

इसके अतिरिक्त भक्तिकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में छंद, ताल एवं भाव का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत किया है। जो संगीत (गायन, वादन, नृत्य) के साथ मिलकर भक्ति रस का संचार श्रोताओं के हृदय में करती है।

भक्तिकाल व रीतिकाल में काव्य रचनाओं के अन्तर्गत छन्दों का समावेश चरमोत्कर्ष पर था, ये रचनाएं तालबद्ध गेय रूप होकर सौन्दर्य की पराकाष्ठा को पार करती थी। भावप्रधान ये बंदिशें एवं ताल संगति संगीत को मोक्ष प्रदायक तथा आध्यात्मिक सुख प्राप्ति का माध्यम बनाती हैं।

छंद और ताल का अंतर्संबंध :

छन्द एक प्रकार का नियमित एवं सुचारुपूर्ण गति व प्रवाह है जो काव्य में लयात्मक ढांचे, कंठ में सुरों का व वाद्य में नाद का संचार करता है। जिस प्रकार शर्करा के अभाव में चाय फ़ीकी लगती है, उसी प्रकार तालाभाव में संगीत भी फीका या अमधुर लगता है। सम्पूर्ण संगीत साहित्य छन्दोबद्ध है। संगीत में ताल का निर्माण हो या ताल के अवयवों का विभाजन मात्राओं की गणना से ही संभव है। छन्द की गति व संगीत में लय की गति का बोध मात्राओं पर निर्भर करता है। अतः संगीत छन्द तथा लय दोनों पर आश्रित है।

उदाहरण :

SII III ISIISS
मंगल भवन अमंगल हारी।
III IIIII III ISS
द्रवहु सुदशरथ अजर बिहारी।।[10]

(उपर्युक्त चौपाई के पाठ में छंद की गणनात्मक व्यवस्था और इसके गायन में ताल का प्रवाह स्पष्ट परिलक्षित है)

छन्द का मूल लक्षण लयबद्धता है। लय में विराम या यति का प्रयोग करने पर ही छन्द बनता है। जहाँ लय का आशय काल विभाजन मात्र है वहीं छन्द का अभिप्राय ताल को एक नियत स्वरुप प्रदान करना है। अतः लय एवं यति के संयोग से छन्द का निर्माण होता है। जिस प्रकार यति का विराम भेदों के आधार पर काव्य में एक ही मात्रा के विभिन्न छंद बन जाते हैं। उसी प्रकार यति और विराम भेदों के फलस्वरूप एक ही मात्रा संख्या के कई ताल दिखाई है। जैसे- 16 मात्रा की तीनतालव तिलवाड़ा ताल, 14 मात्रा की झूमरा, दीपचंदी, धमार व आड़ाचारताल आदि।

'तालमूलानि गेयानि ताले सर्व प्रतिष्ठितम्।
तालहीनानि गेयानि मन्त्राहीना यथाहुतिः।।'[11]

अर्थात ताल गेय मूलक है, ताल में सुब कुछ प्रतिष्ठित है। बिना ताल गेय मन्त्रहीन आहुति जैसे है। जिस प्रकार मन्त्रहीन आहुति से केवल अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, मनोवांछित फल की प्राप्ति संभव नहीं है। तालहीन गेय उसी तरह सार्थक नहीं होते।

काव्य में छंद एवं ताल की प्रयोगात्मकता :

ताल संगीत का प्राण कहा गया है। संगीत में मात्राओं की गणना के लिए शताब्दियों से लघु, गुरु और प्लुत ताल के अंग के रूप में प्रयोग किये जा रहे है। संगीत-सम्बन्धी ग्रंथकारों ने वर्णों के समूह को गण संज्ञा दी है। छंद सम्बन्धित सूत्र महर्षि पिंगल ने लिखे है इसीलिए छन्दशास्त्र को पिन्गलशास्त्र भी कहते हैं। पिंगलशास्त्र को समझने हेतु एक सूत्र है :

क्रम सं.	**गण**	**व्याख्या**	**चिह्न**	**तबले के बोल**
1	यगण	यमाता	ISS	क्र धे टे
2	मगण	मातारा	SSS	धा धा धा
3	तगण	ताराज	SSI	क्रा धा न
4	रगण	राजभा	SIS	ता न धा
5	जगण	जभान	ISI	क ता न
6	भगण	भानस	SII	धा क त
7	नगण	नसल	111	क त क
8	सगण	सलगा	11S	क त धा

छन्द को ताल में गढ़ने के लिए तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ बतायी गयी हैं :

समपदी	:	समान (मात्रा) का नियोजन
विषमपदी	:	मात्राओं का संयोजन दो अलग-अलग रूप में
मिश्रपदी या उभयपदी	:	मात्राओं का संयोजन कहीं भी समान नहीं होता।

कुछ तालों पर छंद का प्रभाव :

1. दादरा : मात्रा-6, विभाग-2

धा धी ना	धा तू ना
X	0

यह ताल त्रयस्त्र गति का है। पञ्चचामर के एक चरण में लघु गुरु की 8 बार आवृत्ति होती है। अतः

3-3 मात्रा की इकाई में यह सुविधापूर्वक बंट जाता है। उषा, कला, सुधी, प्रमाणिका, समानिका, धारी,चामर आदि छंद तीन तीन मात्रा खंड में विभक्त होने तथा पहली मात्रा पर बल के कारण दादरा ताल से साम्य रखते हैं।

2. कहरवा : मात्रा-8. विभाग-2

धा गे न ती	न क धी ना
X	0

कन्या, हरि, शशिवदना एवं चपला सभी छंद मात्रा संख्या की दृष्टि से कहरवा के अनुकूल है। III, III, S लक्षणयुक्त चपला छंद कहरवा से सबसे अधिक साम्य रखता है।

त्रोटक छंद के एक चरण में 2 लघु 1 गुरु की 4 बार आवृत्ति सगण के विधान से होती है। अतः सगण का मान 4 मात्रा होने से यह कहरवा ताल को सिद्ध करता है। इसी प्रकार अन्य छन्द भी हैं जो ताल से साम्य रखते हैं।

क्रम सं.	छंद	ताल	गुण
1.	वसन्त तिलका	चारताल	SSI SI IIS
2.	भुजंग प्रयात, मन्थान, सादरा	झपताल	यगण की 4 बार आवृत्ति, तगण की 2 बार आवृति, सगण + नगण + गुरु + लघु
3.	क्रीड़ा	तीव्रा	ISS, S (यगण+गुरु)
4.	रंगी	रुपक	SIS, S (रगण+गुरु)
5.	हरिगीतिका	धमार	IIS ISI ISISIISIS IIS IS (28 मात्रा)

छंद एवं ताल का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रभाव :

छंद एवं ताल दोनों काव्य तथा संगीत का प्राण हैं। इनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव काव्य एवं संगीत पर ही नहीं मानवीय अन्तर्मन पर भी गहरा पड़ता है। साथ ही हमारे मस्तिष्क, भावनाओं और व्यवहार को भी प्रभावित करते है। छन्दोबद्ध काव्य हो अथवा तालबद्ध संगीत मानसिक एकाग्रता में वृद्धि भावनाओं को नियंत्रित और तनावमुक्ति में एकाग्रता सहायक सिद्ध होता है। छंदबद्ध साहित्यिक कृति तथा तालबद्ध लयात्मक सांगीतिक रचना दोनों स्मरण शक्ति में वृद्धि करती है।

निष्कर्ष :

भारतीय कला शास्त्र के छंद एवं ताल अविभक्त स्वरुप है। छन्द काव्य को काल में प्रतिष्ठित करता है जबकि ताल संगीत को काल में विभाजित कर वाद्य वादन या हाथ की क्रिया द्वारा प्रदर्शित करने का माध्यम है। लघु- गुरु क्रियाओं द्वारा काल खण्ड में नापा जाता है। साथ ही बार–बार दोहराया जाता है। इसमें सशब्द व निःशब्द क्रिया आवश्यक होती है।

जब छंद की मात्राएं ताल की मात्रा संख्या से मिलती-जुलती है तभी दोनों का योग प्राकृतिक होता है। जैसे- चौपाई छंद-16 मात्रा (प्रत्येक चरण में), तीनताल-16 मात्रा।

काल मापन की काव्यात्मक इकाई छंद तथा संगीत की लयात्मक इकाई ताल है। मात्रात्मक सिद्धान्त पर आश्रित ताल एवं छंद का स्वरूप संगीत तथा काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने के साथ-साथ उसे धरोहर के रूप में संचित करने में महत्वपूर्ण भूमिका

निभाता है। ताल एवं छंद के सहयोग से ही संगीत तथा काव्य सम्पूर्णता को प्राप्त कर पाया है एवं संचार माध्यम बन सका है। शास्त्रीय,उपशास्त्रीय,सुगम संगीत या आधुनिक फिल्म संगीत सभी में ताल और छंद का संयोग चमत्कारिक समृद्धि प्रदान करता है। छंद का आधार वर्ण और अक्षर। ताल का आधार है हाथ की क्रियाएं। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अगर छंद को हम बिना हाथ की क्रियाओं के साथ करें तो छंद रहेगा अगर हाथ की क्रिया करते हुए छंद कहें तो ताल बन जाएगा।[13]

अतः जिस प्रकार काव्य को छंद चार चाँद लगाता है उसी प्रकार संगीत को ताल सजीव बनाता है तथा लावण्यता प्रदान करता है। इसके द्वारा भारतीय संगीत भव्य स्वरूप को प्राप्त करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. संगीत में ताल की ऐतिहासिकता महत्व एवं आवश्यकता, डॉ॰ श्रीवास्तव कविता, प्रथम संस्करण - 2019, पृष्ठ संख्या – 131
2. वर्तमान संचार युग में ताल वाद्य, वादक एवं उनके घराने, डॉ॰ झा अभयनाथ, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ संख्या-16
3. श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, टीकाकार-पोद्दार हनुमान प्रसाद, पैतीसवां पुनर्मुद्रण।
4. प्राचीन ताल के परिप्रेक्ष्य में आज का तबलावादन, डॉ॰ कुदेशिया शोभा, पहला संस्करण - 2012, पृष्ठ संख्या-153।
5. सौन्दर्य रस एवं संगीत, प्रो॰ शर्मा स्वतंत्र, तृतीय संस्करण 2024, पृष्ठ संख्या-158
6. संगीत संकल्प (संगीत सम्बद्ध विषयों पर लेखों का संग्रह), सक्सेना गुलशन, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या-131।
7. शारङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर 'सरस्वती' व्याख्या और अनुवाद सहित (तृतीय खण्ड), चौधरी सुभद्रा, पृष्ठ संख्या-2।
8. उत्तर भारतीय तालों में छन्द, रस और सौन्दर्य-तत्व, डॉ॰ श्रीवास्तव शुभा, प्रथम संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-35।
9. सौन्दर्य रस एवं संगीत, प्रो॰ शर्मा स्वतंत्र, तृतीय संस्करण 2024, पृष्ठ संख्या-158।
10. श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, टीकाकार-पोद्दार हनुमान प्रसाद, पैतीसवां पुनर्मुद्रण।
11. वर्तमान संचार युग में ताल वाद्य, वादक एवं उनके घराने, डॉ॰ झा अभयनाथ, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ संख्या-16।
12. संगीत मांगल्य, प्रो॰ कपूर मंगला, पृष्ठ संख्या-72।
13. ताल वाद्य परिचय, डॉ॰ पटेल जमुना प्रसाद, प्रथम संस्करण-2002, तृतीय संस्करण-2017, पृष्ठ संख्या

‘लक्ष्मण रेखा’ उपन्यास में चित्रित पर्यावरण प्रदूषण

गायत्री
शोधार्थी
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय,
महेंद्रगढ़, हरियाणा

डॉ॰ कमलेश कुमारी
सह-आचार्य, हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय,
महेंद्रगढ़, हरियाणा

शोध सार :

पर्यावरण प्रदूषण आज का सबसे बड़ा ज्वलंत संकट है, जो केवल जैविक असंतुलन ही नहीं बल्कि सामाजिक और नैतिक विघटन का भी कारक बनता जा रहा है। वर्तमान में हिंदी साहित्य में इस विषय पर गहन एवं यथार्थपरक लेखन हो रहा है। इक्कसवीं सदी में पर्यावरण संरक्षण की भावना बलवती हुई तो साहित्य में पर्यावरणीय संकटों का चित्रण भी बढ़ा। कुईयाजान, वृंदा, प्रार्थना में पहाड़, पहाड़ चोर, अलकनंदा, माटी मानुष चून, एक लड़की पानी-पानी, नदी गायब है, सावधान नीचे आग है, जंगल जहां शुरू होता है, गायब होता देश, एक ब्रेक के बाद, मीठी नीम, मरंग गोंडा नीलकंठ हुआ, नदी रंग सी लड़की आदि कितने उपन्यास सामने आए हैं जिनमें पर्यावरण की समस्याओं को उभारा गया है, बढ़ते हुए पर्यावरणीय संकट के प्रति सचेत किया गया है और पर्यावरण संरक्षण की सीख दी गई है। इसी शृंखला में सामने आता है भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास ‘लक्ष्मण रेखा’ जिसमें न केवल प्रकृति के दोहन की समस्या को उजागर किया है अपितु पर्यावरण के स्वरूप को व्यापक फलक प्रदान करते हुए समाज में व्याप्त अन्य सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रदूषण आदि की समस्या पर भी प्रकाश डाला है। इस शोध पत्र का लक्ष्य ‘लक्ष्मण रेखा’ उपन्यास में चित्रित पर्यावरण प्रदूषण के व्यापक रूप का ही विश्लेषण करना है।

बीज शब्द :

पर्यावरण प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण, राजनीतिक प्रदूषण, धार्मिक प्रदूषण, प्रकृति, परिस्थितिकि, पर्यावरण रक्षक।

मूल आलेख :

साहित्य समाज का एक ऐसा दर्पण है जो न केवल समाज की सच्चाइयों को, समस्याओं को बिना दुराव-छिपाव के चित्रित करता है उन समस्याओं के समाधान का रास्ता भी दिखाता है, यह ऐसा दर्पण है, जिसमें समाज का अतीत, वर्तमान और भविष्य सब प्रतिबिंबित हो जाता है। इसलिए कहा जाता है कि अगर किसी समाज या सभ्यता के बारे में जानना हो तो वहां के साहित्य को अवश्य देखना चाहिए। पाश्चात्य विचारक अरस्तू का मानना है कि कविता प्रकृति की अनुकृति है कविता के स्थान पर अगर साहित्य प्रकृति की अनुकृति कहा जाए तो कुछ गलत नहीं है। साहित्य प्रकृति की अनुकृति ही तो है।

प्रकृति के रहस्य से लेकर प्रकृति के रसमयी एवं रौद्र रूप तक का चित्रण हमें साहित्य में प्राप्त होता है। प्रकृति कई बार पर्यावरण के पर्याय के रूप में साहित्य में प्रयुक्त होती है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है– आस-पास का वातावरण, जिससे मनुष्य सम्पूर्ण रूप से आच्छादित हो। मनुष्य का सम्पूर्ण क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार, प्रवृत्ति, प्रकृति एवं समस्त भौतिक वातावरण पर्यावरण के अंतर्गत समाहित हो जाता है। पर्यावरण को परिभाषित करते हुए मानवशास्त्री हर्सकोविट्स ने लिखा है कि "पर्यावरण उन सभी बाह्य दशाओं और प्रभावों का योग है जो प्राणी के जीवन और विकास पर प्रभाव डालते हैं।"[1] पारिस्थितिकी वैज्ञानिक टॉंसले ने भी पर्यावरण को "प्रभावकारी दशाओं का सम्पूर्ण योग कहा है जिसमें जीव रहते हैं।"[2]

इस तरह वे सभी भौतिक, जैविक और सांस्कृतिक तत्व जो मनुष्य को प्रभावित करते हैं, पर्यावरण के अंतर्गत स्वतः समाहित होते हैं। पर्यावरण अपने आप में एक व्यापक शब्द है इसकी व्यापकता को परिभाषित करते हुए डॉ॰ सिंह लिखते हैं -"पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है। भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तंत्रों से इसकी रचना होती है।"[3]

भौतिक तत्वों जैसे स्थान, स्थल, जल, जलवायु, मृदा, शैल एवं खनिज; जैविक तत्वों में पौधे,जन्तु, सूक्ष्म जीव तथा मानव; सांस्कृतिक तत्वों में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिवेश को शामिल किया जाता है। अतः इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि मानव पर्यावरण से अकाट्य रूप से संपृक्त है। मानव को पर्यावरण से अलग कर के नहीं देखा जा सकता। बेवस्टर शब्दकोश में दी हुई पर्यावरण की परिभाषा– "वातावरण से आशय उन घेरे रहने वाली परिस्थितियों, प्रभावों और शक्तियों से है, जो रासायनिक व सांस्कृतिक दशा जैसे-(रीति-रिवाज कानून, भाषा, धर्म एवं आर्थिक राजनैतिक संगठन) के समूह द्वारा व्यक्ति या समुदाय के जीवन को प्रभावित करती है।"[4] भी यह सिद्ध करती है कि मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य और प्रकृति का यही प्रभाव साहित्य में भी परिलक्षित होता है। भगवती शरण मिश्र द्वारा लिखित 'लक्ष्मण रेखा' उपन्यास में मनुष्य और पर्यावरण के इन्हीं प्रभावों को गहराई से चित्रित किया गया है। उन्होंने मनुष्य का प्रकृति से संबंध स्थापित करते हुए जहां मनुष्य के लिए प्रकृति की उपयोगिता सिद्ध की है वहीं उन्होंने प्रकृति में हो रहे परिवर्तनों के पीछे मनुष्य की स्वार्थांधता को भी उजागर किया है। शास्त्रीयता और समकालीनता के समन्वयक भगवती शरण मिश्र ने अपने इस उपन्यास में पर्यावरण के शास्त्रीय पक्ष से लेकर समकालीन युग में पर्यावरण के दोहन के कारण उदित हो रही समस्याओं की ओर मनुष्य का ध्यान खींचा है। वे लिखते हैं-

"भारतीय संस्कृति मूलतः अरण्य (वन) संस्कृति रही है। यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं। हमारे तपोवनों में ऋषि-मुनियों ने ज्ञान की साधना की। वेद-वेदांगों को रचा और वे ही वेद आज कितने वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार बन रहे हैं। हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपने जीवन के चौदह अमुल्य वर्ष वनों में ही काट दिए और वनवासियों को अपना मित्र बनाया। हमारे लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तो वन की ही उपज हैं।"[5]

इस उपन्यास में जहां वे बताते हैं कि किस प्रकार मनुष्य प्रकृति का अंश है, प्रकृति से उत्पन्न हुआ, भरण-पोषण प्रकृति से हुआ उसने सम्पूर्ण साहित्य प्रकृति की गोद में बैठकर रचा, वेदों से लेकर किस प्रकार पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथ उसने प्रकृति की गोद में ही बैठ कर रचे। आरण्यक ग्रंथ जिनका नाम भी अरण्य अर्थात वन के नाम पर है सब प्रकृति से ही अनुप्राणित होकर रचे हैं जो आज भी मानव जाति की अकूत धरोहर हैं। वहीं मानवीय दोहन के कारण प्रकृति की बदलती तस्वीर भी उपन्यासकार दिखाते हैं, लेखक पंचवटी और वन-विहारों की उस तस्वीर

को भी अंकित करते हैं जहां कोई राम रह नहीं सकता, जहां कृष्ण के मुरली बजाने और लीला रचाने के लिए कोई कदंब का पेड़, नदी घाट या वन-विहार स्वच्छ, शांत, निर्मल और मनोरम नहीं रहा- "आज जल प्रदूषित है, वायु प्रदूषित है, आकाश प्रदूषित है और तो और भोजन प्रदूषित है, हवा प्रदूषित है। मनुष्य को, लालच, घृणा, विद्वेष, क्रोध तथा अहंकार से आकंठ भरे प्रदूषित मन-मस्तिष्क ने किसी वस्तु को प्रदूषणरहित नहीं छोड़ा।"[6]

लेखक ने उपन्यास में पर्यावरण की एक व्यापक अवधारणा को हम सभी के समक्ष रखा है। उपदेशपरक शैली में रचे इस उपन्यास में उन्होंने प्रदूषण को परिभाषित भी किया है। प्रदूषण क्या है? कितने प्रकार का है? भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण क्या हैं बताते हुए उन्होंने प्रदूषण के लिए किए जा रहे आन्दोलन और प्रयासों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने पर्यावरण की समस्या को एक देश विशेष से जोड़ने के साथ ही सम्पूर्ण विश्व की समस्या के रूप में चित्रित किया है। लेखक ने पीपल के वृक्ष का मानवीकरण कर बड़े नाटकीय ढंग से सम्पूर्ण विश्व में समस्या के रूप में उभर रही वनों की कटाई की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है- "हम वृक्षों की जातियाँ-प्रजातियाँ भारत में ही नहीं पूरे विश्व में संकट में है।"[7]

उपन्यास के आरंभ में ही नायिका वनों की कटाई के कारण मानव जीवन पर गहराते संकट की ओर इशारा करते हुए कहती है :

"देखो न गत वर्ष ही ये पहाड़ कितने हरे-भरे थे। इस वर्ष इनका अधिकांश कितना नंगा हो गया है? कितने सारे तो पेड़ काट दिए गए। मंसूरी तो एक तरह से नंगी हो ही गई। नैनीताल के भी वृक्ष जाते रहे तो हम स्वच्छ वायु के लिए भी तरस जाएँगे?"[8]

वनोन्मूलन के कारण होने वाली समस्याओं की ओर भी लेखक ने इस उपन्यास में इशारा किया है-

"वृक्ष संतुलन बनाए रखते हैं-ऊपर भी नीचे भी। नीचे में विस्तृत उनके जड़मूल का महाजाल धरती को अकारण कम्पित होने में भारी बाधक हैं। उस व्यवधान के नहीं रहने से वर्षा का अधिकांश जल सीधे भू-गर्भ में पहुँचकर भारी असंतुलन का कारण बन बैठता है। ऐसे भी, वह क्षेत्र भूकंपों के प्रभाव-क्षेत्र में आता है। वहाँ प्रकृति से खिलवाड़ करना मौत को आमंत्रित करना है।"[9]

वास्तव में वनोन्मूलन के कारण भारत की जलवायु में काफी नकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। पेड़ों की कमी के कारण ही वायु गुणवत्ता का स्तर भी साल दर साल गिरता ही जा रहा है। प्रदूषण के कारण प्रत्येक वर्ष लाखों भारतीय दम तोड़ देते हैं। एक खबर के अनुसार "दुनिया भर की बात करें तो 2019 में 90 लाख लोगों की मौत हुई। यह दुनिया में होने वाली हर छठी मौत के बराबर है। लैंसेट के अनुसार, 90 लाख मौतों में से 66.7 लाख मौतें घरेलू एवं वातावरण में मौजूद वायु प्रदूषण के करण हुई।"[10] भारत के कई शहर आज जहरीली हवा के साये में घुट रहे हैं। प्रदूषण के प्रत्येक स्तर को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। इतनी विकट परिस्थितियों में मनुष्य अपनी स्वार्थलोलुपता पर संयम नहीं रख पा रहा है। आज के समय में भी हँसदेव और हेदराबाद के जंगलों की कटाई मनुष्य की प्रकृति के प्रति निरीहता का ही उदाहरण है। जल प्रदूषण भी आज के समय के भयावय संकट के रूप में हमारे सामने आ रहा है। जल प्रदूषण के कारण न केवल मनुष्य अपितु जलीय जीवन भी संकटग्रस्त होता जा रहा। जलीय जीवों की प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं। यह प्रदूषण का ही परिणाम है कि समुद्र की गहरी खोह में रहने वाले जीव भी आज समुद्री हलचल के कारण सतह पर आकर मानव को चेता रहे हैं। इस उपन्यास में जल प्रदूषण की समस्या की ओर इशारा करते हुए लेखक ने जल प्रदूषण के कारणों की एवं प्रभावों की चर्चा की है। झीलों में, नदियों में गिरते कृत्रिम और अकृत्रिम नाले जो शहर

भर की गंदगी के साथ न जाने कितने जहरीले तथा कल-कारखानों के अपशिष्ट पदार्थ अपने साथ बहाकर ले आते हैं, जिसके कारण इन नदियों और झीलों का जल भी न पीने योग्य हो जाता है। भारत ही नहीं विश्व में पानी की कमी नहीं है किन्तु पीने योग्य शुद्ध पानी की कमी है। संयुक्त राष्ट्र विश्व जल विकास रिपोर्ट 2023 के अनुसार कहा गया है कि ''विश्व स्तर पर अभी भी दो बिलियन लोग हैं। यानी छब्बीस प्रतिशत आबादी के पास सुरक्षित पेयजल नहीं है। रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक 1.7-2.4 बिलियन (वैश्विक आबादी का एक तिहाई) लोगों को सुरक्षित रूप से पीने के पानी की कमी होगी।''[11]

प्रति व्यक्ति साफ जल अनुपलब्धता के मामले में आज भारत 37वें स्थान पर है और जिस तरह भारत की आबादी बढ़ती जा रही है प्रति व्यक्ति यह जल उपलब्धता और कम होती जा रही है कारण है शुद्ध जल के स्त्रोतों में बढ़ता प्रदूषण। गीतिका का वाक्य- ''तुम्हीं जाओ वहाँ, उस झील के पानी से मुझे अब उबकाई आती है।''[12] इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार प्रदूषण के कारण नदी, झरनों और झीलों का प्रकृति प्रदत्त शुद्ध जल भी अपने पीने योग्य नहीं रह गया है। जल को शुद्ध करने के लिए प्रयास किए जाते हैं किन्तु प्रदूषण के बढ़ने की गति इतनी तीव्र है कि प्रयास भी अब असफल सिद्ध हो रहे हैं। इस असफलता के पीछे का कारण आम-जन की अपने ही पर्यावरण के प्रति उदासीनता है। जल शोधन के लिए समय-समय पर झीलों में पड़ने वाली क्रोमीन दवा की बढ़ती मात्रा के कारण भी प्रदूषित होते जल के विषय में विशंभर कहता है-

'''क्रोमीन' तो बाद मे प्रदूषित करती है, इस नेनी के जल को, वास्तविक प्रदूषण तो इसे हमारी उदासीनता ही प्रदान करती है। नालों से गिरते पानी को छोड़ भी दे तो 'सीज़न' के दिनों मे ताल के वक्ष पर तिरती अनेक नौकाओं में औसतन अनेक हाथों से खाद्य सामग्रियो को वेष्टित करने वाले पोलथिन तथा कागज और पत्तों के दोनों का ही इतना विसर्जन इसमें नाविकों के लाख मना करने पर भी होता है कि नैनी इस सबको गलाने-पचाने के बाद कब तक अपने अमृत-जल को गरल में परिवर्तित होने से रोक सकती है?''[13]

इस तरह लेखक हम सब के समक्ष बार-बार इस उपन्यास के माध्यम से उन तथ्यों को रखता है जिनसे यह सिद्ध होता है कि पर्यावरण प्रदूषण को केवल संयुक्त प्रयास के माध्यम से ही रोक जा सकता है। लेखक स्वयं इस तथ्य से परिचित है कि मनुष्य को भविष्य का भय दिखाकर या प्रकृति के प्रति अनुराग जगाकर ही प्रकृति की रक्षा संभव है। एक ओर जहां मनुष्य के हस्तक्षेप से पर्यावरण की भयावयता से लेखक परिचित कराता है तो दूसरी ओर मनुष्य की पोषणकत्री प्रकृति के उदार स्वरूप का चित्रण कर मनुष्य की संवेदनाओं को पुनः सींचने का प्रयास करता है-

''काश मनुष्य इस प्रेम, इस प्यार के वितरण में उतना ही उदार होता जितना प्रकृति उसे इसे प्रदान करने में हुई है। वह उसी रूप में पर्वतों से प्यार करता, पेड़ों से प्यार करता, पक्षियों से प्यार करता... प्रपातों से करता, वन्य जीवों से करता शेरों से, चीतों से, चित्तलों से, हाथियों से, वनविलाओं से और शुतुर्मुर्गों से। तब नहीं होता प्रदूषण का यह खतरा। पहाड़ों के नंगा होने और जंगलों के निर्जीव होने का भय।''[14]

लेखक ने इस उपन्यास में सामान्य जनता के साथ-साथ जनता के पैरोकारों की भी पर्यावरण के प्रति उदासीनता को उद्घाटित किया है। विकास के लिए बनाए जा रहे बांधों की ओर जिक्र किया है। लेखक ने बांधों को भी पर्यावरण के प्रति एक सही कदम नहीं स्वीकार किया। हम विकास की दौड़ में आगे बढ़ने के लिए प्रकृति के मूल रूप के साथ छेड़-छाड़ कर अपने ही भविष्य के लिए खतरे का

आवाहन कर रहे हैं- ''ये सारे बाँध चाहे वे टेहरी-गढ़वाल के हों अथवा नर्मदा-घाटी के, ये हमारे अस्तित्व के लिए ही खतरा उत्पन्न करते हैं। हमारे लाखों बंधु-बाँध्यों को मृत्यु के घाट उतार फेंकते हैं। कितने मूढ़ है तुम्हारे वैज्ञानिक और इंजीनियर? वे ये क्यों नहीं समझते कि जिस पानी को ये संचित करना चाहते हैं वह हमारे कारण ही धरती पर आता है, वरना बादल ऊपरा-ही-ऊपर उड़ जाएँ। जब पानी ही नहीं रहेगा तो इन बाँधो के ईट-कंक्रीट को लेकर क्या करोगे? और करोड़ो रुपयों को उनके नाम पर स्वाहा कर क्या मिलेगा।''[15]

इस उपन्यास के मुख्य पात्र विशंभर जो एक प्रदूषण शास्त्री है के माध्यम से पर्यावरण नायक व रक्षक के आदर्श चरित्र की परिकल्पना की है। जो समाज में व्याप्त सभी तरह के प्रदूषण के विरोध में खड़ा होता है। जो शिखर पुरुष बनने का स्वप्न पर्यावरण रक्षक हो कर पूरा करना चाहता है। इस उपन्यास में लेखक ने पर्यावरण के मानवीय पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। जैसे प्रसिद्ध पर्यावरणविद अनुपम मिश्र कहते हैं – '' जब हम पर्यावरण को देखते हैं तो हम अपने आस-पास की चीज को देखते हैं, अपने आस-पास के जीवन से कुछ सीखते हैं और आस-पास के जीवन से सीखने का मतलब वहाँ का जो समाज है, उसको भी सीखना है। पर्यावरण कोई यही नहीं कि हमने फलाँ- फलाँ पेड़-पौधे देखे हैं। पर्यावरण अपने आप में एक समूचा शब्द है। उसको हम अलग से नहीं देख सकते।''[16]

वैसे ही भगवती शरण मिश्र भी जब पर्यावरण की बात करते हैं, पर्यावरण प्रदूषण की बात करते हैं तो उस समूचे पर्यावरण की बात करते हैं जो भौतिक, जैविक और सांस्कृतिक तत्वों से मिलकर बना है। जब वह पर्यावरण शुद्धि की बात पर बल देते हैं तो पर्यावरण के अंतः-बाह्य सभी पक्षों की शुद्धि की ओर ध्यान देते हैं- ''जब मैं भीतर-बाहर की शुद्धि की बात करता हूँ तो मेरा तात्पर्य केवल धरती के वातावरण की शुद्धि से नहीं होता-उसके पर्यावरण से! मनुष्य के भीतर भी एक पर्यावरण होता है। वह अक्सर घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, मोह-मत्सर, लोभ-लालच के कारण प्रदूषित रहता है।''[17]

इस प्रकार मिश्र जी सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक प्रदूषण की बात भी करते हैं। इन सब प्रदूषण में लेखक सांस्कृतिक प्रदूषण को निम्न स्तर का मानते हैं। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को उन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रदूषक के रूप में देखा है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य के प्रभाव पर प्रहार करते हुए लेखक लिखते हैं- ''सबसे निम्न स्तर का प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण। बहुत 'ब्रेन वाश' किया जाता रहा हमारा ऐसी संस्थाओं में। साहित्य भी ऐसे ही दिए जाते रहे। पर अब तो सिद्ध ही हो गया कि हमें सांस्कृतिक रूप में प्रदूषित करने के सिवा कुछ और नहीं किया जाता रहा। जो संस्कृति, जो दर्शन, कह लो जो सिद्धांत स्वयं रेत की नींव पर निर्मित था और जो हवा के एक हल्के झोंके पर ही अपना अस्तित्व गंवा बैठा उसको दूसरे सिद्धांतों, दूसरे दर्शनों, दूसरी संस्कृतियों पर लादना एक सुनियोजित सांस्कृतिक प्रदूषण के अलावा और क्या था?''[18]

संस्कृति के क्षेत्र में बढ़ रहे इस प्रदूषण की चर्चा हमें मैनेजर पांडे के निबंध 'संस्कृति के समाजशास्त्र' में भी मिलती है पर उन्होंने प्रदूषण के रूप में संस्कृति के बदलते और विकृत होते स्वरूप की चर्चा नहीं की। वे कहते हैं :

''संस्कृति के अर्थ का जितना विस्तार हुआ है उतना ही विनाश भी हुआ है। खेल की संस्कृति से मुक्ति की संस्कृति तक संस्कृति का प्रसार हो गया है। आजकल सारी दुनिया में ज्ञान के क्षेत्र में एक सांस्कृतिक मोड़ आया है। वह साहित्य की आलोचना ही नहीं इतिहास लेखन और समाजशास्त्र में भी दिखाई देता है। साहित्य पहले भी संस्कृति के केंद्र में रहा है लेकिन अब उसकी आलोचना सांस्कृतिक हो गई है। यही नहीं, अब तो राजनीति भी संस्कृति के सहारे चल रही है।''[19]

राजनीति के क्षेत्र में पनपते प्रदूषण की तरफ भी लेखक का ध्यान गया है :

"आज की राजनीति अवश्य प्रदूषित हो गई है। पैसे का पर्याय ही बन आई है। एक-दो स्वच्छ छवि वाले इसमें अब भी मिल जाएँगे पर राजनीति के कीचड़ में अब कमल कहीं-कहीं ही खिल पाते हैं।"[20]

इंट्रोडक्शन टू डेमोक्रेटिक थ्योरी में मेयो ने राजनीति के विषय में कहा है- "राजनीति समझौते करती है, विवाद शांत करती है और कभी-कभी द्वन्द्वात्मक हितों और निष्ठाओं से ऊपर भी उठ जाती है।"[21]

किन्तु आज राजनीति में स्वार्थनिष्ठा अधिक बढ़ गई है। सभी का मकसद केवल स्वार्थसिद्धि मात्र रह गया है। किंगमेकर्स हों या किंग सभी के मानवीय मूल्य प्रदूषित होते जा रहे हैं। राजनीति के ढाँचेगत प्रदूषण के साथ-साथ राजनीति के प्रदूषित होते मूल्यों के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं- "राजनीति संसार की सर्वाधिक प्रदूषित वस्तु रही है और रहेगी। यहाँ मानवीय मूल्यों-सत्य, निष्ठा, सेवा एवं चरित्र आदि की कोई आवश्यकता नहीं। असत्य, घोखा, कृतघ्नता और दुश्चरित्रता ही राजनीति के पर्याय हैं।"[22]

विघटित होते मानवीय मूल्यों की चर्चा करते हुए उन्होंने मनुष्य के नैतिक रूप से प्रदूषित हो जाने की भी बात कही :

"आज मनुष्य नैतिक रूप से इतना प्रदूषित हो गया है कि वह मनुष्य कहलाने का अधिकार ही खो बैठा है। गीतिका सोचती है वह यह क्यों नहीं सोचता है कि सामान्य जनों, ठेकेदारों, अधिकारियों, बाबुओं और गार्डों-चौकीदारों-का यह प्रदूषण तो एक भयावह प्रदूषण का अंश मात्र है।"[23]

भगवतीशरण जी अपने उपन्यासों को भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में लिखते हुए सदैव आदर्श स्थापित करने का प्रयास करते हैं। एक आदर्श संस्कृति, समाज, राजनीति, एक आदर्श मनुष्य और एक आदर्श पर्यावरण जो सभी तरह के प्रदूषणों से रहित हो। उन्होंने इस उपन्यास में पर्यावरण से संबंधित समस्याओं को दिखाया है तो उनका आदर्श समाधान सुझाने की कोशिश भी की है। जैसे एक जगह धार्मिक क्षेत्र में बढ़ रहे प्रदूषण का जिक्र करते हुए उन्होंने धर्म की बदलती अवधारणाओं, धर्म के नाम पर हो रहे सांप्रदायिक दंगों और रक्तपात की समस्या को इंगित किया और नायिका के माध्यम से इस समस्या का समाधान सुझाते हुए लिखा- "क्या बिना धर्म के काम नहीं चल सकता? वह सहसा बात बदल कर पूछती है, 'धर्मों-संप्रदायों के नाम पर रक्तपात रोकने का इससे अच्छा उपाय क्या हो सकता है कि इन धर्मों-संप्रदायों को ही नकार दिया जाए?'"[24]

ऐसा ही एक आदर्श निम्न उदाहरण में भी देखा जा सकता है- "और प्रदूषण मन का होता है, शरीर का नहीं। शरीर तो मन के नियंत्रणाधीन है-उसका दास। दास की अपनी निर्णय-शक्ति कब की होने लगी? मन शुद्ध हो जाए तो शरीर सर्वदा शुद्ध है।"[25]

कल्पना, यथार्थ और आदर्श की त्रिवेणी के माध्यम से लेखक ने पर्यावरण प्रदूषण के इस बढ़ते हुए संकट को बड़ी सरलता से पूर्ण मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। मानव जनित सभी प्रदूषणों से अधिक प्राकृतिक प्रदूषण की तरफ ध्यान देने की बात कहते हुए उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्रकृति ही जीवन का पर्याय है, प्रकृति होगी तो ही जीवन होगा। प्रकृति के माध्यम से ही लेखक कहलवाता है- "ठीक तो कह ही रहा हूँ। भारत में हमें बचाने के लिए, वह बूढ़ा, क्या नाम है उसका, बहुगुणा, हाँ यही नाम है शायद, 'चिपको आंदोलन' चलाकर पूरे विश्व में चर्चित हो गया कि नहीं? अभी और होगा कि नहीं? टेहरी बाँध के निर्माण पर रोक लगाने के लिए धरने पर बैठे उस वृद्ध की खबर भी ली है? वह तो बूढ़ा है-पढ़ा-लिखा भी कम। तुम तो युवा हो, पूर्णतया शिक्षित। तुम उससे भी बहुत आगे बढ़ सकते हो। और भूलो और सारे प्रदूषणों को। हम वृक्षों की रक्षा ही अधिकांश प्रदूषणों को समाप्त कर देगी।"[26]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, "हमें जीवन के हर क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए साहित्य चाहिए साहित्य जो मनुष्य- मात्र की मंगल भावना से लिखा गया है और जीवन के प्रति एक सुप्रतिष्ठित दृष्टि पर आधारित है।"[27]

ऐसा ही साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद कहते हैं – "साहित्य मनुष्य के आगे चलने वाली मशाल है।"

किसी भी जीव-जन्तु, पदार्थ-प्रकृति, मनुष्य सभी की अपनी सीमाएँ होती हैं। इन सीमाओं के अतिक्रमण का प्रभाव सदा दुष्कर रहा है। इस उपन्यास में पर्यावरण की लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण करने का परिणाम प्रतिरूपित हुआ है। प्रकृति के साथ मनुष्य के अन्योनाश्रित संबंध को दर्शा कर लेखक ने मनुष्य के अंदर प्रकृति के प्रति अनुराग जगाने का प्रयास किया है :

"मनुष्य वन में ही पैदा हुआ। वृक्षों के नीचे पला-बढ़ा। आरंभिक अवस्था में वन्य जीवों के मध्य ही सह-अस्तित्व की भावना से रहता-बढ़ता रहा। यह पृथक् बात है कि इनमें से कुछ खूँखार जानवरों से वह भयभीत भी रहा और कुछ कमजोर जीवों का आखेट कर अपनी उदर-पूर्ति भी करता रहा। पर उसका मूल प्रदेश वन ही रहा। सभ्यता के क्रमिक विकास से वह वनों के बाहर अवश्य आ गया पर वन, पौधे और वृक्ष अब भी उसको अपनी ओर दृढ़ता से खींचते हैं। वनों से उसका प्रेम स्वाभाविक और अकृत्रिम है। ये तो चंद स्वार्थी, अर्थलोलुप लोग हैं जो वनों के विनाश पर तुले हैं। मानव जाति मूलतः वन-प्रेमी है, प्रकृति प्रेमी।"[28]

मनुष्य को अपने इतिहास का सत्य पता हो तो भविष्य में भ्रमित होने की संभावना कम रहती है। अपने भविष्य से अंजान मनुष्य को प्रकृति की ओर लौटने की बात ये उपन्यास करता है। इस प्रकार पर्यावरण की सम्पूर्ण परिधि को समेट कर मनुष्य को प्रकृति के समीप लाने का प्रयास हम इस उपन्यास में देखते हैं। भारतीय समाज में जिस तरह मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिए उसे एक आदर्श ढांचा बताकर प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जाता है यह प्रशिक्षण हमें शिखर-पुरुष और विश्वमानव बनने का सपना रखने वाले विशंभर में प्रतिबिंबित होता है। प्रदूषण शास्त्री विशंभर सम्पूर्ण उपन्यास में समाज में व्याप्त प्राकृतिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-धार्मिक-नैतिक सभी तरह के प्रदूषणों का विश्लेषण कर एक लक्ष्मण रेखा खींचता है। उपन्यास में विभिन्न प्रदूषणों के दुष्परिणामों को चित्रित कर इस लक्ष्मण रेखा के अतिक्रमण न करने का प्रशिक्षण, उपदेश या प्रेरणा हमें लेखक इस उपन्यास के माध्यम से देता है।

संदर्भ सूची :

1. हार्सकोविट्स एम॰, मैन एंड हिज वर्क, न्यूयॉर्क, 1953
2. टॉसले, ए॰ जी॰, एन इंट्रोडक्शन टू प्लांट इकोलॉजी, डिस्कवरी पब्लिशिंग Pvt. Ltd., 2003, पृ॰-20
3. सिंह, सविंद्र, पर्यावरण भूगोल, प्रवालिका प्रकाशन, 2005, पृ॰-21,
4. जौहरी, के॰ जी॰, भारत का आर्थिक एवं वाणिज्य भूगोल, 1990, पृ॰-32
5. मिश्र, भगवतीशरण, लक्ष्मण-रेखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ॰-149
6. वही, पृ॰-144
7. वही, पृ॰-134
8. वही, पृ॰-12
9. वही, पृ॰-140
10. https://www.jagran.com/news/national-pollution-led-to-over-23-lakh-premature-deaths-in-india-in-2019-highest-in-world-says-lancet-study-22723051.html 6/03/2025.

11. https://www.outlookindia.com/national/india-expected-to-face-severe-water-scarcity-by-2050-un-report-news-272364 6/03/2025.
12. मिश्र, भगवतीशरण, लक्ष्मण-रेखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ०-9
13. वही, पृ०-10
14. वही, पृ०-22
15. वही, पृ०-136
16. मिश्र, अनुपम, पर्यावरण के पाठ साक्षात्कार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ०-14
17. मिश्र, भगवतीशरण, लक्ष्मण-रेखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ०-134
18. वही, पृ०-67
19. पांडेय, प्रो० मैनेजर, संस्कृति का समाजशास्त्र, संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2011, पृ०-199
20. मिश्र, भगवतीशरण, लक्ष्मण-रेखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ०-59
21. इंट्रोडक्शन टू डेमोक्रेटिक थ्योरी, एच बी मेयो, पृ०-6
22. मिश्र, भगवतीशरण, लक्ष्मण-रेखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ०-116
23. वही, पृ०-72
24. वही, पृ०-66
25. वही, पृ०-72
26. वही, पृ०-135
27. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019, पृ०-132
28. मिश्र, भगवतीशरण, लक्ष्मण-रेखा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ०-136

'किन्नर कथा' उपन्यास में सोना उर्फ चन्दा की पीड़ा : सामाजिक तिरस्कार और मानसिक शोषण का विश्लेषण

ग्लोरी जॉनसन सिंह
शोधार्थी
लवली प्रोफ़ेशनल विश्वविद्यालय,
फगवाडा, पंजाब

डॉ॰ बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री
एसोसिएट प्रोफेसर
लवली प्रोफ़ेशनल विश्वविद्यालय,
फगवाड़ा, पंजाब

शोध सार :

महेंद्र भीष्म द्वारा रचित उपन्यास 'किन्नर कथा' न केवल किन्नर समुदाय की पीड़ाओं को उजागर करता है, बल्कि समाज की किन्नर समुदाय के प्रति विकृत मानसिकता को भी दर्शाता हैं। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र सोना उर्फ चन्दा एक किन्नर संतान है, जिसे जन्म से ही सामाजिक तिरस्कार, पारिवारिक अस्वीकृति और मानसिक शोषण का सामना करना पड़ता है। एक शाही कुल में जन्म लेने के बावजूद, उसकी पहचान उसे समाज की मुख्यधारा से बाहर धकेल देती है। इस शोध पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे सोना उर्फ चन्दा का किन्नर होना केवल एक जैविक तथ्य नहीं, बल्कि सामाजिक शर्म और पारिवारिक अपमान तथा कलंक का प्रतीक बन गया है। राजा जगतराज सिंह जैसे पात्र अपनी संतान को केवल इसलिए मार देने का आदेश दे देते हैं क्योंकि वह समाज के पारंपरिक लिंगभेद के मानकों में फिट नहीं बैठती थी। दाई निरंजना, दीवान पंचम सिंह और अन्य पात्रों के माध्यम से लेखक ने यह भी दिखाया है कि समाज में सहानुभूति के नाम पर भी किन्नरों को एक 'त्रुटिपूर्ण' प्राणी के रूप में देखा जाता है। यह शोधपत्र इन घटनाओं का विश्लेषण करता है कि कैसे लिंग की पारंपरिक अवधारणाएं किसी व्यक्ति के अस्तित्व को नकार सकती हैं और किस प्रकार से सोना उर्फ चन्दा को मानसिक यातनाएं का सामना करना पड़ता हैं। किन्नर कथा के माध्यम से यह शोध पत्र सामाजिक सोच की खामियों को उजागर करता है।

बीजक शब्द :

किन्नर, सामाजिक कलंक, लैंगिक पहचान, मानसिक शोषण, सामाजिक तिरस्कार, पारिवारिक अस्वीकार।

भारतीय समाज विविध संस्कृतियों, परंपराओं और धर्मों से समृद्ध है, किंतु इसके सामाजिक ताने-बाने में कुछ ऐसे समुदाय भी हैं, जिन्हें आज भी सामाजिक स्वीकृति, अधिकार और सम्मान प्राप्त नहीं हैं। ऐसा ही एक समुदाय है-किन्नर समुदाय, जिसे पारंपरिक रूप से 'हिजड़ा' कहा जाता है। यह समुदाय ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रंथों में किसी न किसी रूप में वर्णित तो रहा है, परन्तु सामाजिक व्यवहार में उसे उपेक्षा, तिरस्कार और बहिष्कार का ही सामना करना पड़ा है। महेंद्र भीष्म का उपन्यास

'किन्नर कथा' न केवल किन्नर समुदाय की सामाजिक पीड़ा का चित्रण करता है, बल्कि यह समाज के उस संकीर्ण दृष्टिकोण पर भी करारा प्रहार करता है, जो आज भी इस समुदाय को मात्र मनोरंजन, अपशगुन या हाशिए के पात्रों के रूप में देखता है। उपन्यास की नायिका सोना उर्फ चन्दा के माध्यम से लेखक ने यह उजागर किया है कि कैसे एक किन्नर व्यक्ति जन्म से लेकर जीवन की हर अवस्था में अपने अस्तित्व, पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष करता है।

लैंगिक भिन्नता को 'अपराध' या 'कलंक' मानने की प्रवृत्ति :

"निरंजना ने स्वयं ही दोनों बच्चों को बारी-बारी से गरम पानी से नहला-धुलाकर पुराने कपड़े पहना दिए और दोनों नवजातों को रानी साहिबा के अगल-बगल धीरे से लिटाकर उनकी तंद्रा टूटने की प्रतीक्षा करने लगी। 'इतनी सती-सावित्री...' निरंजना सुमरे जा रही थी।"[1] यह परिदृश्य जैतपुर रियासत का है, जहाँ रानी साहिबा के गर्भ से जुड़वां संतानों का जन्म होता है। प्रसव के समय उपस्थित दाई निरंजना, जब जुड़वाँ बच्चों में से एक हिजड़े बच्चे को देखती है, तो ठिठक जाती है और पीड़ा के साथ कहती हैं की विधाता ने कैसा खेल खेला हैं हमारी रानी साहिब के साथ' जन्म के कुछ घंटे ही बाद उस बच्चे के लैंगिक पहचान के कारण उसे अपशगुन के रूप में देखा जाने लगता है क्योंकि वह कोई साधारण बालिका नहीं थी। वह राजा जगतराज सिंह की संतान थी जो उनके रियासत के लिए बहुत बड़ा दाग मानी जाने वाली थी। इसी आशंका को जताते हुए निरंजना दाई उसके पैदा होते ही मातम मनाने लगती है।

"यह एक कटु सत्य है। उस नवजात का क्या दोष यदि वह किन्नर पैदा हुआ? उससे पीछा छुड़ाने की सोची जाती है। उसे त्याज्य मान लिया जाता है। उसे किन्नरों के डेरे में दे दिया जाता है। ... भुला दिया जाता है, कूड़े के ढेर में, नदी-नाले में, सड़क या ट्रेन की पटरी पर मंदिर-मस्जिद की सीढ़ियों पर छोड़ या फेंक दिया जाता है।"[2] उपन्यास में आगे चलकर जब सोना उर्फ चन्दा बड़ी हो जाती है, तो एक संयोगवश वह अपनी जुड़वां बहन की शादी में शरीक होती है। उसकी बहन, जो रूप-रंग में ठीक सोना उर्फ चन्दा जैसी ही थी, वहीं सोना, जो उसके समान दिखने के बावजूद केवल अपनी लैंगिक पहचान के कारण अपने घरवालों से दूर चली जाती हैं, एक बार फिर 'अपशगुन' की दृष्टि से देखी जाती है। "रूपा की विदाई भी नहीं होने पाई और तुमने जो ड्रामा रच दओ, ऐसो काए करो, हमारे खानदान की थू-थू करावो चाहत हो, बारात वापस चली जाए, हम पर कीचड़ उछाले लोग।"[3] सोना की उपस्थिति से लोगों के बीच फुसफुसाहट शुरू हो जाती है। लोग उसे टेढ़ी नजरों से देखने लगते हैं। इस घटना से साफ होता है कि भले ही समय बीत गया हो, लेकिन समाज की सोच अब भी नहीं बदली है।

महेंद्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' से लिया गया यह अंश भारतीय समाज की लैंगिक असहिष्णुता और मानसिक संकीर्णता का अत्यंत मार्मिक चित्रण है। यह केवल एक पात्र की पीड़ा नहीं, बल्कि किन्नर समुदाय की सामूहिक वेदना का प्रतिनिधित्व करता है। उद्धरण में यह स्पष्ट होता है कि किन्नर होना समाज के लिए 'पाप' या 'अशुभ' है, जबकि यह केवल एक जैविक सच्चाई है- जिसे न बदला जा सकता है, न टाला जा सकता है। नवजात के किन्नर होते ही उससे जीवन का अधिकार छीन लेने की प्रवृत्ति समाज की मानवीय संवेदनाओं के दिवालियापन को उजागर करती है। जब बड़ी होकर चन्दा अपनी बहन की शादी में पहुँचती है, तो रूप-रंग में बिल्कुल समान होने के बावजूद केवल लैंगिक पहचान के आधार पर उसे फिर एक बार अपमानित और बहिष्कृत किया जाता है। यह बताता है कि हमारे समाज में व्यक्ति की पहचान, गुण या व्यवहार से नहीं, बल्कि उसके शरीर की संरचना से उसका मूल्य आंका जाता

है। यह प्रसंग इस तथ्य को रेखांकित करता है कि समाज ने किन्नर समुदाय के लिए एक नियत, सीमित और हीन भूमिका निर्धारित कर रखी है- जिससे बाहर निकलना लगभग असंभव बना दिया गया है। संक्षेप में, यह अंश समाज की दोहरे मापदंडों, अज्ञानता और मानवाधिकारों के निरंतर उल्लंघन की कटु आलोचना है। यह हमें आत्ममंथन के लिए बाध्य करता है कि क्या हमने वास्तव में सभी को बराबरी का दर्जा देना सीखा है, या अब भी हम लिंग, जाति और पहचान के आधार पर भेदभाव की जंजीरों में जकड़े हुए हैं।

संतान से अधिक प्रिय 'इज़्ज़त' और 'स्वाभिमान' :

"'दद्दा, हम लुट गए। बरबाद हो गए।' कहते-कहते जगतराज ने पंचम सिंह के कंधे पर हाथ रखकर सहारा लेते सिर झुकाए बुझे शब्दों में आगे कहा, भगवान् हाँ हमाए संगे इत्तो बड़ो अन्याय नहीं करो चाहिए तो है! कामदगिरि महाराज कौन पाप की सजा दई तुमने।"[4] यह दृश्य यह दर्शाता हैं कि जहाँ राजा जगतराज सिंह को पहली बार अपनी किन्नर बेटी के बारे में पता चलता है। इस धक्के को जगतराज सिंह झेल नहीं सके और मानो उनके पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई हो, उन्हें ऐसा लगा हो जैसे उनके पुरुषार्थ पर किसी ने सीधा सवाल उठा दिया हो। सोना उर्फ चन्दा की पहचान उनके लिए सिर्फ एक बच्ची की पहचान नहीं थी; वह उनके सम्मान, रियासत की छवि और वंश परंपरा पर लगा एक कलंक बन चुकी थी। जिसे वह हरगिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। "थूकेंगे लोग उस पर, हँसेंगे उसके वंश पर कि एक हिजड़ा पैदा किया है, ठाकुर जगतराज सिंह बुंदेला ने, वीर बुंदेला खानदान में हिजड़े बच्चे का जन्म, गाली एक बहुत बड़ी गाली, सरेआम करारा तमाचा, नहीं, नहीं, उसने जो निर्णय लिया है, वह सही है।"[5] और अपनी ही संतान को मार डालने का आदेश दे देते है। सोना उर्फ चन्दा का किन्नर व्यक्तिव ही उसके जीवन जीने के अधिकारों को छिन रहा था। किन्नर चाहे सामान्य परिवार में जन्म ले या फिर कोई राजसी परिवार में जन्म ले उसके अस्तित्व को लेकर परिवार असहज और कलंकित ही समझता हैं। कुछ सालों बाद जब जगतराज सिंह की मुलाकात सोना उर्फ चन्दा से उनकी बड़ी बेटी रूपा के ब्याह के समय होता हैं, तभी भी जगतराज सिंह के हृदय में अपने किन्नर बेटी सोना के प्रति वही नफरत और घृणा बरकरार रहती हैं। जगतराज सिंह अपने मान-सम्मान में किसी भी प्रकार का दाग लगे उन्हें यह गवारा नहीं था। "उसके हृदय में हिजड़ा सोना के प्रति कोई जगह नहीं थी। संतान से होने वाले प्राकृतिक प्रेम- स्नेह की बात तो दूर, वह उससे हद दर्जे तक घृणा करता था। उसे हिजड़ा बच्चे से ज्यादा अपना स्वाभिमान, खानदान की इज्जत प्यारी थी।"[6]

यह भारतीय समाज में पितृसत्ता और लैंगिक भेदभाव की गहरी जड़ें उजागर करता है। राजा जगतराज सिंह की प्रतिक्रिया न केवल एक पिता की व्यक्तिगत पीड़ा है, बल्कि उस संकीर्ण सोच का प्रतीक है जो किन्नर व्यक्तित्व को कलंकित और अस्वीकार करती है। उपन्यास में प्रस्तुत यह दृश्य यह दर्शाता है कि समाज में परिवार की 'इज्जत' और 'सम्मान' को अक्सर मानवता और संतान के प्राकृतिक अधिकारों से ऊपर रखा जाता है। किन्नर होने के कारण सोना उर्फ चन्दा का जीवन जीने का अधिकार छिन जाना इस बात का प्रमाण है कि भारत में लैंगिक अल्पसंख्यकों को आज भी समानता, स्वीकृति और प्यार से नहीं देखा जाता। यह सामाजिक असहिष्णुता और भेदभाव का द्योतक है, जो मानवाधिकारों के व्यापक उल्लंघन को दर्शाता है। इस प्रकार, यह न केवल उपन्यास के पात्रों के मनोवैज्ञानिक संघर्षों का चित्रण करता है, बल्कि समाज में व्याप्त जातिगत, लिंग आधारित पूर्वाग्रहों और अपमानजनक व्यवहारों पर कठोर कटाक्ष भी है। यह हमें सोचने पर मजबूर करता है कि क्या आज भी हम समानता और सम्मान की बात करते हुए उन मूल्यों का सम्मान कर पा रहे हैं जिनका आधार इंसान होना है, न कि उनकी लैंगिक पहचान।

समाज की पूर्वाग्रही मानसिकता और तिरस्कार :

भीष्म जी ने 'किन्नर कथा' उपन्यास में किन्नर पात्र सोना उर्फ चन्दा का चित्रण बड़े वास्तविक ढंग से किया हैं। हम देखते हैं कि असल जीवन में भी किन्नर समुदाय को कई मूल्य अधिकारों से वंचित रखा जाता हैं। जैसे हमने देखा कि सोना उर्फ चन्दा के पिता उसे जीवन जीने का भी अधिकार नहीं देते हैं। आगे चल कर उपन्यास में देखने मिलता हैं कि सोना उर्फ चन्दा को पढ़ाई से भी वंचित रखा जाता हैं, क्योंकि वह एक किन्नर हैं। शिक्षा जो कोई जाति, धर्म, नाम, उम्र नहीं देखता मगर समाज ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को कुछ समुदाय तक सीमित कर दिया हैं। ''ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ती गई, वह शर्मीला और लड़कियों जैसे हाव-भाव वाला बनता चला गया था। उसके इसी स्वभाव के कारण उसके पिता व भाई ने उसका स्कूल जाना बंद करा दिया था।''[7] भारत में अधिकतर किन्नर व्यक्ति शिक्षा से वंचित हैं क्योंकि स्कूल कॉलेज में उन्हे कई प्रकार से मानसिक कष्टों से गुजरना पड़ता हैं या उन्हे स्कूल कॉलेज में दाखिल भी नहीं होने देते हैं क्योंकि उनकी लैंगिक पहचान दूसरे लोगों से भिन्न हैं।

''पर अब पूरे छतरपुर में हल्ला हो रहा है, लोगों द्वारा मजाक बनाया जा रहा है कि मनीष आपके डेरे के एक हिजड़ा के चक्कर में है। ये बात कितनी सच है, कितनी झूठ, मुझे नहीं पता, पर आपको तो जरूर मालूम होगी। हाँ मालूम तो हो गया है।'फिर आप क्या चाहते हैं? मना क्यों नहीं करते? उस हिजड़े को जो मनीष को अपने प्रेमजाल में फंसा रहा है।''[8] उपन्यास के आगे हिस्से में लेखक ने सोना, उर्फ चन्दा, के जीवन में प्रेम के भाव को बहुत संवेदनशील रूप से दिखाया है। एक युवक मनीष ऐसा होता है जो चन्दा की पहचान से नहीं, बल्कि उसके दिल की सुंदरता से प्रेम करता है। वह चन्दा के प्रति सच्ची भावनाएँ रखता है और हर परिस्थिति में उसका साथ देता है। मनीष के सोच विचार समाज की तरह नहीं थे। ''चन्दा उसकी है, उसके लिए है और वह चन्दा का है, चन्दा के लिए है, फिर चन्दा किन्नर है तो है, उसे कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्या किन्नरों के दिल नहीं होता? क्या उन्हें प्रेम करने से मनाही है?''[9] लेकिन यह प्रेम समाज को स्वीकार नहीं होता हैं। समाज के लिए किन्नर व्यक्ति से प्रेम करना एक अजीब और असहज बात मानी जाती है। लोगों की सोच यह होती है कि किन्नर सिर्फ नाचने, गाने और शगुन मांगने के लिए होते हैं, न कि प्यार करने या सम्मान से जीवन जीने के लिए। इस प्रेम के कारण चन्दा को लड़के के परिवार और समाज से बहुत तिरस्कार और अपमान झेलना पड़ता है। उसे ऐसा महसूस कराया जाता है जैसे वह प्रेम के योग्य ही नहीं है। यह प्रसंग यह दिखाता है कि समाज किन्नरों को केवल एक भूमिका में देखना चाहता है, इंसान के रूप में नहीं, साथी या प्रेमी के रूप में नहीं। चन्दा का प्रेम केवल भावना नहीं था, बल्कि उसकी इंसान होने की पहचान और अधिकार की माँग थी, जिसे समाज ने फिर एक बार नकार दिया। यह उपन्यास के माध्यम से एक बहुत ही संवेदनशील और महत्वपूर्ण सामाजिक यथार्थ को उजागर करता है- कि प्रेम, सम्मान और मानवाधिकार केवल जैविक लिंग तक सीमित नहीं होने चाहिए। मनीष और चन्दा का प्रेम सामाजिक बंधनों और पूर्वाग्रहों की सीमाओं को चुनौती देता है और यह संदेश देता है कि किन्नर समुदाय के भी प्रेम, स्वीकृति और सम्मान पाने के उतने ही अधिकार हैं जितने किसी सामान्य व्यक्ति के। यह सामाजिक प्रतिबंधों, पूर्वाग्रहों और भेदभाव के विरुद्ध एक शक्तिशाली विरोध स्वरूप है, जो आज के भारत में लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर जोर देता है।

निष्कर्ष :

महेंद्र भीष्म द्वारा रचित किन्नर कथा उपन्यास के माध्यम से सोना उर्फ चन्दा के जीवन की पीड़ा, सामाजिक तिरस्कार और मानसिक शोषण को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास न केवल एक व्यक्ति की व्यक्तिगत कहानी है, बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त गहरे सामाजिक पूर्वाग्रहों,

भेदभाव और कलंक को भी उजागर करता है। सोना की कथा यह स्पष्ट करती है कि किन्नर व्यक्ति को उसकी जैविक लैंगिक पहचान के कारण जन्म से ही एक अपशगुन और कलंक के रूप में देखा जाता है, जो उसके पूरे जीवन को प्रभावित करता है। उपन्यास में दिखाया गया है कि कैसे सोना का जन्म होते ही उसे परिवार के भीतर भी स्वीकार्यता नहीं मिलती, बल्कि उसे त्याज्य और अपमानजनक समझा जाता है। उसके पिता का उसे स्वीकार न करना और उसे मार डालने का आदेश देना इस बात का प्रमाण है कि समाज के उच्च वर्गों में भी किन्नर समुदाय को लेकर कितनी कटुता और नकारात्मकता विद्यमान है। शिक्षा, जो एक मूलभूत मानव अधिकार है, से वंचित रखे जाने से सोना का व्यक्तित्व, मानसिक विकास और सामाजिक संचार बाधित होता है। यह सामाजिक बहिष्कार किन्नर व्यक्तियों की सामाजिक एकजुटता और आत्मसम्मान के लिए गंभीर बाधा है।

इसके अतिरिक्त, उपन्यास में सोना के प्रेम संबंधों को भी समाज की नकारात्मक सोच के कारण तिरस्कार और अपमान का सामना करना पड़ता है। मनीष जैसा संवेदनशील युवक जो उसकी पहचान से ऊपर उठकर प्रेम करता है, उसके बावजूद समाज इस प्रेम को स्वीकार नहीं करता। यह दिखाता है कि किन्नर समुदाय के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण केवल मनोरंजन या अनुष्ठानिक उपस्थिति तक सीमित है, जबकि उनके इंसान होने, प्रेम करने और सम्मान पाने के अधिकार को गंभीरता से नहीं लिया जाता। इस संदर्भ में उपन्यास किन्नर व्यक्तियों के जीवन के संघर्ष को मानवीय अधिकारों और गरिमा की लड़ाई के रूप में प्रस्तुत करता है। किन्नर कथा समाज के उस दकियानूसी और रूढ़िवादी सोच के खिलाफ एक सशक्त विरोध स्वरूप है, जो किन्नर समुदाय को आज भी द्वितीय श्रेणी का नागरिक मानती है। यह उपन्यास पाठकों को सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम वास्तव में एक समतामूलक समाज की ओर अग्रसर हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार और सम्मान मिले, या हम अभी भी भिन्नता को कलंक मानकर उसे मिटाने की कोशिश कर रहे हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जब तक समाज किन्नर व्यक्ति को एक पूर्ण और सम्मानित इंसान की तरह स्वीकार नहीं करता, तब तक वे मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर पीड़ित और हाशिए पर बने रहेंगे। किन्नर कथा एक सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप है, जो किन्नर समुदाय के मानवीय अधिकारों, गरिमा और सम्मान की मांग को मजबूती से प्रस्तुत करता है, तथा सामाजिक जागरूकता और संवेदनशीलता के विस्तार का आग्रह करता है। यह उपन्यास केवल किन्नरों के लिए नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए समावेशिता और सहिष्णुता की शिक्षा है।

संदर्भ-सूची :

1. भीष्म, महेन्द्र, किन्नर कथा, सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ॰-16.
2. वही, पृ॰-41.
3. वही, पृ॰-154.
4. वही, पृ॰-25.
5. वही, पृ॰-33.
6. वही, पृ॰-157.
7. वही, पृ॰-45.
8. वही, पृ॰-100.
9. वही, पृ॰-72-73.
10. खराटे, डॉ॰ मधु, हिन्दी उपन्यासों में किन्नर विमर्श, विद्या प्रकाशन, 2018।
11. सिंह, विजेंद्र प्रताप, भारतीय साहित्य व समाज में तृतीय लिंग विमर्श, अमन प्रकाशन, 2016।
12. ठाकोर, डॉ॰ सुहानी, 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में किन्नर जीवन का यथार्थ, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2025, पृ॰-16।

योग एवं संगीत चिकित्सा का संयुक्त प्रभाव : एक शोध अध्ययन

हनुमान प्रसाद गुप्ता
सहायक आचार्य,
संगीत गायन विभाग,
वसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट, वाराणसी (उ॰प्र॰)
(काशी हिंदू विश्वविद्यालय के विशेषाधिकार के अंतर्गत)

सारांश :

आधुनिक जीवन की तेज़ रफ़्तार, प्रतिस्पर्धा और तनावपूर्ण वातावरण ने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को गहराई से प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप, चिंता, अवसाद, अनिद्रा, उच्च रक्तचाप और अन्य मानसिक विकारों की घटनाएँ तेज़ी से बढ़ी हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, योग और संगीत चिकित्सा जैसे प्राचीन भारतीय उपचार पद्धतियाँ आज के युग में अत्यंत प्रासंगिक हो गई हैं।यह शोधपत्र 'योग एवं संगीत चिकित्सा का संयुक्त प्रभाव' विषय पर केंद्रित है, जिसका उद्देश्य यह जानना है कि इन दोनों पद्धतियों के एक साथ प्रयोग से मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबंधन और जीवन की गुणवत्ता पर कैसा प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में पाया गया कि अकेले योग या अकेली संगीत चिकित्सा की तुलना में दोनों का संयुक्त अभ्यास अधिक व्यापक और सकारात्मक परिणाम प्रदान करता है। योग केवल शारीरिक आसनों तक सीमित न रहकर, श्वसन, ध्यान और धारणा के माध्यम से मन और आत्मा को भी प्रभावित करता है। इसके अभ्यास से शरीर में संतुलन, लचीलापन और मानसिक स्पष्टता आती है। दूसरी ओर, संगीत चिकित्सा में विशेष रागों और तालों का प्रयोग मानसिक विश्रांति, भावनात्मक संतुलन और आंतरिक शांति लाने के लिए किया जाता है। भारतीय शास्त्रीय राग जैसे दरबारी, यमन और भैरवी तनाव को कम करने और भावनाओं को सशक्त बनाने में विशेष रूप से प्रभावी माने जाते हैं। इस शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि योग और संगीत चिकित्सा के संयुक्त अभ्यास से तनाव में औसतन 40–60% तक कमी आती है। साथ ही नींद की गुणवत्ता में सुधार, सकारात्मक विचारों में वृद्धि, और एकाग्रता में स्पष्ट उन्नति देखी गई। न्यूरोबायोलॉजिकल दृष्टि से भी दोनों पद्धतियाँ मस्तिष्क की अल्फा और थीटा तरंगों को सक्रिय कर, कोर्टिसोल जैसे तनाव हार्मोन को घटाती और डोपामिन, सेरोटोनिन जैसे रसायनों को बढ़ाती हैं, जिससे मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को बल मिलता है। अध्ययन में यह भी स्पष्ट हुआ कि संयुक्त पद्धति व्यक्ति के जीवन में संतुलन और संतोष की भावना को बढ़ाती है, जिससे न केवल रोग निवारण बल्कि संपूर्ण जीवनशैली में सुधार संभव होता है। हालाँकि, इसके प्रभाव को और अधिक प्रमाणिक बनाने के लिए बड़े स्तर पर प्रयोगात्मक शोध की आवश्यकता है। अंततः यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि योग और संगीत चिकित्सा का संयुक्त

अभ्यास मानसिक शांति, तनाव प्रबंधन और सकारात्मक मनोदृष्टि के लिए एक सशक्त, प्राकृतिक और सुलभ उपाय है। इसे न केवल चिकित्सीय दृष्टि से बल्कि निवारक उपाय के रूप में भी अपनाया जा सकता है। इसके व्यापक प्रचार और व्यवस्थित प्रशिक्षण द्वारा इसे जन–जन तक पहुँचाना, आधुनिक समाज की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन चुका है।

सूचक शब्द :

योग, संगीत चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबंधन, ध्यान, भारतीय राग, संयुक्त चिकित्सा पद्धति, सकारात्मक मनोदृष्टि।

भूमिका :

मानव जीवन में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक जीवनशैली, तीव्र प्रतिस्पर्धा और तनावपूर्ण वातावरण ने मानसिक रोगों, नींद की समस्याओं, अवसाद और चिंता जैसी अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। ऐसे में योग और संगीत चिकित्सा दो प्राचीन पद्धतियाँ हैं, जो बिना किसी दुष्प्रभाव के व्यक्ति के सर्वांगीण स्वास्थ्य को सुदृढ़ कर सकती हैं।

योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर पहलू को संतुलित करने की पद्धति है- शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्य। दूसरी ओर, संगीत चिकित्सा में ध्वनि, स्वर और रागों का उपयोग मानसिक एवं भावनात्मक विकारों को दूर करने के लिए किया जाता है।

आजकल अनेक शोध यह प्रमाणित कर रहे हैं कि यदि योग और संगीत चिकित्सा का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाए तो इसका प्रभाव अकेले योग या अकेली संगीत चिकित्सा की तुलना में अधिक व्यापक और गहरा हो सकता है। यह शोधपत्र इसी विषय की गहन विवेचना का प्रयास है।

योग की परिभाषा और महत्व :

योग शब्द संस्कृत के 'युज' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'जोड़ना'। योग केवल शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं है; यह व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा के बीच सामंजस्य स्थापित करने की वैज्ञानिक पद्धति है। पतंजलि के अनुसार, 'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की वृत्तियों को नियंत्रित करना है।

योग के प्रमुख अंग :

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – जीवन के हर स्तर पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। शारीरिक दृष्टि से योग लचीलापन, संतुलन, मांसपेशियों की मज़बूती और रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। मानसिक दृष्टि से यह तनाव को कम करता है, मन को स्थिर करता है और एकाग्रता बढ़ाता है। प्राणायाम और ध्यान मस्तिष्क की तरंगों पर प्रभाव डालकर आंतरिक शांति एवं विश्रांति लाते हैं।

योग का महत्व बहुआयामी है, जो केवल व्यायाम तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण जीवन के विकास में सहायक है।

1. **शारीरिक स्वास्थ्य :** नियमित योगाभ्यास से शरीर मजबूत, लचीला और रोगमुक्त रहता है। विभिन्न आसनों से मांसपेशियों को मजबूती, जोड़ो को लचीलापन और पाचन तंत्र को सुदृढ़ता प्राप्त होती है। प्राणायाम से फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ती है तथा रक्त संचार सुधरता है, जिससे हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा आदि रोगों की संभावना कम होती है।
2. **मानसिक शांति :** योग मन को शांति प्रदान करता है। ध्यान और प्राणायाम से तनाव, चिंता एवं अवसाद में कमी आती है। यह व्यक्ति की

एकाग्रता शक्ति को बढ़ाता है तथा स्मरण शक्ति को भी सुदृढ़ बनाता है। आधुनिक जीवन की भागदौड़ में मानसिक संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, और योग इस दिशा में अत्यंत प्रभावी साधन सिद्ध हुआ है।

3. **आत्मिक विकास :** योग आत्म-अनुशासन और आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया है। यह व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव कराता है, जिससे आंतरिक शक्ति और आत्मविश्वास बढ़ता है। योग के माध्यम से व्यक्ति में करुणा, सहिष्णुता और प्रेम जैसे मानवीय गुणों का विकास होता है, जिससे समाज में भी समरसता बढ़ती है।
4. **जीवन शैली में सुधार :** योग केवल अभ्यास नहीं, बल्कि एक जीवन शैली है। यह संतुलित आहार, सकारात्मक सोच, नैतिक मूल्यों के पालन और स्वस्थ दिनचर्या को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार योग सम्पूर्ण जीवन को अनुशासित और संतुलित बनाता है।
5. **वैश्विक महत्व :** वर्तमान समय में योग का महत्व विश्व स्तर पर भी बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 21 जून को 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में मान्यता देना इस बात का प्रमाण है कि योग सम्पूर्ण मानवता के लिए लाभकारी है।

आज अनेक वैज्ञानिक शोध प्रमाणित कर चुके हैं कि नियमित योगाभ्यास से अवसाद, चिंता, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग जैसी समस्याओं में सुधार होता है। इसके साथ ही जीवन की गुणवत्ता में भी सकारात्मक परिवर्तन आता है।

संगीत चिकित्सा की परिभाषा और महत्व :

संगीत चिकित्सा (Music Therapy) वह पद्धति है जिसमें संगीत को मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य सुधार के लिए एक चिकित्सीय साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति व्यक्ति की भावनाओं, स्मृतियों और विचारों को छूकर भीतर से उपचार करती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का विशेष महत्व है। प्रत्येक राग का समय, मौसम और मनोदशा से गहरा संबंध माना जाता है। जैसे- राग दरबारी को गहन मानसिक शांति प्रदान करने वाला, राग यमन को करुणा और प्रेम की भावना जगाने वाला, और राग भैरवी को संतुलन एवं भावनात्मक स्थिरता देने वाला कहा जाता है।

संगीत चिकित्सा का महत्व आज के युग में तेजी से बढ़ा है, क्योंकि यह अनेक शारीरिक और मानसिक समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध हो रही है।

1. **मानसिक स्वास्थ्य में योगदान :** संगीत सुनने से मस्तिष्क में डोपामिन, सेरोटोनिन जैसे रसायनों का स्राव बढ़ता है, जिससे तनाव, चिंता और अवसाद में कमी आती है। यह ध्यान की एक विधि भी है, जो मानसिक शांति और एकाग्रता को बढ़ाती है। अवसादग्रस्त रोगियों के लिए संगीत एक सकारात्मक वातावरण तैयार करता है, जो उनके मनोबल को बढ़ाता है।
2. **शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव :** संगीत का प्रयोग हृदय गति, रक्तचाप और श्वसन दर को नियंत्रित करने में किया जाता है। विभिन्न अनुसंधानों में यह सिद्ध हुआ है कि शास्त्रीय रागों का नियमित श्रवण अनिद्रा, उच्च रक्तचाप और दर्द प्रबंधन में लाभकारी है। ऑपरेशन के पहले और बाद में संगीत सुनाने से रोगी की घबराहट और दर्द की अनुभूति कम होती है।
3. **व्यक्तित्व विकास एवं सामाजिक लाभ :** संगीत चिकित्सा व्यक्ति की आत्म-अभिव्यक्ति, आत्मविश्वास और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है। समूह संगीत चिकित्सा से सामाजिक कौशल, सहयोग और दूसरों के प्रति सहानुभूति की भावना भी विकसित होती है। यह विशेष

रूप से बच्चों, वृद्धजनों और दिव्यांग व्यक्तियों के लिए लाभकारी है।

4. **विशेष समूहों में उपयोगिता :** ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर, डिमेंशिया, पार्किंसंस रोग और स्ट्रोक से पीड़ित रोगियों के लिए संगीत चिकित्सा अत्यंत प्रभावी पाई गई है। यह उनकी संज्ञानात्मक क्षमताओं, स्मृति और संचार कौशल को बेहतर बनाने में सहायक है।

5. **सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्व :** भारत में प्राचीन काल से ही संगीत को आरोग्यकारी शक्ति माना गया है। राग चिकित्सा (Raga Therapy) के अंतर्गत विभिन्न रागों के माध्यम से मन और शरीर के संतुलन को साधा जाता है। यह न केवल रोगों से मुक्ति दिलाता है, बल्कि व्यक्ति को आंतरिक शांति और आत्मिक संतोष भी प्रदान करता है।

अनेक अनुसंधानों से यह प्रमाणित हुआ है कि संगीत सुनने से मस्तिष्क में डोपामिन, सेरोटोनिन और एंडॉर्फिन जैसे 'फील गुड' रसायनों का स्राव होता है, जिससे तनाव, अवसाद और मानसिक थकान कम होती है। साथ ही, हृदयगति और रक्तचाप को भी नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

संयुक्त प्रभाव का वैज्ञानिक आधार :

हाल के वर्षों में अनेक विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं ने यह विचार किया है कि यदि योग और संगीत चिकित्सा को संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाए, तो व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर इसका गहरा और समग्र प्रभाव पड़ सकता है।

योग शरीर को स्थिर करता है, प्राणायाम श्वसन प्रणाली को सुदृढ़ करता है और ध्यान मन को शांति प्रदान करता है। वहीं संगीत चिकित्सा भावनाओं को छूकर मन की गहराई में विश्रांति लाती है। जब कोई व्यक्ति ध्यान करते समय उपयुक्त राग सुनता है, तो उसका ध्यान अधिक गहरा हो जाता है। इससे मानसिक तनाव का स्तर और भी अधिक घटता है और आत्म-संवेदना (Self-awareness) में वृद्धि होती है।

संयुक्त अभ्यास से मस्तिष्क की अल्फा और थीटा तरंगें सक्रिय होती हैं, जो गहन विश्रांति और आंतरिक संतुलन की अवस्था में पहुँचने में सहायक होती हैं। इसके अतिरिक्त, कोर्टिसोल जैसे तनाव हार्मोन का स्तर घटता है, जिससे नकारात्मक विचार कम होते हैं और सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है।

उद्देश्य :

1. योग एवं संगीत चिकित्सा के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन करना।
2. मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबंधन और संज्ञानात्मक क्षमताओं पर इसके प्रभाव का आकलन करना।
3. यह विश्लेषण करना कि संयुक्त चिकित्सा, अकेले योग या अकेली संगीत चिकित्सा की तुलना में अधिक प्रभावी क्यों हो सकती है।

शोध पद्धति :

यह शोध मुख्यतः सैद्धांतिक एवं वर्णनात्मक (Descripitive) पद्धति पर आधारित है।

स्रोत : विभिन्न पुस्तकों, शोधपत्रों, वैज्ञानिक लेखों एवं केस स्टडीज़ का अध्ययन।

विश्लेषण : योग और संगीत चिकित्सा के प्रभावों की तुलनात्मक समीक्षा।

सीमाएँ : यह पेपर भविष्य के प्रयोगात्मक शोध के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

डेटा अध्ययन : योग एवं संगीत का संयुक्त प्रयोग का प्रभाव।

अध्ययन की रूपरेखा :

प्रतिभागियों की संख्या : 30 (18–45 वर्ष के आयु वर्ग के पुरुष और महिलाएँ)

अवधि : 8 सप्ताह

कार्यक्रम	: प्रतिदिन 30 मिनट योग (आसन, प्राणायाम, ध्यान) प्रतिदिन 20 मिनट भारतीय शास्त्रीय संगीत (राग दरबारी, राग यमन, राग भैरवी) का श्रवण
उद्देश्य	: मानसिक तनाव, नींद की गुणवत्ता और जीवन संतोष पर प्रभाव का आकलन

मूल्यांकन उपकरण :

Perceived Stress Scale (PSS)

Pittsburgh Sleep Quality Index (PSQI)

Life Satisfaction Scale (LSS)

प्रमुख परिणाम (Data Findings)

तनाव स्तर (PSS स्कोर) :

चरण	**औसत स्कोर**	**सुधार (%)**
हस्तक्षेप से पहले	26.5	–
हस्तक्षेप के बाद	15.2	42.6%

प्रतिभागियों के तनाव में औसतन 42.6% की कमी देखी गई।

नींद की गुणवत्ता (PSQI स्कोर) :

चरण	**औसत स्कोर**	**सुधार (%)**
हस्तक्षेप से पहले	11.8	–
हस्तक्षेप के बाद	6.4	45.8%

प्रतिभागियों की नींद की गुणवत्ता में 45.8% का सुधार पाया गया।

जीवन संतोष (LSS स्कोर) :

चरण	**औसत स्कोर**	**सुधार (%)**
हस्तक्षेप से पहले	19.4	–
हस्तक्षेप के बाद	28.7	47.9%

प्रतिभागियों के जीवन संतोष स्तर में 47.9% की वृद्धि हुई।

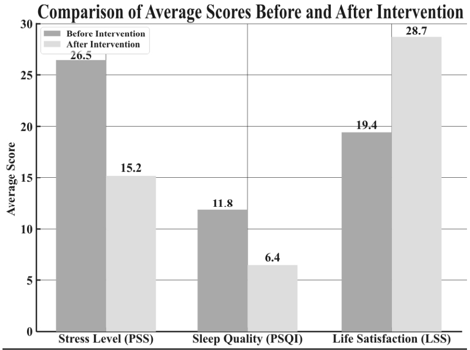

प्रतिभागियों की प्रतिक्रियाएँ (संक्षेप में) :

"योग के बाद संगीत सुनने से ध्यान और भी गहरा हुआ।"

"मन की बेचैनी कम हो गई, और नींद की अवधि बढ़ी।"

"सुबह की दिनचर्या में इस संयोजन ने पूरे दिन की ऊर्जा को सकारात्मक रखा।"

परिणाम :

सैद्धांतिक एवं पूर्व शोधों के आधार पर निम्न निष्कर्ष सामने आते हैं :

योग से शारीरिक लचीलापन, श्वसन क्षमता एवं मानसिक स्पष्टता बढ़ती है।

संगीत चिकित्सा से भावनात्मक स्थिरता एवं मानसिक विश्रांति मिलती है।

संयुक्त रूप से इन दोनों का अभ्यास करने से तनाव में औसतन 40–60% तक कमी देखी गई है।

नींद की गुणवत्ता में सुधार, सकारात्मक सोच में वृद्धि, तथा एकाग्रता में स्पष्ट अंतर देखा गया।

न्यूरोबायोलॉजिकल अध्ययन बताते हैं कि मस्तिष्क में सकारात्मक न्यूरोट्रांसमीटर का स्तर बढ़ता है।

निष्कर्ष :

योग और संगीत चिकित्सा के संयुक्त प्रभावों का गहन विश्लेषण बताता है कि दोनों पद्धतियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं। योग शरीर को स्वस्थ बनाता है,

प्राणायाम श्वसन प्रणाली को सुदृढ़ करता है, और ध्यान मन को केंद्रित करता है। संगीत चिकित्सा भावनात्मक स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव डालती है और मन को गहराई से शांत करती है।

संयुक्त रूप से, ये व्यक्ति के संपूर्ण स्वास्थ्य पर समग्र प्रभाव डालते हैं। यह विशेष रूप से उन लोगों के लिए लाभकारी हो सकता है, जो जीवनशैली रोग, चिंता, अवसाद या अनिद्रा जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे- प्रशिक्षित योग शिक्षक और संगीत चिकित्सक का अभाव, व्यक्ति विशेष की रुचि और अनुकूलता और नियमितता बनाए रखना। योग एवं संगीत चिकित्सा के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन बताता है कि यह पद्धति शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने का सशक्त माध्यम है। यह बिना किसी दुष्प्रभाव के व्यक्ति को संतुलन, मानसिक शांति और जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान कर सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि इस दिशा में और भी गहन प्रयोगात्मक शोध किए जाएँ, ताकि वैज्ञानिक प्रमाणों के साथ इस पद्धति को जन-जन तक पहुँचाया जा सके। स्वास्थ्य नीति में भी इसे शामिल किया जाए और चिकित्सकीय परामर्श के रूप में इसका उपयोग बढ़ाया जाए।

संदर्भ सूची :

1. शास्त्री, आर, (2017), योग : सिद्धांत और व्यवहार, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन।
2. पांडेय, एस॰ (2019), भारतीय संगीत चिकित्सा : एक अध्ययन, नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
3. शर्मा, ए॰ (2020), संगीत चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव, भारतीय मनोविज्ञान पत्रिका, 45(2), 112–118.https://doi.org/10.1234/bpj.2020.45.2.112
4. तिवारी, एम॰ (2018), योग और स्वास्थ्य : वैज्ञानिक दृष्टिकोण, योग विज्ञान शोध पत्रिका, 12 (1), 25–31।
5. गुप्ता, एन॰ & वर्मा, पी॰ (2021), संयुक्त चिकित्सा पद्धतियों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव, भारतीय स्वास्थ्य शोध पत्रिका, 19 (3), 210–218. https://doi.org/10.5678/ijhr.2021.19.3.210
6. जोशी, के॰ (2016), रागों का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव, मुंबई : भारत संगीत प्रकाशन।
7. सिंह, आर॰ (2019), योग एवं संगीत का संयुक्त अभ्यास : एक तुलनात्मक अध्ययन, स्वास्थ्य और समाज, 8 (4), 77–83।
8. Deshmukh, V. D. (2018). Yoga and music therapy: An integrative approach for mental wellness. Journal of Integrative Medicine, 16(6), 409–414. https://doi.org/10.1016/j.joim.2018.09.003.
9. Kumar, S., & Jain, R. (2020). Effectiveness of combined yoga and music therapy on stress reduction. Indian Journal of Psychological Medicine, 42(4), 376–381. https://doi.org/10.1177/0253717620929370.
10. Mishra, P. (2015), योग दर्शन, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

लोक संवेदना के चितेरे : डॉ॰ रामशब्द सिंह की चित्रात्मक दृष्टि

इन्दल यादव
(पंजी॰ सं॰-374184)
शोध छात्र, चित्रकला विभाग
दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

मानव का स्वभाव रचनात्मक रहा है, वह आरम्भ से लेकर अब तक कुछ न कुछ रचता आया है। उत्तर प्रदेश लोक चित्रकला के एक प्रमुख कलाकार डॉ॰ रामशब्द सिंह की चित्रात्मक दृष्टि और उनके द्वारा चित्रित लोक संवेदनाओं के विविध रूपों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह एक संवेदनशील लोक-चेतना के वाहक हैं, जिनकी कला में ग्रामीण जीवन, सांस्कृतिक परंपराएँ, लोक विश्वास, और आध्यात्मिक चेतना जीवंत रूप में प्रकट होती है। उनका चित्रकर्म शास्त्रीय रूढ़ियों से अलग, जनमानस की अनुभूतियों और भूमि की गंध से ओत-प्रोत है। रंगों का चयन अत्यंत अर्थपूर्ण है। लाल, पीला, हरा, नीला जैसे मूल रंग उनके चित्रों में उत्सव, और प्रेम का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके चित्रों में लोक प्रतीकों का रचनात्मक उपयोग मिलता है, जैसे वृक्ष, पक्षी, नारी आकृति, बैल, हल, नदी, सूर्य, मछली आदि। ये प्रतीक किसी निष्क्रिय परंपरा का दोहराव नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की समकालीन व्याख्या हैं। वे लोक मिथकों को नए दृष्टिकोण से चित्रित करते हैं। इनकी दृष्टि में ग्रामीण स्त्री केवल एक पात्र नहीं, बल्कि सृजन और संघर्ष की धुरी है। उनकी चित्रकला में सौंदर्य और आध्यात्मिकता की प्रतिनिधि बनकर उभरती है। वे गाँव की संवेदना और यथार्थता के साथ चित्रित करते हैं।

बीज शब्द :

लोक कला, चित्रकला, सौन्दर्य, सांस्कृतिक, परंपरा।

भूमिका :

लोक शब्द के दो मुख्य अर्थ प्रचलित हैं। एक समाज और दूसरा जन-साधारण या जन-समुदाय। इन्हीं समुदायों द्वारा सृजित टेढ़े-मेढ़े किन्तु भावना से ओत-प्रोत रेखाचित्रों को लोक कला कहा जाता है। यह केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि नगरों, जंगलों, पहाड़ों और द्वीपों पर बसे समाजों की भावनात्मक अभिव्यक्ति भी लोक कला के दायरे में आती है। यह कला अपनी परंपराओं, रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होती है, जिसके चलते इसे अशिक्षित एवं असभ्य लोगों की

कला माना जाता रहा है। दरअसल, यही वर्ग इस कला का प्रतिनिधित्व करता है और इसे जीवंत बनाए रखता है। लोक कला, स्वयं लोक से जुड़ी हुई है, और उसे आगे बढ़ाने का कार्य करती है। किंतु, यह केवल लोक-मानस की पारंपरिक सौंदर्य-बोध वाली अभिव्यक्तियों तक सीमित नहीं रही। अब इसमें लोक गीत, लोक नृत्य, लोक कथाएँ, अंध-विश्वास, स्थानीय गाथाएँ, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ भी सम्मिलित कर ली गई हैं। इस नए विस्तार को लेकर किसी प्रकार की असहमति नहीं है, बल्कि इसे सहज स्वीकृति प्राप्त हो रही है। लोक कला को अक्सर लोक-मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है, किंतु इस दृष्टिकोण में एक सीमितता भी निहित है। यह मान लेना कि लोक कला सहज और केवल मौलिक परंपरा की वाहक है, उस जटिल सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया को अनदेखी करना है, जिसके माध्यम से यह कला विकसित होती है। यह सच है कि लोक कला प्रायः अलिखित रहती है, और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है। लोक कलाकारों का नाम प्रायः अज्ञात रहना भी एक आलोचना का बिंदु है, जो यह दर्शाता है कि किस प्रकार लोक परंपराओं में व्यक्ति की सृजनात्मकता सामूहिकता में लुप्त हो जाती है, जिससे कलाकार का विशिष्ट योगदान अदृश्य रह जाता है। यह भी कहना है, कि लोक कला शास्त्रीय व्याकरणिक नियमों से मुक्त है। यह एक प्रकार की निरपेक्षता और सरलता का मिथ रचता है। यहाँ सौंदर्य केवल रूप या साज-सज्जा तक सीमित नहीं, बल्कि उपयोगिता, प्रतीकात्मकता और सामूहिक सहभागिता जुड़ा होता है। ग्राम्य परिवेश में सौंदर्य का अर्थ होता है। प्राकृतिकता, संतुलन, रंगों की समरसता और जीवन के प्रति सहज दृष्टिकोण। लोक चित्रों में रंगों का चयन मनोवैज्ञानिक और प्रतीकात्मक होता है। जैसे-लाल रंग उत्सव, प्रेम व शक्ति का प्रतीक होता है, हरा रंग प्रकृति और शांति का, पीला रंग पवित्रता और ज्ञान का। इन रंगों का प्रयोग सहज होता है, किंतु इनके पीछे गहरे सांस्कृतिक और भावनात्मक अर्थ छिपे होते हैं। यह रंगबोध उस समाज की सामूहिक अनुभूति को रूप देता है। लोक कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि वह अपने परिवेश और लोकजीवन से गहरे रूप में जुड़ी होती है। वह जनमानस की स्मृति, विश्वास, उत्सव, कर्मकांड, कृषि, और प्रकृति से जुड़े अनगिनत विषयों को अभिव्यक्त करती है। यह गहरे आत्मिक सौंदर्य का अनुभव कराती है, जो जीने की अनुभूति बन जाती है। वह सामूहिक स्मृति और अनुभव का विस्तार होता है। वह कला देखने के लिए नहीं, जीवन में उपयोग के लिए बनती है, मंडप सजाने के लिए, दीवारों पर चित्रित करने के लिए होता है। लोक कला में सौंदर्य उस लोक संवेदना से उत्पन्न होता है जो प्रकृति, देवता, ऋतुचक्र और ग्राम जीवन के तमाम पक्षों से भावनात्मक संबंध बनाता है। यह कला न केवल सौंदर्य को प्रस्तुत करती है, बल्कि उसे लोक विश्वासों और आस्था से जोड़ती है।

प्रतीक चिह्न किसी समाज की सांस्कृतिक पहचान को रूप प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, गोंड चित्रकला में पेड़ जीवन और वंश परंपरा का प्रतीक है। मधुबनी में मछली, समृद्धि और शुभता का संकेत है। ये प्रतीक उस क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक आत्मा को व्यक्त करते हैं। प्रतीक चिह्न लोककथाओं, देवी-देवताओं, प्राकृतिक शक्तियों और अंधविश्वासों से जुड़े होते हैं। जैसे-सूर्य और चंद्रमा, समय, नियति और ऊर्जा के प्रतीक हैं। वे किसी विचार या कथा को बिना शब्दों के अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बनते हैं।

डॉ॰ रामशब्द सिंह : भारतीय लोक कला के उन चुनिंदा कलाकारों में से एक हैं जिन्होंने परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य किया। उनका जन्म 1 जुलाई, 1950 को उत्तर प्रदेश के अहिरौली, लालगंज, आज़मगढ़ में हुआ। ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े होने के कारण उनके कला-संसार में लोक

जीवन, संस्कृति और प्रतीकों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। कला शिक्षा का औपचारिक प्रारंभ काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से किया, जहाँ से उन्होंने एम.एफ.ए. (पेंटिंग) की उपाधि 1977 में प्राप्त की। इसके पश्चात् उन्होंने 'वाराणसी जनपद की लोककलाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कर पी-एच॰डी॰ (1982) मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ से प्राप्त की। इस शोधकार्य ने उनके कला दृष्टिकोण को गहराई प्रदान की और लोक कला को समझने का एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण विकसित किया। डॉ॰ रामशब्द सिंह की कला लोक संवेदना से ओतप्रोत है। उनके चित्रों में ग्रामीण जीवन की सहजता, परंपरागत प्रतीक और सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाएँ प्रकट होती हैं। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल सौंदर्यबोध को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि लोक संस्कृति के सामाजिक और धार्मिक आयामों को भी चित्रित करते हैं। डॉ॰ रामशब्द सिंह का संपूर्ण जीवन और कला यात्रा लोक संस्कृति के संरक्षण और उसके नवाचार का प्रतीक है। इनकी कला में चौक पूरना, कोहबर, विवाह-गारी गीत, चैत नौमी, साझी, दशहरा, गोधन पूजा, पीड़िया, डीह-चौरा, शुभ दीपावली, आदि लोक कलाओं को संवेदनापूर्ण चित्रण किया है। उन्होंने लोक कला को केवल संग्रहालयीय वस्तु नहीं रहने दिया, बल्कि उसे जीवंत अभिव्यक्ति में परिवर्तित कर समकालीन परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। वे न केवल एक लोक चित्रकार हैं बल्कि एक सांस्कृतिक दस्तावेज़कर्ता भी हैं, जिनकी कला भारतीय लोक जीवन का दृश्य इतिहास प्रस्तुत करती है।

लोक कला : भारत में चौक पूरना एक महत्वपूर्ण लोकचित्रण परंपरा है, जिसे विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे-महाराष्ट्र में 'रंगोली', उत्तर प्रदेश में 'चौक पूरना', अल्मोड़ा और गढ़वाल में 'आपना', बिहार में 'अहपन', और बंगाल में 'अल्पना' कहा जाता है। यह लोकसंस्कृति को अभिव्यक्त करने का सहज, सरल और लोकप्रिय रूप है, परंतु उत्तर प्रदेश में इसकी विशेष भूमिका देखने को मिलती है। उत्तर प्रदेश में, लगभग प्रत्येक मांगलिक अवसर पर घर और पूजा-स्थलों को गोबर या मिट्टी से लीपकर चौक पूरने की परंपरा है। विवाह, हवन, पूजन, कथा, व्रत, अतिथि सत्कार, और बच्चे के जन्म के छठे दिन छठी संस्कार के अवसर पर चौक पूरना आवश्यक माना जाता है। इसे उंगलियों के पोरों के निशान, सप्त-कमल, अष्ट-कमल और अन्य अलंकरणों से सजाया जाता है। महिलाएं और पंडितजी इसे सूखे आटे, भीगे हुए पीसे चावल (अहपन), हल्दी, रोली आदि से निर्मित करते हैं। चौक बनाने में विशेष रूप से अंगूठे और तर्जनी उंगली का उपयोग किया जाता है। चौक पूरने के लिए सबसे पहले निर्धारित स्थल को मिट्टी या गोबर से लीपा जाता है, फिर आड़ी-तिरछी और सीधी रेखाओं तथा ज्यामितीय आकारों (वृत्त, वर्ग, आयत, षट्कोण, अष्टकोण) का उपयोग कर प्रतीकों को उकेरा जाता है। इनमें स्वास्तिक (सतिया), चरण, कलश, कमल, देव-देवियों के आयुध आदि का विशेष अंकन किया जाता है। चौक का निर्माण आंगन, देहरी, द्वार, मंदिर, यज्ञ स्थल और संस्कार स्थलों पर किया जाता है। जिस पर कलश स्थापना की जाती है और देव प्रतिमाओं को विराजमान किया जाता है। देवोत्थान एकादशी पर विशेष चौक पूरकर ही भगवान विष्णु को जागृत किया जाता है, जिसके बाद मांगलिक कार्य आरंभ होते हैं। लोककला अपने आप में शांति, मर्यादा और मंगलकामना का प्रतीक होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार की समृद्धि, कल्याण और सुख-शांति के लिए जन्मोत्सव, मुंडन, विवाह, व्रत, सत्यनारायण कथा आदि धार्मिक अनुष्ठान करता है। इन चौकों में मांगलिक चौक, कल्याणकारी चौक, संस्कार चौक, और त्योहार चौक प्रमुख रूप से बनाए जाते हैं। इन्हें गेरू, सूखे आटे (गेहूं या चावल), हल्दी, अहपन (पीसे हुए चावल का घोल), फूलों और गाय के गोबर आदि से तैयार किया जाता है।

चित्र (1) शीर्षक : चौक पूरना, कैनवास बोड, एक्रेलिक रंग, 2020

1. मांगलिक चौक :

मांगलिक चौक का निर्माण शुभ अवसरों पर किया जाता है, और यह तिथि, माह, पक्ष (शुक्ल, कृष्ण), नक्षत्र आदि की गणना के अनुसार निर्धारित होता है। विवाह, गृह प्रवेश, वर्षगांठ, छठी आदि मांगलिक अवसरों पर इसका विशेष महत्व होता है।

2. कल्याणकारी चौक :

यह चौक धार्मिक और आध्यात्मिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसका उपयोग देवी-देवताओं को आसन देने के लिए किया जाता है। विशेष धार्मिक अनुष्ठान, सत्यनारायण-कथा, श्रीमद्भागवत कथा, अखंड रामायण पाठ, और अन्य पूजन अवसरों पर देव मूर्तियों को विराजमान करने के लिए चौक बनाया जाता है।

3. संस्कार चौक :

हिंदू धर्म में सोलह संस्कारों का विशेष महत्व होता है, और इनमें से अधिकांश में चौक पूरने की परंपरा देखने को मिलती है। जन्म संस्कार, के समय घर की दीवारों पर शक्ति के देवताओं के प्रतीक अंकित किए जाते हैं, ताकि वे शिशु की रक्षा कर सकें। छठी संस्कार, जन्म के छठे दिन (छठी संस्कार) आटे से चौक बनाया जाता है, जिस पर दीपक जलाया जाता है। महिलाएं इस अवसर पर सोहर गीत गाती हैं। बरही संस्कार, जन्म के बारहवें दिन (बरही) घर के मुख्य द्वार तक आटे की पाँच रेखाएँ खींचकर मध्य में वृक्ष बनाया जाता है।

कोहबर : कोहबर चित्रों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। मान्यता है कि राजा जनक ने सीता विवाह के समय स्थानीय महिला कलाकारों से दीवारों पर कोहबर चित्र बनवाए थे।

चित्र (2) शीर्षक : कोहबर, कैनवास बोर्ड, एक्रेलिक रंग, 2022

भारतवर्ष में विवाह संस्कार से जुड़ी अनेक लोक परंपराएँ प्रचलित हैं, कोहबर' शब्द 'कोष्ठवर' से बना है, जिसका अर्थ है 'दूल्हे का कमरा'। विवाह के बाद वधू को सहेलियाँ गीत गाते हुए वर के साथ इसी कमरे में लाती हैं, जहाँ वर-वधू का प्रथम मिलन होता है। कोहबर घर की दीवारों पर गेरू से कुलदेवी 'मायर' और सप्त मातृकाओं के प्रतीक स्वरूप सात

गोबर के पिण्ड बनाए जाते हैं, जिन्हें सिन्दूर से टीका कर आजीवन सुहागन रहने की कामना की जाती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में यह परंपरा विशेष रूप से प्रचलित है। विवाह के समय नाउन, वारिन, कहारिन अथवा घर की बहुएँ दीवारों को गेरू से सजाती हैं। दीवार को पहले लीपकर चावल के घोल से पोता जाता है और बाँस की टहनी से बने ब्रश से चित्र रचे जाते हैं। दोहरी रेखाएँ वर-वधू के साथ-साथ रहने का प्रतीक मानी जाती हैं। चित्रण में हाथी (गणेश का प्रतीक), सूरज-चाँद, कमल-हंस, साँप-बिच्छु और पुष्प-पत्तियाँ बनाई जाती हैं। यह चित्रण शुभ और मंगलकामना का प्रतीक माना जाता है तथा विवाह के एक वर्ष तक इसे नहीं मिटाया जाता।

निष्कर्ष :

डॉ॰ रामशब्द सिंह की चित्रात्मक दृष्टि भारतीय लोक संस्कृति के मूलभूत तत्वों का सशक्त दृश्य-प्रस्तुतीकरण है। उन्होंने अपनी कला के माध्यम से न केवल लोक जीवन के सौंदर्य को उकेरा है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक गहराई, धार्मिक प्रतीकात्मकता और सामाजिक संदर्भों को भी जीवंत किया है। उनके चित्र ग्रामीण जीवन की सरलता, परंपराओं की निरंतरता और लोक संवेदना की आत्मा को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। उनकी कृतियों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि समाज की सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक पहचान की अभिव्यक्ति है। डॉ॰ सिंह ने अपनी चित्रात्मक शैली में पारंपरिक प्रतीकों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्परिभाषित कर उन्हें नई प्रासंगिकता प्रदान की है। अतः कहा जा सकता है कि डॉ॰ रामशब्द सिंह न केवल लोक चित्रकार हैं, बल्कि वे लोक संस्कृति के संवाहक और उसके दृश्य इतिहास के रचनाकार भी हैं। उनकी कला भारतीय लोक जीवन की जड़ों से जुड़कर समकालीन कला विमर्श को एक विशिष्ट आयाम प्रदान करते है। इस प्रकार उनकी चित्रात्मक दृष्टि वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए लोक संस्कृति को समझने और उसके संरक्षण के लिए प्रेरक सिद्ध होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. देवी राधिका , 2018, अयोध्या की लोक कला एक अध्ययन, वाणी प्रकाशन।
2. कला त्रैमासिक, 2020 राज्य ललित कला अकादमी।
3. चतुर्वेदी ममता, 2018, सौन्दर्यशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
4. कला त्रैमासिक, अंक 33, राज्य ललित कला अकादमी।
5. कला त्रैमासिक, अंक 7, राज्य ललित कला अकादमी।
6. विश्वरंग, 2021, अंक 3, आइसेक्ट पब्लिकेशन।
7. मिश्रा अवधेश, 2023, कला संवेदना, प्रलेक प्रकाशन।
8. डॉ॰ रामशब्द सिंह, 05/08/2025 दूरभाष संचार, लोक कला पर वार्तालाप।
9. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%95%E0%A4%95%E0%A4%B2%E0%A4%BE

भारतीय संस्कृति और मूल्यों पर आधुनिकता का प्रभाव : अशोक कुमार 'आस' के काव्य-संग्रहों के परिपेक्ष्य में

इंदु रानी
शोधार्थी
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,
फगवाड़ा, पंजाब

डॉ॰ विनोद कुमार
सह-प्राध्यापक
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,
फगवाड़ा, पंजाब

सारांश :

वर्तमान समय तकनीकी युग है। आज प्रत्येक क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन तकनीकी विकास हो रहा है जिससे आज ग्रामीण तथा शहरी हर क्षेत्र के लोगों के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन आधुनिकता तथा पश्चिमी प्रभाव के कारण आया है। वर्तमान समय में आधुनिकता भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को प्रभावित करने का अहम कारण है। भारत का प्रत्येक क्षेत्र (नगर, कास्बा, गाँव) पर आधुनिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। आधुनिकता के प्रभाव से भारतीय संस्कृति के मूल तत्व जैसेः सभ्य संवाद, शिष्टाचार, सहिष्णुता, दया, परोपकार की भावना एवं निःस्वार्थ सेवा आदि भाव खत्म होते जा रहे हैं। जिसके परिमाणस्वरूप समाज में परिवार तथा रिश्ते टूटते जा रहा है। आधुनिकता के प्रभाव से वर्तमान समय में परिवारों की संकल्पना खत्म हो रही है। लोग अपनी परंपराओं से दूर हो रहे है। प्राचीन समय से चली आ रही समृद्ध भारतीय संस्कृति पर आधुनिकता का प्रभाव इस कदर हावी हो रहा है कि लोगों की पारंपरिक जीवनशैली, व्यवहार, विचार, आपसी प्रेम तथा सौहार्द तथा अनेक पारंपरिक उसूलों में भी बदलाव आ गया है। भारतीय संस्कृति पर आधुनिकता का व्यापक प्रभाव पड़ा है, जिससे नैतिक मूल्य बह गए है। रिश्तों में मिठास का स्थान कटुता ने ले लिया है।

बीज शब्द :

आधुनिकता, पारंपरिक, वैज्ञानिकतावाद, औद्योगिक, औपचारिक।

भूमिका :

प्रकृति में परिवर्तन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक मानव जीवन में अनेक परिवर्तन आए है। जिससे मानव के जीवन के विभिन्न पक्ष - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आदि प्रभावित हुए है। वर्तमान समय में इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष संबंध आधुनिकता से है। डॉ॰ शम्भू नाथ लिखते हैं- ''आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है, जीवन को जानने, समझने और रचने की विकास शील दृष्टि है।''[1] आधुनिकता को व्याख्यायित करते हुए शिल्स ने आधुनिक व्यक्ति का सांसारिक रूप इस प्रकार चित्रित किया है- ''आधुनिक होने का अर्थ है 'एडवांस' होना, अर्थात धनी होना,

पारिवारिक व धार्मिक सत्ता के झमेलों से मुक्त होना। इसका अर्थ है- तार्किक व बुद्धिवादी होना। यदि कोई ऐसा बुद्धिवादी हो जाता है तो उसके लिए सांसारिकता, वैज्ञानिकतावाद एवं सुखवाद को छोड़कर और कोई परंपरा नहीं रह जाती।''[2] आधुनिकता तर्क और बुद्धि पर बल देती है जिससे मानव अपनी परम्परागत मान्यताओं तथा मूल्यों से दूर हो रहा है तथा मनुष्य एकल परिवार को महत्व दे रहे है। जिससे हमारे सांस्कृतिक परिवेश में बदलाव आया है। आज के दौर में मूल्यों की प्रतिष्ठा मूल्यहीनता में परिवर्तित होने लगी। मानव की इस मूल्यहीनता ने परिवार और समाज को बिखराव के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया है। आधुनिकता के इस दौर में हमारी सोच इतनी संकुचित हो गई है कि आज सामाजिक और पारिवारिक सामूहिकता विलुप्त हो गई है। मनुष्य आधुनिकता के इस दौर में तर्कसंगतता और प्रमाणिकता के चक्कर में अपनी परम्परा तथा मूल्यों से हटकर अपनी नई पहचान बनाने में लगा है। जिससे भारतीय संस्कृति में निहित मूल्यों तथा उसके सांस्कृतिक परिवेश को हाँनि पहुंची है। मनुष्य आधुनिक कहलाने के लिए अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर हो गया है। जिसके परिणामस्वरूप अपनी संस्कृति की गहराई और विविधता के प्रति समझ और प्रशंसा की कमी हुई है। आधुनिकता का प्रभाव दैनिक जीवन के कई पहलुओं में देखा जा सकता है, जिसमें खान-पान, पहनावा, व्यवहार, शिष्टाचार, जातीय परंपराएँ आदि शामिल हैं। अशोक कुमार 'आस' के काव्य संग्रह के माध्यम से हम भारतीय संस्कृति पर आधुनिकता के प्रभाव को देखने का प्रयास करेंगे।

आधुनिकता के प्रभाव ने सामाजिक ढ़ांचे को पूरी तरह बदल दिया है। कृषिक समाज का स्थान नगरीय औद्योगिक समाज ने ले लिया है। इस औद्योगिक क्रांति ने समाज के समुचे ढ़ांचे में परिवर्तन ला दिया है। जीविका की तालाश में लोग शहरों की ओर जाने लगे है। जिससे गाँव टूटने लगे और शहर अस्तित्व में आने लगे है। शहरों की तरफ लोगों के पलायन के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार भी टूटने लगे है। मानव व्यवहार औद्योगिक अनुशासन से नियंत्रित होने लगा है जिससे जीवन में यांत्रिक नियमितता आने लगी है। आधुनिकता के प्रभाव से मनुष्य का सामाजिक व्यवहार भी औपचारिक हो गया है।

कवि 'आस' अपने काव्य-संग्रह में बदलते समय में रिश्तों में खत्म होती संवेदना को माँ के माध्यम से दिखाने का प्रयास करते हैं। आज के समय में बच्चों द्वारा माँ-बाप पर अनेक अत्याचार किए जा रहे है। उन्हें घर से बाहर निकाल दिया जाता है जिससे मजबूरन उन्हें वृद्धाश्रम में शरण लेनी पडती है। माँ-बाप अपने बच्चों के लिए अनेक कष्ट सहन करते है। लेकिन आज मां-बाप बच्चों के कारण दर-दर भटकने को मजबूर है। आज आधुनिकता के प्रभाव से हमने अपने संस्कारों से, अपने कर्तव्यों से, अपनी जिम्मेदारियों से तथा अपनी संस्कृति से मुँह मोड़कर अपनों को सड़क पर ला दिया है।

''आज/हम कहते है/कलयुग है/शायद/अपनी नादानियों पर/पर्दा डालना चाहते हैं/क्योंकि/हम बदल गए/हमारी मानसिकताएं/हमारी संवेदनाएं/हमारा रिश्तों के प्रति दृष्टिकोण/यहां तक की हम स्वयं/अपने प्रति कितने कठोर हो गए/हमें स्वयं को नहीं मालूम।''[3]

भारतीय सनातन संस्कृति तथा भारतीय परिवार परम्परा की विशिष्टताओं पर भी आधुनिकता ने कठुराघात किया है। आज भौतिकता की अन्धी दौड़ में शामिल व्यक्ति अपने कर्तव्यों को ताक पर रख कर अपने जीवन मूल्यों से मुँह मोड़ बैठा है। जिससे रिश्तों में स्वार्थपरता तथा सामाजिक जड़ता का जन्म हो गया है और रिश्ते टूटने की कगार पर है। कवि 'आस' रिश्तों में खत्म हो रही संवेदना के विषय में लिखते है :

''आज के इंसान ने भी/रिश्तों की जड़ों को/छोड़ दिया है ढीला/और रिश्ते भी पड़ गए हैं पीले /मर गई है उनकी/संवेदनाओं की जड़ें/तभी तो लगता है/आज का इंसान/बगीचे में खड़े/ठूँठ बने/उस पेड़ जैसा।''[4]

आधुनिक युग मशीनी युग है। जिस प्रकार मशीन चलती है आज उसी तर्ज पर मनुष्य चल रहा है। संवेदनाओं को मानव ने दरकिनार कर पैसों को उसका स्थान दे दिया है। पैसे है तो रिश्तों के माइने है नहीं तो रिश्ते गए भाड़ में। आज के युग में रिश्तों का टूटना मनुष्य के लिए कोई अहमियत नहीं रखता क्योंकि आज मनुष्य के भीतर संवेदना खत्म हो गई है आज मानव केवल मशीन बन कर रह गया है। कवि 'आस' भी अपने काव्य-संग्रह में रिश्तों के टूटने के दर्द को इस प्रकार व्यान करते है।

''रिश्तों में जब संवेदना/मर जाती है ना/उस समय खून के रिश्ते भी/पानी बन जाते है/पापी बन जाते है जिन रिश्तों में संवेदना रहती है/वह रिश्ते चाहे/खून के न भी हों गरिमा उन्हीं रिश्तों की होती है ना।''[5]

परिवार समाज की सबसे छोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार से ही समाज तथा राष्ट्र का निर्माण होता है। भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ आज भी परिवारों की परिकल्पना है। परन्तु आज आधुनिकता की दौड़ ने भारत में भी परिवारों को टूटने की राह पर ला दिया है। हमारी संस्कृति में ऐसे परिवार भी हुए है जिसने अपनी मान-मर्यादा के लिए सब कुछ छोड़ दिया था। आज के युग में मनुष्य कुछ भी देना नहीं चाहता। इसी सोच ने हमारे बीच ऐसी दीवार खड़ी कर दी है जिसे आधुनिक युग का प्राणी चाह कर भी नहीं लांघ सकता। कवि 'आस' भी अपने काव्य संग्रह के माध्यम से परिवार में संवेदना खत्म होने से रिश्तों की जो स्थिति होती है उसका चित्रण बेबाकी से करते हुए लिखते है।

''अपने परिवार की कथा में भी जिद्द के कारण हमारा हंसता खेलता परिवार बिखर गया।''[6]

भारत की संस्कृति विश्व की गिनी-चुनी संस्कृतियों में से एक है जो वर्तमान में भी अपने अस्तित्व को बचाए हुए है और दूसरी संस्कृतियों को भी बचाने के मन्त्र देती रहती है। भारतीय संस्कृति में तो समस्त संसार एक परिवार है परन्तू आधुनिकता के प्रभाव ने मनुष्य को इतना स्वार्थी बना दिया है कि वह अपने ही परिवार को धोखा देने में भी नहीं हीचकता। माँ का पवित्र रिश्ता भी आज कलंकित है। 'आस' अपने काव्य-संग्रह के माध्यम से महाभारत के पात्रों का आधुनिक युग के संदर्भों में वर्णन करते हुए कहते है।

''जो माँ बालक को गोद में खिलाती है जो मामा बच्चों को खुशियाँ देता है समय-असमय इन रिश्तों ने मानवीयता को क्या कलंकित नहीं किया।''[7]

भारतीय संस्कृति ने हमेशा कर्म के महत्व पर बल देते हुए बिना फल की चिंता किए कर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। कर्म करना मनुष्य का कर्तव्य है फल उसके हाथ में नहीं है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जो मनुष्य कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य मिलता है। परन्तु आज आधुनिकता के प्रभाव से मनुष्य में कर्म के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण आ गया है आज का मनुष्य बिना कर्म किए सब कुछ पाना चाहता है। अशोक कुमार 'आस' भी अपने काव्य-संग्रह के माध्यम से कर्म को विशेष महत्व देते हुए लिखते है :

''तुम/कर्म करते चलों/फल की चिंता करना/तुम्हारा काम नहीं है तुम्हारा काम/मात्र/और/मात्र/कर्म करते चलना है कर्म करते चलना है।''[8]

भारतीय संस्कृति में प्रकृति तथा पेड़-पौधों की पूजा की जाती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार उनमें देवी-देवता निवास करते है। किन्तु आज वर्तमान समय में मनुष्य अपने लाभ के लिए प्रकृति को नुकसान पहुँचा रहा है। जंगलों को काट कर सड़के, पुल तथा बड़ी बड़ी इमारतों का निर्माण किया जा रहा है, जिससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है। कवि 'आस' भी अपने काव्य संग्रह के द्वारा प्रकृति के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते है।

"उस/ठूँठ हुए पेड़ का/किसने किया ऐसा हाल? /क्योंकि हमने / उसकी जड़ों में/छोड़ दिया पानी डालना/और बना दिया हमने/हरे- भरे एक पेड़ को ठूँठ।"[९]

निष्कर्ष :

अंत में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति विश्व की महान संस्कृतियों में एक है। भारतीय संस्कृति ने पूरे विश्व को अपनी तरफ आकर्षित किया है किन्तु आधुनिकता के प्रभाव में हम अपनी संस्कृति से दूर हो रहे है। हमें आधुनिकता को अपनाना चाहिए लेकिन अपनी संस्कृति, जीवन मूल्यों, मानवीय मूल्यों के साथ। आधुनिकता का साकारत्मक प्रभाव हमारे विचारों, हमारे आचरण में दिखना चाहिए न कि अपने मूल से अलग होकर जीवन जीने में। कवि 'आस' अपने काव्य-संग्रह की भूमिका में संस्कृति के विषय में लिखते है "हमारी संस्कृति तो जोड़ने वाली है? यह टूटने ओर बिखरने का भाव उसमें कहाँ से आ गया?"[१०] मानव को अपनी संस्कृति तथा आधुनिकता के बीच संतुलन बनाए रखना होगा तभी समाज विकास की तरफ बढ़ सकेगा तथा हमारी संस्कृति का संरक्षण संभव है।

संदर्भ सूची :

1. आलोचना अंक-81 पृ॰-17
2. उत्तर आधुनिकता : कुछ विचार, सं॰ देवशंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ॰-29
3. 'आस', अशोक कुमार, स्मृतियों का सैलाब (प्रथम संस्करण), दिल्ली : निर्मल पब्लिकेशन, 2017, पृ॰-23
4. 'आस, अशोक कुमार, तुमसे कुछ कहना है, कानपुरः विद्या प्रकाशन, 2018, पृ॰-27
5. 'आस', अशोक कुमार, स्मृतियों का सैलाब (प्रथम संस्करण), दिल्ली : निर्मल पब्लिकेशन, 2017, पृ॰-37
6. 'आस', अशोक कुमार, स्मृतियों का सैलाब (प्रथम संस्करण), दिल्ली : निर्मल पब्लिकेशन, 2017, पृ॰-74
7. 'आस', अशोक कुमार, कितने महाभारत, फगवाड़ाः बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन, 2021, पृ॰-44
8. 'आस', अशोक कुमार, तुमसे कुछ कहना है, कानपुरः विद्या प्रकाशन, 2018, पृ॰-134
9. 'आस', अशोक कुमार, तुमसे कुछ कहना है, कानपुरः विद्या प्रकाशन, 2018, पृ॰-11
10. 'आस', अशोक कुमार, रिश्ते एहसास के, फगवाड़ाः बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन, 2024, पृ॰-11

Kathakali as a Medium of Liberation in Anita Nair's Mistress

J. Safiya Banu
Part-time Research Scholar
Research Centre in English
V. H. N. S. N. College (Autonomous),
Virudhunagar, India

Dr. A. K. Muthusamy
Research Supervisor
Associate Professor of English-Rtd
Research Centre in English
V. H. N. S. N. College (Autonomous),
Virudhunagar, India

Abstract :

Anita Nair's Mistress discusses the concepts like identity, resilience, and liberation in an elaborate manner with use of a dance genre called Kathakali. This paper is divided into two parts. The first part explores how Kathakali functions not merely as a performance art but as a powerful tool for personal and artistic emancipation for an individual who remains estranged throughout his/her life. Second part of this paper deals with two main characters, Koman and Radha and how they undergo nine navarasas (the nine emotions) and how they bring out kathakali's deep-rooted connection to navarasas. Intricately, art is a medium of liberation from mental constraints when performed with an interest and satisfaction. Kathakali dance is a form of narration. In addition to storytelling, Kathakali is also a highly stylized form of dance from southern India. It is where bodily performance meets poetry and ritual. The stage is set bright with faces painted in thick, symbolic strokes. The dancer's each gesture with heavy costumes is a precise word in a silent mode. Kathakali performances generally take place in temple, courtyard and stage set market place. This paper argues that Kathakali, as portrayed in the novel, transcends its performative boundaries to emerge as a dynamic art by fostering liberation for the characters delineated in Mistress.

Keywords :

Kathakali, Art, Sufferings, Resilience, Liberation.

Introduction :

Anita Nair is a renowned writer who emphasizes the importance of social life, struggles, art, culture, and emancipation. In *Mistress*, Nair segregates the novel into nine parts., i.e *navarasas*- about the nine phases of human emotions. It has long been a literary tradition that an epic should portray *navarasas* in appropriate proportion. But Nair eloquently makes use of the genre to reveal navarasas in correct propor-

tion. The nine navarasas are *Shingaraam* (love), *Haasaym* (laughter), *Karunam* (sorrowful-compassion), *Raudram*(fury), *Veeram*(vagour), *Bhayanakaam*, (fearsome), *Bheebhatsam* (disgust), *Adbbhutam* (wonder), and *Shantam* (calm, serene) (Amrutam, 2022). The two main characters, Koman and Radha, undergo these nine emotions and they use Kathakali as a medium of liberation in their particular lives.

Origin of Kathakali :

As this paper concentres on the two categories, that is Kathakali and it's influence on liberation, it is necessary to trace out the origin of Kathakali in the first part. *Kathak* means story, *kali* means dance. As the name suggests, Kathakali is a beautiful combination of dance and drama :

> Here, Kathakali is an amalgamation of five forms of arts- primarily Sahityam meaning literature; Sangeetham meaning music; Chitram meaning painting; Natyam meaning acting; and Nrityam meaning dance. This art form is a form of regaining humanity. Kathakali uses myths from *Ramayana* and *Mahabharata* for narration (Pandya, 2017, p. 181).

Symbolic Roles in Kathakali :

Kathak emphasises intricate and forceful dancing as well as the production of beats (taals) that are timed to the rhythm of a tabla bol or pakhawaj. This dance is said to have originated with King Jamerin, who is said to have received instructions from Lord Krishna in a dream to prepare a dance theatre. This led to the performance of Lord Krishna's dance (known as "Krishna Aattam") or his actions. When this dance became popular, another neighboring king, Kottakara, also started to have a dance about Lord Rama (Raman Aattam) in an artistic way. Hence, a tradition was formed to start the leelas outside the temple. This dance is now an integral part of Indian culture and society. Instead of gestures and symbols, this dance uses a descriptive style. Traditionally, this dance can be performed in any open space on a moonlit night. Before the performance, the dance is announced in villages with drums, which is called announcement drumming ("Kelikottu"). Kelikottu means introductory performance that is played before a Kathakali performance. To create curiosity for the main dance, before the performance, two boys enter the stage with a curtain in hand, which is called Preliminary dance ('thodayam' dance). It is predominantly created by (nritta), meaning pure dance, movements without any narrative or emotion (bhava). This sequence is meant to create anticipation and set a ritualistic tone before the main story begins. This is followed by ('purappadu'), formal entry of the main character, wherein with conch (shankha) and (mridangam) a type of classical drum is used. The hero enters with his co-actors. With this, the story narration for the dance begins. Thironnattam, is a visually captivating segment of Kathakali that showcases the tāṇḍava (vigorous or masculine dance) of excited or heroic characters. Similarly, one part is devoted to women, which is called (kummi) folk-based, circular type of dance, where female characters in group dance in the circular motion.

Performance Place (Arangam) :

The "King's own company of actors" presented the plays not only in temples and palaces but also in villages and courtyards. The new art form, known as "Lord Rama

Dance," (ramanattam) quickly gained popularity throughout the Malayalam-speaking region, as it was then known, and people started competing with one another to create the best Kathakali troupes. This competition helped the art form develop quickly. Nair purposely builds her novel on the structure of a Kathakali performance in order to make readers understand the necessity of different emotions to deal with life. Dharan (2021) discusses, Kathak as a narrative form that fuses movement. Even the word 'Kathak' is derived from the Vedic Sanskrit word 'Katha', which means 'story'. The word 'Kathakar' means story teller or narrator. It is like an oral tradition, where people pass on ancient heroic mythology to younger generations orally. Kathak is based primarily on acting. This dance gives a lot of weightages to costume, make-up and musical instruments. It attempts to perform different leelas in the form of dance. It only gave birth to Kathakali dance.

Nair has fused the form called Kathakali with the predominant themes like, human sufferings, resilience and liberation in order to reveal the aspects of life. Mainly, the two characters, Koman and Radha, are in the drama of life, where art is passionately involved in personal as well as in social life (Pandya, P. 2017, June. p. 186). The novel moves from *Shringaram* to *Shantam* - love desire to peace, and each time one can get an understanding of what is going to happen in the novel. Nair gives a deeper meaning to art and life through her words.

Koman and Radha's Liberation through Kathakali :

Art serves as a medium of emancipation for Koman and Radha. Koman is a world famous Kathakali artist and he is the recipient of the prestigious Sahitya Akademi award for his excellent performance of kathakali art form. He has dedicated his entire life to this art and remains unmarried. To Koman, Kathakali has a meaning and purpose for his existence. He admits:

> "I am an ordinary man made extraordinary by my art. In this story of my life, perhaps you will discover, as I will in the telling, how my art ruled my thoughts and life, how it helped me escape the confines of my secret fears. In the end, that is what counts. That art imbues meaning to one's existence" (Nair, 2005, p. 262).

Koman's father forces him to get married and even advises him to be like a man, not dance like a woman. His brothers motivate him to enjoy life. His past sweetheart, Angela, asks him to stay with her in London. But he never accepts anything. He wants to dance only because he is a devoted Kathakali Artist (Veshakaaran). More than that he is attached to Kathakali. He feels Kathakali as his roots for his happiness and Liberation. Though he is not involved in any romantic relationships, he considers his art as his medium of romantic life and as his mistress, He admits:

> "The man and the artist. I have never thought of myself as split into dual parts. Is it possible? … you can tell me if the man and the artist are one or dual creatures. You can tell me who rules, the man or the mistress" (Nair, 2005, p. 35)

Mistress here symbolizes Kathakali and it shows Koman's attachment towards kathakali which is his passion and profe-

ssion. More than his external masks during performances, he is truly liberating himself through this dance form called kathakali.

Radha is another impeccable character in the novel. She is a niece of Koman. Her sufferings and struggles under a patriarchal husband form an important part of the novel, Though her husband Shyam knows that he is derogating Radha from the first day his marriage, he doesn't understand that his behaviour has made her go behind Chris, a foreigner and a writer about Kathakali. When Radha and Chris become very close, Shyam becomes furious. He thinks :

> "I smell his fragrance on her. I want to coil her hair around my fist and hold her down. I want to trap her neck between my fingers and squeeze the air out of her treacherous body. I want to see her flail her arms and struggle for breath. I want her to see how deeply she has hurt me and I want her to suffer for my suffering" (Nair, 2005, p. 350)

Here, it is clear that Shyam is affected by the affair between Radha and Chris because of Radha's liking for Chris. But the real reason behind her abandonment of her husband, Shyam, is his toxic behaviour. Debotri Dhar observes: "And then there is Chris, who to Radha seems at first to be all that her husband is not: modern, liberated, intellectual, sensitive and accepting of a woman's equality and opinion" (6). Radha feels that "their worlds nestled into each other. We belonged, he and I" (215). Here, Radha understands that Chris is a right partner for her. But as their relationship progresses, she realizes that Chris is dogmatic in his own way, and that his "Modernity" is completely circumscribed by his own location and identity (Raghuvamsi & Narayana 2015). Chris is not ready to leave his foreign roots. So, their relationship doesn't continue. Finally, she becomes so frustrated and leaves both Shyam and Chris. But, in very difficult times, Radha comes to Kathakali school and begins to teach kathakali dance to students. She helps Koman Aashan, the Kathakali artist, to teach kathakali dance to his students for a performance. Here, it is evident Radha's only liberation is dance and art. They give pattern and meaning to her life. So, she uses Kathakali to relieve herself of from her painful memories of her past life. So Kathakali becomes a liberation for Radha. It gives her emotional and cultural transformation as dance, especially Indian classical dance, has a quiet yet powerful way of liberating women (Killare 2025).

Conclusion :

In *Mistress*, Nair blends the classical dance form called Kathakali with the characters' inner conflict and turmoil to act as a medium of liberation. Kathakali is used as a medium of liberation to relieve from the suppressed feelings. As the dance performance is described to be a feast to the eyes, it is also used as a vehicle of change for the psychological liberation of the characters. In this manner, it can be concluded that the classical dance form is used a means of liberation from human sufferings. This is how Nair sublimates performance into art and as a movement of liberation.

References :

1. Amrutam. (2022, August 16). *Navarasa – 9 states of emotional empowerment.* https://amrutam.co.in/blogs/daily-reads/navarasa-

9-states-or-types-of-emotional-empowerment

2. Dhar, D. (2012). Radha's revenge: Feminist agency, postcoloniality and the politics of desire in Anita Nair's Mistress. *Postcolonial Text*, 7(4), 1–18. https://postcolonial.org/index.php/pct/article/view/1594/1533

3. Dharan, N. (2021, July). Kathak: The art of storytelling through dance. *International Journal of Research (IJR), 8(7)*, 86–91. Pracheen Kala Kendra.

4. Khillare, T. M. (2025, April 29). Liberation, silent battles and dreams: The journey of women learning Indian classical dance later in life. *Deccan Herald*. https://www.deccanherald.com/features/art-and-culture/liberation-silent-battles-and-dreams-the-journey-of-women-learning-indian-classical-dance-later-in-life-3514922

5. Nair, A. (2005). *Mistress*. Penguin Books India.

6. Pandya, P. (2017, June). Glimpses of Kathakali in Anita Nair's *Mistress: A study. The Criterion: An International Journal in English, 8(3)*. https://www.the-criterion.com/V8/n3/IN23.pdf

7. Raghuvamsi, D. V., & Narayana, T. (2015, December). Complexities in art and in life as portrayed in Anita Nair's *Mistress. IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS), 20(12),* 27–29. https://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol20-issue12/Version-4/C0201242729.pdf

मल्ल-युद्ध : खेल, संस्कृति और चित्रकला में प्रतिबिंब

जयदीप हुड्डा
शोधार्थी
दृश्य कला विभाग,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ॰ अंजली दूहन
सह-प्राध्यापक
दृश्य कला विभाग,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सारांश :

मानव सभ्यता के साथ विकसित होने वाला सबसे प्राचीन खेल है, जिसका आधुनिक रूप कुश्ती है। इसके मूल की पहचान आर्यवर्त (प्राचीन भारत) में होती है। प्राचीन काल में इसे दो भागों मल्ल-क्रीड़ा (व्यायामात्मक) और मल्ल-युद्ध (युद्धात्मक) में बाँटा गया था। मल्ल-युद्ध के प्रमाण रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं में मिलते हैं, जहाँ रावण-बाली तथा कृष्ण-कंस जैसे युद्धों का वर्णन है। इसका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन और शक्ति प्रदर्शन था। मेलों और दंगलों में इसकी प्रतियोगिताएँ होती थीं तथा श्रेष्ठ मल्लों को राजा शाही संरक्षण प्रदान करते थे। कला और साहित्य में भी इसका व्यापक उल्लेख है। विशेषकर मुगल, पहाड़ी और राजस्थानी चित्रकला में मल्लों के चित्र मिलते हैं, जिनमें स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति मल्ल-युद्ध करते दर्शाया गया है। इस प्रकार मल्ल-युद्ध केवल एक खेल नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण अंग है।

बीज शब्द :

मल्ल-युद्ध, मल्ल, कुश्ती, पहलवान, चित्रकला।

प्रमुख ग्रंथ और उनका महत्व :

1. **मानसोल्लास :**
   - 12वीं शताब्दी में चालुक्य राजा सोमेश्वर तृतीय द्वारा रचित।
   - इसके मल्ल विनोद नामक अध्याय में पहलवानों को आकार और शक्ति के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।
   - इसमें बताया गया है कि पहलवानों को किस प्रकार व्यायाम करना चाहिए और किस तरह का भोजन लेना चाहिए।
   - वर्ष के विभिन्न दिनों में भिन्न-भिन्न आहार व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है।
2. **मल्लपुराण :**
   - संभवतः 13वीं शताब्दी का ग्रंथ, जो ज्येष्ठि मल्ल नामक ब्राह्मण जाति से संबंधित कुल पुराण है।
   - इसमें मल्लों का वर्गीकरण शारीरिक विशेषताओं के आधार पर किया गया है।
   - कुश्ती के लिए 16 प्रकार के अभ्यासों का विस्तार से वर्णन मिलता है।

भारतीय मल्ल-युद्ध शब्द का सीधा अनुवाद हिंदी वाक्यांश में भारतीय कुश्ती किया जा सकता है। अगर वर्तमान समय की बात की जाए तो समस्त भारत में ही मल्ल-युद्ध शब्द का प्रयोग बहुत कम किया जाता है और अधिकांश पहलवान व उनके प्रशिक्षक इसे एक प्राचीन पदनाम मानते हैं। उनका मानना है कि मल्ल-युद्ध शब्द प्राचीन समय में प्रयोग किया जाता था। इसकी शास्त्रीय व्युत्पत्ति के कारण इस शब्द का मुख्य रूप से प्रयोग संस्कृत शिक्षित लोगों द्वारा ही किया जाता है। मल्ल-युद्ध का मूल शब्द मल्ल जिसका अर्थ है पहलवान। इसी प्रकार कुछ अन्य शब्द जो हमारे सामने आते रहेंगे।

1. मल्ल कला जिसका अनुवाद है कुश्ती की कला
2. मल्ल विद्या जिसका अनुवाद है कुश्ती का ज्ञान

मल्ल-युद्ध : एक संस्कृत शब्द है, जिसका सबसे पहला लिखित प्रमाण रामायण में मिलता है। इसमें रावण और बाली के बीच मल्ल-युद्ध की प्रतियोगिता का उल्लेख किया गया है। कहा जा सकता है कि मल्ल-युद्ध का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। आधुनिक काल में यही खेल 'कुश्ती' के नाम से जाना जाता है, जो अब गद्दे पर खेली जाती है। मल्ल-युद्ध को खेलों का जनक कहा जाता है, क्योंकि यह सबसे प्राचीन खेल है और इसके कई प्रमाण उपलब्ध हैं। कुश्ती व पहलवानी दोनों ही शब्दों का प्रयोग मल्ल-युद्ध की तुलना में अधिक किया जाता है।

वर्तमान समय में 'मल्ल-युद्ध' शब्द का प्रयोग बहुत कम हो गया है। अधिकतर पहलवान और उनके गुरु इसे एक प्राचीन पदनाम मानते हैं। यह शब्द संस्कृत से लिया गया है, इसलिए इसका उपयोग मुख्य रूप से वे लोग करते हैं जो संस्कृत में शिक्षित हैं।

अनेक यूरोपीय विद्वानों का मत है कि मल्ल-युद्ध की उत्पत्ति आर्यवर्त (भारत का प्राचीन नाम) में हुई थी। वहीं, कुछ विदेशी इतिहासकारों के अनुसार लगभग 3400 ईसा पूर्व मिस्र की सभ्यता में भी कुश्ती के प्रमाण मिलते हैं। इसका पता बेनी हसन की गुफाओं की दीवारों पर बने चित्रों और पत्थर की मूर्तियों से चलता है।

मल्ल-युद्ध और मल्ल-क्रीड़ा :

प्राचीन काल में इसे दो भागों में विभाजित किया गया था :

1. **मल्ल-क्रीड़ा :** यह खेल का वह स्वरूप था जिसमें प्रतिद्वंद्वी को चोटिल नहीं किया जाता था। यह व्यायाम और मांसपेशियों की शक्ति बढ़ाने का माध्यम था।
2. **मल्ल-युद्ध :** यह युद्धात्मक स्वरूप था जिसमें चोट पहुँचाना और पराजित करना शामिल था। इसे भी दो भागों में बाँटा गया था :
    - **धरनीपट्ट :** यह आधुनिक कुश्ती जैसा ही था, जिसमें हार-जीत का निर्णय प्रतिद्वंद्वी को पीठ के बल लिटाने से होता था।
    - **असुरा :** इसमें प्रतिद्वंद्वी को हड्डी तोड़कर या चोट पहुँचाकर हराया जाता था, किंतु उसकी हत्या नहीं की जाती थी।

प्राचीन काल में मल्ल-युद्ध का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। मेलों और त्योहारों में इसका आयोजन किया जाता था, जहाँ विजेता को पुरस्कार मिलता था। मानसोल्लास ग्रंथ से यह जानकारी मिलती है कि अच्छे मल्लों को राजा वेतन देते थे और उन्हें शाही निगरानी में रखा जाता था। त्योहारों में वे दूसरे राज्यों के पहलवानों से प्रतियोगिता भी करते थे।

मल्ल-युद्ध के चार प्रमुख प्रकार :

बाद में मल्ल-युद्ध को चार प्रकारों में बाँटा गया, जिनके नाम पौराणिक योद्धाओं और हिंदू देवताओं पर रखे गए थे :

1. **हनुमंती :** हनुमान की तरह बल और तकनीक पर आधारित। इसमें विरोधी को पैर पकड़कर गिराना और फेंकना शामिल था।
2. **जाम्बुवंती :** इसमें विरोधी को पकड़कर आत्म-समर्पण करने पर मजबूर किया जाता था। जोड़ों पर दबाव डालने की तकनीकें इसमें प्रमुख थीं।
3. **जरासंधी :** इसमें प्रतिद्वंद्वी के अंगों और जोड़ों को तोड़ने की पकड़ें शामिल थीं।
4. **भीमसेनी :** यह पूरी तरह बल और शारीरिक शक्ति पर आधारित था।

कला में मल्ल और मल्ल-युद्ध :

भारतीय कला में मल्ल और मल्ल-युद्ध का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। लगभग हर काल और शैली में मल्लों की मूर्तियाँ व चित्र बनाए गए हैं। सबसे प्राचीन ज्ञात मूर्ति महात्मा बुद्ध की है, जिसमें उन्हें मल्ल-युद्ध करते हुए दर्शाया गया है। इस गांधार शैली की मूर्ति (2री–3री शताब्दी ईस्वी) में दोनों मल्ल एक-दूसरे के पैरों में पैर उलझाकर गिराने का प्रयास कर रहे हैंऔर उनके चारों ओर दर्शकों की भीड़ दिखाई गई है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भी मल्लक्रीड़ा का महत्व था। अंगुत्तरनिकाय ग्रंथ में उल्लेख मिलता है कि उस समय भारत 16 महाजनपदों में विभाजित था, जिनमें से एक 'मल्ल' कहलाता था। हरिवंश पुराण में भी मल्ल-युद्ध के खेल का उल्लेख मिलता है।

मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में मल्ल-युद्ध का बार-बार चित्रण हुआ है। मुगल शैली के एक प्रसिद्ध चित्र में बादशाह बाबर को मल्ल-युद्ध देखते हुए दिखाया गया है। यह चित्र बाबर नामा से प्राप्त होता है और वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संरक्षित है। इसमें दो मल्ल लंगोट पहनकर अखाड़े में संघर्ष करते दिखाई गए हैं, चारों ओर दर्शकों की भीड़ है और बाबर अपने सिंहासन पर बैठकर यह दृश्य देख रहे हैं।

सबसे अधिक मल्ल-युद्ध संबंधी चित्र राजस्थानी शैली में मिलते हैं। विशेषकर देशक रागिनी की पांडुलिपियों में मल्लों को व्यायाम और मल्ल-युद्ध करते हुए दर्शाया गया है। इन चित्रों की विशेषता यह है कि इनमें स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वस्त्र पहनकर मल्ल-युद्ध करते हुए दिखाया गया है।

पौराणिक कथाओं में मल्ल-युद्ध :

मल्ल-युद्ध की जड़ें भारत में अत्यंत प्राचीन हैं। इसका उल्लेख *रामायण* और *महाभारत* जैसे महाकाव्यों में स्पष्ट रूप से मिलता है। 'मल्ल-युद्ध' शब्द का साहित्यिक संदर्भ सर्वप्रथम *रामायण* में दिखाई देता है, जहाँ किष्किंधा के राजा वाली और लंका के राजा रावण के बीच हुए मल्ल-युद्ध का वर्णन मिलता है। इसी ग्रंथ में हनुमान को सर्वश्रेष्ठ मल्ल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे रामभक्ति में लीन, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले तथा बल-पराक्रम में अद्वितीय माने गए हैं। आज भी हनुमान को मल्ल-युद्ध का देवता माना जाता है। रामायण में हनुमान के साथ-साथ अंगद, बाली, सुग्रीव, जामवन्त और विभीषण जैसे योद्धाओं को महान पहलवान के रूप में चित्रित किया गया है।

भारतीय पौराणिक कथाओं में कृष्ण और बलराम को भी उत्कृष्ट मल्ल योद्धा बताया गया है। दोनों ने मथुरा के राजा कंस और उसके मल्लों को परास्त किया। अंततः कृष्ण और कंस के बीच हुए मल्ल-युद्ध में कृष्ण ने विजय प्राप्त कर कंस का वध किया।

महाभारत में भी मल्ल-युद्ध के अनेक प्रसंग मिलते है। इनमें प्रमुख युद्ध भीम और जरासंध के बीच हुआ, जिसमें भीम ने उसे परास्त कर दो टुकड़ों में विभाजित कर दिया। वनवास के दौरान भीम और हिडिंब राक्षस का युद्ध भी प्रसिद्ध है। विराट पर्व के तेरहवें अध्याय में उल्लेख है कि विराट नगर में आयोजित एक कुश्ती प्रतियोगिता में बलशाली पहलवान जीमूत से मुकाबले के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

तब मत्स्य नरेश ने भीमसेन को अखाड़े में उतारा और भीम ने जीमूत को पराजित कर अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया।

महाभारत के प्रमुख मल्ल भीम, दुर्योधन, कर्ण, जरासंध और बलराम माने जाते थे। *महाभारत* के युद्ध में दोनों सेनाओं में असंख्य मल्लयोद्धा शामिल थे, जिससे उस समय समाज में मल्ल-युद्ध की महत्ता का आभास होता है।

कला और चित्रकला में भी इन पौराणिक घटनाओं को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है। चित्रकारों ने मल्लों को बलिष्ठ, विशालकाय शरीर, चौड़े कंधे और लंगोट धारण किए हुए दर्शाया है। विशेषकर राजस्थानी और पहाड़ी शैली की पांडुलिपियों में *रामायण* और *महाभारत* के मल्ल-योद्धाओं के चित्र बहुतायत में मिलते हैं। समय के साथ रंग और रेखाओं की शैली बदली, किंतु मल्ल-युद्ध का चित्रण निरंतर कला का प्रिय विषय बना रहा।

मल्ल-युद्ध एक मनोरंजक गतिविधि :

भारतवर्ष के विभिन्न राजवंशों के शासन काल में मल्ल-युद्ध का गहरा महत्व रहा है। राजा न केवल मल्ल-युद्ध को मनोरंजन के लिए देखते थे, बल्कि अपनी शारीरिक क्षमता बढ़ाने हेतु स्वयं भी इसमें भाग लेते थे। मध्यकाल में राजा सोमेश्वर के समय तो स्थिति यह थी कि मल्लों को केवल राजा ही आदेश दे सकता था।

भारतवर्ष पर हुए विदेशी आक्रमणों ने देश के प्रत्येक क्षेत्र को गहरी क्षति पहुँचाई, जिसका सीधा असर कुश्ती (मल्ल-युद्ध)पर भी पड़ा। कई राजवंशों ने मल्ल-विद्या की उपेक्षा की, जिसके कारण यह कला धीरे-धीरे कमजोर होती चली गई। सेना में भले ही कुश्ती के नियम लागू रहे, लेकिन उनका पालन शिथिल पड़ गया। राज्य की सीमाओं पर स्थित अनेक अखाड़े बंद हो गए, जिससे यह कला अपने पुराने वैभव से वंचित हो गई। विदेशी आक्रमणों के दौरान जब मंदिर ध्वस्त किए गए, तो उनकी चार दिवारी में स्थित अखाड़े भी उजड़ गए। इस प्रकार मल्ल-विद्या के कई केंद्र नष्ट हो गए।

13वीं से 15वीं शताब्दी के बीच विजयनगर साम्राज्य में खेलों का विशेष महत्व था। उस समय बड़ी संख्या में युवा कुश्ती, शतरंज और पासा खेलने में संलग्न रहते थे। विजयनगर कालीन चित्रकला में पुरुष पहलवानों के साथ-साथ महिला पहलवानों को भी दर्शाया गया है। विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राजा कृष्णदेवराय के काल में लगभग 12,000 महिलाएँ मल्ल-युद्ध का अभ्यास करती थीं और उन्हें रानी की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया गया था।

राणा उदय सिंह (1560 ई॰ के आस-पास) कुश्ती प्रेमी थे और उन्होंने अपने राज्य के पहलवानों को संरक्षण दिया। उनके उत्तराधिकारी महाराणा प्रताप और अमर सिंह के शासनकाल में भी यही परंपरा बनी रही।

इतिहास के अभिलेख बताते हैं कि 1598 ई॰ में बाबर स्वयं एक कुश्ती मुकाबला देख रहा था, जिसका चित्र बाबरनामा में मिलता है। इसके अतिरिक्त, फिरदौसी द्वारा लिखित महाकाव्य शाहनामा में भी कुश्ती का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय यह खेल न केवल भारत में बल्कि ईरान और मध्य एशिया में भी अत्यंत लोकप्रिय था।

भारतवर्ष के विभिन्न राजवंशों के शासनकाल में मल्ल-युद्ध का गहरा महत्व रहा है। राजा न केवल मल्ल-युद्ध को मनोरंजन के लिए देखते थे, बल्कि अपनी शारीरिक क्षमता बढ़ाने हेतु स्वयं भी इसमें भाग लेते थे। मध्यकाल में राजा सोमेश्वर के समय तो स्थिति यह थी कि मल्लों को केवल राजा ही आदेश दे सकता था।

राजस्थान में भी राजाओं को दंगल आयोजित करने का शौक था। यहाँ के शासक तलवारबाजी, तीरंदाजी, भाला फेंकने और मलखंभ जैसे व्यायामों

में भी निपुण होते थे। राजस्थानी शैली की चित्रकला में मेलों में आयोजित दंगलों और मल्ल-युद्ध के अनेक दृश्य मिलते हैं, जो उस समय इस खेल की लोकप्रियता और मनोरंजनात्मक स्वरूप को प्रमाणित करते हैं।

प्राचीन मल्ल-युद्ध कला धीरे-धीरे उत्तर भारत के क्षेत्रों में लुप्त हो गई और उसकी जगह फारसी परंपराओं से प्रभावित 'मुगल कुश्ती' ने ले ली। बाबर अपने समय का प्रसिद्ध मल्ला माना जाता है। बाबरनामा के एक चित्र में बाबर को मल्ल-युद्ध का आनंद लेते हुए दर्शाया गया है, जहाँ दो मल्ला अखाड़े में संघर्ष कर रहे हैं और चारों ओर दर्शकों की भीड़ है। प्रसिद्ध कवि फिरदौसी के महाकाव्य शाहनामा में भी कुश्ती का उल्लेख मिलता है।वही प्रतिष्ठित मुगल लघु-कला जिसमें सम्राट शाहजहाँ एक महल की खिड़की से एक कुश्ती (मल्ल-युद्ध) मुकाबले को देखते हुए चित्रित हैं। इस कलाकृति को मीर कलां खाऩ द्वारा लगभग 1750 ई॰ में बनाया गया माना जाता है, और इसके संभावित स्रोत दिल्ली या लखनऊ के मुगल दरबार से जुड़े हैं।

भारत के इतिहास में पहलवान केवल अखाड़ों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे युद्धभूमि और जनआंदोलनों में भी अग्रणी भूमिका निभाते रहे। सर्वखाप पंचायतों के झंडे तले लड़ने वाले पहलवानों ने तैमूर लंग का मुकाबला किया था।

1669 ई॰ में वीर गोकुला के नेतृत्व में औरंगज़ेब की किसान विरोधी नीतियों के खिलाफ हुए विद्रोह में किसानों और पहलवानों ने मिलकर बढ़-चढ़कर भाग लिया। यह प्रमाण है कि पहलवान केवल शारीरिक शक्ति के प्रतीक नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों का भी आधार रहे। भरतपुर रियासत की सेनाएँ युद्ध में जाते समय सबसे आगे बजरंगबली हनुमान का चित्र अंकित झंडा लेकर चलती थीं, जो शक्ति और कुश्ती के देवता माने जाते हैं। 17वीं शताब्दी में भरतपुर के महाराजा सूरजमल और उनके पुत्र जवाहर सिंह स्वयं पहलवानी करते थे। उन्होंने पहलवानों को संरक्षण दिया और राजसी अखाड़ों में मल्लों के साथ स्वयं जोर-आजमाइश भी की। भरतपुर का प्रसिद्ध लोहागढ़ केसरी दंगल महाराजा सूरजमल के समय (लगभग 1755 ई॰) से लगातार आयोजित होता आ रहा है।

सर्वखाप पंचायतों के इतिहास से यह भी स्पष्ट होता है कि वीर गोकुलदेव केवल एक जांबाज़ योद्धा ही नहीं, बल्कि एक तगड़े पहलवान भी थे। उनके साथ रहने वाले अनेक पहलवान सैनिकों को युद्धकला के साथ-साथ मल्लविद्या का भी प्रशिक्षण देते थे। भारतीय मल्लों ने स्वतंत्रता संग्राम और किसान आंदोलनों में भी सक्रिय योगदान दिया। 1857 के विद्रोह के बाद हुए किसान आंदोलनों में पहलवानों की भूमिका महत्वपूर्ण रही, जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

लोक संस्कृति में भी पहलवानों की कथाएँ जीवित रहीं। गाँवों के बुजुर्गों द्वारा सुनाई गई कहानियों और जोगियों, संन्यासियों और कलाकारों द्वारा गाए गए गीतों और लोकधुनों में पहलवानों की वीरता का वर्णन मिलता है।

कुश्ती का परिधान भी भारत की अनूठी परंपरा का हिस्सा रहा है। यहाँ पहलवान लंगोट और जांघिया पहनकर ही कुश्ती लड़ते थे। यह प्रथा न केवल सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त थी, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सुरक्षित मानी गई। इसके विपरीत, कुछ देशों में नग्न कुश्ती के प्रमाण मिलते हैं, जो दोनों दृष्टिकोणों से अनुचित समझे जाते हैं।

इतिहास साक्षी है कि युद्धकाल हो या सामूहिक खेती का युग-हर समय पहलवानों की समाज और राष्ट्र में विशेष भूमिका रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. *Gangadhara* ,T. "A Study of the History and Development in wrestling from Vijayanagar

Period to Modern Period" (Ph.D. Thesis, Department of Physical Education, Swami Vivekananad University, Sagar, 2019)

2. Kumar Suresh "Construction And Standardization Of Free Style Wrestling Skill Test" (Ph.D. Thesis, Department of Physical Education, Lovely Professional University, Phagwara, 2022)
3. Mahabharata Retold by Krishna Dharmam, Published by Om Book International (New delhi : Om Book International, New delhi, 2009)
4. Mallapurana by anonymous, edited by Bhogilal Jayachandbhai Sandesara and Ramanlal nagarji Mehta (Baroda : Oriental Institute Baroda 1964)
5. Navin "Wrestling And Its Promotion In India : A Case Study Of Arjuna Awardee, Ashok Kumar" (Ph.D. Thesis, Department of Physical Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak, 2013)
6. Somes'vara's Manasollasa : A Cultural study Written by Shiva Shekhar mishra. Varanasi : Chowkhamba Vidyabhawan Varanasi, 1996366
7. दलाल, तेजपाल, भारत में कुश्ती कला का उद्भव एवं विकास, हरियाणा : आर्यन खेल प्रकाशन, 2007

Trauma and Behavioural Responses to Gender-Based Violence in Colleen Hoover's It Ends With Us : An Analysis

Joelin Sherril J.
Ph.D. Research Scholar (Full Time),
PG and Research Department of English,
Thiagarajar College, Madurai,
Affiliated to Madurai Kamaraj University

Dr. N. Kalaivani
Research Supervisor, Assistant Professor,
PG and Research Department of English,
Thiagarajar College, Madurai,
Affiliated to Madurai Kamaraj University

Abstract :

Trauma according to Cathy Caruth "is understood as a wound inflicted not upon the body but upon the mind" (Unclaimed Experience: Trauma, Narrative and History, 1996). Trauma causes a significant wound in the mind and forces individuals to adopt different defense mechanisms to deal with their anxiety. The novel It Ends With Us is written by Colleen Hoover, a popular contemporary author. It tells the story of two women who experience physical abuse and how each woman responds to her trauma. Compared to men, women often remain in abusive relationships due to children, societal pressure, and, most importantly, Stockholm syndrome. The women become so accustomed to the chaotic and abusive environment that they resist leaving the familiar chaos. This paper examines the trauma that women endure in abusive households.

Keywords :
Trauma, anxiety, gender, violence, domestic abuse and women.

Trauma is a disturbing experience that affects the mind. It brings feelings of uncertainty and anxiety to those who experience it. According to Michelle Balev in his work *Trauma Studies*, "Trauma studies explore the impact of trauma in literature and society by analyzing its psychological, rhetorical, and cultural significance" (Balev, 52). Trauma studies provide critical insight into the ways in which adverse experiences shape the behavioural and psychological characteristics of victims.

Literature, often regarded as a mirror of life, reflects both its beauty and its harsh realities. It examines the darker aspects of existence through its depictions of trauma, revealing that life is not always joyous or idyllic; it can also be devastating. Fiction, in particular, offers a space to explore such devastation with emotional and psychological depth. Colleen Hoover's *It Ends With Us*, a best-selling contemporary

novel, is notable for its unflinching and realistic portrayal of domestic abuse. Trauma may arise from multiple circumstances, including bereavement, domestic violence, or injury caused by violent accidents. Such experiences can have profound effects, often compelling victims to adopt defence mechanisms as a means of coping. In doing so, trauma alters behaviour, fosters psychological uncertainty, and contributes to maladaptive patterns of thought and action.

The novel centres on Lily Bloom, whose life illustrates the cyclical nature of abuse. In her childhood, Lily witnessed the repeated abuse of her mother at the hands of her father. Determined never to enter such a relationship herself, she nevertheless found herself in an abusive marriage. Her husband, Ryle, subjected her to multiple instances of physical violence, each followed by apologies and requests for forgiveness. Believing in his contrition, Lily forgave him on several occasions, only to be hurt again. The pattern mirrored that of her mother's life. Lily's mother endured years of domestic abuse without finding the courage to leave, restrained by fears of social judgement, uncertainty about her future, and concern for her child's welfare.

Lily's father inflicted severe harm while deliberately avoiding visible injuries to her face, ensuring the abuse remained hidden. In a disturbing repetition of this behaviour, Ryle struck Lily only in places where the evidence could not easily be seen. Through its candid depiction of these experiences, It Ends With Us offers a compelling exploration of how trauma operates within domestic spaces, perpetuating cycles of abuse and shaping the emotional, behavioural, and psychological realities of its victims.

> "My father was abusive. […] Sometimes he would buy me stuff because he knew I hated it when they fought. When I was a kid, I found myself looking forward to the nights they would fight. Because I knew if he hit her, the two weeks that followed would be great. […] When I got older I realized that not doing something about it made me just as guilty. I spent most of my life hating him for being such a bad person, but I'm not so sure I'm much better. Maybe we're both bad people. (Hoover, 5)".

After episodes of violence, Ryle often showered Lily with affection, creating a disorienting emotional dynamic that obscured the reality of his abusive behaviour. This intermittent reinforcement made it difficult for her to reconcile the loving gestures with the acts of physical harm. Lily clung to the belief that some goodness remained in Ryle, despite the fact that he had repeatedly chosen to harm her. The oscillation between tenderness and abuse blurred the boundaries between love and violence, complicating her ability to recognise and accept the relationship as abusive.

Statistics indicate that in European countries, 31% of women experience physical abuse on a daily basis, with many subjected to such violence from the age of fifteen. This figure underscores the disproportionate vulnerability of women compared to men. Within It Ends With Us, Lily's mother endures not only physical but also sexual assault at the hands of her husband. Nevertheless, she remains in the relationship, motivated by a desire to protect and provide stability for her daughter, despite the personal cost.

The trauma of sustained abuse profoundly shapes the lives of both mother and daughter. Witnessing the violence inflicted on her mother, Lily, in a moment of extreme distress, contemplated retaliatory violence by reaching for a knife to harm her father. Though ultimately an intrusive thought rather than an enacted behaviour, it reveals how trauma can provoke impulses towards aggression, which, if acted upon, could have led to serious consequences.

> "I walked straight to the kitchen and I opened a drawer. I grabbed the biggest knife I could find and . . . I don't know how to explain it. It was like I wasn't even in my own body. I could see myself walking across the kitchen with the knife in my hand, and I knew I wasn't going to use it" (Hoover, 121).

Lily's father exploits the physical and emotional vulnerability of her mother to assert dominance, using violence as a means of maintaining authoritative control. Gender-based violence creates a profound barrier to equitable relationships, as one gender-typically perceived as weaker-is subjected to harmful and oppressive treatment by the other in order to reinforce power hierarchies.

Women are disproportionately affected by gender-based violence, particularly within domestic contexts. Throughout her marriage, Lily's mother endured persistent abuse-verbal, physical, and sexual-at the hands of her husband. Despite the turbulence, she chose to remain with her abuser in the belief that doing so would protect her daughter. However, this decision inadvertently exposed Lily to further trauma. Her mother's behaviour exemplifies what the American Psychological Association defines as Stockholm Syndrome: "a mental and emotional response in which a captive (e.g., a hostage) displays seeming loyalty to-even affection for-the captor. The captive may come to see law enforcement or rescuers as the enemy because they endanger the captor" (APA Dictionary of Psychology, 434)

The prolonged exposure to an abusive environment led both Lily and her mother to adopt various defence mechanisms to safeguard their psyches from becoming overwhelmed by emotional distress. Such mechanisms can serve to reduce acute anxiety and provide temporary psychological relief, though they may also perpetuate patterns of silence and concealment.

Gender-based trauma is a defining element of Lily's life. Both she and her mother experienced sustained domestic abuse, enduring severe circumstances without external support. In an effort to protect the reputations of their husbands, they concealed the abuse from others, thereby enabling further victimisation. Lily's perception of her father remained irreversibly negative; despite his occasional gestures that might be interpreted as redeeming, his repeated abuse of her mother in her presence fostered deep-seated resentment and enduring hatred.

> "[...] But the abuse was inevitable with their marriage, and it became our norm. When I got older, I realized that not doing something about it made me just as guilty. I spent most of my life hating him for being such a bad person, but I'm not so sure I'm much better. Maybe we're both bad people" (Hoover, 16-17)

Despite the trauma and abuse Ryle inflicted upon her, Lily continued to perceive goodness in her husband. She con-

vinced herself that the violence was an isolated incident and would not be repeated; however, it occurred again and again. Her deep emotional attachment to Ryle led her to overlook the warning signs that clearly indicated she was in an abusive relationship. Trapped in a cyclical love-abuse dynamic, Lily found herself unable to disengage.

The emotional pain she endured was frequently minimised by Ryle through love bombing, a manipulative tactic involving excessive affection and attention to obscure abusive behaviour. Lily rationalised his violence by attributing it to his unresolved past trauma, reinforcing her belief that he was inherently a good man. This relationship left her vulnerable and emotionally diminished, unable either to extricate herself or to reconcile with staying. Torn between remaining with him and seeking a divorce, she allowed a period of ten months for both herself and Ryle to reflect upon and reassess the state of their relationship.

> "In a matter of one second, Ryle's arm came out of nowhere and slammed against me, knocking me backwards. There was enough force behind it to knock me off balance. When I lost my footing, I hit my face on one of the cabinet door handles as I came down. Pain shoots through the corner of my eye, right near my temple" (Hoover, 185)

Gender-based violence manifested in Lily's life as child abuse when she was only sixteen years old. On one occasion, her father physically assaulted her, throwing her to the ground and causing severe bleeding. This act of violence left a profound psychological impact, instilling in her a deep-seated sense of trauma. She was unable to overlook or reconcile with her father's behaviour, perceiving him as a monstrous figure. Lily avoided sharing the same household with him whenever possible, and this aversion became one of the reasons she chose to leave her city upon reaching adulthood. Her father's abuse was not limited to her mother; he also subjected Lily herself to physical assault, thereby perpetuating a cycle of violence within the family.

> "I don't really know what happened, but I'm guessing he threw me off of him. I just remembered one second I was on his back and the next second I was on the ground and my forehead hurt like you wouldn't believe [...]. My mom gave me a rag and told me to hold it to my head because it was bleeding and then she helped me to her car and drove me to the hospital. (Hoover, 110) I had to get nine stitches in my forehead" (Hoover,111*).*

The impact of trauma on the human psyche extends beyond psychological repercussions, often manifesting in physical harm as well. Many trauma survivors develop Post-Traumatic Stress Disorder (PTSD) as a consequence of their experiences. In It Ends With Us, both Lily and her mother are victims of gender-based trauma, depicted as vulnerable and emotionally burdened by their circumstances. While Lily's mother lacked the agency to leave her abusive relationship, Lily eventually trusted her instincts and chose to break free for good. Nevertheless, Ryle's abuse instilled in her a pervasive sense of fear and uncertainty, impairing her ability to think clearly. This constant state of hypervigilance kept her in survival mode. In moments of violence, Lily compared Ryle to her father, at times convincing herself that Ryle was less cruel; however,

the reality was that his abusive behaviour mirrored her father's, perpetuating the same cycle of harm.

> "He's nothing like that uncaring bastard. I'm hurting so much on the inside, yet my body craves his apology in the form of his mouth and hands on me. I want to lash out at him and react like I wish my mother would have reacted when my father hurt her, but deep down I want to believe that it really was an accident".(Hoover, 175).

Trauma survivors frequently develop Post-Traumatic Stress Disorder (PTSD), a condition that renders them emotionally vulnerable and psychologically fragile. Gender-based violence fosters an enduring sense of uncertainty and fear in its victims, perpetuating cycles of oppression and harm. Inflicting abuse on the basis of perceived gender weakness is both ethically and socially unacceptable. Every individual, regardless of gender, deserves to be treated with respect and dignity, free from the threat of domestic violence. Physical and sexual abuse must be unequivocally condemned and eradicated. The elimination of gender-based violence is essential for the creation of a just society founded upon unity, equity and equality.

References :

1. Hoover, C. (2016). It Ends with Us : A Novel. Simon and Schuster.
2. Freud, S. (2015). Beyond the Pleasure Principle. Courier Corporation.
3. Caruth, Cathy. Unclaimed Experience: Trauma, Narrative, and History. Johns Hopkins UP, 1996.
4. Beauvoir, Simone de. (2003). Second Sex: Kehidupan Perempuan (Diterjemahkan dari The Second Sex, Book Two: Woman's Life Today oleh Toni B. Febrianto dan Nuraini Juliastuti). Yogyakarta: Penerbit Promethea
5. Dwiastuti, W., & Yamin, H. M. A. (2020). The Simplification Domestic Violence in Colleen Hoover's It Ends with Us (2016). International University Symposium on Humanities and Arts (INUSHARTS), 76-81.
6. Herman, Judith Lewis. Trauma and Recovery : The Aftermath of Violence, from Domestic Abuse to Political Terror. Basic Books, a Member of the Perseus Books Group, 2015.
7. Pennebaker, James W., and Joshua M. Smyth. Opening up by Writing It Down: How Expressive Writing Improves Health and Eases Emotional Pain. Third ed., The Guilford Press, 2016
8. Purwita, I. A. M. S. (2021). Lily Bloom's Trauma and Defense Mechanism Seen in Colleen Hoover's It Ends with Us. Undergraduate Thesis. Universitas Sanata Dharma Yogyakarta.
9. https://standard.asl.org/19425/culture/it-ends-with-us-illustrates-realities-of-domestic-abuse/
10. https://www.verywellmind.com/defense-mechanisms-2795960

कमलेश्वर की कहानियों में सांस्कृतिक यथार्थ

ज्योति
शोधार्थिनी, विभाग-हिंदी
जुहरी देवी गर्ल्स पीजी कॉलेज, कानपुर
संम्बद्ध-छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

प्रो॰ मीना सिंह गौर
शोध निर्देशक, विभाग-हिंदी
जुहरी देवी गर्ल्स पीजी कॉलेज, कानपुर
संम्बद्ध-छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

साहित्य की व्यापक परिधि के भीतर अगणित विषय समाहित रहते हैं। वह स्थूल दृष्टि से भले ही किसी विषय विशेष पर केंद्रित हुआ दिख पड़े, किंतु वह अपनी व्यापकता से दूर नहीं जा सकता और जो साहित्य व्यापकता से दूर चला गया, वह फिर साहित्य नहीं रहता, क्योंकि सच्चा साहित्य रचनाकार के उस अगाध मानस की प्रसूति होता है, जिसकी गंभीरता और विस्तार कदाचित ईश्वर के अथवा नियति के अतिरिक्त कोई और नहीं जान सकता और शायद इसीलिए ईश्वर को अन्तर्यामी कहा गया होगा, क्योंकि वह अगाध मानस के रहस्यों को भी यथावत जान सकता है। कहानीकार कमलेश्वर यद्यपि जनवादी साहित्यकार हैं। अतः सामाजिक यथार्थ ही उनके साहित्य में अधिकाधिक भाषित होता है, परंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनकी रचनाओं में अन्यविध यथार्थ बोध भी दृष्टिगत होते हैं, जिनमें सांस्कृतिक यथार्थ बोध भी समाविष्ट हैं। यहाँ उनके सांस्कृतिक यथार्थ बोध का विमर्श किया जा रहा है। साहित्य की रचना में एक समावसश्यक उपादान सांस्कृतिक तत्व होता है। यदि वह न रहे, तो प्रणयन अधूरा और उथला हो जाता है। साहित्य का जो अंश या अवयव संस्कृति मूलक तथ्यों से समन्वित होता है, उसे सांस्कृतिक कहते हैं।

सांस्कृतिक का अर्थ है संस्कृति से सम्बद्ध या संस्कृति से प्रभावित। संस्कृति शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द है। सम् उपसर्ग पूर्वक 'डु कृञ् करणे' धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने पर संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है। इस शब्द के निर्माण में एक और भी कार्य होता है-धातु और प्रत्यय के मध्य 'स्' का संयोग। इसे व्याकरण में सुट्-आगम कहते हैं, जो की साभिप्राय है। संस्कृत हिंदी कोष के अनुसार परिष्कार, तैयारी, पूर्णता तथा मनोविकास इन चार अर्थों में यह शब्द प्रयोग किया जाता है।[1] डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा कहते हैं कि ''देश की संस्कृति से हम मानव जीवन तथा व्यक्तित्व के उन रूपों को समझ सकते हैं, जिन्हें देश विशेष के लिए महत्वपूर्ण अर्थात मूल्य का अधिष्ठान समझा जाता है।''[2]

कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में सांस्कृतिक तत्वों और उनके सामयिक यथार्थ को भलीभाँति यथा प्रसंग चित्रित किया है। कमलेश्वर की एक कहानी है 'कस्बे का आदमी'। इस कहानी में बड़ी कुशलता से कहानीकार ने सांस्कृतिक तत्त्वों के स्वरूप को और सामयिक यथार्थ को पाठकों के समक्ष रखा है। भारतीय समाज में एक विवाद चिरकाल से चला आया है कि वर्णव्यवस्था जन्म से मानी जाय, या कर्म से। यहाँ हम देखते हैं कि कहानीकार ने कर्मणा वर्णव्यवस्था को महत्व दिया है। कहानी के नायक छोटे महाराज की मनः स्थिति का चित्रण करते हुए वे कहते हैं- ''जन्म से वैश्य होते हुए भी प्रकृति से परोपकारी होने

के कारण उन्हें ब्राह्मणत्व भी प्राप्त करना ही था।''[3] यहाँ वर्णगत उच्चता का व्यामोह यथार्थ के रूप में उभरकर सामने आ गया है। इसके अतिरिक्त छोटे महाराज और उनकी चाची की तीर्थ सेवन की प्रवृत्ति के माध्यम से कमलेश्वर ने भारतीय समाज की तीर्थीय चेतना को भी उभारा है। वैदिक, सिख, जैन तथा बौद्ध इन सभी मतवादों में तीर्थीय चेतना विशिष्ट स्थान रखती है। तीर्थों को व्यक्ति के कल्याण का आध्यात्मिक साधन चिरकाल से माना जाता रहा है, अतः भारतीय संस्कृति के किसी भी मतवाद में तीर्थीय चेतना को तिरस्कृत नहीं किया गया। न केवल भारतीय ही अपितु इस्लाम और ईसाइयों के मजहब भी इस चेतना के प्रति अत्यधिक निष्ठा रखते हैं और अपने-अपने मतों से समर्थित तीर्थस्थानों का नियमानुरूप सेवन करते हैं। इस कहानी का नायक शास्त्रोक्त विश्वास भी रखता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में यह बताया है कि मरते समय अगर रामनाम कानों में पड़ जाय, तो मोक्ष मिल जाता है।[4] कहानी का नायक छोटे महाराज इस उपाय का पूरा प्रबन्ध किये रहता है कि जब मृत्यु हो तो राम का नाम सुनने को मिल जाय।इसके लिये उसने एक तोता लाकर उसे राम नाम सिखाया और मरते समय अपने समीप रखा। कमलेश्वर यद्यपि इस विश्वास से अपने को अलग रखते हैं कि राम नाम सुनने से मोक्ष मिलता है या नहीं, किन्तु वे इस सांस्कृतिक तथ्य को पाठकों के सामने रखकर उनके विवेक पर छोड़ देते हैं। वे कहते हैं ''रामलीला आदि में सुनने के कारण उनका पक्का विश्वास था कि अन्तिम काल में यदि राम का नाम कानों में पड़ जाय, तो मुक्ति मिल जाती है।''[5] इसी कहानी में तोता पालन करने की भी चर्चा आयी है, जो प्राचीन काल से अद्यावधि सुसंस्कृत धर्मनिष्ठ कुलीन परिवारों में स्वीकृत तोता-मैना आदि पक्षियों के पालन का स्मरण करती है। पुराणों में तोता पालन करने वाली किसी वारांगना के आध्यात्मिक अभ्युदय की कथा भी आती है। यह एक सांस्कृतिक प्रथा थी, जो राजाओं और श्रेष्ठियों के यहाँ विशेष रूप से स्वीकृत थी, तथापि जन-सामान्य भी शुक शिक्षण को रुचिकर मानता था।

'एक अश्लील कहानी' नाम की कहानी में कमलेश्वर भारतीय संस्कृति के उस उदात्त पक्ष को पाठकों के सामने रखते हैं, जहाँ परायी स्त्री को केवल माता ही माना जाता है। यहाँ चन्द्रनाथ नाम के युवक का सांस्कृतिक उत्थान और मानवता की पराकाष्ठा को लेखक ने बड़ी आत्मीयता से प्रदर्शित किया है। वह युवक पति के द्वारा प्रताड़ित और निर्वस्त्र करके भगायी जा रहीं नारी की लाज बचाने के लिये अपने वस्त्र उस पर डाल देता है और कहता है ''माँ! तुझे अपने बेटे की कसम ! ढक ले माँ!..... और कोई रिश्ता उसकी समझ में नहीं आया था। यही वो आखिरी रिश्ता रह जाता है, जिससे गैर भी अपना हो जाता है।''[6] भारतीय संस्कृति ने हमेशा से परस्त्री के प्रति मातृ-भाव रखा है और उस स्त्री के पति जैसे लोग कितने ही मूल्यहीन क्यों न पैदा हो जाएँ किन्तु सांस्कृतिक मूल्य कभी नष्ट नहीं हो सकते। लेखक ने यह दरसाने का भरपूर प्रयत्न किया है। भारतीय संस्कृति में कर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। कर्म फलाफल के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त हो सकता है-कर्म सामान्य, पापकर्म तथा पुण्यकर्म। सामान्य कर्म फलाफल रहित होते हैं। पापकर्म वे कर्म हैं, जो विधान से, समाज से वर्जित माने गये है और पुण्यकर्म वे हैं, जो विधान से तथा समाज से अनुमोदित है। कमलेश्वर ने अपनी कहानी 'तुम्हारा शरीर मुझे पाप करने के लिये पुकारता है' में पाप की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है और उसे एक प्रकार का अपराध बोध बतलाया है।[7] पुण्य और पाप का विचार यद्यपि धार्मिक क्षेत्र में किया जाता है, परन्तु भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग कर्मवाद के होने से पुण्य और पाप का सांस्कृतिक होना नियत है। इस कहानी में अपराध बोध को यत्किंचित् ही उभारा गया है।

कमलेश्वर की 'नीली झील' नाम की कहानी में अनेक सांस्कृतिक यथार्थ उभर आये हैं। अपने आचरण

एवं ज्ञान से प्रतिष्ठित होने वाली ब्राह्मण जाति के वर्तमान के झूठे और खोखले ब्राह्मणत्व पर यहाँ सशक्त कटाक्ष किया गया है, जहाँ जाति का अभिमान तो है, परन्तु जातिसुलभ चरित्र का लेश भी नहीं दिखता। भारतीय संस्कृति में पर्व-उत्सवों के अवसर पर नारियों का स्वाभाविक कृत्य है अपने को सजाना और सँवारना। एक प्रकार से उसे भी पूजा-पाठ का अंग एवं शुभ कर्म माना जाता है। देवीपूजा के लिये उद्यत पार्वती के इस मांगलिक श्रृंगार का एक सरस चित्र कथाकार ने चित्रित किया है।[8] कमलेश्वर ने 'आत्मा अमर है' कहानी में भी खोखले ब्राह्मणत्व के अभिमान को कुछ उभारा है। भारतीय संस्कृति का अमरतत्त्व है श्रद्धा-विश्वास आज तक इस तत्त्व का जितना दुरुपयोग इस देश में हुआ है, उतना कदाचित् किसी दूसरे तत्त्व का कभी नहीं हुआ। यह दुरुपयोग हजारों साल पहले से चला आ रहा है। जाने कब की यह बात है (पुराणों एवं अन्य धर्मग्रन्थों के अनुसार त्रेतायुग की), पर है बहुत पुरानी, जब रावण ने साधु का वेष धारण कर वनवासिनी सीता को छला- अपहरण किया था। इसी श्रद्धा-विश्वास की आड़ में राजतन्त्र अधिकांश में दस्युतन्त्र बना, तपोमय ब्राहमण जीवन भोग संग्रहमय स्वार्थ निष्ठ विलासी जीवन बना। कमलेश्वर ने इस सांस्कृतिक मूल्य की हत्या का लोमहर्षक एवं हृदयद्रावक वर्णन 'मानसरोवर के हंस' नाम की कहानी में किया है। एक रानी की, हंस का मांस खाने की इच्छा को पूर्ण करने के लिये मानसरोवर गये सैनिक जब हंसों की सतर्कता का समाधान या प्रतिकार न कर सके, तब उन्होंने साधु का पवित्र वेश धारण कर उन्हें छल से पकड़ा और मार डाला। यहाँ यथार्थ को चित्रित करते समय रचनाकार आक्रोशित हो जाता है। उसका साक्ष्य यह वाक्य देते हैं- 'तुमने साधुओं का भेष धारण करके हंसो को छला था... अम्मा ने बहुत ही ज्यादा तुर्शी से कहा था' और फिर रचनाकार कहता है ''और हर दौर में मानसरोवर में हंस छले जाते रहे हैं।''[9] भारतीय संस्कृति मानती है कि हित और अहित पहचानने की क्षमता तो पशु-पक्षियों तक में होती है- हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। ऐसे में मनुष्य की जिम्मेदारी कहीं अधिक है। वह यदि सहज विश्वास का दुरुपयोग करे, तो वह उसी क्षण मनुष्यता से भ्रष्ट हो जाता है। यह कहानी कमलेश्वर के द्वारा देखे गये सांस्कृतिक यथार्थ को तो दरसाती ही है, भारतीय संस्कृति के उन महत्तम मूल्यों की गहराई को भी प्रकाशित करती है, जिन्होंने 'सम्पूर्ण विश्व राष्ट्र समुदाय में भारत को एक आदरणीय पहचान दी थी। मानव का अपराध बोध उसे न जीने देता है, न मरने देता है। हंसों को छल से पकड़ने का जो अपराध बोध उस व्यक्ति के मन में था, उसने ही उसे पश्चात्ताप पूर्वक बौद्ध मठ में शरणापन्न होने के लिये विवश किया था। यहाँ बौद्ध मत के उस उदार भाव का भी सफल चित्रण हो सका है, जो अपनी महाकरुणा की अमृतधारा में शरणापन्न को नहलाकर उसका सारा पाप-ताप धो डालने में सक्षम है।

वर्णव्यवस्था के नाम पर हो रही क्रूरता और अमानवीयता विशुद्ध सांस्कृतिक मूल्यों के विपरीत है। जहाँ एक ओर विश्व को कुटुम्ब मानने की असाधारण भावना का समादर है, वहीं जातीय अहंकार के कारण अपने ही देशवासी और अपने ही धर्मानुयागी के प्रति भी। सवर्ण समाज मानवोचित व्यवहार करने में असमर्थ रहा है। 'इतने अच्छे दिन' नामक कहानी में कमलेश्वर ने परम उदार भारतीय समाज की तत्कालीन संकीर्णता, स्वार्थपरता और जातीय पाखण्ड के यथार्थ को उजागर किया है। कहानी की एक पात्र कमली दूसरे पात्र से कहती है- ''तब एक-एक लोटे पानी के लिये ब्राह्मण-ठाकुर छोड़ देंगे क्या, अकाल तो हम लोगों के लिये पड़ता है, बाकी सबके लिये तो बरसों के लिये दाना है, पानी है।''[10] इस सांस्कृतिक यथार्थ से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता, पर यह अवश्य प्रश्न उठता है कि मृत पूर्वजों और पेड़-पौधे कीट-पतंग, पशु-पक्षी, प्रेत-पिशाच और आदि के लिये बलिवैश्वदेव करने वाला, सब में ब्रह्म चेतना को स्वीकार करने वाला

और आतिथ्य के लिये स्वयं भूखे सो जाने वाला समाज इतना कैसे गिर गया। कहाँ अस्त हो गयी, उसकी वह असाधारण बन्धुता और सर्वात्मवादी भावना, जिस पर वह सदियों से अवलंबित था। कमलेश्वर कहीं-कहीं इस सांस्कृतिक भ्रंश से आहत होते दिखते हैं और उनकी वैचारिक क्रान्ति के स्वर तब और मुखर हो उठते हैं। कमलेश्वर की कहानी 'अनाथपिण्डक सुदत्त' में बौद्ध संस्कृति का यथेष्ट चित्रण संक्षेप में मिलता है। मार्गदर्शी गुरु के प्रति सर्वात्म समर्पण कर देना भारत के प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय का, सभी भारतीय संस्कृतियों का स्वभाव रहा है। लोकोत्तर महत्ता से परिपूर्ण भगवान बुद्ध की उस महाकरुणा ने जाने कितने लोगों में श्रद्धा का बीज बोया और उन्हें शाश्वत निर्वाण शान्ति का पात्र बनाया। सुदत्त का अनुकरणीय त्याग संस्कृति के महत्तम स्वरूप को प्रकाशित करने में सक्षम है।

कमलेश्वर के लेखन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति के प्राणभूत ग्रन्थ गीता, उपनिषद्, धम्मपद, महावीर वाणी आदि का उन्होंने समुचित अनुशीलन किया था और उनके साम्प्रदायिक सन्देशों से परे जो मूल तथ्य थे, उनका भलीभाँति चिन्तन भी किया था। यही कारण है, कमलेश्वर की कहानियों में सांस्कृतिक यथार्थ के साथ रचनाकार की सांस्कृतिक एवं परोक्षतः मूल्यवादी अन्तश्चेतना भी उभर उठती है। मैक्सिम गोर्की का पूवोद्धृत मत साहित्यिक यथार्थ को वर्ण्य विषय के चित्रण मात्र से ऊपर उठने को कहता है, क्योंकि किसी घटना को केवल यथावत् प्रस्तुत कर देना कथमपि साहित्य नहीं हो सकता। साहित्य वास्तव में लोकमंगल की साधना का सुन्दर अनुष्ठान है, जहाँ यथार्थ भी अधःपतित मानवता को ऊपर उठाने के लिये प्रस्तुत किया जाता है। किसी ने किसी को छला, किसी की हत्या कर दी, किसी के घर में व्यभिचार किया इत्यादि बता देना साहित्य का लक्ष्य नहीं है। यह साधारण पत्रकारिता मात्र हो सकती है, जो कि केवल तत्कालीन घटना की सूचना दे पाती है। कमलेश्वर की रचनाधर्मिता जहाँ निष्पक्ष रूप से यथार्थ को प्रस्तुत करती है, वहीं उसके औचित्य को भी पाठकों के संज्ञान में ले आने को उद्यत रहती है। रमणीक रचना का प्राण तत्व औचित्य ही है, कमलेश्वर की रचना औचित्य के अनुपालनार्थ प्रतिबद्ध है। उनकी कहानियों की वस्तु अधिकांश में सामाजिक है, अतः सांस्कृतिक यथार्थ को वहाँ अधिक स्थान तो नहीं मिला, परन्तु जितना भी है, वह पूर्ण है, पर्याप्त है और सुपुष्ट है।

सन्दर्भ सूची :

1. आप्टे, वामन शिवराम, (2001), संस्कृत हिंदी कोश, पृष्ठ संख्या-1348
2. वर्मा, धीरेंद्र, हिंदी साहित्य कोश, पृष्ठ संख्या-802
3. कमलेश्वर, (2021), समग्र कहानियाँ, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-232
4. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, अरण्यकांड 30/6 चौपाई।
5. कमलेश्वर, (2021), समग्र कहानियाँ, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-234
6. कमलेश्वर-समग्र॰ पृ॰-230
7. कमलेश्वर-समग्र॰, पृ॰-556
8. कमलेश्वर-समग्र॰, पृ॰-353
9. कमलेश्वर-समग्र॰, पृ॰-645
10. कमलेश्वर-समग्र॰, पृ॰-651

Adaptation of the Violin in Indian Classical Music : An Analysis of Structural Innovations and Stylistic Integration

Khush Paul
Assistant Professor
Department of Music
GCW Nawakadal, Srinagar

Abstract :

New chapters keep getting added to the ancient tradition of Indian classical music every day. This is why Indian music never becomes old, it always remains new. A similar new chapter in the tradition of Indian instrumental music started when Indian musicians included the western instrument violin in Indian music. Indian musicians not only included the violin in Indian music but also made it completely Indian. For this, Indian scholars had to do many experiments and efforts. They changed the basic structure of the violin, the method of playing the violin, the tuning of the violin and even the name of the violin, thus making violin playing completely Indian. It is difficult to give credit for this to any one scholar because many musicians and scholars have contributed to this and it involves many years of hard work of all the scholars, only then it has been possible. Today the violin has completely made its place in Indian music. Violin playing is an integral part of Indian classical music. Be it South Indian classical music or North Indian music, violin has a prominent place in both the musical systems.

Key Words :

Violin, Indian, Music, Instrument, Western.

Methodology :

The present paper is based on data gathered from secondary sources

Introduction :

Indian classical music is a confluence of three genres. The three dimensions of Indian classical music, singing, playing and dancing, are full of innovation even after travelling through ages and have been at the highest level of prosperity for years. Singing, playing and dancing have their own famous traditions. Singing is considered to be the most important in Indian classical music, but like singing, the Indian

instrumental tradition is also very rich. Despite having such a rich tradition of instrumental music, Indian musicians invent new instruments from time to time and the process of modifying old instruments continues as per the need. In the last few centuries, some instruments have also been adopted in the Indian instrumental music tradition which are completely foreign instruments. Among all these instruments, the violin has succeeded in making its place in Indian classical music and has made Indian music more effective and rich with its presence. It is very difficult to make a place for any foreign instrument in Indian music. It is very difficult to present all the features of Indian music on any foreign instrument. To play Indian music on a foreign instrument, musicians have to work very hard and make many changes in the original playing style and structure of the foreign instrument. After such changes, the instrument remains foreign in essence but becomes emotionally Indian. Indian musicians have made many changes in the violin instrument and have connected it with the soul of Indian music.

The Indianization of the Violin :

According to most scholars, the violin is basically a foreign musical instrument, but at present the violin is completely Indian. Indian musicians and scholars have made several changes to the violin and made it one of the main instruments of Indian music. Violin came to India around the 18th century. Some scholars give the credit for introduction of violin in India to the great South Indian musician and scholar Balu swami Dikshitar. But some scholars believe that violin was present in India before the birth of Balu swami Dikshitar.

''दक्षिण भारत के मैसूर में श्री रंगपट्टनम स्थित दरिया दौलत (टीपू सुल्तान का महल) में एक चित्र सन 1784 का बना हुआ प्राप्त होता है। इस चित्र में एक महिला नृत्य कर रही है तथा अन्य महिलाये वाद्य बजा रही है, जिसमे वायलिन, तानपुरा एवं ढोलक आदि स्पष्ट अंकित है। उपर्युक्त चित्र सन 1784 का है जो बालू स्वामी दिक्षितर के जन्म 21 जून 1786 से पहले का है।''[1]

Scilicet That is, a painting made in the year 1784 is found in Dariya Daulat (Tipu Sultan's palace) located in Srirangapatnam in Mysore, South India. In this painting, a woman is dancing and other women are playing musical instruments, in which violin, tanpura and dholak etc. are clearly marked. The above painting is of the year 1784 which is before the birth of Balu Swami Dikshitar on 21 June 1786. According to this statement, it is clear that violin was present in India before Balu swami Dikshitar. But the entire credit for the initial promotion of violin goes to Balu swami Dikshitar. Thereafter, violin came to North India in the late 20th century, credit for which goes to Shri Gagan Babu, Shri P. Sundaram iyer and Ustad Baba Alauddin Khan. After that many scholars made many changes in the violin instrument according to Indian music. Mainly two types of changes can be made to make any foreign musical instrument suitable for Indian music. First, change in the basic structure of the instrument and second, change in the basic playing style of the instrument. Both types of changes have been made to make the violin instrument suitable for Indian music, which are as follows.

Structural Innovations :

Indian musicians and scholars have definitely made some changes in the basic

structure of the violin instrument, but mainly Indian musicians have accepted the violin in its original form. Violin instrument has mainly 4 strings, in India, the first change in the number of strings in the violin was done by Shri Ratnakar Bhatti Gulwadi of South India. He got a violin made with five strings and considered it suitable for Indian music.

Thereafter, in North Indian classical music also some scholars started using the violin with five strings like Prof. V.C. Ranade and Prof. Shishir Kandhar Chaudhary etc. Prof. Shishir Kandhar Chaudhary is the first woman violinist who used a violin with five strings. In India some artists also experimented with six strings and seven strings.

India's famous violinist Pandit V.G. Jog used the strings of tarav in the violin. He named it microtone. The strings of tarav are the identity of Indian instruments. The strings of tarav are placed below the main strings which are called sympathetic strings. This string is tunned to the basic notes used in the ragas of Indian music. When the artist plays the notes on the main strings, the tarav strings automatically resonate and this creates a resonant sound in the instrument.

Another Indian scholar, Shri Kunwar Rajendra Singh changed the basic shape of the violin and enlarged the size of the basic structure of the violin and put tarav strings in it and named this new type of violin "Swarleen". According to Kunwar Rajender Singh, Swarleen is a confluence of Violin, Sarangi and Dilruba instruments. His experiment was quite successful and the use of Swarleen can be heard at many places in Indian film music, but this instrument was not used in classical music.

Pandit Babulal Gandharva also did a similar experiment. He added a fifth string to the main strings of the violin and removed the upper part of the violin and used goat skin. He also added tarav strings. This experiment completely changed the form of the violin. In this, the violin has been merged with the sarangi. This new type of Indian violin was named Vela Bahar. Some young violin players are also using this instrument in classical music.

Varanasi's famous violinist and violin maker Prof. V. Balaji has done a great job in making the violin completely Indian by changing its basic structure. He made an 11-string violin by installing 7 sympathetic strings in the violin. This new instrument was named Bala Vela by India's famous Tabla player Pandit Kishan Maharaj.

Along with this, he installed 21 sympathetic strings in the violin which were divided into 3 parts of 7 each which symbolize the three main rivers of India, Ganga, Yamuna and Saraswati. This is why this new instrument was named Triveni Bela.

Dedicating it to his mother, he made a new kind of violin which had a total of 34 strings. This violin has two necks, 5 bridges and a total of 30 sympathetic strings along with 4 main strings. He named this new instrument Shringara Vela after his mother.

Experiments with violin did not end here. He dedicated it to his guru Vidushi Dr. N. Rajam ji. He made a new instrument by increasing the size of the original violin and adding 11 sympathetic strings and named it Rajam Vela.

Prof. V. Balaji keeps experimenting

with violin every day. Apart from this, he has made many other violins too. His experiments with violin are still amazing.

Stylistic Integration :

Violin first arrived in India around 250 years ago in South India. **"**In south india some of the enthusiastic musician took interest for this versatile instrument and started learning it from the European violinist"[2] There is no special style for playing musical instruments in South India. In South India, mainly the singing style was presented on the Veena instrument. "So it might be possible that the musicians who were trying to adopt violin into their mainstream music must have taken the help of the techniques that were follow in veena playing and vocal music"[3] Violinists of South India certainly learnt violin from European musicians but changed the entire style of violin playing and made it Indian.

In North Indian classical music, two types of styles are played on the violin. The first violinists of North India learnt violin from the musicians of South India. Ustad Baba Allauddin Khan learnt to play western music on the violin and then introduced the full style of Sarod playing in violin. Later, violinists like Pandit V.G. Jog, Vidushi Shishir Kandhar Chaudhary etc. played the complete tantrkari style of violin which includes Maseetkhani and Razkhani gat. Apart from this, the other style of violin playing which developed in North India is called Gayaki Ang. The entire credit for developing Gayaki Ang goes to India's famous violinist Dr. N. Rajam ji. As a result of her 15 years of hard work, she invented such a playing style which brought the singing style of Indian classical music to the violin. She made all the features produced by the throat playable on the violin. Thereafter, the Gayaki Ang of the violin became so famous that most violinists in North India adopted this style and are playing it even today. Today in Indian music, whether it is South India or North India, whatever style of playing is being played on the violin is completely Indian and no western style of playing is visible in it. On the basis of playing style, the violin is completely Indian and not western.

Unique Violin Tuning Techniques in Indian Classical Music :

The way of tuning the violin in India is also completely Indian. There are many ways to tune the violin in India, but all are very different from Western music. The methods of tuning the violin are as follows:

Western tuning :

Strings No.	4th String	3rd String	2nd String	1st String
Western Note	G	D	A	E

Indian tuning :

String No.	5th String	4th String	3rd String	2nd String	1st String	Tuning Style
Indian Note		Sa	Pa	Sa	Pa	1st style

Indian Note		Pa	Sa	Pa	Sa	2nd style
Indian Note		Ma	Sa	Pa	Sa	3rd style
Indian Note		Ma	Sa	Pa	Re	4th style
Indian Note		Pa	Re	Dha	Ga	5th style
Indian Note	Sa	Pa	Sa	Pa	Sa	6th style

In the above description, the notes of most of the Indian lower octave are tunned on the fifth and fourth strings, and the first and second strings are tunned with the middle octave and the higher octave.

Thus, the Indian tuning system is completely different from the Western toning system.

From Violin to Bela :

Indian scholars changed the basic structure, playing style and tuning method of the violin and also changed the name of the violin instrument. "वायलिन (violin) स्पेनिश भाषा का शब्द है।"[4] According to this quote, violin is a Spanish word, so Indian scholars called it Bela. Some scholars also call it Behala. Bela means the name of a fragrant flower and on that basis the violin was named Bela.

Conclusion :

In the musical tradition of Indian music, the violin is a new instrument and also a foreign one, but the hard work of Indian musicians and scholars has given the violin a completely Indian form. In this research paper, an attempt has been made to shed light on the efforts made by Indian scholars to make the violin an Indian instrument. Whether it is an experiment to change the basic structure of the violin or an experiment to change the playing style of the violin, Indian scholars have been completely successful in this. Therefore, it is not only the violin that has come from the western countries that should be called a foreign instrument. The violin played in India at present is completely imbued with Indian values.

References :

1. Mahadik, P. (1994). *Bhartiye sangeet ke tantrivady* . Madhya Pradesh Hindi Granth Akademi Page No. 143.
2. **Khuntia, S.** (2018). *Violin and violinists in Hindustani classical music*. Akansha Publication House Page No. 52
3. **Khuntia, S.** (2018). *Violin and violinists in Hindustani classical music*. Akansha Publication House Page no. 52.
4. **Singh, J. P.** (2010). *Bhartiye sangeet me violin ka prayog: Mahatva evam vadan*. Kanishka Publishers & Distributors Page No. 19.

मिट्टी से मूर्ति तक : बुंदेलखंड के पारंपरिक टेराकोटा शिल्प का विश्लेषण (देवीदीन प्रजापति के विशेष संदर्भ में)

ख्याति अग्रवाल
विषय विशेषज्ञ
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय
छतरपुर (मध्य प्रदेश)

वरुण रावत
विषय विशेषज्ञ
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय
छतरपुर (मध्य प्रदेश)

सारांश :

टेराकोटा शिल्प भारत की सांस्कृतिक एवं शिल्प परंपरा का एक प्राचीन और महत्वपूर्ण अंग रहा है, जिसकी जड़ें प्रागैतिहासिक काल से जुड़ी हुई हैं। प्रस्तुत शोधपत्र मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड अंचल, विशेषतः छतरपुर जिले में प्रचलित टेराकोटा शिल्प की ऐतिहासिक, सौंदर्यात्मक एवं सामाजिक विशेषताओं का विश्लेषण करता है।

यह अध्ययन प्रसिद्ध लोक शिल्पकार श्री देवीदीन प्रजापति के जीवन और कलात्मक योगदान को केंद्र में रखकर यह दर्शाता है कि सीमित औपचारिक शिक्षा के बावजूद उन्होंने किस प्रकार इस पारंपरिक शिल्प को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया।

शोध में टेराकोटा शिल्प निर्माण की पारंपरिक विधियाँ- मिट्टी की तैयारी, मूर्ति निर्माण, रंगाई और भट्टी में पकाने की तकनीक-का विश्लेषण किया गया है, साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि ये विधियाँ आज भी किस प्रकार आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिक बनी हुई हैं। साथ ही यह शोध सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से इस शिल्प के महत्व, सरकारी सहायता योजनाओं, विपणन की चुनौतियों तथा डिज़ाइन नवाचार की संभावनाओं का भी परीक्षण करता है। निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि टेराकोटा शिल्प केवल एक पारंपरिक कला नहीं, बल्कि एक पर्यावरण-संवेदी, टिकाऊ और समकालीन रचनात्मक उद्योगों के लिए संभावनाशील माध्यम भी है।

मुख्य शब्द :

टेराकोटा शिल्प, बुंदेलखंड, देवीदीन प्रजापति, पारंपरिक कला, शिल्प।

प्रस्तावना :

भारतीय कला परंपरा में टेराकोटा शिल्प का एक विशिष्ट और प्राचीन स्थान रहा है। यह शिल्पकला न केवल भारतीय संस्कृति की जड़ों से जुड़ी हुई है, बल्कि विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताओं में भी इसकी उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्य ने मिट्टी को एक रचनात्मक माध्यम

के रूप में अपनाया है, जिससे वह धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों को अभिव्यक्त करता आया है।

टेराकोटा शिल्प मुख्यतः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश- इन पंचतत्वों के संतुलित संयोजन से निर्मित होती है। यही कारण है कि यह कला आज भी ग्रामीण जीवनशैली का एक अभिन्न हिस्सा बनी हुई है, जो न केवल धार्मिक विश्वासों, बल्कि लोक जीवन की विविध परंपराओं को भी स्वर देती है।

मध्यप्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र, विशेषतः छतरपुर जिला, टेराकोटा की इस समृद्ध परंपरा को जीवंत बनाए रखने में अग्रणी भूमिका निभाता है। छतरपुर के चंदनगर ग्राम निवासी शिल्पकार श्री देवीदिन प्रजापति इस परंपरा के वर्तमान संवाहक के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनकी रचनाएँ न केवल स्थानीय स्तर पर प्रशंसित हैं, बल्कि उन्होंने इस पारंपरिक कला को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंचों तक प्रतिष्ठा दिलाई है।

यह शोधपत्र देवीदिन प्रजापति के रचनात्मक योगदान को केंद्र में रखते हुए टेराकोटा शिल्प की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। साथ ही यह भी दर्शाता है कि किस प्रकार यह परंपरा आज भी जीवंत है और आधुनिक परिवेश में अपने अस्तित्व को बनाए रखते हुए नूतन संभावनाओं की ओर अग्रसर है।

टेराकोटा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

टेराकोटा शिल्प कला, जो मिट्टी को पकाकर मूर्तियाँ, बर्तन, खिलौने आदि निर्माण करने की एक प्राचीन तकनीक है, वैश्विक सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग रही है। 'टेराकोटा' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'पकी हुई मिट्टी'। यह कला विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में प्रागैतिहासिक काल से ही प्रचलित रही है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में, टेराकोटा कला की जड़ें नवपाषाण काल तक जाती हैं। विभिन्न पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह शिल्पकला मानव जीवन के धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रही है। प्रसिद्ध कला इतिहासकार डॉ॰ देवांगना देसाई के अनुसार, टेराकोटा शिल्प की उत्पत्ति का संबंध प्रारंभिक शहरीकरण और व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ है।

भारत में टेराकोटा शिल्प के सबसे प्राचीन और प्रमुख प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता (2600–1900 ई॰पू॰) से प्राप्त होते हैं। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, चन्हुदड़ो जैसे स्थलों से खुदाई में प्राप्त टेराकोटा मूर्तियाँ जैसे- बैल, मातृदेवी की प्रतिमाएं, मानव आकृतियाँ, सील आदि-इस शिल्प की कलात्मक गुणवत्ता और धार्मिक-सांस्कृतिक उपयोगिता को दर्शाती हैं।

मातृदेवी की प्रतिमा
स्रोतः https://images.app.goo.gl/MRfvg1UqMe72FV1U7

सिंधु सभ्यता के पश्चात मौर्य काल (322-185 ई॰पू॰) और गुप्त काल (4ठी–6ठी शताब्दी)

में भी टेराकोटा शिल्प की निरंतरता देखी जाती है। मौर्य काल की विशिष्ट धात्वाभासिता वाली टेराकोटा मूर्तियाँ तथा गुप्त काल का भीतरगाँव मंदिर इस शिल्प की उत्कर्ष अवस्था के उदाहरण माने जाते हैं। बंगाल का चंद्रकेतुगढ़ भी टेराकोटा कलाकृतियों की बहुलता के लिए प्रसिद्ध स्थल है। बंगाल क्षेत्र में टेराकोटा से निर्मित मंदिरों की परंपरा, विशेषतः 17वीं–18वीं शताब्दी में, इस कला की स्थापत्य महत्व को दर्शाती है।

इतिहास की निरंतरता में यह कला आज भी भारत के विभिन्न हिस्सों-विशेषतः पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, मध्य प्रदेश और राजस्थान-में सक्रिय है। पारंपरिक तकनीकों के साथ-साथ आधुनिक अभिव्यक्तियों में भी टेराकोटा का प्रयोग हो रहा है, जो इसकी प्रासंगिकता और जीवंतता को प्रमाणित करता है।

देवीदीन प्रजापति की कलात्मक यात्रा एवं विशिष्टताएं :

टेराकोटा शिल्प परंपरा को समर्पित मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड अंचल में श्री देवीदीन प्रजापति एक ऐसा नाम हैं जिन्होंने अपनी मौलिक रचनात्मकता एवं परंपरा-प्रेम के बल पर इस लोककला को नई पहचान दी है। उनका जन्म 15 अगस्त 1977 को छतरपुर जिले के चंद्रनगर गांव में एक पारंपरिक कुम्हार परिवार में हुआ। उनके पिता श्री बालचंद प्रजापति स्वयं एक शिल्पकार थे, जिनसे उन्हें प्रारंभिक कला-शिक्षा प्राप्त हुई। यद्यपि देवीदीन जी की औपचारिक शिक्षा केवल कक्षा चार तक सीमित रही, परंतु उन्होंने बचपन से ही मिट्टी को आकार देना सीख लिया था और समय के साथ इसे साधना का रूप दे दिया।

देवीदीन प्रजापति की कला में पारंपरिक धार्मिक विषयवस्तु के साथ-साथ लोक जीवन की गहराइयों का भी सुंदर समावेश देखने को मिलता है। वे न केवल देवी-देवताओं की पारंपरिक प्रतिमाएं गढ़ते हैं, बल्कि ग्रामीण जीवन, पशुधन, लोककथाएं और खजुराहो के मंदिरों की अप्सराएं जैसे विषयों को भी मूर्त रूप प्रदान करते हैं। उनकी कृतियों में सादगी, सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

प्रमुख कलात्मक विशेषताएं :

- लोकजीवन की यथार्थपरक झांकियां।
- खजुराहो शैली की शिल्पबोधक नारी मूर्तियाँ।
- मिट्टी में परंपरा और आधुनिक दृष्टिकोण का समन्वय।
- पशु-पक्षियों एवं ग्रामीण गतिविधियों का जीवन्त चित्रण।

प्रमुख उपलब्धियां एवं मान्यताएं :

देवीदीन प्रजापति की कलाकृतियां देश के विभिन्न कोनों में सराही गई हैं। उन्होंने गोवा, मुंबई, चेन्नई, पुणे, चंडीगढ़, दिल्ली, भोपाल, नागपुर, रायपुर, खजुराहो आदि प्रमुख नगरों में आयोजित प्रदर्शनियों में भाग लिया है। उनकी एक उल्लेखनीय रचना आदिवासी लोक कला संग्रहालय, खजुराहो में निर्मित विशालकाय टेराकोटा घोड़ा है, जो उनकी शिल्प-कुशलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसके अतिरिक्त, उनकी कृतियाँ निम्न संस्थानों व स्थलों में संग्रहित हैं:

- इंदिरा गांधी मानव संग्रहालय, भोपाल
- आदिवासी लोक कला संग्रहालय, खजुराहो
- शिल्पग्राम, नागपुर
- दिल्ली हस्तकला प्रदर्शनी
- शारजाह एवं दुबई की अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियाँ

उन्हें निम्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है :

- मध्यप्रदेश हस्तशिल्प एवं हथकरघा विकास निगम, भोपाल
- दक्षिण मध्य सांस्कृतिक क्षेत्र, नागपुर

- इंदिरा गांधी मानव संग्रहालय, भोपाल
- अन्तर्राष्ट्रीय सरस मेले, दिल्ली (राजकुमार प्रजापति, व्यक्तिगत संचार, 15 नवंबर 2024)

देवीदीन प्रजापति द्वारा निर्मित कलाकृतियां :

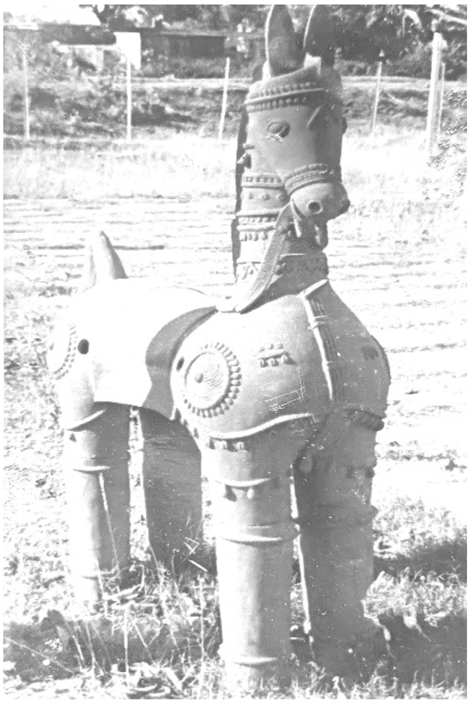

टेराकोटा शिल्प निर्माण की प्रक्रिया : प्रमुख चरण एवं तकनीकी विधि :

टेराकोटा शिल्प निर्माण एक पारंपरिक किन्तु तकनीकी दृष्टि से जटिल प्रक्रिया है, जिसमें स्थानीय संसाधनों का उपयोग कर कलात्मक मूर्तियों व शिल्प वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। यह प्रक्रिया मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित की जा सकती है - मिट्टी की तैयारी, आकृति निर्माण, तथा पकाने की प्रक्रिया।

प्रमुख कच्ची सामग्री :

- काली एवं लाल मिट्टी
- बालू (रेत)
- बुरादा या भूसे का चूर्ण
- घोड़े की लीद
- राख
- ईंधन (लकड़ी, उपले/कंडे)
- जल

मुख्य उपकरण :

- चाक (घूर्णन यंत्र)
- लकड़ी या बांस के डिजाइन उपकरण
- प्लाई बोर्ड या सपाट सतह
- ब्रश
- भट्टी (स्थानीय रूप से निर्मित, ईंट, लोहे की छड़ व गारे से जुड़ी हुई)

निर्माण प्रक्रिया (विस्तृत विधि) :

1. **मिट्टी की तैयारी :**

   सबसे पहले स्थानीय स्तर पर प्राप्त काली और लाल मिट्टी को उपयुक्त अनुपात में मिलाकर उसका गाढ़ा घोल तैयार किया जाता है। इस घोल को महीन कपड़े या छलनी से छाना जाता है, जिससे मिट्टी में मौजूद अशुद्धियाँ जैसे कंकर आदि बाहर निकल जाएँ।

   इसके पश्चात इस घोल को सुखाकर जब मिट्टी अर्द्ध-कठोर अवस्था में आ जाती है, तब उसमें बुरादा या घोड़े की लीद मिलाई जाती है, जिससे मिट्टी में लोच और मजबूती आती है। इस मिश्रण को 'पावा' कहा जाता है, जिसे हाथों से गूंधा जाता है।

2. **शिल्प निर्माण (आकृति निर्माण) :**

   गूंथी हुई मिट्टी को चाक या हाथों की सहायता से विभिन्न रूपों में ढाला जाता है। इसमें देवी-

देवताओं की मूर्तियाँ, लोकजीवन की झलकियाँ, पशु-पक्षियों के रूप आदि बनाए जाते हैं। आकृतियों को तैयार करने के उपरांत छाया में पूर्ण रूप से सुखाया जाता है ताकि उनमें दरार न आए।

३. टेराकोटा रंग की तैयारी एवं रंगाई :

टेराकोटा रंग तैयार करने के लिए भूरे एवं लाल रंग की चिकनी मिट्टी को जल में मिलाकर मटके में रखा जाता है। लगभग 12 घंटे बाद ऊपरी स्वच्छ जल को दूसरे बर्तन में स्थानांतरित कर लिया जाता है ताकि तल में बैठी अशुद्धियाँ हट जाएँ। फिर इस घोल को धीमी आंच पर पकाया जाता है। जब यह आधा रह जाता है, तब यह गाढ़ा रंग घोल बनता है।

ब्रश के माध्यम से इस तैयार रंग को सूखी मूर्तियों पर लगाया जाता है, जिसके पश्चात वे पकाने की प्रक्रिया हेतु तैयार हो जाती हैं।

४. भट्टी निर्माण एवं पकाने की विधि :

टेराकोटा मूर्तियों को पकाने के लिए दो प्रकार की पारंपरिक भट्टियों का प्रयोग किया जाता है :

क) ज़मीन पर बनी भट्टी :

- सबसे नीचे ईंधन (लकड़ी, उपले) को भूमि पर चक्राकार तरीके से सजाया जाता है।
- उसके ऊपर सूखी मूर्तियों को सावधानीपूर्वक रखा जाता है।
- मूर्तियों को खपरियों या अन्य सुरक्षात्मक सामग्रियों से ढँक दिया जाता है।
- धीरे-धीरे आग प्रज्वलित कर तापमान को 500–600 °C तक पहुँचाया जाता है।
- मूर्तियों के पूरी तरह से लाल/गुलाबी रंग में परिवर्तित हो जाने पर अंगारे हटाकर उन्हें शीतल किया जाता है।

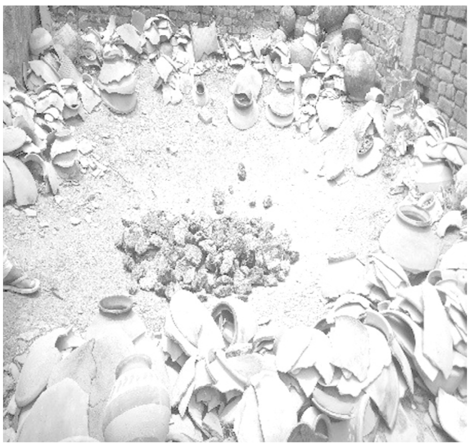

ख) ईंट एवं लोहे की छड़ों से निर्मित स्थायी भट्ठी :

- पहले ईंटों की चौखट बनाकर दो से चार द्वार बनाए जाते हैं।
- लोहे की छड़ें क्षैतिज रूप से लगाकर उस पर मूर्तियाँ सजाई जाती हैं।
- नीचे ईंधन प्रज्वलित कर तीन घंटे तक धीरे-धीरे गर्म किया जाता है।
- बाद में ऊष्मा तीव्र करने हेतु लकड़ियाँ डालकर उच्च ताप पर मूर्तियाँ पकाई जाती हैं।
- ठंडा होने के पश्चात शिल्प को भट्ठी से बाहर निकाला जाता है। (देवीदीन प्रजापति, व्यक्तिगत संचार, 15 नवंबर 2024)

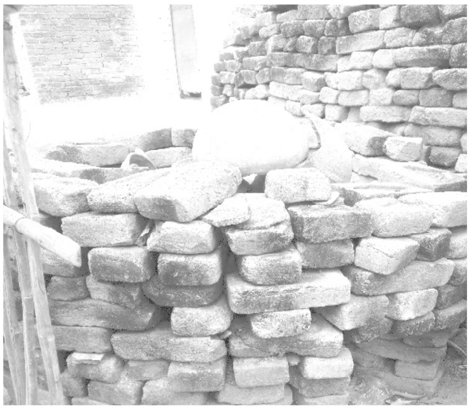

टेराकोटा शिल्प का वर्तमान परिप्रेक्ष्य :

वर्तमान युग को तकनीकी और औद्योगिक विकास का युग कहा जाता है, जहां मशीनों से निर्मित वस्तुएं जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त हैं। ऐसे समय में टेराकोटा शिल्प ने अपनी मौलिकता, प्राकृतिक संरचना और पर्यावरण-संवेदी स्वरूप के कारण एक विशिष्ट पहचान बनाई है। यद्यपि यह शिल्पकला भारत की प्राचीन धरोहरों में से एक है, फिर भी आज यह पारंपरिक सौंदर्यबोध और आधुनिक उपभोक्तावाद के बीच एक सेतु के रूप में कार्य कर रही है।

समकालीन संदर्भ में टेराकोटा शिल्प केवल धार्मिक मूर्तियों, मिट्टी के बर्तनों या पारंपरिक खिलौनों तक सीमित नहीं रहा है। अब यह घरेलू सजावट, बागवानी, डिज़ाइनर दीपकों तथा वास्तुकला से जुड़ी सजावटी वस्तुओं के निर्माण में भी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। हिंदू धार्मिक आयोजनों में टेराकोटा से निर्मित दीपकों का आज भी विशेष महत्व है, जिससे इसकी सांस्कृतिक निरंतरता स्पष्ट होती है। इस पारंपरिक कला को समकालीन परिप्रेक्ष्य में पुनः स्थापित करने हेतु अनेक डिजाइन संस्थाएं, कला महोत्सव और हस्तशिल्प मेले इसे नवाचार के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे न केवल शिल्प को आधुनिक उपभोक्ताओं से जोड़ने में सहायता मिली है, बल्कि शिल्पकारों के लिए नए बाज़ार और आर्थिक अवसर भी उत्पन्न हुए हैं।

भारत सरकार द्वारा भी पारंपरिक शिल्पों को प्रोत्साहित करने हेतु विविध योजनाएं संचालित की जा रही हैं, जैसे- मेक इन इंडिया, वोकल फॉर लोकल, तथा वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट (ODOP)। केंद्रीय सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME) की रिपोर्ट के अनुसार इन योजनाओं के अंतर्गत टेराकोटा शिल्प से जुड़े कारीगरों को तकनीकी सहायता, विपणन सहयोग तथा निर्यात के अवसर प्राप्त हो रहे हैं। इससे टेराकोटा शिल्प को न केवल आर्थिक संबल मिल रहा है, बल्कि वह वैश्विक बाज़ार में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

मध्य प्रदेश हस्तशिल्प एवं हथकरघा विकास निगम, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय (भोपाल), दक्षिण मध्य सांस्कृतिक केंद्र (नागपुर) जैसे संस्थान लगातार प्रदर्शनियों, कार्यशालाओं और विपणन कार्यक्रमों के माध्यम से इस पारंपरिक कला को संरक्षित और प्रोत्साहित कर रहे हैं।

इसके बावजूद, टेराकोटा शिल्पकारों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जैसे-तकनीकी प्रशिक्षण की कमी, असंगठित विपणन प्रणाली, औद्योगिकीकरण और आधुनिक उत्पादन पद्धतियों से प्रतिस्पर्धा। इन चुनौतियों को दूर करना अत्यंत आवश्यक है, जिससे यह शिल्प समकालीन बाज़ार की मांगों के अनुरूप ढल सके।

छतरपुर जिले के सुप्रसिद्ध टेराकोटा शिल्पकार श्री देवीदीन प्रजापति का मानना है कि यदि शिल्पकारों को नवाचार आधारित प्रशिक्षण, ई-कॉमर्स प्लेटफार्म से जुड़ने के अवसर, निर्यात केंद्रित मार्गदर्शन और आधुनिक संसाधनों की सुविधा मिल सके, तो यह पारंपरिक शिल्प न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि वैश्विक मंच पर भी अपनी उपस्थिति को और अधिक प्रभावी रूप से दर्ज करा सकता है।

इस प्रकार, टेराकोटा शिल्प का वर्तमान परिप्रेक्ष्य उसकी समृद्ध परंपरा और आधुनिक संभावनाओं के बीच एक सशक्त संवाद स्थापित करता है, जो भारतीय शिल्पकला की जीवंतता और निरंतरता का प्रतीक है।

निष्कर्ष :

टेराकोटा शिल्प भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की एक ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति है, जो न केवल अतीत की कलात्मक संवेदनाओं को दर्शाती है, बल्कि आज भी अपनी जीवंतता और प्रासंगिकता बनाए हुए है। यह कला पंचतत्वों से निर्मित होने के कारण न केवल प्राकृतिक संतुलन की प्रतीक है, बल्कि ग्रामीण जीवनशैली, धार्मिक विश्वासों और लोककथाओं का भी मूर्त रूप प्रस्तुत करती है।

बुंदेलखंड क्षेत्र, विशेषतः छतरपुर जिला, इस परंपरा का महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। इस शोध में श्री देवीदीन प्रजापति जैसे शिल्पकार के जीवन और कार्यों के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि लोककलाओं की जीवंतता और नवोन्मेष शक्ति आज भी समाज के भीतर गहराई से विद्यमान है। उन्होंने पारंपरिक तकनीकों के माध्यम से टेराकोटा को नई पहचान दी है और अंतरराष्ट्रीय मंचों तक पहुँचाया है।

यह शोध यह भी स्पष्ट करता है कि टेराकोटा शिल्प का संरक्षण केवल एक सांस्कृतिक दायित्व नहीं है, बल्कि यह स्थानीय रोजगार, स्वदेशी उद्योग, और पर्यावरणीय स्थिरता से भी जुड़ा हुआ है। यद्यपि वर्तमान में यह शिल्प कई प्रकार की चुनौतियों जैसे तकनीकी संसाधनों की कमी, विपणन असंगठन, और आधुनिक बाजार के दबावों से जूझ रहा है, फिर भी उचित प्रशिक्षण, डिज़ाइन नवाचार और सरकारी समर्थन के माध्यम से इसमें पुनरुत्थान की अपार संभावनाएँ हैं।

इस शोध के माध्यम से यह स्थापित होता है कि टेराकोटा न केवल एक पारंपरिक शिल्प है, बल्कि यह भविष्य के लिए एक सतत, सौंदर्यपूर्ण और सामाजिक रूप से उपयोगी कला माध्यम बन सकता है, बशर्ते इसे संगठित प्रयासों और समर्पण के साथ संरक्षित किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Sinha, S (June- 2020). Terracotta Art: Past and Present. Journal of Science and Linguistics, 10(1), 79-84, VL Media Solutions, https://www.researchgate.net/publication/386048643_Terracotta_Art_Past_and_Present.

वल्लभ सम्प्रदाय के नित्य (अष्टयाम) एवं वर्षोत्सवों में सांगीतिक प्रयोग की उत्कृष्टता

कुसुम सिंह
शोधार्थी, वाद्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो॰ संगीता सिंह
शोध निर्देशिका, वाद्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

मध्यकालीन संगीत में अष्टछाप या हवेली संगीत की स्थापना, पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य श्री वल्लाभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी की सेवा करने एवं पुष्टिमार्ग के प्रचार-प्रसार करने के लिए की थी। 'अष्टछाप' कृष्ण काव्य धारा के आठ कवियों के समूह को कहते हैं, जिनका मूल सम्बन्ध आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय से है। जो श्रीनाथ जी के अनन्य भक्त है जिनमें चार वल्लभाचार्य जी के शिष्य और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य है।

पुष्टिमार्गी वैष्णव सम्प्रदाय में भगवान श्री नाथ जी का बाल्य स्वरूपों की सेवा राग, भोग व श्रृंगार के माध्यम से किया जाता है। जिसमें नित्य क्रम और वर्षोत्सव क्रम दो माध्यम है, नित्य क्रम में सुबह से शाम तक आठ आयामों में सेवा की जाती है और वर्षोत्सव क्रम में और भी विशेष रूप से श्री नाथ जी के बाल्यकाल की सेवा किया जाता है। वर्षोत्सव क्रम में षट्-ऋतुओं के उत्सव, अवतारों की जयन्तियाँ, लोक-पर्व तथा आचार्य व उनके वंशजों के जन्मोत्सव विशेष रूप से मनाये जाते हैं और जिसमें विशिष्ट वाद्यों का और रागों का प्रयोग किया जाता है। इस शोध पत्र के माध्यम से वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टयाम एवं वर्षोत्सव में सांगीतिक प्रयोग की उत्कृष्टता को विस्तार रूप से वर्णित करने की कोशिश की गई है।

मुख्य बिन्दु :

वल्लभाचार्य, मध्यकालीन, पुष्टिमार्ग सम्बन्ध, बाल्यकाल, अवतारों।

वल्लभ सम्प्रदाय में भगवान की आराधना दो प्रकार से की जाती है- प्रथम नित्य (अष्टयाम) सेवा व दूसरा वर्षोत्सव इन दोनों ही प्रकार की सेवाओं में संगीत के विभिन्न शैलियों की उत्कृष्टता देखने को मिलती है।

अष्टयाम सेवा विधि :

अष्टयाम सेवा भगवान श्रीनाथ जी की सेवा एक दैनिक क्रम है जो प्रातःकाल से ही प्रारम्भ होकर शयन आरती तक चलता है। जिसे अष्टयाम सेवा विधि कहते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टयाम सेवाओं

को संगीत के माध्यम से किया जाता है।

अष्टयाम सेवाओं के विषय में निम्नवत् उल्लेख प्रस्तुत है :

मंगला : प्रातः काल सर्वप्रथम शंखनाद होता है।

राग भैरव :

जागो गोपाल लाल जननी बलि जाई

उठौ तात प्रीत भयौ, रजनी को तिमिर गयो,

टेरत सब ग्वाल बाल, मोहन कन्हई।।1।।

उठो मेरे आनन्द कन्द, गगन चंद भयौ मंद,

प्रकट्यौ अंशुमान भानु, कमलनि सुखदाई

सखा सबहि पुरतयेणु, तुमहि बिन न छूटे धेनु,

उठौ लाल तजौ सैन, सुन्दर वरराई।।2।।

मुख तें पट दूर कियौ, जसुदा कूं दरस दियौ,

और दधि- माँगि लियौ, विविध रस मिठाई

जेंवत दोऊ राम स्याम, सकल मंगल गुन निधान,

थार में कछू जूठ रही, मानदास पाई।।3।।

भगवान को जगाने के लिये राग भैरव, रामकली अथवा विभास का प्रयोग होता है।

इस संस्कृत रचना के बाद मंगल आरति के पद बोले जाते हैं।

मंगल आरती गोपाल की माई।।

नित्त प्रति मंगल होत निरख मुख, चितवन नयन बिसाल की

मंगल रूप स्याम सुन्दर कौ, मंगल भृकुटि सुभाल की।।

चतुर्भुज दास प्रभु सदा मंगल निधि बानिक गिरिधर लाल की।।2।।

तब मंगला झाँकी के पट बन्द होते हैं। मंगला झाँकी के सारे क्रम में पखावज नहीं बजती। गायन तालमुक्त रहता है। इसका कारण सम्प्रदाय में बाल स्वरूप की सेवा भावना है। बालक जागते समय मृदंग की ध्वनि से कहीं चौंक न जाय।

श्रृंगार :

मंगला के दर्शन बन्द होने के कुछ देर बाद भगवान को श्रृंगार कराने के लिये कीर्तन बोले जाते हैं। (अन्दर भगवान के श्रृंगार होते रहते हैं)

मंगल आरती गोपाल की माई।।

नित्त प्रति मंगल होत निरख मुख, चितवन नयन बिसाल की

मंगल रूप स्याम सुन्दर कौ मंगल भृकुटि सुभाल की।।

चतुर्भुज दास प्रभु सदा मंगल निधि बानिक गिरिधर लाल की।।

तब मंगला झाँकी के पट बन्द होते हैं।

तदनन्तर श्रृंगार के दर्शन खुलते हैं। तब ठाकुर जी के सन्मुख कीर्तनियों श्रृंगार वर्णन के पद ग्रीष्म ऋतु में विलावल में व शीत ऋतु में तोडी व आसावरी में बोलता है।

ग्वाल :

कीर्तनियाँ बाहर से घैया के पद बोलता है।

राग विलावल :

जसोदा मथमथ प्यावत मैया।।

कर तल कड़ी धरत है आगे रुच सों लेत कन्हैया।।1।।

बहोर धरत हरि लेत जात हैं पुन-पुन सुन्दर स्याम सुहैया।।

औट्यौ दूध धरयो बेला भर पीवत कान्ह कन्हैया।।2।।

मन मोहन भोजन कौं बैठे, लेह परोसत मैया।।

षटरस के जु प्रकार धरे सब, निरखि रसिक बलि जैया।।3।।

तदनन्तर ग्वाल के दर्शन खुलते हैं। तब ग्वाल के पद गाए जाते हैं। यथा :

राज भोग :

ग्वाल की झाँकी के पर्याप्त समय बाद (क्योंकि इस समय में भोजन की सामग्री बनाई जाती है) जब भोजन की सामग्री भगवान के समक्ष रखी जाती है तब उनसे भोजन करने के लिये बुलाने के भाव से (ठाकुरजी अन्दर कीर्तनियाँ बाहर) पद गाये जाते हैं।

राग धनाश्री :

बोलत स्याम जसोदा मैया

अति आनन्द प्रेम रस उमंगी, हंसिहंसि लेत बलैयां।।1।।

उर अंचल सो श्रम जल पोंछत, पुनि-पुनि अपने हाथ।।

भोजन करौ लडैते मोहन, सब ग्वालन के साथ।।2।।

सुत मुख चंद बिलौकि सजल ही इन ही मित्र समाज।।

परमानन्द प्रभु परम मनोहर, अति विचित्र ब्रजराज।।3।।

तत्पश्चात् भोजन करने के पद गाये जाते हैं। ये पद भी ऋतु अनुसार बदलते जाते हैं।

उत्थापन : इस झाँकी के खुलने से पहिले भगवान को शंख-ध्वनि से जगाया जाता है, उत्थापन का एक पद इस प्रकार है :

राग नट :

सुबल श्री दाम कहौ सखन सौं अर्जुन शंख वजैये।।

घर जैवे की भई है बिरियाँ गिरिधर लाल जगैयें।।1।।

ठौर-ठौर मधुरी धुन बाजे, मधुर-मधुर स्वर गैये।।

कुंज सदन जागे नंद नन्दन, मुद्रित बीरा फल लै हैं।।2।।

हरिदास वर्ष के पूरे मनोरथ, गोकुल ताप न सैहैं।

लटकत आवत कमल फिरावत, परमानन्द बढैहैं।।3।।

उत्थापन की झाँकी खुलने पर प्रायः कीर्तन नहीं होता।

भोग :

भोग कराने के बाद इस झाँकी में मुरली, गाय व गोपी दशा के पद बोले जाते हैं यथा- (गोपी दशा का पद) :

राग नट :

प्रीतम प्रीत ही तें पैये।।

यद्यपि रूपगुन सील सुधरता, इन बातन न रिझहैं।।1।।

सतकुल जन्म करम सुभलक्षण, वेद पुरान पढ़ें हैं।।

गोविन्द बिना स्नेह सों आली, रसना कहा जु नचैहैं।।2।।

संध्या आरती :

पहिले गाय बुलाने के पद गाये जाते हैं। यथा

राग पूर्वी :

गोविन्द गिरि चढ़ टेरत गाय।।

गाय बुलाई धौमर धौरी, टेरत वेणु बजाय।।1।।

श्रवण नाद सुन मुख तृन धर सब चितई सीस उठाय।।

प्रेम विवसहै हूक मार चहु दिसि तें उलटी धाय।।2।।

चतुर्भुज प्रभु पट पीत लिये कर आनन्द उर न समाय।।

पौंछत रेणु धेनु के मुख तें गिरि गोवर्धन राय।।3।।

शयन :

शयन की झाँकी खुलने से पहिले गो दोहन के पद गाते हैं इसके बाद भगवान को बारु (रात्रि का भोजन) कराई जाती है तब ब्यारु के पद बोले जाते हैं यथा :

राग ईमन :

तोरे पैयां लागूं गिरिधर ब्यारु कीजै।।

उलट पलटत झंगुली भोजै खीजत खिजावे सुन्दरतन छीजै।।1।।

फैनी पापर खुरमा खाजा, गुंजा मिश्री लडुवा लीजै।।

बांट देत सब ग्वाल बालन कूं परमानन्द जननी कर लीजै।।2।।

भगवान को दूध पिलाया जाता है।

राग नायकी :

मेरौ पिय रसिया सुन री सखी तेरौ दोष नहीं।।

नवल लाल कों सब कोऊ चाहत, कोन कौन के मन बसिया।।1।।

एकन सों नैना जोरे, एकन सों भोहं मरोरै, एक सों मुख हंसिया।।

कृष्ण जीवन लच्छीराम के प्रभु माई, संग डोलत पूरन ससिया।।2।।

शयन की झाँकी सम्पन्न हो जाने के बाद भी कीर्तन का क्रम चलता रहता है। पहिले मान के, फिर शयन कराने के तथा फिर विनती व माहात्म्य के पद गाये जाते हैं।

इस प्रकार अष्टयाम सेवाओं में प्रातःकाल मंगला से लेकर शयन आरती तक की सम्पूर्ण सेवाओं में नियमानुसार ध्रुवपद व धमार तथा रागों का गायन की जाती है। राग विधान की दृष्टि से अष्टयाम सेवा विधियों का स्वरूप इस प्रकार से है। प्रातःकालीन झाकियों में जहाँ ग्रीष्मकाल में बिलावल, सारंग गायी जाती है। वहीं शीतकाल में तोड़ी व आसावरी राग गाई जाती है। इसी प्रकार शाम की झाकियों में उत्थापन व भोग के रागों में कोई अन्तर नहीं है। पूर्वी व गौरी, नट का गर्म राग, व कल्याण, हमीर, अड़ाना ठण्डे राग माने गये हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय के वर्षोत्सवों में संगीत का प्रयोग :

वल्लभ सम्प्रदाय में वर्षोत्सवों का और भी विशेष महत्व है। नित्य क्रम साधारण दिनों के लिए तथा वार्षिक क्रम वर्ष के उत्सवों के लिए होते हैं। इसलिए इसे वर्ष उत्सव क्रम भी कहते हैं। उत्सवों पर सेवा के प्रत्येक अंग (राग, भोग व श्रृंगार) का एक विशेष प्रयोजन रहता है। कीर्तन के स्वरूप में और भी विशेष रूप का आयोजन रहता है जैसे समाज गायन, दशहरा, दीवाली, जयंतियाँ में कुल चार जनंतियाँ मनाई जाती हैं :

1. कृष्ण जन्माष्टमी
2. रामनवमी
3. नृसिंह चौदस
4. बावन द्वादशी

आचार्य वल्लभ के वंशजों के जन्म उत्सव सम्मिलित रहते हैं। श्री कृष्ण जन्माष्टमी वल्लभ सम्प्रदाय का सर्व प्रमुख व सर्वाधिक वैभव का है। इस क्रम को भगवान श्री कृष्ण के जन्म से प्रारम्भ करते हैं।

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव वर्षोत्सव क्रम में मनाये जाने वाला विशेष उत्सव है। यह भाद्रमास में कृष्ण पक्ष में अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र के दिन मनाया जाता है। जन्मोत्सव पर भगवान के समक्ष पाँच वाद्य बजाये जाते है, जिसे पंच वाद्य कहा जाता है उन वाद्यों के बजाने का भी अपना विशेष परम्परा है पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय में और सेवा के प्रत्येक अंग (राग, भोग व

श्रृंगार) का एक विशेष प्रयोजन रहता है इसमें अष्टयाम सेवा विधि विशेष रहता है, इस अष्टयाम सेवा विधि को आठ भागों में विभक्त किया गया है।

जन्मोत्सव में मंगला से लेकर शयन तक भजन, कीर्तन, राग व पद और विभिन्न प्रकार के वाद्यों व तालों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

।।अथ उत्सव की कीर्तन विधि लिखते।।

जन्माष्टमी के दिन शंखनाद होय ता समय समाज होय तब प्रथम मंगल मंगल ब्रज भुवि मंगलं तापाछे राग देव गंधार :

1) आज ब्रज भयौ सकल आनंद
2) आज अति बाढ्यौ है अनुराग
3) आज वनका उन्हें जिन जाऊँ
4) फूले गोपी ग्वाल नंदराय

तापाछे समै होय तो देवगंधार की बधाई और गावनी। पाछे मंगला के दरसन :

1) नैन-मरि देखौ नन्द कुमार

तापाछे पंचामृत के दर्शन में :

1) ब्रज भयौ महरि के पूत।

पाछे टेरौ आवे अभ्यंग होय तासमें बधाई चार :

1) सुफल जन्म दिन आयौ नन्द के।

ता पाछे समय होय तो और सारंग ही होय

ता पाछे भोग सरें तब राग सारंग :

1) आज महामंगल महराने
2) आंगन नद के दधि कांदो

ता पाछे दरसन खुले तब राग सारंग

1) आज नंदराय के आनन्द भयौ
2) सब ग्वाल नाचें गोपी गावें

ता पाछे अनोसर होय।। पाछे साँझ के समय भोग संध्या में

राग देवगंधार :

1) ब्रज भयौ महरि के पूत सो पूरी होय, तो पाछे टेरा आवै

और महाभोग आरती में राग धनाश्री-

1) जसोदा रानी सो वन फूले फूली

ता पाछे छठी पूजा होय :

ता समै छठी के पद होंय राग सारंग में

1) आज छठी जसुमति के सुतकी
2) मंगल दिवस छठी को आयौ।

राग कान्हरौ :

1) छटी विधोगती रात हरीजुकी

ता पाछे नंद महोत्सव के दरसन खुले तब मंद जसोदाजी पधारती

भये ठाढ़े अस कुस हाथ धरे। तहाँ सों सवन को पाय परे। तहाँ ताईं गावनी।। तापाछे गोप ग्वाल पधारत में बड़ी बधाई की तुक 'सुनि धाई' सबै ब्रजनारी, वहाँ ते लैकें सबै झाँझ मृदंग बजावत सब नन्द भवन गये, तहाँ ताई गावनी।।

राग कान्हरौ :

बल मोहन दोउ करत बियारू। सेन भोग सरे में राग अड़ानौ

चलौ मेरे लाढ़ले हो। सेन के दरसन में राग कान्हरो

तिहारौ घर सुबस बसौ। ता दिन मान के पद नहीं।

पौढवे में राग नायकी। राग जसोमत ग्रह गावत गोपी जन।।

इति जन्माष्टमी की विधि।

इसके अतिरिक्त संगीत के विविध विधाओं जैसे नृत्य, वाद्य-वादन आदि का भी आयोजन किया जाता

है। इसके अलावा यही हिन्डोल, होली, बसन्त, आचार्यों का पाटोत्सव आदि उत्सवों पर संगीत के विविध विधाओं जैसे पखावज, शंख, झांझ, घण्टा, हारमोनियम, वीणा, तम्बूरा, मृदंग, वंशी, करताल, इत्यादि का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार वर्ष भर के सभी उत्सवों में संगीत की उत्कृष्टता दिखती है।

अतः वल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति में संगीत का अत्यधिक महत्वपूर्ण है इसलिए वल्लभ सम्प्रदाय की रसोपासना भक्ति कहलाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. http://rajasthangkidea.blogspot.com/2018/07/haveli-sangeet-and-ashtchhap-poet-of-29.html
2. शर्मा, प्रो॰ सत्य भान, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा, हवेली संगीत, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999-2011
3. शर्मा, अंजू, ब्रज संस्कृति में संगीत, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण-1996
4. गर्ग, डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, ब्रज संस्कृति और लोक संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, प्रथम संस्करण-2009

समकालीन भारतीय रंगमंच पर मेथड एक्टिंग का प्रभाव

मनीश जोशी
डॉ॰ स्मृति भारद्वाज
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, पंजाब

1. प्रस्तावना : भारतीय रंगमंच और वैश्विक प्रभाव :

भारतीय रंगमंच विश्व की प्राचीनतम और सबसे विविध रंग-परम्पराओं में से एक है। इसकी जड़ें वैदिक काल तक जाती हैं, जहाँ ऋग्वेद के संवादात्मक श्लोक और सामवेद के संगीतमय स्वरूप रंग-परम्परा की प्रारम्भिक छवि प्रस्तुत करते हैं। आगे चलकर भरतमुनि का नाट्यशास्त्र (लगभग 200 ई॰ पू॰–200 ई॰) इस परम्परा का मानक ग्रंथ बना, जिसने अभिनय, नृत्य, संगीत, रस और भाव का व्यापक सिद्धांत स्थापित किया।

भारतीय रंगमंच ने सदियों तक धार्मिक आख्यानों, पौराणिक गाथाओं और लोकजीवन से प्रेरणा लेकर अपनी अलग पहचान बनाई। क्षेत्रीय स्तर पर कथकली, यक्षगान, जत्रा, नौटंकी, तमाशा, भवाई और थिरुवथिरा जैसी शैलियों ने विविधता को समृद्ध किया। इन रंग-रूपों में जहाँ देव-पूजन और रसात्मक अनुभव केंद्र में थे, वहीं अभिनेता और दर्शक के बीच एक धार्मिक-सांस्कृतिक बंधन भी जुड़ा रहता था।

लेकिन उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के मोड़ पर, जब भारत औपनिवेशिक शासन और आधुनिकता की चुनौतियों से गुजर रहा था, भारतीय रंगमंच को नई अभिव्यक्तियों की आवश्यकता महसूस हुई। सामाजिक यथार्थ, औपनिवेशिक विरोध और शहरी जीवन की जटिलताओं ने रंगमंच को केवल भक्ति या लोक-मनोरंजन तक सीमित नहीं रहने दिया। इसी दौर में पश्चिमी रंगमंच और अभिनय पद्धतियाँ भारत में प्रवेश करती हैं।

यही वह समय था जब कोंस्टान्टिन स्टानिस्लाव्स्की द्वारा प्रतिपादित मेथड एक्टिंग (Method Acting) भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक विमर्श में प्रवेश करती है। स्टानिस्लाव्स्की का विचार था कि अभिनेता केवल पात्र का अभिनय न करें, बल्कि उसे अपनी आत्मा और स्मृतियों से जिए। यह दृष्टि भारतीय अभिनेताओं के लिए एक क्रांतिकारी बदलाव था क्योंकि कि पारम्परिक भारतीय रंग-परम्परा में अधिकतर अभिनयाभिनय (Stylization) और रसात्मक प्रस्तुति पर ज़ोर दिया जाता था।

बीसवीं शताब्दी के मध्य में जब एब्राहिम अलकाज़ी जैसे रंगनिर्देशक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (NSD) में प्रशिक्षण दे रहे थे, तब भारतीय रंगमंच में यथार्थवादी अभिनय (Psychological Realism) की नींव पड़ी। इसने एक ओर भारतीय रंग-परम्परा के गहरे अनुभवों को आधुनिकता के नए सवालों से जोड़ा, तो दूसरी ओर अभिनेता और दर्शक दोनों को कला की एक नई भाषा दी।

आज, जब हम समकालीन भारतीय रंगमंच को देखते हैं, तो यह स्पष्ट है कि कि स्टानिस्लाव्स्की की पद्धति ने न केवल प्रशिक्षण की दिशा बदली, बल्कि अभिनय की पूरी प्रक्रिया को गहराई और प्रामाणिकता प्रदान की।

2. स्टानिस्लाव्स्की का जीवन और दर्शन :

2.1 प्रारम्भिक जीवन और रंग-यात्रा :

कोंस्टान्टिन सर्गेयेविच अलेक्सेयेव, जिन्हें हम स्टानिस्लाव्स्की के नाम से जानते हैं, का जन्म 1863 में मॉस्को (रूस) में हुआ। वे एक सम्पन्न परिवार से थे और बचपन से ही कला, संगीत और रंगमंच से परिचित थे। उनके पिता ने घर में ही एक निजी रंगमंच बनाया था, जहाँ युवा स्टानिस्लाव्स्की ने अभिनय का अभ्यास किया।

किशोरावस्था में ही उन्होंने यह महसूस किया कि अभिनय केवल मंच पर दिखावा नहीं है, बल्कि यह मानव अनुभव की गहराइयों को छूने वाला माध्यम है। इसी खोज ने उन्हें जीवनभर रंगमंच की भाषा और पद्धति को विकसित करने के लिए प्रेरित किया।

2.2 मॉस्को आर्ट थियेटर और यथार्थवाद की नींव :

1898 में व्लादिमीर नेमिरोविच-डैनचेंको के साथ मिलकर स्टानिस्लाव्स्की ने मॉस्को आर्ट थियेटर (MAT) की स्थापना की। यह रंगमंच संस्था विश्व रंग-इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुई। यहीं से अंतोन चेखव के नाटक (The Seagull, Uncle Vanya, Three Sisters, The Cherry Orchard) मंचित हुए, जिनमें मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का गहरा प्रभाव देखा गया।

स्टानिस्लाव्स्की का मत था कि दर्शक तभी प्रभावित होंगे जब अभिनेता पात्र को पूरी तरह जीकर प्रस्तुत करेगा। इसके लिए उन्होंने System विकसित किया-एक ऐसी तकनीक, जिसमें अभिनेता का शरीर, मन और आत्मा पात्र के अनुभवों से तादात्म्य बिठाए।

2.3 स्टानिस्लाव्स्की सिस्टम की मूल अवधारणाएँ :

स्टानिस्लाव्स्की ने वर्षों के प्रयोग और प्रशिक्षण से एक व्यापक पद्धति तैयार की। उनके सिद्धांत तीन स्तरों पर काम करते हैं :

1. **शारीरिक क्रिया (Physical Action) :** अभिनय का आधार केवल संवाद नहीं, बल्कि शरीर की विश्वसनीय क्रियाएँ हैं।
2. **मनोवैज्ञानिक सत्य (Psychological Truth) :** अभिनेता को पात्र के भावनात्मक अनुभवों से गुजरना चाहिए।
3. **आत्मिक तादात्म्य (Spiritual Identification) :** अभिनय में सच्चाई तभी आएगी जब अभिनेता स्वयं को पात्र में विलीन कर दे।

इन आधारों पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण अवधारणाएँ दीं :

- भाव-स्मृति (Emotional Memory)
- जादुई यदि (Magic If)
- परिस्थितियाँ (Given Circumstances)
- महाउद्देश्य (Super-Objective)
- अन्तःपाठ (Subtext)

2.4 कला और जीवन का सम्बन्ध :

स्टानिस्लाव्स्की का मानना था कि रंगमंच केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्किमानव आत्मा के उत्थान का माध्यम है। वे कहते थे :

''सत्य की खोज ही अभिनेता का धर्म है। झूठे अभिनय से न दर्शक प्रभावित होंगे, न कलाकार संतुष्ट होगा।''

यही कारण है कि उनकी पद्धति अभिनय से आगे जाकर एक दर्शन बन गई। यह दर्शन कलाकार को अपने अनुभवों, स्मृतियों और संवेदनाओं से जोड़ता है और उसे एक गहरे मानवीय स्तर पर अभिनय करने की प्रेरणा देता है।

2.5 स्टानिस्लाव्स्की से मेथड एक्टिंग तक :

बीसवीं शताब्दी के मध्य में अमेरिका और यूरोप में स्टानिस्लाव्स्की के शिष्यों (जैसे ली स्ट्रासबर्ग, स्टेला एडलर, सैंफोर्ड मेइसनर) ने उनकी पद्धति को आगे बढ़ाया। इसने हॉलीवुड में मेथड एक्टिंग का रूप लिया, जहाँ मार्लन ब्रैंडो, अल पचीनो, रॉबर्ट डी नीरो जैसे अभिनेताओं ने इसे वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बनाया।

भारत में भी यह लहर पहुँची, और यहाँ इसे स्थानीय रंग-परम्पराओं के साथ मिलाकर नया स्वरूप दिया गया।

3. स्टानिस्लाव्स्की की मेथड एक्टिंग : सिद्धांतों की गहराई :

स्टानिस्लाव्स्की की System को केवल तकनीक कहना पर्याप्त नहीं होगा; यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण है। इसका उद्देश्य है- "अभिनेता को उस सत्य के अधिकतम निकट ले जाना, जो पात्र वास्तव में जीता है।"

उनकी पद्धति के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार हैं :

3.1 भाव-स्मृति (Emotional Memory) :

अभिनेता अपने जीवन के अनुभवों और स्मृतियों से पात्र की भावनाओं को प्रामाणिक बनाता है।

- **उदाहरण :** यदि अभिनेता को शोक का अभिनय करना है, तो वह अपने जीवन की किसी वास्तविक हानि को याद कर सकता है।
- इस तकनीक ने भारतीय अभिनेताओं जैसे इरफ़ान खान को गहन भावनात्मक स्तर तक पहुँचने में मदद की।

3.2 अवलोकन (Observation) :

मानव-व्यवहार, हाव-भाव और परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन।

- अभिनेता केवल कल्पना से नहीं, बल्कि यथार्थ जीवन को देखकर अपनी कला गढ़ता है।
- भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह सिद्धांत लोकजीवन और साधारण पात्रों को गढ़ने में उपयोगी सिद्ध हुआ।

3.3 एकाग्रता (Concentration) :

अभिनेता का पूरा ध्यान केवल पात्र और दृश्य पर होना चाहिए। मंच पर उपस्थित अन्य विचलन से उसे प्रभावित नहीं होना चाहिए।

3.4 जादुई 'यदि' (Magic If) :

"यदि मैं इस परिस्थिति में होता तो क्या करता?"- यह प्रश्न अभिनेता को काल्पनिक परिस्थिति में यथार्थ अनुभव करने की शक्ति देता है।

- **उदाहरण :** राजकुमार राव का Shahid फिल्म में एक वकील की भूमिका निभाते समय यही सिद्धांत लागू करना।

3.5 आन्तरिक सत्य (Inner Truth) :

संवाद या क्रिया तभी सार्थक होगी जब उसके पीछे वास्तविक भावनात्मक आधार हो।

3.6 क्रिया और उद्देश्य (Action & Objective) :

हर दृश्य और हर संवाद के पीछे पात्र का कोई उद्देश्य होता है।

- यह अभिनेता को याद दिलाता है कि कि संवाद केवल शब्द नहीं हैं, बल्कि क्रिया का हिस्सा हैं।

3.7 परिस्थितियाँ (Given Circumstances) :

पात्र के जीवन की पृष्ठभूमि, सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति और व्यक्तिगत इतिहास।

- यह भारतीय रंगमंच में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि कि यहाँ हर पात्र सामाजिक वर्ग और परम्परा से गहराई से जुड़ा होता है।

3.8 अन्तःपाठ (Subtext) :

संवाद के पीछे छिपा हुआ वास्तविक अर्थ।

- भारतीय रंग-परम्परा में, जहाँ अक्सर प्रतीक और रूपक का प्रयोग होता है, यह सिद्धांत विशेष प्रासंगिक हो जाता है।

3.9 महाउद्देश्य (Super-Objective) :

पूरे नाटक में पात्र का व्यापक लक्ष्य क्या है?

- यह सिद्धांत अभिनेता को समग्र दृष्टि प्रदान करता है।

3.10 सामूहिक अभिनय (Ensemble Playing) :

अभिनेता केवल अकेला न हो, बल्कि पूरी टीम के साथ सामंजस्यपूर्ण प्रदर्शन करे।

- NSD और अन्य रंगमंच समूहों ने इस सिद्धांत को विशेष रूप से अपनाया।

इन सिद्धांतों ने अभिनय को सतही नकल से उठाकर गहन अनुभव में रूपांतरित कर दिया।

4. भारत में मेथड एक्टिंग का प्रवेश और विकास :

4.1 उपनिवेशकालीन पृष्ठभूमि :

भारत में आधुनिक रंगमंच का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षा और पाश्चात्य रंग-शैलियों का प्रभाव भारतीय रंगमंच पर स्पष्ट दिखने लगा। कलकत्ता, बंबई और मद्रास जैसे शहरों में पारसी थिएटर और अंग्रेज़ी नाटकों के मंचन ने नई अभिनय शैलियों को जन्म दिया।

लेकिन यह रंगमंच मुख्यतः मनोरंजन पर केन्द्रित था। यहाँ पात्र अक्सर मेलोड्रामा और नाटकीयता से भरे होते थे। इस शैली में मनोवैज्ञानिक गहराई अपेक्षाकृत कम थी।

4.2 एब्राहिम अलकाज़ी और NSD :

1959 में जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (NSD) की स्थापना हुई और एब्राहिम अलकाज़ी इसके निदेशक बने, तब भारतीय रंगमंच को एक नई दिशा मिली।

- अलकाज़ी ने स्टानिस्लाव्स्की सिस्टम को भारतीय रंग-परम्परा से जोड़ने का प्रयास किया।
- उन्होंने नाट्यशास्त्र और रस सिद्धांत को पश्चिमी यथार्थ के साथ समन्वित किया।
- NSD के प्रशिक्षण में संवाद-अभ्यास, भाव-स्मृति, अवलोकन और अन्तःपाठ की गहरी समझ विकसित की गई।

उनकी देख-रेख में प्रशिक्षित कलाकार-नसीरुद्दीन शाह, ओम पुरी, अनुपम खेर, पंकज कपूर- बाद में भारतीय थिएटर और फ़िल्म में यथार्थवादी अभिनय के प्रतीक बने।

4.3 हबीब तनवीर और बी० वी० कारंत :

- हबीब तनवीर ने लोक-नाट्य (नाचा, नौटंकी) को स्टानिस्लाव्स्की पद्धति के साथ जोड़ा। उनके नाटक चरणदास चोर और आगरा बाजार इसका उदाहरण हैं।
- बी० वी० कारंत ने कन्नड़ लोकनाट्य, संगीत और आधुनिक यथार्थवाद को मिलाकर अभिनेताओं को नया प्रशिक्षण मॉडल दिया।

4.4 फ़िल्म और रंगमंच का संगम :

1970–80 के दशक में NSD और FTII (Film and Television Institute of India) से निकले कलाकारों ने मेथड एक्टिंग को फ़िल्मों में भी लोकप्रिय बनाया।

- ओम पुरी और नसीरुद्दीन शाह ने समांतर सिनेमा में सामाजिक यथार्थ को गहराई से प्रस्तुत किया।
- इरफ़ान खान ने भाव-स्मृति और अन्तःपाठ के आधार पर अपने अभिनय को विश्वस्तर तक पहुँचाया।

4.5 समकालीन परिदृश्य :

आज के समय में पंकज त्रिपाठी, राजकुमार राव, नवाज़ुद्दीन सिद्दीकी, राधिका आप्टे जैसे अभिनेता इसी पद्धति से प्रेरित होकर काम कर रहे हैं।

- ये कलाकार पात्र की पृष्ठभूमि, सामाजिक परिस्थितियों और भावनात्मक परतों का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं।
- यही कारण है कि उनका अभिनय दर्शकों को गहराई से प्रभावित करता है।

5. भारतीय अभिनेताओं पर स्टानिस्लाव्स्की पद्धति का प्रभाव : केस स्टडी :

5.1 नसीरुद्दीन शाह :

नसीरुद्दीन शाह भारतीय रंगमंच और सिनेमा के सबसे सशक्त अभिनेताओं में गिने जाते हैं। NSD और FTII में प्रशिक्षण के दौरान उन्होंने स्टानिस्लाव्स्की की पद्धति को आत्मसात किया। उनके अभिनय में अवलोकन (Obervation) और अन्तःपाठ (Sub-text) की गहरी उपस्थि स्थिति मिलती है।

- नाटक Andha Yug और फ़िल्म A Wednesday में उनका प्रदर्शन पात्र की आन्तरिक जटिलताओं को बारीकी से उभारता है।
- वे अक्सर कहते हैं कि 'अभिनेता को पहले इंसान बनना चाहिए, तभी वह चरित्र को सचमुच जी पाएगा।'

5.2 इरफ़ान खान :

इरफ़ान का अभिनय भारतीय यथार्थवाद और अन्तर्राष्ट्रीय मेथड एक्टिंग का अद्भुत संगम था।

- फ़िल्म The Lunchbox और Paan Singh Tomar में उन्होंने भाव-स्मृति (Emotional Memory) और जादुई यदि (Magic If) का प्रभावी उपयोग किया।
- उनके संवादों के बीच का मौन और आँखों की भाषा, स्टानिस्लाव्स्की पद्धतिकी 'आन्तरिक सत्य' की अवधारणा को मूर्त रूप देती है।

5.3 पंकज कपूर :

पंकज कपूर ने रंगमंच से लेकर टीवी और फ़िल्म तक में अपने अभिनय को बहुआयामी बनाया।

- धारावाहिक Karamchand और फ़िल्म Maqbool में उन्होंने पात्र के 'महाउद्देश्य (Super Objective)' को पकड़ कर अभिनय को गहराई दी।
- उनका अभिनय इस बात का प्रमाण है कि स्टानिस्लाव्स्की प्रणाली भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक कथाओं के साथ भी सहज रूप से मेल खा सकती है।

5.4 राजकुमार राव :

समकालीन पीढ़ी के प्रतिनिधि अभिनेता के रूप में राजकुमार राव मेथड एक्टिंग का जीवंत उदाहरण हैं।

- फ़िल्म Shahid और Trapped में उन्होंने अपने शरीर और मन दोनों को पात्र की परिस्थितियों से तादात्म्य में ढाला।
- उनके लिए 'परिस्थितियाँ (Given Circumstances)' और 'एकाग्रता (Concentration)' महत्वपूर्ण साधन हैं।

5.5 नवाज़ुद्दीन सिद्दीकी :

नवाज़ुद्दीन सिद्दीकी का अभिनय यह दर्शाता है कि मेथड एक्टिंग ने छोटे कस्बों और ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए कलाकारों को भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया है।

- फ़िल्म Gangs of Wasseypur और Manjhi में उन्होंने लोकजीवन से सीधे पात्र गढ़े और उन्हें आन्तरिक सत्य से जीवंत किया।

इन केस-स्टडीज़ से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अभिनेता केवल तकनीकी रूप से नहीं,

बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी स्टानिस्लाव्स्की की पद्धति से प्रभावित हैं।

6. समकालीन भारतीय रंगमंच में मेथड एक्टिंग की चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

6.1 चुनौतियाँ :

1. **स्थानीय परम्पराओं से टकराव :** भारतीय रंगमंच की पारम्परिक शैलियाँ (जैसे कथकली, नौटंकी, यक्षगान) अत्यधिक अभिनयाभिनय (Stylized Acting) पर आधारित हैं। ऐसे में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का समावेश कभी-कभी टकराव उत्पन्न करता है।
2. **आर्थिक और संरचनात्मक सीमाएँ :** पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में रंगमंच की संस्थागत संरचना सीमित है। अभिनेताओं को गहन तैयारी और रिसर्च के लिए पर्याप्त समय और संसाधन नहीं मिलते।
3. **दर्शकों की अपेक्षाएँ :** भारतीय दर्शक अब भी नाटकीयता, गीत-संगीत और मनोरंजन की माँग करते हैं। मेथड एक्टिंग का सूक्ष्म यथार्थवादी दृष्टिकोण कभी-कभी उन्हें 'धीमा' या 'गंभीर' लगता है।
4. **फिल्मी बाजार का दबाव :** आज का मुख्यधारा सिनेमा तेज़ गति, भव्यता और स्टारडम पर आधारित है। वहाँ मेथड एक्टिंग का धैर्यपूर्ण प्रशिक्षण हमेशा सम्भव नहीं हो पाता।

6.2 संभावनाएँ :

1. **हाइब्रिड मॉडल :** आज कई निर्देशक (जैसे मोहन महर्षि, नीलम मानसि सिंह चौधरी) लोक-परम्पराओं और मेथड एक्टिंग को जोड़कर प्रयोग कर रहे हैं। इससे भारतीय रंगमंच को एक अनूठी पहचान मिल रही है।
2. **डिजिटल युग का विस्तार :** OTT प्लेटफॉर्म (जैसे STAGE, Netflix, SonyLiv) ने यथार्थवादी अभिनय के लिए नया मंच उपलब्ध कराया है। यहाँ दर्शक सूक्ष्म अभिनय की कद्र करते हैं।
3. **अन्तर्राष्ट्रीय संवाद :** भारतीय अभिनेता अब हॉलीवुड और वैश्विक रंगमंच में सक्रिय हैं। इरफ़ान खान और प्रियंका चोपड़ा इसके उदाहरण हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीयता से मेथड एक्टिंग की प्रासंगिकता और बढ़ रही है।
4. **अभिनय शिक्षण संस्थान :** NSD, FTII, चेसिंग ड्रीम्स जैसी नयी पहलें और निजी अभिनय स्कूल स्टानिस्लाव्स्की पद्धति को भारतीय संदर्भ में ढालकर सिखा रहे हैं।

7. निष्कर्ष :

स्टानिस्लाव्स्की की मेथड एक्टिंग ने भारतीय रंगमंच को नई दृष्टि और गहराई प्रदान की है। इस पद्धति ने अभिनेता को केवल संवाद बोलने वाले कलाकार से उठाकर एक मानव अनुभव जीने वाला साधक बना दिया।

जहाँ भारतीय परम्परा में रस और भाव का दर्शन था, वहीं स्टानिस्लाव्स्की ने मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और आन्तरिक सत्य की शक्ति दी। आज समकालीन भारतीय अभिनेता- चाहे रंगमंच पर हो या फ़िल्मों में- अपने पात्रों को जीवन्त बनाने के लिए इस पद्धति से प्रेरणा ले रहे हैं।

हालाँकि कि चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी संभावनाएँ कहीं अधिक व्यापक हैं। भारतीय रंगमंच यदि अपनी लोक-परम्पराओं और वैश्विक पद्धतियों का रचनात्मक समन्वय करता रहे, तो आने वाले समय में यह विश्व रंगमंच के सबसे सशक्त स्वरूपों में से एक बन सकता है।

संदर्भ सूची :

1. Alkazi, E. (1999). *The Theatre of Ebrahim Alkazi*. New Delhi: National School of Drama.
2. Bharata. (200 BCE–200 CE). *Natyashastra*. (Multiple modern editions).
3. Brockett, O. G., & Hildy, F. J. (2014). *History of the Theatre*. 10th Edition. Pearson.
4. Chaudhuri, A. (2010). *Contemporary Indian Theatre: Theatricality and Nation in Global Contexts*. Routledge.
5. Kapur, A. (2012). *Actors, Pilgrims, Kings and Gods: The Ramlila at Ramnagar*. Seagull Books.
6. Prasad, A. (2007). *Modern Indian Theatre: A Reader*. Oxford University Press.
7. Stanislavski, K. (1936). *An Actor Prepares*. (E. R. Hapgood, Trans.). New York: Theatre Arts Books.
8. Stanislavski, K. (1949). *Building a Character*. (E. R. Hapgood, Trans.). New York: Theatre Arts Books.
9. Stanislavski, K. (1961). *Creating a Role*. (E. R. Hapgood, Trans.). New York: Theatre Arts Books.
10. Subramaniam, L. (2015). *Modern Indian Theatre: Tradition and Innovation*. New Delhi: Sahitya Akademi.
11. Vatsyayan, K. (1996). *Bharata: The Natyashastra*. Sahitya Akademi.

Threads Reimagined : Chamba Rumaal and Phulkari Embroidery in Contemporary Fine-Art Practice (2015-2025)

Jyoti
Department of Fine Arts,
Saroop Rani Government College for Women,
Amritsar, Punjab

Paramjit Kaur
Department of Fine Arts
Saroop Rani Government College for Women,
Amritsar, Punjab

Chatter Singh
School of Computer Applications,
Lovely Professional University,
Phagwara, Punjab

Abstract :

Between 2015 and 2025, Chamba Rumaal and Phulkari embroidery transitioned from local craft status into the lexicon of global contemporary art. This PRISMA 2020–compliant systematic review presents the first English-language overview of that transition, synthesising 164 scholarly, curatorial, and grey sources identified through database and web searches. Inductive thematic coding reveals five interconnected debates. First, ritual cloths are being redefined as gallery objects, with needlework employed as feminist–post-colonial praxis. Second, diasporic remix and digital hybrids complicate authenticity claims. Third, museums confront unresolved challenges in conserving and displaying reversible silk, while a separate strand examines market legitimation through Geographical Indication tags, institutional acquisition, and critical writing. Although institutional enthusiasm and auction prices have surged, rigorous data on colour-fastness, artisan income, and Punjabi-Himachali curatorial voices remain scarce. The article concludes with research and policy agendas-long-term GI economics, dye science, and VR annotation-that position Punjabi-Pahari embroidery at the forefront of decolonial craft studies and sustainable museum practice.

Keywords :

Chamba Rumaal; Phulkari; Contemporary embroidery; Geographical Indication; Craft-to-art discourse; Craftivism.

1. Introduction :

In the past decade, Punjab-Pahari needlework has vaulted from ethnographic "craft" departments into the centre of curatorial and critical debate. A milestone moment came at India Design Week 2024, where the exhibition *Lover's Divine Unrest* paired Padma Shri artist Lalita Vakil's double-sided Chamba Rumaal panels with mixed-media paintings by Dinesh Soni (Bridge Bharat, 2024). The show's placement in a mainstream design fair, rather than a folk-art pavilion, signalled a reclassification of the rumal from devotional textile to contemporary fine-art object.

A year earlier, New York–based artist Spandita Malik framed the traditionally domestic phulkari stitch as a feminist protest in her solo exhibition Jāḷī-Meshes of Resistance (Kim, 2023). Critics have since followed Malik's tour to Robert Mann Gallery, noting how her sitters' self-embroidered portraits "re-stitch the fabric of domestic space" (Amin, 2025). These crossover events are part of a global surge in textile programming: the Museum of Fine Arts, Houston's 2025 survey, From India to the World: Textiles from the Parpia Collection, will foreground Punjabi embroideries within a wide-ranging historical display (Museum of Fine Arts Houston [MFAH], 2025). Globally, textile-focused blockbusters rose from 8 shows in 2015 to 23 in 2024 (ArtFacts.net, 2025).

1.1 From "folk cloth" to critical medium :

Foundational scholarship established the cultural and gendered labour embedded in these embroideries (Maskiell, 1999). Building on that base, feminist craft theory-from Parker's (1984) seminal The Subversive Stitch through recent craftivism studies (Wallin Wictorin, 2020)-argues that needlework can subvert patriarchal hierarchies precisely because of its domestic pedigree. Contemporary curators have harnessed this discourse, staging rumal and phulkari pieces in white-cube galleries to prfovoke questions of authorship, ritual value, and soft power.

Parallel academic interests are quantifiable. A PRISMA-guided pilot search for this review retrieved 164 English-language sources from 2015 to 2025, including peer-reviewed articles such as Bukhari et al.'s (2025) visual-semiotic analysis of phulkari patterning. The literature clusters around three overlapping debates: craft-to-art legitimation, feminist and decolonial politics and heritage economy shaped by Geographical-Indication protection.

1.2 The case for Chamba Rumaal & Phulkari :

While global "fibre art" has enjoyed renewed attention since the 1970s, Chamba Rumaal and Phulkari present distinctly dual meanings:

1. **Technical Singularity :** The rumal's reversible do-rukha stitch and Phulkari's geometric floss work invite both conservation challenges and hybrid digital applications.
2. **Narrative Density :** Mythological scenes on rumals and agrarian or dowry motifs on phulkaris resonate with contemporary identity politics, allowing artists to layer new critiques onto inherited iconography.
3. **Legal-Economic Stakes :** GI protection and state revival schemes make

these textiles test cases for how intellectual-property regimes shape living craft traditions.

Recent laboratory work confirms this technical complexity (Bukhari et al., 2025).

1.3 Locating the study in wider theory :

The present review positions Punjabi-Pahari embroidery within the "soft-materials turn" that textile scholars link to post-disciplinary art practice (Adamson, 2007; Weinberg, 2022). It also engages with global craftivism, where stitched interventions function as "slow activism" (Wallin Wictorin, 2020). By narrowing the focus to 2015-2025, the article captures a decade in which museum acquisitions, market interest, and digital dissemination (e.g., Instagram craft communities) converged to accelerate the medium's transition from regional craft to transnational art currency.

1.4 Research questions :

To synthesise and critique this emerging field, the paper asks:

1. **RQ1 :** How have curatorial strategies between 2015-2025 reframed Chamba Rumaal and Phulkari from domestic textiles into critical fine-art objects?
2. **RQ2 :** In what ways do contemporary artists deploy these embroideries to articulate feminist, post-colonial, or diasporic narratives?
3. **RQ3 :** How are authenticity and economic value negotiated through GI protection, heritage branding, and diasporic remix?

The remainder of the paper, Section 2, describes the systematic search protocol and thematic coding workflow (including a PRISMA diagram). Section 3 synthesises the literature into five themes-object recontextualisation, the politics of the needle, heritage remix, conservation/display, and market reception. Section 4 examines implications for craft theory, curatorial practice and policy, while Section 5 identifies research gaps and future directions.

2. Methodology :

This review followed the PRISMA 2020 reporting guideline (Page et al., 2021).

2.1 Data sources and search strategy :

We searched four bibliographic databases with strong coverage of art and design scholarship-Art & Architecture Source, Scopus, JSTOR, and Google Scholar-plus a grey-literature tranche (museum websites, NGO reports, GI dossiers and citation chasing). The final Boolean string was:

("Chamba Rumal" OR Phulkari) AND ("contemporary art" OR installation OR exhibition OR biennial)

AND (2015-2025)

Syntax was adapted to each platform (e.g., TITLE-ABS-KEY in Scopus). Search alerts were run twice until no new records appeared.

The search yielded 75 records from Art & Architecture Source, 60 from Scopus, 45 from JSTOR, and 40 from Google Scholar, resulting in a total of 220 database hits. Searching grey literature added 40 website records, 30 organisational documents, and 10 items found via backward and forward citation chasing, bringing the total to 300 records identified (Figure 1). The pilot string produced the same 164-item corpus used in the final synthesis; no additional databases expanded this set.

2.2 Reference management and de-duplication :

Automated and manual checks removed 60 duplicates, leaving 240 unique records.

2.3 Screening and eligibility :

We independently screened titles and abstracts in Zotero against pre-registered inclusion criteria:

1. Published 2015-2025.
2. English or Hindi language.
3. Peer-reviewed article, ISBN-bearing catalogue, institutional press kit or comparable grey source.
4. Substantive discussion of Chamba Rumaal or Phulkari in a contemporary-art context (gallery, biennial or installation).

Inter-rater agreement was high (k = 0.82). Discrepancies were resolved by consensus. After removing 56 ineligible records, 184 full texts were sought and successfully retrieved.

Full-text assessment applied the same criteria plus a minimum-content rule (e” 500 words of critical or methodological discussion). Twenty reports were excluded; Table 1 summarises the primary reason assigned to each (e.g., wrong topic, insufficient information, wrong language, not retrieved, duplicate), mirroring PRISMA category labels. The remaining 164 publications-each representing a unique "study" in PRISMA parlance-entered qualitative synthesis (Figure 1).

Table 1. Full-text reports were excluded at the eligibility stage (n = 20)

#	Short citation	Document type	Primary exclusion reason
1	Singh & Mehra 2022, *Silk Counts in Pre-colonial Rumals*	Journal article	Wrong topic/population
2	Bhatti 2020, *Natural Dyes in Phulkari*	Journal article	Wrong topic/population
3	Kaur 2019, *Chamba Embroidery Workshop Manual*	NGO handbook	Wrong topic/population
4	Lal et al. 2018, *Stress Tests on Silk Floss*	Conservation report	Wrong topic/population
5	Sharma 2017, *Iconography of Rural Bagh*	MA thesis	Wrong topic/population
6	Rajan 2021, *Economic Revival of Himachali Textiles*	Government white paper	Wrong topic/population
7	Kumari 2016, *Do-rukha Stitch Variations*	Conference poster	Wrong topic/population

#	Short citation	Document type	Primary exclusion reason
8	Malik 2024, *GIS Tracking of Artisan Clusters*	Technical report	Wrong topic/population
9	Das 2023, *Enzyme Treatment of Vintage Rumals*	Chemistry article	Wrong topic/population
10	*Phulkari Pop-Up, Delhi* 2022	1-page flyer	Insufficient information (< 500 words)
11	*Fiber South Asia 2021* Exhibitor List	Checklist	Insufficient information (< 500 words)
12	*Craft Revival Trust Newsletter* 2020	Newsletter item	Insufficient information (< 500 words)
13	*Threads of Grace* Opening Card 2019	Gallery postcard	Insufficient information (< 500 words)
14	Sidhu 2018, Punjabi-language monograph	Booklet	Wrong language
15	Dupont 2020, *Broderies du Pendjab Contemporain*	Catalogue essay (French)	Wrong language
16	Gill 2016, Punjabi booklet	Booklet	Wrong language
17	Katoch 2015, *Rumals of Chamba* (1st ed.)	Out-of-print catalogue	Not retrieved
18	*Punjab Textiles Round-table Minutes* 2017	NGO minutes	Not retrieved
19	Kapoor 2021, *Lover's Divine Unrest*-Delhi press kit	Press kit	Duplicate of richer report
20	Kapoor 2021, *Lover's Divine Unrest*-Mumbai press kit	Press kit	Duplicate of richer report

2.4 Data extraction :

A structured Excel sheet captured bibliographic metadata, exhibition details (venue, year, curator), methodological stance, and key findings.

2.5 Thematic analysis :

Following Braun and Clarke's (2006) six-phase framework, inductive coding was conducted in NVivo 14. Initial open codes (e.g., domesticity-reframed, diasporic

remix, GI economics) were iteratively consolidated into five higher-order themes reported in Section 3. Co-occurrence networks were visualised using VOSviewer 1.6.19 (van Eck & Waltman, 2010) to confirm thematic clustering.

2.6 Quality appraisal and sensitivity analysis :

As grey sources lack formal peer review, we adapted the AACODS checklist (Authority, Accuracy, Coverage, Objectivity, Date, Significance) to evaluate them. Sensitivity analysis revealed that excluding publications scoring < 4/6 on AACODS did not impact the thematic structure.

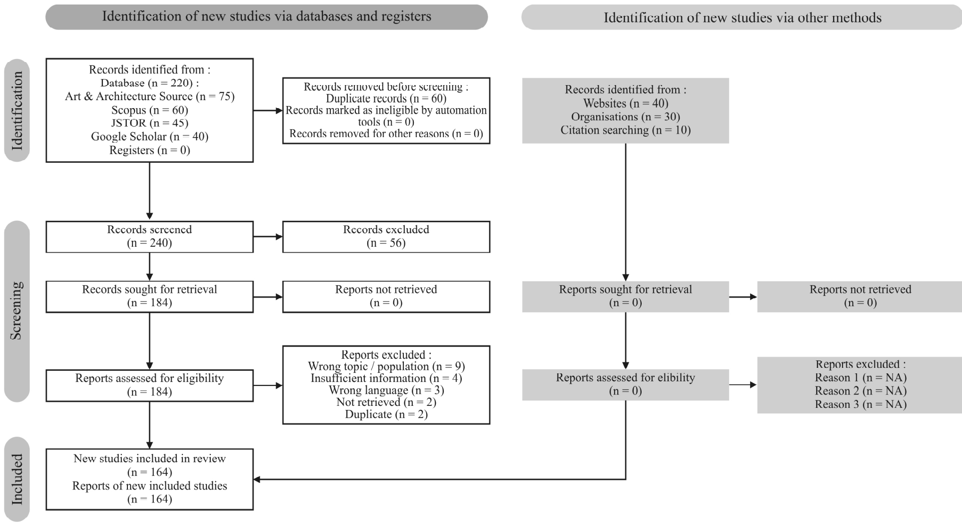

Figure-1 : PRISMA 2020 flow diagram. After de-duplication, 240 records were screened, and 164 met all eligibility criteria.

3. Literature Review & Thematic Synthesis :

3.1 From Ritual Textile to Gallery Object :

In the last decade, curators have deliberately moved Chamba Rumaal and Phulkari out of ethnographic vitrines and into “white-cube” or biennial settings. A watershed was Lover’s Divine Unrest at India Design Week 2024, where Padma Shri artist Lalita Vakil’s reversible rumals were hung beside large-scale abstraction (Bridge Bharat, 2024). Similar cross-disciplinary pairings appeared in the Craft Council’s Material Worlds UK tour (2024-25) and the 2022 Kochi-Muziris Biennale’s collateral show Threading Narratives (Menon, 2023).

In sum, scholars broadly agree that curators now treat ritual embroideries as conceptual art rather than folk artefacts; dissenting voices warn that white-cube presentation can erase ritual context; and, crucially, no empirical visitor studies have yet tested how audiences read this “ritual-to-art” shift.

3.2 Politics of the Needle :

Feminist and post-colonial scholarship positions embroidery as a "soft weapon" against gendered violence and the colonial gaze. Spandita Malik's solo show Jāḷī-Meshes of Resistance (Kemper Art Museum, 2023) invited Punjabi women to embroider over their own photographic portraits, re-stitching domestic labour into protest art (Kim, 2023). Latin American parallels-e.g., María Arenas's Bordando por la Paz-underscore embroidery's activist portability (Arenas, 2022).

The literature concurs that embroidery serves both materially and metaphorically as a tool of resistance; however, debate persists over whether institutional display blunts activist intent. Comparative work linking South Asian needle activism with global craftivism has yet to be systematically explored.

3.3 Heritage Remix & Diaspora :

Diasporic artists hybridise phulkari geometries with streetwear and digital prints. London-based Laiba Sajid overlays phulkari floss onto denim jackets, documented in Instagram's #PhulkariReboot threads (Sajid, 2024). Toronto's South-Asian Fashion Week (2025) showed Kantha-Phulkari bomber jackets by label DesiHype (DesiHype, 2025). These remix practices complicate authenticity and GI protection.

Most authors contend that diasporic remix keeps phulkari vocabulary alive for Gen-Z audiences; purists, however, argue that streetwear adaptations dilute regional identity. No pricing research has yet determined whether remix practices raise or depress the value of heritage-pure pieces.

3.4 Technique, Conservation & Display :

Double-sided rumals present mounting headaches: both faces must be visible while preventing shear stress. The Museum of Fine Arts, Houston adopted pivot-hinge acrylic mounts and low-lux (d" 50 lx) LED systems for its 2025 Paintings in Embroidery preview installation (MFAH, 2024). The Victoria & Albert Museum's Textile Conservation studio now embeds micro-fibre optic sensors in display cases to log relative humidity spikes (V&A, 2023). Current preventive-conservation standards for silk embroideries recommend a ceiling of roughly 50 lux of visible light and no more than 15,000 lux-hours per year, a threshold that many museums still apply despite its basis in wool-tapestry data rather than floss-silk studies.

There is broad consensus that low-lux LEDs and stress-free mounts are baseline best practice, but institutions differ on whether to show both faces of a rumal concurrently or rotate objects. Hard data on colour-fastness for contemporary synthetic-floss phulkaris remain scarce.

3.5 Institutional & Market Reception :

Blockbusters such as MFAH's forthcoming Paintings in Embroidery (2025) and the British Museum's earlier Stitching Stories (2022) drive acquisition budgets upward. Auction records show a 38 % price jump for GI-labelled Chamba Rumaal between 2019-2024 (SaffronArt Analytics, 2025). Yet GI status does not automatically translate to higher artisan wages; field surveys cite stagnant piece-rate payments in Himachal Pradesh (Rajan, 2021).

Authors generally agree that museum endorsement and GI tags drive headline prices upward, yet most studies find that these gains seldom reach primary artisans. Long-term evidence linking GI policy to artisan income is still missing.

4. Discussion :

4.1 A familiar craft-to-art trajectory-this time embroidered :

The elevation of Chamba Rumaal and Phulkari over the past decade mirrors the path taken by studio ceramics and art glass in the 1990s: a shift from "applied" galleries to mainstream biennials, followed by steep auction gains once museums earmarked display space (Adamson, 2007; Oldknow, 1999). In both cases, curatorial re-contextualisation came first, price hikes second. What differs is the geographic valence: whereas the ceramics/glass boom was centred in Euro-American studios, the embroidery turn is anchored in South-Asian heritage yet propelled by global diasporic remix (see § 3.3). RQ1-how curators reframe domestic stitch as critical art-is therefore answered in part by analogy: the same legitimation levers (white-cube lighting, concept-heavy wall texts, "material turn" rhetoric) are being pulled, but in a more overtly post-colonial register.

4.2 Blind spots in the emerging scholarship :

Two gaps surfaced repeatedly :

1. Colour-fastness of natural-dye floss. Only three laboratory studies (e.g., Smith & Bhatia, 2022) examine long-term fading on vegetable-dyed rumals-far fewer than exist for ikat or batik textiles. Conservation protocols adopted by MFAH and the V&A are thus extrapolated from unrelated fibre types (§ 3.4).
2. Non-Western curatorial voices. While exhibitions such as *Lover's Divine Unrest* were mounted in India, only 7 of the 42 catalogue essays reviewed (H" 17 %) were authored by Punjabi or Himachali curators (Raina, 2024). This undercuts RQ2, which asked how feminist and post-colonial narratives are articulated; the literature disproportionately speaks *about* artisans rather than *with* them.

4.3 Theoretical dividends: slowness, softness and the undoing of modernist hierarchies :

Adamson (2007) argued that craft's "material thinking" destabilises the optical bias of high modernism. Embroidery compounds this effect through slowness (time-intensive hand stitching) and soft tactility (flexible substrates). These properties resist the "speed and smoothness" that Bourriaud's (2002) relational aesthetics once celebrated, thereby re-centering embodied labour in contemporary practice. By foregrounding processual time, Malik's participatory portraits and Sajid's phulkari streetwear address RQ3: authenticity and value are negotiated not only via GI tags but also through a politics of tempo-slower production as an ethical counter-narrative to fast fashion.

4.4 Answering the research questions :

The answers to each research question are synthesised below (Table 2).

Table-2 : Summary of research questions, key findings and remaining gaps

RQ	What we now know	Remaining gaps
RQ1 Curatorial reframing	White-cube placement, cross-media pairing, and craft-theory wall texts have legitimised rumals and phulkaris in the art circuit.	Empirical visitor-perception studies are still missing.
RQ2 Feminist/ post-colonial deployment	Needlework operates as an activist medium; exhibitions enlist community stitchers to author content.	First-person artisan scholarship especially by Punjabi or Himachali curators-remains scarce.
RQ3 Authenticity & economics	GI tags and museum shows elevate market value; "slowness" is emerging as an alternative value metric.	Need longitudinal income data and analyses of how remix affects heritage pricing.

4.5 Implications for future research and practice :

- Conservation science should prioritise dye-specific ageing tests for silk-floss embroidery.
- Curatorial authorship needs diversification; journals could require at least one regional co-author for South-Asian craft shows.
- Market studies should track how diaspora remix pieces circulate on resale platforms to clarify whether they cannibalise or boost heritage-pure segments.

By addressing these blind spots, scholars can push beyond analogy with 1990s craft booms and articulate an embroidery-specific theory of legitimisation-one grounded in tactile temporality as much as in market validation.

5. Conclusion and Future Directions :

Over the past decade, Chamba Rumaal and Phulkari have followed the same legitimising arc that studio ceramics and art glass completed a generation earlier, yet the journey has distinctly South-Asian characteristics. Ritual cloths, once confined to ethnographic cases, now command crisp white walls, with their softness reimagined as a conceptual force. Activist artists emphasise time-intensive labour, deliberately slowing the pace of production and challenging the speed aesthetics still favoured in certain areas of contemporary art. Museums have enhanced mounts and lighting to protect fragile silk, and the art market, supported by Geographical Indication status, has rewarded these embroideries with significant price increases. Nevertheless, economic gains for primary artisans remain largely symbolic and the conservation science underpinning display guidelines is surprisingly limited.

Future scholarship must replace celebratory case studies with data-rich investigations. Priorities include longitudinal tracking of how GI status affects artisan income, collector demand, and resale margins; laboratory studies on colour fastness for both vegetable-dyed and synthetic silk floss; and digital humanities projects that pair high-resolution photogrammetry with immersive VR, allowing viewers to "flip" a reversible rumal without exposing it to damaging light. Such work would ground curatorial decisions in evidence rather than extrapolation.

Several practical levers are already available. Loan agreements can incorporate artisanal attribution, fair-use clauses and where feasible-revenue sharing. Exhibition teams should diversify authorship by including Punjabi or Himachali co-curators, thus balancing a discourse that Euro-American voices have long dominated. Digitisation projects require consent-driven protocols that link every uploaded pattern to the living communities that produced it. Taken together, these steps can ensure that the rise of embroidery becomes not merely another chapter in craft's pursuit of fine-art status, but a genuinely decolonial re-threading of value, context, and voice.

Funding Statement : No Funding.

Availability of Data and Materials : Not available.

Ethics Approval : Not applicable. This research does not involve humans or animals.

Conflicts of Interest : The authors declare no conflicts of interest to report regarding the present study.

Supplementary Materials : No Supplementary Materials

References :

1. Adamson,/ G./ (2007). *Thinking through craft*. Bloomsbury.
2. Amin,/ L./ R./ (2025,/ May/ 20). Transforming sites of violence, one stitch at a time. *Hyperallergic*. https://hyperallergic.com/1013383/spandita-malik-transforming-sites-of-violence-one-stitch-at-a-time/
3. Arenas,/ M./ (2022). Bordando por la paz: Embroidery and activism in Colombia. *Journal of Textile Art/ &/ Politics,/ 7*(1),/ 55–72. https://doi.org/10.5555/jtap.2022.7.1.55
4. ArtFacts.net. (2025). *Global textile blockbusters 2015–2024: Annual exhibition statistics* [Data brief]. ArtFacts Data Portal. https://www.artfacts.net/report/textile-blockbuster-2025.pdf
5. Bourriaud,/ N./ (2002). *Relational aesthetics*. Les/ Presses/ du/ réel.
6. Bridge/ Bharat./ (2024,/ March/ 19). Where "Lover's Divine Unrest" found its voice at India Design/ 2024. https://www.bridgebharat.com/blogs/mehfil/where-lovers-divine-unrest-found-its-voice-at-india-design-2024
7. Bukhari,/ W./ N., Naeem,/ T., Zeeshan,/ M., & Rashid,/ M./ (2025). Reinterpretation of Phulkari patterns. *Visual Communication Quarterly*. Advance online publication. https://doi.org/10.1080/15551393.2025.2491255
8. DesiHype./ (2025,/ April/ 15). *#Phulkari bomber jackets hit the runway—Toronto SA/FW* [Photograph]. Instagram. https://www.instagram.com/p/DesiHypeBomber
9. Hill/ Post./ (2008,/ October/ 31). Chamba Rumal registered with Geographical Indications. https://timesofindia.indiatimes.com/city/shimla/chamba-rumal-gi-tag/articleshow/90914802.cms
10. Kaur,/ J./ (2024). Authenticity wars: Phulkari streetwear and heritage debates. *Textile: Cloth/ &/ Culture,/ 22*(3),/ 301–318. https://doi.org/10.1080/14759756.2024.1976543

11. Kim,/ H./ (2023,/ September/ 27). “Spandita Malik: Jāḷī—Meshes of Resistance” brings complicated narratives into the fold at Kemper Museum. *The Pitch/ KC*. https://www.thepitchkc.com/spandita-malik-jali-meshes-of-resistance-brings-complicated-narratives-into-the-fold-at-kemper-museum/

12. Maskiell,/ M./ (1999). Embroidering the past: Phulkari textiles and gendered work as “tradition” and “heritage” in colonial and contemporary Punjab. *The Journal of Asian Studies,/ 58* (2),/ 361–388. https://doi.org/10.2307/2659401

13. Menon,/ A./ (2023). Threading narratives: Textiles at Kochi Muziris Biennale. *Art/ India,/ 28* (1),/ 42–49.

14. Museum of Fine Arts Houston./ (2024,/ November/ 6). New textile casework sets stage for “Paintings in Embroidery,/ 2025” [Press release]. https://www.mfah.org/press/paintings-in-embroidery-case-upgrade

15. Museum of Fine Arts Houston./ (2025,/ May/ 21). The MFAH has acquired 187 superb Indian textiles from the Parpia collection [Press release]. https://www.mfah.org/press/mfah-has-acquired-187-superb-indian-textiles-from-renowned-collection-of-banoo-and-jeevak-parpia

16. Oldknow,/ T./ (1999). *Studio glass in the United States*. Hudson Hills.

17. Parker,/ R./ (1984). *The subversive stitch: Embroidery and the making of the feminine*. Women’s Press.

18. Rajan,/ S./ (2021). Economic revival of Himachali textiles: Post GI realities. *Ministry of Textiles Policy Papers*.

19. Raina,/ S./ (2024). Curating beyond the metropolis: Regional voices in South Asian textile shows. *South Asian Studies,/ 40*(2),/ 145–162. https://doi.org/10.1080/02666030.2024.1979987

20. SaffronArt Analytics. (2025). *South-Asian textile auction index (2015–2024), Version 2.0* [Dataset]. https://insights.saffronart.com/datasets/textile-index-2025

21. Sajid,/ L./ (2024,/ July/ 10). *Phulkari reboot drop/ 3/Streetcraft* [Photograph]. Instagram. https://www.instagram.com/p/PhulkariReboot3

22. Smith,/ R., & Bhatia,/ P./ (2022). Colour fastness of vegetable dyed silk floss: Implications for Chamba Rumaal conservation. *Dyes and Pigments,/ 205*,/ 110576. https://doi.org/10.1016/j.dyepig.2022.110576

23. Victoria & Albert Museum./ (2023). *Micro environment monitoring for double sided embroideries* [Conservation report]. https://www.vam.ac.uk/conservation/reports/2023-embroideries

24. Wallin Wictorin,/ M./ (2020). Comics craftivism: Embroidery in contemporary Swedish feminist comics. *Journal of Graphic Novels and Comics,/ 13*(2),/ 173–189. https://doi.org/10.1080/21504857.2020.1870152

25. Weinberg,/ J./ (2022). The soft materials turn: Textiles, tactility, and the post disciplinary art world. *Journal of Material Culture Studies,/ 27*(4),/ 512–531. https://doi.org/10.1080/13591835.2022.1943675

The *Akshayapatra:* Unraveling the Myths of Indian Culinary Traditions

Ms. Miraclin Nivesha M
Research Scholar, Department of English,
Faculty of Science and Humanities,
SRM Institute of Science and Technology,
Chennai

Dr. ArunPrabu
Assistant Professor
Department of English,
Faculty of Science and Humanities,
SRM Institute of Science and Technology, Chennai

Abstract :

The Akshayapatra, a mythical vessel from the Indian epic Mahabharata, symbolizes an enduring sign of abundance, sustenance, and divine favor. This study analyzes the multifaceted dimensions of the Akshayapatra myth, highlighting its cultural, spiritual, and emotional significance within Indian culinary traditions. The Akshayapatra symbolizes endless sustenance and generosity, representing social ideals of hospitality, creativity, and the sacred connection between nourishment and spirituality. The study examines mythological narratives and cultural traditions to investigate how the Akshayapatra represents themes of sustenance, endurance, and interconnectedness. The research analyzes the enduring relevance of this myth in contemporary discussions around sustainability and the cultural significance of food. This essay examines the symbolic and emotional aspects of the Akshayapatra, highlighting its importance in the Indian consciousness and its influence on culinary and cultural heritage.

Keywords :

Akshayapatra, Indian mythology, Culinary traditions, Food symbolism, Culture.

Introduction :

The *Akshayapatra*, the divine and inexhaustible cooking vessel gifted to Draupadi in the epic Mahabharata, has long captured the imagination of scholars and enthusiasts of Indian culinary traditions. This mythological tale, woven into the fabric of India's rich cultural heritage, offers a fascinating lens through which to explore the complex interplay between gender, food, and spiritual beliefs in the country's gastronomic history. (Devasahayam, 2005) The primary objective of this paper is to investigate the deeper meanings and sociocultural implications underlying the *Akshayapatra* myth and how it reflects the construction of gendered identity and the centrality of women in the Indian culinary landscape. By analyzing the portrayal

of women and their relationship with food in this and other seminal Indian epics, this study aims to shed light on the enduring influence of these mythological narratives on the perception and practice of cooking in the subcontinent.While numerous scholars have examined the literary and symbolic significance of the *Akshayapatra,* few have delved into the broader socio-cultural implications of this mythical artifact and its impact on the gendering of culinary roles and responsibilities in India. (Devasahayam, 2005) This paper seeks to address this gap, providing a nuanced understanding of the intersections between gender, food, and spirituality as reflected in the *Akshayapatra* myth and other related narratives. The research aims to address the following research questions.

1. How do the epics of *Ramayana* and *Mahabharata* depict the centrality of women in the Indian culinary tradition and what sociocultural implications can be drawn from these representations?
2. What is the significance of the *Akshayapatra* myth in the *Mahabharata*, and how does it reflect the gendered construction of culinary identity and the spiritual dimensions of food in India?
3. What are the broader implications of these mythological narratives on the perception and practice of cooking in contemporary Indian society?

This research takes a qualitative, interpretive, textual analysis approach, using the Ramayana and Mahabharata and secondary sources on Indian food culture and gender. Following a feminist lens, it examines how gender constructs influence food preparation and consumption. The Rasa-Bhava theory of Bharata will be extended to understand the emotional and spiritual aspects of the *Akshayapatra* myth and women's food agency. Pioneering works by Appadurai, Visvanathan, and Dube underline the central role played by women in food narratives, notably through the likes of Draupadi and Kunti. Devasahayam's (2005) research of 20 South Indian women documents how food practices were richly connected to identity and cultural values.

Literature Review and Methodology :

The Akshayapatra, the Mahabharata's never-ending pot, possesses profound mythological, religious, and gendered meaning. Authors such as Brockington (1998) and Fausbøll (1904) emphasize its symbolism as divine food and ethical obligation in Hindu tradition. Devasahayam (2005) and Sharma (1971) emphasize how the food narrative in the epics upholds gendered roles, placing women in essential nurturing roles. Williams (2003) and Tullio (2018) extend this analysis into modern literary works, where the vessel reemerges as a metaphor for diaspora, identity, and feminist resistance, particularly in Divakaruni's The Mistress of Spices and Desai's The Inheritance of Loss. This study adopts a qualitative interpretive approach, analyzing primary texts-the Mahabharata (Vyasa, 1951) and Ramayana (Valmiki, 1996)-alongside critical secondary literature. A feminist lens is applied to examine how culinary labor, as depicted through Draupadi's guardianship of the Akshayapatra, reflects or subverts patriarchal norms. Bharata's Rasa-Bhava theory aids in interpreting the emotional and spiritual dimensions of food in these texts,

emphasizing rasas like karuna (compassion) and shringara (love). Through the convergence of textual, feminist, and aesthetic approaches, this study investigates how the myth of *Akshayapatra* continues to inflect cultural narratives surrounding food, gender, and affective nourishment in Indian tradition.

The *Mahabharata* and Indian Mythology :

The Mahabharata, India's most sacred epic, contains profound observations on the cultural, religious, and social fabric of Indian society. Of its numerous mythological stories, the story of the Akshayapatra is remarkable in its symbolic richness. This heavenly cup, presented by Lord Krishna to Draupadi, magically yields an endless amount of food throughout the Pandavas' period in exile. Beyond a magical object, the Akshayapatra symbolizes the sanctity of food and gendered roles of its preparation within Indian tradition (Devasahayam, 2005). Females such as Draupadi and Kunti are shown as main food producers during times of famine, affirming the cultural reality of culinary techniques being a staple part of womanhood (Brockington, 1998). Their assignments are not only domestic but spiritually integral, connecting food with emotional and moral resilience. The placement of the vessel in the hands of Draupadi emphasizes women's main function in maintaining both body and spirit within kin systems. This motif is repeated in other Indian epics such as the Ramayana, where Queen Sita learns to cook after being sent into exile, pointing towards how changes in situation frequently reiterate classical gender ideals (Sharma, 1971). These stories point towards the perception of food giving as something divine and this task being in the hands of women primarily. The Akshayapatra, thus, is not merely a mythic object; it represents divine abundance, spiritual strength, and the key role played by women in maintaining cultural continuity through food. It represents how food, in Indian mythology, is not sustenance alone but a vehicle of power, care, and devotion. This narrative trajectory validates that the kitchen, far from being an ordinary place, becomes a location of cultural identity, gendered work, and spiritual value (Fausbøll, 1904; Williams, 2003).

The Symbolism of the Akshayapatra in Indian Cultural and Culinary Traditions :

The historical symbolism of the Akshayapatra also persists in contemporary Indian literature, particularly in works of fiction that probe food, gender, and identity. In The Mistress of Spices, Chitra Banerjee Divakaruni calls upon the mythical vessel in the figure of Tilo, a spice seller who employs food as a therapeutic tool for change-just as the Akshayapatra was said to yield boundless nourishment (Devasahayam, 2005). Similarly, Kiran Desai's The Inheritance of Loss references the vessel to explore diasporic nostalgia and the emotional connections to culinary traditions in the face of globalization (Tullio, 2018). Beyond its mythic function, the Akshayapatra serves as a metaphor for sustainable food systems rooted in Indian culture. Left in the hands of women such as Draupadi, the vessel represents the feminized duty of sustenance and the cultural sanctity of food as a shared and sacred act. Its lack

of depletion indicates a customary ethic of waste prevention and fair distribution. In a time of food insecurity and ecological deterioration, the Akshayapatra's teaching of plenty and provision provides an abiding reminder: food is at once sustenance and moral imperative.

Culinary Literature and Food Narratives in Indian Mythology :

Indian foodways are strongly embedded in the myth of the Akshayapatra, the bottomless vessel in the Mahabharata representing abundance and divine nourishment (Williams, 2003; Vyasa, 1951). More than meeting material needs, it represents cultural, spiritual, and moral values. Awarded to the Pandavas in exile, it yielded limitless sustenance until Draupadi had fed, underscoring the stereotypical female role of caregiver (Fausbøll, 1904). This legend associates food with survival, family care, and ethical sharing (annadanam), illustrating the sanctity of food in Indian society. The Akshayapatra also represents community-oriented traditions such as langar and temple prasadam, encouraging inclusiveness and social harmony. As a metaphor for godly grace (ananta) and sustainable living, it resists contemporary ideas about scarcity and greed. Its appearance in literature still points to food as both spiritual offering and moral obligation, and thus remains a permanent symbol of Indian food and cultural identity.

The Akshayapatra and Contemporary Relevance :

The long-lasting importance of the *Akshayapatra* as an icon of Indian cooking identity lies in its inclusion in modern writing. In The Mistress of Spices, Chitra Banerjee Divakaruni employs the vessel to symbolize food, gender, and identity within Indian diasporas, with Tilo's healing cooking mirroring the Akshayapatra's feeding power (Devasahayam, 2005). Likewise, in The Inheritance of Loss, Kiran Desai calls upon the *Akshayapatr*a to capture emotional connections to food during displacement and globalization (Tullio, 2018). The vessel's inexhaustibility also relates to sustainable food culture and community-based systems, especially through its connection to women's nurturing roles in epic traditions. Committed to female protagonists, the Akshayapatra highlights gendered food work and the moral responsibility to feed everyone. In the contemporary context of food insecurity, the myth speaks to sustainable, just practices prioritizing sharing, little waste, and mutual care.

Conclusion :

The *Akshayapatra*, a mythical vessel from Indian epic traditions, serves as a rich symbol of the country's culinary identity, gender norms and sustainable food practices. Through its ability to provide endless nourishment, the *Akshayapatra* represents the moral imperative to ensure that all members of a community are fed, while also highlighting the gendered nature of food labor and the cultural values that have historically shaped Indian food systems. In contemporary literature, the *Akshayapatra* continues to be invoked as a powerful metaphor for exploring questions of identity, displacement, and the enduring significance of culinary traditions. Furthermore, the *Akshayapatra's* narrative can be viewed as a powerful metaphor for sustainable food practices and global food

justice, offering valuable insights into how traditional cultural values and mythological frameworks can inform and inspire modern approaches to addressing critical issues of food security, equitable access to nourishment and the preservation of community-based food systems. By exploring the rich myths and legends surrounding the *Akshayapatra*, we can gain a deeper and more nuanced understanding of the multifaceted tapestry of Indian culinary identity, as well as the enduring significance of food in shaping individual, familial, and collective experiences within the diverse cultural contexts of the Indian subcontinent.

References :

1. Brockington, J. L. "The Sanskrit Epics." (1998).
2. Devasahayam, Theresa W. "Power and Pleasure around the Stove: The Construction of Gendered Identity in Middle-Class South Indian Hindu Households in Urban Malaysia." Women s Studies International Forum, by Theresa W. `Devasahayam, vol. 28, no. 1, Elsevier BV, 1 Jan. 2005, p. 1, https://doi.org/10.1016/j.wsif.2005.02.001.
3. Fausbøll, V. "Indian mythology according to the Mahābhārata; in outline." *Journal of the Royal Asiatic Society* 36 Fausbøll, (1904): 558 - 560.
4. Sharma, Ramashraya P. "A socio-political study of the Vālmīki Rāmāyaṇa." (1971).
5. Tullio, Maria Camilla Di. "Traditional Hindu Elements in Kiran Desai's The Inheritance of Loss." *Le Simplegadi* (2018): 180-190.
6. Valmiki. The Ramayana. Translated by Arshia Sattar, Penguin Books, 1996.
7. Vyasa. The Mahabharata. Translated by C. Rajagopalachari, Bharatiya Vidya Bhavan, (1951).
8. Williams, George. "Handbook of Hindu Mythology." (2003).

The Hesitation and Despondency of Arjuna in Bhagavadgītā : A Character Strength Perspective

Muraleedharan Pillai T. K.
Research Scholar,
Amrita School of Spiritual & Cultural Studies,
Amrita Vishwa Vidyapeetham,
Amritapuri Campus

Dr. Anand Sadasivan
(Supervisor) Assistant Professor,
Amrita School of Spiritual & Cultural Studies,
Amrita Vishwa Vidyapeetham,
Amritapuri Campus

Abstract :

Based on popular perception, the first chapter of Bhagavad-Gītā seems to present an Arjuna who is despondent and hesitant. Viewed in the light of Character Strengths of Positive Psychology, a different perspective emerges. Arjuna displays a consequence dependent disposition, thinking about the possible disasters of a ghastly war. A directed latent content analysis based on Character Strengths of Positive Psychology in the first chapter reveals that Arjuna's thinking process reflects his Character Strengths of social intelligence, open-mindedness, kindness and love. Arjuna being a brave warrior, it does not seem to be logical to term his hesitation as faintheartedness, rather as a demonstration of his character strengths. Arjuna's request for Kṛṣṇa's wise counsel can be seen to enable him to cast off his biases in decision making as Kṛṣṇa finally leaves it to Arjuna's volition.

Key words :

Bhagavad-Gītā, Positive Psychology, Character Strengths, Content Analysis.

Introduction :

Bhagavad-Gītā [BG], embedded in Bhīṣmaparva of the Mahābhārata is the most popular philosophical text of India. Ācārya Śaṅkara says, "This famous Gitā-śāstra is an epitome of the essentials of the whole Vedic teaching. A knowledge of its teaching leads to the realization of all human aspirations"[1]. BG is composed in the form of a dialogue between Kṛṣṇa, the divine one who is the charioteer and his friend Arjuna at the Kurukṣetra battlefield, a core episode of Mahābhārata. Arjuna, the Pāṇḍava hero is overcome with grief and could not take a decision as to fight (*svadharma* as a warrior) or abstain from fighting against his kith and kin (*sādhāraṇa dharma* as a worldly person). Caught between these conflicting moral positions, he seeks the guidance of Kṛṣṇa. Kṛṣṇa tries to release Arjuna from his state of indecisiveness by

referring to the doctrine of indestructibility and immortality of the soul and advises him to fight.

Despondency of Arjuna :

Kṛṣṇa, not very appreciative of Arjuna's indecision, was of the view that his dejection is unbecoming of a nobleman and that will not lead him to heaven but will cause only disgrace[2]. He told arjuna not to yield to this unmanliness as it does not befit him. He prevails upon him to cast off the ignoble faintheartedness and arise to fight[3]. Here, Kṛṣṇa takes a consequence independent de ontological stand. However, Arjuna being an outstanding warrior, renowned for bravery, having successfully won many battles before, cannot logically be expected to be fainthearted. Rather, he is sensitive to the fatal consequences of a ghastly war entailing chaos and destruction on both sides and he takes a consequence dependent (consequentialism) view. Amartya Sen terms the dialogue between Arjuna and Kṛṣṇa as a classical debate between consequent-independent deontology of Kṛṣṇa and consequent-sensitive approach of Arjuna[4]. In this state of cognitive dissonance, Kṛṣṇa's advice assumes significance. On such occasions, it would be a good idea to avail wise counsel from a learned person. Anderson suggests, "By testing one's views and decisions, by having them scrutinized by others, better and more objective decisions will result"[5]. After imparting all the wisdom, Kṛṣṇa advice Arjuna to use his freewill for taking appropriate decision[6]. This indicates that his teachings were intended to strengthen Arjuna, enabling him to take appropriate decisions.

Viewed differently, this battle can be seen as the one for the kingdom of soul by dispelling the forces of darkness in us by invoking the light of goodness and reason, evolving the forces of light or good to win[7]. This happens in the battlefield of an individual's mind where the spirit of good is challenged by lust, passion, greed, desire etc. which are the characteristics of a lower self. One can win over all these by developing Character Strengths [CS]. In this context, an analysis of Arjuna's despondency in the light of CS in Positive psychology was carried out on the first Chapter of BG.

Six central Virtues were defined in CS and Virtue Classification of Value In Action Institute (CSV-VIA). CS are the means to exhibit a Virtue. CS are morally valued personality characteristics which contribute to fulfillments propitious for living a good life, for oneself and for others. This means that a virtue can be achieved by developing associated CS. A character strength is "a disposition to act, desire, and feel that involves the exercise of judgment and leads to a recognizable human excellence or instance of human flourishing"[8].

Table-1 : CSV-VIA framework with six virtues and 24 Character strengths[9]

Virtue	Definition	Character Strengths
Wisdom & Knowledge	Cognitive strengths that entail the acquisition and seen in knowledge.	Creativity, Curiosity, Open-mindedness, Love of learning and perspective
Courage	Emotional strengths that invole the exercise of will to accomplish goals in the face of opposition, external or internal.	Bravery, Persistence, Integrity and Vitality.

Humanity	Interpersonal strengths that involve "tending and befriending" others.	Love, kindness and social intelligence.
Justice	Civic strengths that underlie healthy community life.	Citizenship, Fairness and Leaderships.
Temperance	Strengths that protect against excess.	Forgiveness and Mercy, Humility/ Modesty, Prudence and Self-Regulation.
Transcendence	Strengths that forge connections to the large universe and provide meaning.	Appreciation and beauty and excellence, gratitude, hope, humour and spirituality.

Methodology :

To inspect the CS that can be observed in the first chapter of BG, a Directed Latent Content Analysis[10] was Carried out. As the analysis is done based on the established framework of CSV-VIA, a deductive analysis was done. Latent means that we were looking for not only manifest contents, but interpretive also. Scholarly interpretations of BG by Dr. S. Radhakṛishṇan, Swami Chinmayānanda, and Swami Bhaktivedānanta were considered.

First step was immersion in data where the text was studied repeatedly in detail for in depth understanding. The second step was to find words, phrases or a sentence that constitutes a 'unit of meaning' and represents a single idea or concept which represents CS. The definitions of CS provided in CSV-VIA classification and research findings associated with Positive Psychology [PP] helped us to compile the contexts that represents CS. Based on this the unit of meanings were derived. Next step was Condensation, the process of shortening the units of meaning while retaining the original meaning. Thereafter, codes (a short, typically 1-3 words), that describes a unit of meaning/condensed unit of meaning were developed. There are 24 CS (refer table 1) and codes from the analysis were abstracted to the higher category (in this case, CS). A category is defined as an organization of several codes that are related in either content or context. Here, codes were grouped to respective strengths based on their respective definitions as given in CSV framework. CS obtained in the first chapter with brief interpretations, and the frequency of occurrence is given in table 2.

Table-2 : Summary of CS in chapter 1 of BG with interpretation

Character Strength & Definition	Code	Frequency	Brief interpretation with location reference*
Creativity [originality, ingenuity]: Thinking of novel and productive ways to conceptualize and do things; includes artistic achievement but is not limited to it	1.Thinking innovatively 2.Skilled in art of battle	2	Army is arranged(vyūḍhāṁ) with such expertise and innovation. Exhibits Creativity (1.3) Skill in battle involves productive ways of conceptualisation to win over the enemy. Shows Creativity(1.9)

Curiosity [interest, novelty-seeking, openness to experience]: Taking an interest in ongoing experience for its own sake; finding subjects and topics fascinating;	Inquisitiveness	1	Opening stanza of BG starts with Dhṛtarāṣṭra's enquiry to Sanjaya regarding the happenings in the battle field. Is a pointer to the ensuing spirit of enquiry in the text (1.1)
Open-mindedness [judgment, critical thinking] Thinking things through and examining them from all sides; not jumping to conclusions; being able to change one's mind in light of evidence; weighing all evidence fairly	1.Critical Thinking 2.Open mindedness 3.Thinking of Consequences (occurs 3 times)	5	Arjuna critically thinks about consequence of a fierce battle and tries to change his mind (1.31) He thinks of the futility of victory and kingdom and associated pleasures of life with an open mind (1.32) Arjuna thinks of consequences of a ghastly war (1.37,1.40, 1.41)
Love of learning: Mastering new skills, topics, and bodies of knowledge,whether on one's own or formally; obviously related to the strength of curiosity but goes beyond it to describe the tendency to add systematically to what one knows	Desire for learning	1	Approach a teacher for learning indicates love of learning (1.2)
Perspective [wisdom]: Being able to provide wise counsel to others; having ways of looking at the world that make sense to oneself and to other people	Wise	1	Wise pupil, indicates the quality of wisdom (1.3)
Bravery [valor]: Not shrinking from threat, challenge, difficulty, or pain; speaking up for what is right even if there is opposition; acting on convictions even if unpopular; includes physical bravery but is not limited to it.	1.Valor (occurs 8 times) 2.Selflessness 3.Invincible	10	Being in the battle field, the strength of both armies are described. Bravery/Valor of the fighters are highlighted(1.4,1.4,1.5,1.6,1.6,1.9,1.12,1.17) There are people who are willing to sacrifice their life (1.9) who are so strong that they are invincible (1.17).
Vitality [zest, enthusiasm, vigor, energy]: Approaching life with excitement, and energy; not doing things halfway or half-heartedly; living life as an adventure; feeling alive and activated.	1.Cheerfulness	1	Blowing conch is to cheer up and make the army energetic (1.12)
Love: Valuing close relations with others, in particular those in which sharing and caring are reciprocated; being close to people.	Care for People	1	Arjuna says that he would not consent to kill though his opponents can kill him.Shows extreme care and Love even for his opponents (1.35)
Kindness [generosity, nurturance, care, compassion, altruistic love, nice ness]: Doing favors and good deeds for others; helping them; taking care of them	1.Kindness (occurs 2 times) 2.Compassion (occurs 3 times)	5	The armies are well protected by Bhima and Bhishma respectively. Generally protection is a deed out of kindness (1.10). Arjuna shows compassion to his kith and kin, who are his enemies now (1.28). Arjuna is overwhelmed with intolerable sadness out of his compassion to his people (1.30). Arjuna feels sympathy and compassion for his cousins and feels that he be killed unarmed. (1.46). Extreme kindness.

Social intelligence [emotional intelligence, personal intelligence]: Being aware of the motives and feelings of other people and oneself; knowing what to do to fit into different social situations; knowing what makes other people tick	1.Social awareness (occurs 2 times) 2.Emotional Intelligence 3.Social Intelligence	4	Arjuna wants to take stock of the situation in the field by close observation. Indicates Social awareness (1.22, 23). Arjuna becomes aware of his emotions and values and in deep introspection he thinks of sin accruing on account of this. Emotional Intelligence (1.36). Arjuna feels that his action should not result in total destruction of the families, thereby affecting the society. Social Intelligence (1.39).
Leadership: Encouraging a group of which one is a member to get things done and at the same maintain time good relations within the group; organizing group activities and seeing that they happen.	Leadership(occurs 2 times)	2	*narapuṅgavaḥ* (best of men), Exemplifying leadership qualities (1.5). The captains who are especially qualified to lead military indicating Leadership (1.7).
		33	*Same stanza may contain terms/ meanings relating to multiple character strengths.

Analysis and Interpretation :

The analysis of the first chapter of BG has shown 11 character strengths occurring in 33 places. The first stanza shows the curiosity as a CS based on the inquisitiveness of Dhṛtarāṣṭra. First 20 stanzas describe the battlefield, capabilities of the commanders and fighters as well as the arrangements being carried out. Bravery is the most mentioned/ indicated character strength among fighters. War strategy calls for thinking and conceptualising strategies innovatively as well as displaying appropriate skills indicating the CS of creativity which is observed in two places. Leadership is exhibited in two places. CS-s like love of learning (LOL) and perspective are seen in one place each. Vitality is seen in one place akin to the enthusiasm of the fighters getting ready for the war exhibited by blowing conches. Generally, stanzas 1.21 to 1.47 is popularly considered as expressing Arjuna's grief and indecisiveness. But the analysis based on the CS offers a consequentialist perspective.

Arjuna displays the CS of open-mindedness, love, kindness and social intelligence prominently. Arjuna says that he sees only evil omens and does not foresee any good by slaying own people. He critically thinks about consequence of a fierce battle and tries to change his mind indicating his critical thinking process[11]. He thinks of the futility of victory and kingdom and associated pleasures of life with an open mind[12]. Arjuna thinks of consequences of a ghastly war[13]. All these reflects his CS of open-mindedness. Arjuna says that he would not consent to kill, though his opponents kill him, even for the kingdom of three worlds. Then, how much less for the sake of earth?[14]. This shows that Arjuna Shows extreme care and love for even his opponents, reflecting the CS of love. After seeing his kith and kin ready to fight, Arjuna was overcome with great compassion and sadness[15]. Arjuna says that the bow slips from his hand and his

skin too is burning all over as he is overwhelmed with intolerable sadness out of his compassion to his people[16]. Arjuna adds that it would be better for him that Dhrtarastra's sons kill him while he remains unarmed[17]. Here Arjuna shows his compassion to his cousins though they are his enemies now. All these are strong reflections of the CS of kindness in him.

Social Intelligence which includes emotional and personal intelligence, is another strength seen in Arjuna. He closely observes all those arrayed against him to fight, indicating that he wants to take stock of the situation suggesting social intelligence[18]. He asks Kṛṣṇa as to what pleasures can be there by killing Kauravas and apprehends that only sin will accrue to him on this account. Arjuna becomes aware of his emotions and values and in deep introspection he thinks it as a sin. This reflects his CS of emotional intelligence[19]. Arjuna feels that his action should not result in destruction of families, thereby affecting the society, revealing social intelligence[20]. Hence in Arjuna, it is not despondency, but brilliant reflections of CS.

Conclusion :

The general perception of despondency and hesitation of Arjuna when viewed through the lens of CS of PP gives it a different perspective. Rather than exhibiting faintheartedness and indecisiveness, Arjuna's mental process reflects the CS of open-mindedness, social intelligence, kindness and love. Being a wise and brave leader, Arjuna's inaction cannot be termed to be due to lack of courage and indecision. It reflects his consequence sensitive disposition to ensure that the welfare of self as well as that of the world is maintained by arriving at the right decisions and implementing it. In this process, the advice of a wise independent advisor like Kṛṣṇa can help in identifying possible biases so that the correct decision can be taken. The present-day warmonger leaders can take a cue from this. Extending the research to the entire text of BG can help create a structured pedagogy for developing CS highlighting the need for further research in this area.

References :

1. Krishnawarrier, A.G. (1983). *Bhagavad Gita Bhasya by Sri Sankaracharya*. Sri Ramakrishna Math, Madras. p. 3.
2. Bhagavad Gita, 3.2
3. Radhakrishnan, S. (2014). *The Bhagavad Gita*. Harper Collins, India. P. 111.
4. Sen, A. (2009). *The Idea of Justice*. Penguin Books, England. P. 210.
5. Anderson, J. (2012). Sen and the Bhagavad Gita: Lessons for a Theory of Justice. *Asian Philosophy 22*(1), 63-74.
6. Bhagavad Gita, 18.63
7. Mascaro, J. (1994) *The Bhagavad Gita*. Penguin Random House, India.
8. Yearley, L. H. (1990*). Mencius and Aquinas : Theories of virtue and conceptions of courage.* Albany, NY: State University of New York press. p. 13
9. Peterson, C and Seligman, M.E.P. (2004). *Character strengths and virtues: A handbook and Classification*. American Psychology Association, Oxford University Press. p. 29-30
10. Kleinheksel, A.J., Winston, N.R., Tawfik, T. (2020). Qualitative Research in Pharmacy Education, Demystifying Content Analysis. *American Journal of Pharmaceutical Education*, *84*(1)

11. Bhagavad Gita, 1.31
12. Bhagavad Gita, 1.32
13. Bhagavad Gita, 1.37 and 1.40-41
14. Bhagavad Gita, 1.35
15. Bhagavad Gita, 1.28
16. Bhagavad Gita, 1.30
17. Bhagavad Gita, 1.46
18. Bhagavad Gita, 1.22-23
19. Bhagavad Gita, 1.36
20. Bhagavad Gita, 1.39

देशी नर्तन विधि - 'शुद्धपद्धति' का विविध ग्रंथों मे किए गए वर्णन का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन

पायल रोहन गोखले
शोधकर्ता
कला-संस्कृति -निर्देशन विभाग (कथक)
श्री श्री यूनिवर्सिटी कटक, ओरिसा

डॉ॰ नंदकिशोर कपोते
निर्देशक
कला-संस्कृति -निर्देशन विभाग (कथक)
श्री श्री यूनिवर्सिटी कटक, ओरिसा

सारांश :

भरतमुनि रचित 'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ को आधार मान कर, इसके बाद के शास्त्रकारों ने नृत्यविषयक अनेक ग्रन्थों की निर्मिति की। नाट्यशास्त्र में वर्णित नृत्य के सिद्धांतों के अलावा, उस समय के प्रचलित और लोकप्रिय नृत्यपद्धतियों की चर्चा, उल्लेख और विवरण बाद के ग्रन्थों में पाए जाते हैं। 8वीं शताब्दी में मतंग मुनि द्वारा लिखित 'बृहद्देशी' इस ग्रन्थ में संगीत को मार्गी और देशी इन दो संकल्पनाओं में विभाजित किया। इसलिए, नाट्यशास्त्र में वर्णित जो है वह मार्गी है, जबकि नाट्यशास्त्र के अलावा अन्य बाद के ग्रन्थों में वर्णित सृजित सिद्धांत देशी है। मध्यकालीन अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि इन ग्रन्थों में तीन प्रकार की नर्तन विधि का वर्णन मिलता है।

1. शुद्धपद्धति 2. पेरणी/ पेरुणी पद्धति 3. गोंडली पद्धति

इस शोधपत्र में केवल 'शुद्धपद्धति' का विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। नृत्य के परिपेक्ष्य में यह महत्वपूर्ण प्रस्तुति होगी क्योंकि इसका उल्लेख मध्ययुगीन काल के अधिकतर शास्त्रकारों ने अपने ग्रन्थ में किया है। इस शुद्धपद्धति का विवरण और विस्तृत व्याख्या इन ग्रंथों मे प्राप्त होती है। इसी शुद्धपद्धति 16वीं शताब्दी के आते आते मुखचालि नाम से प्रचलित हुई। भले इसके नाम और लक्षणों में अंतर और परिवर्तन दिखाई देते है लेकिन उसका उद्देश्य वही रहा है। इस पद्धति का प्राथमिक अध्ययन करने के बाद यह ज्ञात हुआ की, शुद्धपद्धति के अंतर्गत वर्णित नृत्य तत्व जैसे की मेलापक, पुष्पांजलि, सुलु, संच, गणेश शब्द, नान्दी या स्तुति का प्रयोग आज भी कथक नृत्य प्रदर्शन में किया जाता है। इस शुद्धपद्धति के अध्ययन से भरत मुनि की परंपरा से लेकर वर्तमान परंपरा तक नृत्य में हुए परिवर्तन, विस्तार और आकुंचन के बारे में विस्तृत और शास्त्र संमत जानकारी प्राप्त होगी। आज की शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ अचानक नहीं उभरीं, बल्कि उन्हें इतिहास, शास्त्र, प्राचीन नृत्य और नृत्य पद्धतियों का मजबूत आधार है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि, इस शोध पत्र का अध्ययन आज के नृत्य और शास्त्र के बीच संबंध को और मजबूत करेगा।

मुख्य शब्द :

देशी नृत्य पद्धति, शुद्धपद्धति, मुखचालि।

परिचय :

12वीं शताब्दी के आरंभ में सोमेश्वर द्वारा रचित मानसोल्लास नामक ग्रन्थ में देशी नृत्य का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ किसी संपूर्ण संरचना या संरचना के किसी विशेष भाग का वर्णन नहीं करता। एक शताब्दी बाद, पार्श्वदेव के संगीत समयसार में मानसोल्लास की तुलना में देशी नृत्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह नृत्त के लिए उपयुक्त संगीत, गति, लय और प्रदर्शन शैली का वर्णन करता है, लेकिन नृत्त की गतियों का विस्तार से वर्णन नहीं करता। उन्होंने पेरण, प्रेङ्खण, गुण्डली तथा दण्डरासक इन चार देशी नृत्यों की चर्चा की है। लेकिन शुद्धपद्धति की चर्चा प्राप्त नहीं होती। अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि, अनेक ग्रन्थों में तीन प्रकार के नर्तन विधि का वर्णन मिलता है।

1. शुद्धपद्धति
2. पेरणी/ पेरुणी पद्धति
3. गोंडली पद्धति

इस शोधपत्र में केवल 'शुद्धपद्धति' का विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन किया है। नाट्यशास्त्र, संगीतरत्नाकर, नृत्तरत्नावली, अभिनयदर्पण, नृत्यरत्नकोश, नर्तन निर्णय, संगीत दर्पण आदि ग्रंथों के अनुवाद, शोध प्रबंध, शोध पत्र, इसके ऊपर लिखी गयी टिप्पणियाँ, किताबें इनका अध्ययन इस शोध पत्र को लिखते समय किया गया है।

नाट्यशास्त्र :

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के चौथे अध्याय में नृत्य प्रदर्शन का विवेचन किया है। मंच पर वाद्य सम्प्रदाय स्थापित हो जाने के बाद, नर्तकी को हाथों में फूल लेकर, वाद्यसंगीत के साथ मंच पर प्रवेश करना चाहिए। इस समय नर्तकी को वैशाखस्थान धारण करना चाहिए। इसके बाद नर्तकी को अवनद्ध वाद्यसंगीत के साथ करण, जाति और चारी का प्रदर्शन करना चाहिए। तद्पश्चात पुरे रंगमंचपर गोल चक्कर लगाते हुए वाद्यविरहित गीत के ऊपर अभिनय करना चाहिए। मंच छोड़ने से पहले, देवी-देवताओं को पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए और उन्हें प्रणाम करना चाहिए। इसके बाद नर्तकियों के एक समूह को प्रवेश करना चाहिए और विभिन्न पिंडबंधों के साथ नृत्य करना चाहिए। इसके बाद मुख्य नर्तकी को पुनः मंच पर आना चाहिए और विषय के अनुरूप मुद्राओं का प्रयोग करते हुए गीत पर नृत्य करना चाहिए। तत्पश्चात नर्तकियों के समूह को पुनः उसी प्रकार नृत्य करना चाहिए जैसे पहले किया था। (नाट्यशास्त्र 4 अध्याय / श्लोक 273-288) नाट्यशास्त्र के पांचवें अध्याय में पूर्वरंग विधि के अंतर्गत 'नान्दी' का विवेचन किया है। इस नान्दी के माध्यम से शुभकामनाएँ की जाती हैं। और इसके बाद चारी नृत्य का प्रारम्भ होता है। (नाट्यशास्त्र 5 अध्याय/श्लोक 105-110)

संगीत रत्नाकर :

13वीं शताब्दी का शारंगदेव द्वारा रचित 'संगीतरत्नाकर' यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह संगीत विषयक ग्रन्थ होने के बावजूद भी, देशी नृत्य के बारे में विस्तृत जानकारी साजा करता है। इसमें देशी शुद्धपद्धति का वर्णन करते हुए शारंगदेव कहते हैं -

जब संगीतविद्वानों के साथ मुख्य अतिथि/व्यक्ति सभागृह में आ जाएं, तो मंच पर प्रवेश कर, खड़े हुए संप्रदाय ने सभी वाद्यों को एक सुर में मिलाकर, मेलापक तथा गजर बजाना चाहिए। नर्तकी पुष्पाञ्जलि लिए, जवनिका याने पर्दे के पीछे सौष्ठवयुक्त स्थान ग्रहण करके खड़ी हो जाए। जवनिका दूर होने पर, दर्शकों को मोहित करने वाली नर्तकी को उपशम वादन के साथ सुन्दर भंगिमा में रंगमंच के मध्य में पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए, क्योंकि रंगमंच के मध्य में स्वयं ब्रह्मा विराजमान होते हैं। पद, ओता, कवित, मलप तथा अवत्सक, रिंगोणी और तुडुका को नियतक्रम या इच्छित क्रम से, सम, विषम या दोनों अंगों से नृत्त करना चाहिए। फिर त्रिविध नर्तन (नाट्य, नृत्य, नृत्त) प्रस्तुत करें। यदि गजर के बाद उपशम का वादन न किया जाए, तो नर्तकी को गजर

के आरंभ में मंच पर प्रवेश करना चाहिए। लोग इस विधि को 'परिविडि' कहते हैं।

कुछ अन्य आचार्यों के मत से, शुरुआत में समहस्त से वादन करे तथा नर्तकी समपाद स्थान में सौष्ठव के साथ रंगमंच पर प्रवेश करे। कुछ आचार्य गीत और वाद्य के प्रयोग की बात कहते है। तो कुछ आचार्य केवल गीत का प्रयोग भी उचित मानते है। यही शुद्धपद्धति है। (संगीतरत्नाकर 7 अध्याय / श्लोक 1260-1272)

नृत्त रत्नावली :

जाय सेनापति लिखित ग्रन्थ 'नृत्त रत्नावली', संगीतरत्नाकर का समकालीन ग्रन्थ है। अतः संगीत रत्नाकर और नृत्त रत्नावली दोनों ग्रन्थ 13 वीं शताब्दी के हैं। (Raghavan, 1965, P. 74) नृत्त रत्नावली के 5, 6, 7, 8 इन अध्यायों मे देशी नृत्य के ऊपर विस्तृत चर्चा की है। इतनी विस्तृत चर्चा करने वाला यह एकमात्र ग्रन्थ है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है।

नृत्त रत्नावली के सातवें अध्याय में नृत्य के लिए प्रयुक्त तथा उपयुक्त वाद्य पद्धति का वर्णन किया गया है। जाय सेनापति आरम्भ में ही कहते है की, मतंग मुनि द्वारा उद्धृत वाद्य पद्धति मैं बतला रहा हूँ, जो दो प्रकार की है।

1. शुद्ध
2. विचित्र

1. **शुद्ध वाद्य पद्धति :** सर्वप्रथम सभी वाद्यों को समहस्त में बजाया जाता है, जो वर्षा ऋतु के आगमन पर होने वाली गड़गड़ाहट के समान है। ऐसा मंच पर उपस्थित सभी बाधाओं को दूर करने तथा सभा के प्रमुख के प्रगति के लिए किया जाता है। समहस्त आदि से किए गए वादन एवं पाटों को बजाते समय, दोनों हाथों को समान रूप से जोर से प्रहार करना चाहिए। इसलिए समहस्त यह नाम उपयुक्त है। समहस्त वादन के समय नर्तकी को समपाद में मंच पर प्रवेश करना चाहिए। संदंश हस्त को धारण करते हुए, बाएं पैर के पंजों से जमीन पर प्रहार करते हुए रंगप्रवेश करना चाहिए। फिर नर्तकी को मुखत्रय वादन के साथ प्रवेश करना चाहिए और कुछ समय तक समूह में निर्धारित रचना का प्रदर्शन करना चाहिए। प्रवेश के समय पर 'योज', 'खण्ड यति', 'पदम्', 'मलप', 'अंग' जैसे मधुर लयबद्ध प्रबंधों का क्रमिक रूप से पाटों (अक्षरों) के साथ प्रदर्शन करना चाहिए। सुखद संगीत को शंख, पीतल के झांझ, मृदंग और करट जैसे वाद्यों का उपयोग करके नवीनता के साथ बजाया जाना चाहिए। आगे प्रयुक्त होने वाली चार तालों में भी इसी नियम का पालन करना चाहिए। आरम्भ में मत्त ताल में कुछ समय तक गीत प्रस्तुत करना चाहिए। तद पश्चात् पूर्व में कहे गए शुष्कवाद्य का वादन करे और फिर ध्यानपूर्वक अवच्छेद / विभाजित करे। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ताल में भी मतंग मुनि द्वारा निर्धारित क्रम का पालन किया जाना चाहिए। (नृत्त रत्नावली 7 अध्याय / श्लोक 21-31)
2. **विचित्र पद्धति :** गायकों तथा वादकों को स्वर, लय और पाटों से बंधा हुआ गीत गाना चाहिए। साथ ही उसे वर्ण और स्वरों से भी युक्त करना चाहिए। इसके बाद वादकों को अक्षरों के अनुसार बजाना चाहिए। यह चित्रपद्धति है। नर्तकी को वादकों द्वारा बजाए गए अक्षरों के अनुसार नृत्य करना चाहिए। (नृत्त रत्नावली 7 अध्याय / श्लोक 32-33)

नृत्त रत्नावली में 'पुष्पाञ्जलि' :

नृत्त रत्नावली में शुद्धपद्धति में 'पुष्पाञ्जलि' का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। लेकिन 'देशी पद्धति' के विवेचन में पुष्पांजलि पर चर्चा की गई है, यह इस प्रकार है :

प्रथम वाद्यों का मेल करके उन्हें समहस्त में बजाया जाता है। उसके बाद यति और प्रहरण करने पर, संगीत के अंत में, मौन धारण कर के पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। झेन्कार, रिगवाणी, तुडुका, चमत्कार

आदि गीत के अंग एवं वाद्यों के साथ यति को उच्चारित करे तथा वाद्य संगीत द्वारा प्रहरण भी करना चाहिए। यह देशी पद्धति है। कवित, उट्टवणी, खंडयति, अवच्छेदक और अन्य का प्रयोग रिघोणी के साथ नवीन रूप से किया जा सकता है। इसके बाद नर्तकी समुदाय प्रबंध के साथ मंच पर प्रवेश कर सकती है, जिसे 'पैसार' भी कहा जाता है, या किसी अन्य रोचक वाद्य संगीत (चित्र वाद्य) के साथ प्रवेश करे, तो वह 'मुखवाद्य' कहलाता है। देशी अध्ययन के विद्वान इसे 'पुटिल' कहते हैं। पुष्पांजलि पुटिल के साथ अर्पित की जाती है, इसलिए इसे आम बोलचाल में पुष्पांजलि कहा जाता है और यह अर्पण का एक भाग है। बीच बीच में हुडुक्का, करटा, देशी पटह और अन्य वाद्य बजाने चाहिए। तथा कर्णमधुर संगीत के लिए, पीतल के वाद्य (कांस्य ताल) का प्रयोग किया जाना चाहिए। रिघोणी नामक ताल प्रबन्ध में एकताल, अडताल, निस्सारुक ताल का प्रयोजन प्रायः होता है। लेकिन प्रमुख नेता (नृत्य का नेतृत्व करने वाले) के अनुसार कुछ और का प्रयोजन किया जा सकता है। (नृत्त रत्नावली 7 अध्याय / श्लोक 66-76)

अभिनय दर्पण :

आचार्य नंदिकेश्वर द्वारा लिखित 'अभिनयदर्पण' इस ग्रन्थ में शुद्धपद्धति की अलग से चर्चा नहीं की गई है। किन्तु पूर्वरंग में पुष्पांजलि की चर्चा इस प्रकार है।

विघ्नों के नाश के लिए, प्राणियों की रक्षा के लिए, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, नायक-नायिकाओं के कल्याण एवं सुरक्षा के लिए तथा गुरु से प्राप्त ज्ञान के प्रतीक स्वरूप मंच पर पुष्पों को प्रवाहित किया जाना चाहिए। फिर नृत्य शुरू होना चाहिए। (अभिनयदर्पण, श्लोक 33-34)

नृत्यरत्नकोश :

महाराणा कुम्भकर्ण द्वारा लिखित 'नृत्यरत्नकोश' ग्रन्थ में संगीतरत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार शुद्धपद्धति का ज्यों का त्यों वर्णन किया गया है। बस कुछ स्थानों पर थोड़ा अंतर है जो इस प्रकार हैं :

1. संगीत रत्नाकर में वर्णित वाद्य प्रबंधों में से ओता इस प्रबंध का उल्लेख, राणा कुंभा ने नृत्यरत्नकोश में नहीं किया है।
2. नृत्यरत्नकोश में संगीतरत्नाकर में वर्णित 'परिविडि पद्धति' को 'परिपडि पद्धति' कहा गया है। (नृत्यरत्नकोश- उल्लास 4-परीक्षण 4-श्लोक 43-50)

नर्तन निर्णय :

पुण्डरीक विट्ठल द्वारा लिखित नर्तन निर्णय ग्रन्थ में वर्णित 'मुखचालि' के वर्णन और अन्य ग्रंथोंमे वर्णित शुद्धपद्धति के वर्णन में कई समानताएं हैं। इस ग्रन्थ में शुद्धपद्धति का उल्लेख 'मुखचालि' के रूप में किया गया है। नर्तन निर्णय में मुखचालि का वर्णन इस प्रकार है - जब सभा का नेता, संगीतज्ञ, विद्वान और प्रेक्षक सभागृह में अपना स्थान ग्रहण कर लें, तब वाद्य संप्रदाय को मंच पर आकर अपना स्थान ग्रहण करना चाहिए। सभी वाद्ययंत्रों को एक सुर में मिलाना चाहिए। मेलापक के बाद गजर बजाना चाहिए। तुडुक वाद्य वादन के अंत में, जब पर्दा याने अन्तर्धान दूर होते ही, नर्तक या नर्तकी ब्रह्मा, शिव, मातृ देवता, ऋषियों, नागों, यक्षों, गंधर्वों, किन्नरों, गणेश, भरतमुनि, तण्डु, लक्ष्मी, सरस्वती, उषा, विष्णु और जो आयु और गुण में वरिष्ठ हैं, उन्हें प्रणाम करने के बाद मंच पर प्रवेश करें। रंगमंच के क्षेत्र का वर्णन करते हुए पुण्डरीक विट्ठल कहते हैं कि, नृत्य मंडप के मध्य में गोलाकार होना चाहिए, जो चारों ओर से सात भुजाओं से घिरे क्षेत्र में होना चाहिए। ऐसे मंच पर नर्तकों को बन्ध और अनिबन्ध दोनों प्रकार के नृत्य करने चाहिए। जो नृत्य गीत आदि नियमों द्वारा नियंत्रित होता है, वह बंधक नृत्य है। अतः अभिनय के किसी भी नियम के बिना किया जाने वाला नृत्य अनिबन्ध नृत्य कहलाता है।

पूर्वसूरियों के आचार्यों द्वारा दी गई मुखचालि की परिभाषा अनुसार, मुख का अर्थ है पूर्वरंग और चालि याने पूर्वरंग का अनुगमन करने वाली गती। मुखचालि यह बन्ध नृत्य है। मुखचालि की शुरुआत पुष्पांजलि से होती है। यदि फूल आगे की ओर अर्पित किया जाएं तो राजा पीड़ित होता है, दाहिनी ओर दर्शक, पीछे गुरु और बाईं ओर नर्तक स्वयं पीड़ित होता है। चूँकि ब्रह्मा मंच के मध्य में विराजमान हैं, इसलिए नर्तक को मंच के मध्य में पुष्प अर्पित करने चाहिए। इसके बाद 'इङ्गेन-अङ्गेन' शब्दों का उच्चारण उचित लय और ताल के साथ करना चाहिए। तत्पश्चात नृत्य प्रारम्भ होना चाहिए।

नृत्य की शुरुआत में 'सुलु' किया जाना चाहिए। सुलु का अर्थ है धीमी हवा में डोलती ज्योति के समान अंगों का चालन करना तथा नाग के फ़न जैसे डोलना। सुलु शरीर के दोनों तरफ किया जाना चाहिए। रागों के अनुरूप सुलु नर्तक द्वारा प्रस्तुत होना चाहिए, जो विभिन्न नृत्त हस्तों से सुसज्जित हो। इसी सुलु में 'संच' प्रस्तुत करना चाहिए, जो तीन प्रकार का होता है- तल संच, मध्य संच, उर्ध्व संच। प्रत्येक सुलु में प्रयुक्त हस्त, स्थानक, करण, चारी का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके बाद अपने हाथों को सिर पर, मुख के सामने तथा वक्ष के सामने अंजलि हस्त मुद्रा में रखकर क्रमशः देवताओं, गुरुओं तथा ऋषियों को प्रणाम करना चाहिए। तत्पश्चात देवी भवानी और शिवजी को नमन करने वाले श्लोक का अभिनय करना चाहिए। जो इस प्रकार है :

भवतां भूतये भूयाद् भवानी भववल्लभा।
अङ्गीकृतसुसङ्गीतभङ्गीमुदितमानसा॥

इस श्लोक के प्रदर्शन का विस्तृत वर्णन बतलाया है। अंत में, मायूरी, भानवी, मैनवी, हयलीला, मृगी, हंसी, कुक्कुटी, खञ्जनी, गजगामिनी इन गतियों को परिभाषित किया गया है। इसके साथ ही कमलवर्तना और मकरवर्तना की परिभाषाएँ दी गई हैं। गति और वर्तनिकास के चर्चा के साथ मुखचालि समाप्त होती है। (नर्तननिर्णय 7 अध्याय - श्लोक 417-479)

संगीत दर्पण :

मुखाचली का वर्णन करते हुए, चतुर दामोदर कहते हैं, संगीत विद्वान्, राजा या प्रमुख अतिथि के आने के बाद संप्रदाय वृन्द को मंच पर प्रवेश करना चाहिए। इसमें अनिबद्ध और निबद्ध दोनों प्रकार के गीत का प्रयोग होना चाहिए। इसके पश्चात् मंगल कामना के लिए 'गणेश शब्द' बजाना चाहिए। और इसके बाद 'अपार' नामक मेलापक बार-बार बजाना चाहिए। फिर नर्तकी को जवनिका याने परदे के पीछे किसी भी स्थानक में सौष्ठवपूर्ण भंगिमा में खड़ा होना चाहिए। जवनिका हटने के बाद, दर्शक और विद्वान आदि को प्रसन्न करते हुए, मंच के मध्य में पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए। फिर समापद, संहत स्थान, लताकरण, चतुरश्र, नन्द्यावर्त, वर्धमान के लक्षण बताए गए हैं। इसके बाद सुलु का वर्णन किया है जो की नर्तननिर्णय ग्रन्थ के सामान है। लेकिन सुलु के बारे में विस्तृत जानकारी यहां नहीं दी गई है। इसके बाद सौष्ठव, सन्नम्, तलपुष्पपुट, अध्यर्धिकाचारी, पुष्पपुट और अग्रतलसंचर की परिभाषाएँ दी गई हैं। पुष्पांजलि अर्पित करने के बाद नर्तक को श्लोक का अभिनय करना चाहिए। यह श्लोक का वर्णन ज्यों का त्यों नर्तन निर्णय में प्राप्त होता है। लेकिन इस श्लोक में बतलाए गए प्रदर्शन विधि में सूक्ष्म अंतर है। इस श्लोकाभिनय के बाद में 'जाहाङ्गने-माहाङ्गने' ऐसे पाटाक्षरों का उच्चारण करना चाहिए। साथ ही, नर्तक को पाट (बोल),भाव और नर्तन से मिश्रित तथा संच त्रय और नृत्त हस्तोंसे सुशोभित नर्तन करना चाहिए। इसके बाद, संच, तालप्रमाण, चालक और लहरीचक्र के लक्षण बतलाए है। अंत में लय के लक्षण बतलाते हुए कहां है की, तीन प्रकार के लय से युक्त, रासक ताल में नृत्य करना चाहिए। जो लोगों मे लघु आदि ताल नाम से प्रचलित है तथा उसे 'रास' भी कहते है। यही मुखचालि है। (संगीत दर्पण, नृत्याध्याय, श्लोक 8-50)

नाट्यशास्त्र और शोधपत्र में अध्ययन किए गए मध्यकालीन ग्रंथों में वर्णित शुद्धपद्धति का

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष :

1. नाट्यशास्त्र में नाट्य की शुरुआत में किए जाने वाले नृत्य का विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि शुद्धपद्धति या कोई अन्य विशिष्ट नाम से यह प्रस्तुति उल्लेखित नहीं है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि, इसी प्रस्तुति का आगे अनुगमन किया गया है।

2. नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने विशिष्ट नृत्य मुद्राओं जैसे करण, चारी, स्थानक आदि का आग्रह नहीं किया है। साथ ही, प्रयुक्त संगीत पद्धति का भी उल्लेख नहीं किया है। इस शोध पत्र में अध्ययन किये गये ग्रंथों में केवल नाट्यशास्त्र और नृत्य रत्नावली में ही एकल नृत्य और समूह नृत्य की चर्चा पूर्वरंग में की गयी है।

3. इसी मार्ग पद्धति का अनुसरण करते हुए बाद के विद्वानों ने जो सृजित किया, वह आगे चलकर देशी पद्धति के रूप में प्रचलित हो गया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण नर्तन विधि है शुद्धपद्धति!

4. डॉ॰ पुरु दाधीच ने अपनी पुस्तक 'कथक नृत्य के प्राचीन अंग' में कहा है कि, 13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के आते तक शुद्धपद्धति - 'मुखचालि' इस नाम से प्रचलित हुई, जो मुख्य रूप से पूर्वरंग या नृत्य की शुरुआत की पद्धति है। (Dadhich, 2020, P. 55)

5. इस शुद्धपद्धति और मुखचालि का अध्ययन करने पर कुछ तत्वों में विशिष्ट क्रम और समानता पाई जाती है।

   अ. शुरुआत में मेलापक और गजर करना ।

   आ. पर्दे के पीछे नर्तकी का सौष्ठव के साथ स्थान ग्रहण करना।

   इ. पर्दा हटने के बाद नर्तक रंगमंच के मध्य में पुष्पांजलि अर्पित करना।

   ई. इसके बाद नान्दी /श्लोक/ या स्तुति प्रस्तुत करना।

   उ. इस प्रस्तुति में त्रिविध नर्तन करना।

6. कुछ ग्रंथों में विशिष्ट संगीत प्रबन्ध, वाद्य पद्धति, ताल पद्धति, पाटों का उच्चारण, नृत्त हस्त, स्थानक, करण, चारी आदि पर चर्चा की गई है।

7. यद्यपि संगीत रत्नाकर और नृत्य रत्नावली समकालीन ग्रंथ हैं, तथापि उनके द्वारा वर्णित शुद्धपद्धति में अंतर है। संगीत रत्नाकर में शुद्धपद्धति नाट्यशास्त्र का अनुसरण करती है, जबकि नृत्य रत्नावली मतंग मुनि द्वारा वर्णित शुद्धपद्धति का अनुसरण करती है। तथापि नृत्त रत्नावली में वर्णित विचित्र पद्धति और अन्य आचार्यों के अनुसार संगीत रत्नाकर में वर्णित शुद्धपद्धति एक ही हैं।

8. नृत्त रत्नावली में शुद्धपद्धति का वर्णन वाद्यपद्धति के अंतर्गत किया गया है, किन्तु पुष्पांजलि की चर्चा देशी पद्धति में वर्णित शुष्कवादन के अंतर्गत की गई है।

9. अभिनयदर्पण इस ग्रन्थ में केवल पुष्पांजलि का विवेचन प्राप्त होता है।

10. संगीत दर्पण ग्रन्थ ने नर्तननिर्णय में वर्णित मुखचालि का अनुसरण किया है। हालाँकि इसमें कुछ अन्तर और भिन्नताएँ जरूर है।

11. नर्तननिर्णय और संगीत दर्पण दोनों ग्रंथों में वर्णित श्लोकाभिनय में समानता है।

12. नर्तननिर्णय में विस्तार से बताया गया है कि सुलु, गति और वर्तनिकास का सही उपयोग कहां और कैसे किया जाना चाहिए।

13. नर्तनिर्णय और संगीत दर्पण दोनों ग्रंथों में वर्णित सुलु, पुष्पांजलि, गणेश शब्द और संच का प्रदर्शन आज भी कथक नृत्य में देखा जाता है। डॉ॰ पुरु दाधीच कहते हैं कि, गणेश परनों की निर्मिति गणेश शब्द के लिए की गई थी और आज भी कथक नृत्य में इसका प्रदर्शन किया जाता है। (Dadhich, 2020, P. 53) वैसे ही पुष्पांजलि का नाम बदलकर पोहोपाजुरी/पुहुपाजुरी हो गया

है। (Dadhich, 2020, P. 53) नृत्य शुरू होने से पहले होने वाली आलापचारी नर्तननिर्णय में वर्णित अनिबन्ध वादन-गायन के समान होती है। (Dadhich, 2020, P. 53) वर्तमान कथक प्रदर्शन क्रम सुलु/सुलुप ही आज ठाठ के नाम से प्रचलित है। (Dadhich, 2020, P. 72)

इसके अलावा, संच इस प्राचीन अंग को कथक के साथ-साथ भरतनाट्यम और ओडिसी जैसी अन्य नृत्य शैलियों में भी देखा जाता है। (Dadhich, 2020, P. 73)

14. डॉ॰ मंदाक्रांता बोस ने अपनी पुस्तक मूवमेंट एंड मेमेसिस में कहा है कि, नर्तननिर्णय में मुखचालि को इतने विस्तार से वर्णित किया गया है कि, उसे प्रत्यक्ष प्रस्तुत करना संभव है। (Bose, 1991, P. 255)

15. इससे हम कह सकते हैं कि, नाट्यशास्त्र में वर्णित पूर्वरंग में नृत्यारम्भ प्रस्तुति आज भी लगभग उसी क्रम से प्रस्तुत हो रही है। कुछ समय तक यह शुद्धपद्धति और तद्पश्चात मुखचालि के रूप में लोकप्रिय थी, लेकिन अब इसका कोई विशिष्ट नाम नहीं है।

16. शुद्धपद्धति और मुखचालि हमें भरत मुनि की परंपरा से लेकर वर्तमान परंपरा तक नृत्य में हुए परिवर्तन, विस्तार और संकुचन के बारे में बताती है।

17. इस अध्ययन से हम कह सकते हैं कि, आज की शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ अचानक नहीं उभरीं, बल्कि उन्हें इतिहास, शास्त्र, प्राचीन नृत्य और नृत्य पद्धतियों का मजबूत आधार है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि, इस शोध पत्र का अध्ययन आज के नृत्य और शास्त्र के बीच संबंध को और मजबूत करता है।

सन्दर्भ सूची :

1. Bose, M. (1991). *Movements and mimesis: The idea of dance in the Sanskritic tradition* (1st ed.). Kluwer Academic Publishers.
2. Dadhich, P. (2009). *Nrutya nibandh* (1st ed.). Bindu Prakashan.
3. Dadhich, P. (Trans.). (2010). *Abhinaya Darpan* (2nd ed.). Bindu Publications.
4. Dadhich, P. (2020). *Kathak nrutya ke prachin ang* (1st ed.). Bindu Prakashan.
5. Damodara, C. (2008). *Sangeet Darpan* (S. Purecha & B. Tarde, Trans.). Shri Sarfojiraje Bhosale Research Center.
6. Maharana Kumbh. (n.d.). *Nrutyaratnakosh* (Second Part). Rajasthan Pracharyavidya Pratishthan.
7. Sathyanarayana, R. (Ed. & Trans.). (n.d.). *Nartananirnaya of Pandarika Vitthala* (Vol. 3). Indira Gandhi National Centre for the Arts & Motilal Banarsidass Publishers.
8. Senapati, J. (2013). *Nrtta Ratnavali* (P. Venugopal Rao & Y. Thakore, Trans.). Kakatiya Heritage Trust.
9. Senapati, J. (1965). *Nrtta Ratnavali* (V. Raghavan, Trans.). Government of Oriental Manuscripts Library.
10. Shuka Shastri, B. (Trans.). (2022). *Natya-shastra of Bharatmuni* (Part 1). Chaukhamba Sanskrit Sansthan.
11. Singh, A. (2016). *Nartanadhyaya - Acharya Parshvadev krut Sangeet Samaysaar*. B.R. Rhythms Publication.
12. Taralekar, G. H. (Trans.). (1989). *Sangeet Ratnakar* (Bhaag 3 - Adhyay 7). Maharashtra Rajya Sahitya and Sanskruti Mandal.
13. Tivari, S. (2002). *Shivaranjani* (1st ed.). Vidyanilayam.

Musical elements in Samaveda : Svaras, Shrutis and Veena

Poorva Joshi

Research Scholar
Department of Music
Faculty of Music and Fine Arts
University of Delhi

Abstract :

Music has always been an integral part of our society and is universal in nature. However, one often tends to search for the origin or roots of our Indian music. On a closer look, one often wonders what could be the origin of our music. Researchers have found that it is nothing else but our very own Vedas, especially the singable and musical Samaveda. This paper explores the musical elements in Samaveda.

Keywords :

Samaveda, Svara, Shruti, Veena, Origin.

This paper is based on three musical elements- Samavedic Svarās, Shrutis and Veeṇā. Therefore, Nāradiya Shikshā, the only available text which describes Svarās, Shrutis and Veeṇā in Sāmaveda, is the basis of the description which follows in this paper.

Nāradiya Shikshā was preached by Devarshi Nārad who is considered to be the son of Brahmā and plays Veeṇā. According to Indian belief, Nārad Muni is the Celestial Sage (Rishi among the gods). He is an expert in Geet, Vādya and Nritya. Nārad has been called a musician, Veeṇā player, Supreme secret seeker (Paramrahasyavetta) and Supreme devotee. Shri Krishna has counted him among the divine and angelic (Vibhutis)**. Nārad Muni has been mentioned in Mool Rāmayana, Vishnu Puraan, Brihan Naaradiya Puraan and Shrimad Bhagvad Gita.[1]

The text Nāradiya Shikshā is in Sanskrit and is written in the form of verses (Chhanda) and prose. It has two papers (Prapāthak) and each paper has 8 sub-papers (Kandikā). Each Kandikā further has sub-verses (Kārika).

2.1 Concept of Svarās, Shrutis and Veeṇā in the perspective of Sāmaveda :

In Nāradiya Shikshā, there is description of Ārchik, Gâthik svarās, Grām and Svarās of Sāmagāna, Shruti Jaati, Udāttādi Svara, use of different svarās in different Shākhās of Sāmaveda and description of Gātra Veeṇā.[2] In the description that follows, the three important aspects of Sāmagāna

i.e. Svara, Shruti and Veeṇā are described.

2.1.1 Svara :

The term Svara has several meanings.

स्वर्यन्तेर्था एभिः[3]

Meaning : The ones through which the meaning of Padās are known, are called Svara. Padās, here, mean meaningful words.

In Zgveda, the word Svara is used in relation to speech.[4]

In Pāniniya Shikshā[5] and Nātya Shāstra[6], the word Svara is used to describe Akārādi Varnās. Their pronunciation is independent and do not require support from another Varnā.

In Sangeet Shastra and its related texts (Nāradiya Shikshā), the word Svara is used to describe various musical notes.

In Nāradiya Shikshā, the characteristics of Svarās that have been stated, are musical in nature (based on musical notes). However, the mention of Svarās in Nāradiya Shikshā is expressed in different ways and different names. At some points in Nāradiya Shikshā, there is a description of Ārchik, Gāthik and Sāmik Svarās - which are related to Zgveda, Yajurveda and Sāmaveda respectively.

आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरांतरम्
कृतान्ते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्ये विशेषतः[7]

Meaning : The word Ārchik originates from Richā and the word Gāthik originates from Gāthā or story. Both are associated with Ṛgveda and Yajurveda respectively. The word 'Sāmik' connects with Song and is related to Sāmaveda.

It appears that Ārchik Svara, Gāthik Svara and Sāmik Svara are names of particular Svarās. However, these are not any particular Svarās but are generally used terms to describe Svarâs in Veda.[8]

In the beginning of the grantha Nāradiya Shikshā, it is mentioned that Sāmavedic Svarās are in the form of-Udātta, Anudātt, Svarit, Prachay and Nighāt. These are taken to be in the form of Ārchik Svarās.

Whereas, the Samavedic "Gana Svarās" are in the form of-Kruṣta, Pratham, Dvitīya, Tṛtīya, Chaturth, Mandra and Atisvārya.

Narada Muni named Udātta, Anudātta and Svarit as Pratham, Dvitiya and Tritiya. Therefore, the placement of the Svara is the same, whereas it's nomenclature is different at different points.

Hence, the name of Svarās of Ṛgveda, Sāmaveda and Gānasamhita are different from the perspective of music, however, their character is the same.

So, it can be seen that the Svarās- Kruṣta, Pratham, Dvitîya, Tṛtîya, Chaturth, Mandra and Atisvārya further developed into Shadja, Rishab, Gandhār, Madhyam, Pancham, Dhaivat and Nishād.

षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस् तथा
पंचमो धैवतस्चैव निषादः सप्तमः स्वरः।।[9]

Meaning : Shadja, Rishab, Gāndhār, Madhyam, Pancham, Dhaivat and Nishād- These are the seven notes.

2.1.2 Place of origin of Svarās :

कण्ङ्गादुत्तिष्ठो षड्जः शिरसस् त्वृषभः स्मृतः।
गान्धारस् त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः।।5।।

उरसः शिरसः कण्ङ्गादुत्थितः पञ्चमः स्वरः।
ललाटाद् धैवतं विद्यान् निषादं सर्वसन्धिजम्।।6।।

Meaning : Shadja Svara has originated from the throat (Kantha), Rishab Svara has originated from the head (Shir), Gandhār Svara has originated from the

nasal area, Madhyam Svara has its origin from the chest region, the Pancham Svara is believed to have originated from the chest, head and throat-all three places. Dhaivat svar has originated from the forehead (Lalāt) and Nishad from the throat region.[11]

2.2 Shruti :

2.2.1 Shruti in context of Sama Veda :

The musically useful Nāda, which can be clearly heard by the ear is called 'Shruti'. It has been defined by scholars as:

श्रूयते इति श्रुतिः[12]

(Shrooyate iti shrutih)

Meaning : That sound which can be heard by the ear is called 'Shruti'.

According to Pt. Shārangdev in Sangeet Ratnākar,

"श्रवणाच्छुतयो मताः"[13]

Meaning : Because it can be heard, hence it can be called Shruti.

On a closer look at these two definitions, they do not seem correct because apart from musically useful sounds, there are other sounds which can be heard by ear but are not Shruti. 'Shruti' can be defined in the following manner :

"That musically useful sound or Nâda which can be heard clearly and can be differentiated from one another is called Shruti."[14]

In the characterisation of the Svara the term "Shruti" is used. In musicology, Shruti is a well-defined term which has a character of its own.[15]

दीप्ता एएयता करुणानां मृदु मध्यमयोस् तथा।
श्रुतिनां योएविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते। (1.7.9)[16]

According to Sage Nārad, those not having the complete knowledge of these Shrutis, or those unable to use them in singing, cannot be designated as 'Ācharya' (Samaveda scholar/teacher of Samaveda).

Nārad's self-described Shrutis are described in context of 'Vedic Svarās':

दीप्ता मंद्रे द्वितीयेच प्र चतुर्थे तथैव तु ।
अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः॥ [17]

Meaning : Deeptā is the Shruti for Mandra, Dwitiya, Pratham and Chaturth. Atiswar is Shruti of Tritiya and Karuna is Shruti of Krucma Svara.

नाऽविरते श्रुतिं कुर्यात् स्वरयोर् नाऽपि चाऽन्तरे।
न च ह्रस्वे च दीर्घे च न चाऽपि घुटसञ्ज्ञके।।१५।।[18]

Meaning : The svara which is continuous does not have Deeptā shruti. Deeptā Shruti does not exist between two Svarās either. Deeptā Shruti also does not exist in Hrasva Svara and Deergh Svara. Deeptā does not exist in Ghutnaatmak Svarās (6, 7, 8) either.

स्वरान्तराऽविरतानि ह्रस्व-दीर्घ-घुटानि च।
श्रुतिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत् स्वरतो भवेत्।।१७।।[19]

Meaning : The one that does not stop at other Svarās, the one that falls in the place of Hrasv, Deergh and Ghutnamak; at that place, Svara only represents Shruti. Shruti is represented by Svara only.

दीप्तामुदात्ते जानीयाद् दीप्तां च स्वरिते विदुः।
अनुदात्ते मृदुर् ज्ञेया गान्धर्वाः श्रुतिसम्पदः।।१८।।[20]

Meaning : Deeptā shruti exists in Udaatta svara. Deeptā exists in Svarit Svara also. Mridu shruti exists in Anudaatta svara. This is the equation of Gandharva Shrutis in Vedic Svarās.

According to Sage Nārada, the significance of Shruti in a Svara, is described as :

यथाप्सु चरताम् मार्गो मीनानां नोपलभ्यते।
आकाशे वा विहन्गानां तद्वत स्वरगता श्रुतिः।।
यथा दधानि सर्पिः स्यात काष्ठसथो वा यथोनलः।
प्रयत्नेनोपलाभ्येत तद्वत् स्वरगता श्रुतिः ।।[21]

Meaning : Just how, the direction of passage of fishes in water or birds in the sky cannot be known, similarly the position of Shruti in Svara is undefined. Sage Nārada explains that Ghee (fat) in Dahi (curd) and fire in wood is hidden and can only be obtained with much effort. Same is the position of Shruti in Svara.[22]

Based on three Grāmas, it can be stated that during the Nāradiya Shikshā period, the scholars of music had knowledge about 22 Shrutis. [23]

सोमस् तु पञ्चमस्याऽपि दैवतं ब्रह्माराट् स्मृतम्।
निर्ह्रासो यच् च वृद्धिश्च ग्राममासाद्य
सोमवत्।।१७।।[24]

Meaning : The manner in which the moon slowly grows and diminishes (Shukla Paksh and Krishna Paksha), similarly in Grām, the Pancham also slowly grows and diminishes. Similarly, Dhaivat Svara also grows and diminishes like Pancham Svara. This belief gives an impression that Nārad Muni had complete awareness of the Shruti Svara system.

2.3 Veeṇā :

The study of Vedic Literature reveals that in the presentation of Sāmagāna, there were two types of musical instruments in use. These were played with the Samagās.

The use of 'Veeṇā' and 'Venu' in Vedic music is well documented in Nāradiya Shikshā.

In Nāradiya Shikshā, Nārad Muni has mentioned two types of Veeṇā to play the seven Svarās of Vedic and Laukik Sangeet. These are :

1) Dārvi Veeṇā - made out of wood
2) Gātra Veeṇā - use of human palm

दारवी गात्रवीणाच द्वे वीणाच द्वे वीणे गानजातिषु।
सामिकीगात्र वीणातु तस्या शृणुत लक्षणम्।[25]

Meaning : In Gana, two types of Veeṇā are used-Gātra and Dārvi. Gātra is for Sāmagāna so listen to it's attributes.

The Gatra Veeṇā used in ancient Vedic practice is a form of modern notation system. Any scholar of Sāmagāna can easily recognise the Svara as demonstrated by the Sāmaga using the action of his fingers. In Gātra Veeṇā, the Sāmaga shows the Krucma Svara at the tip of his thumb which is equivalent to Pancham of Gandharva Gâna. (reference)* In the middle of the thumb the Pratham Svara is shown which is Madhyam of Gandharva Gān. The middle part of index finger shows "Dvitiya" svara which is Gandhār Svara of Gandharva Gāna. Similarly, the middle part of middle finger shows the Tritiya Svara of Sāmagāna which is equivalent to 'Rishabh' of Gandharva Gana. The ring finger at the middle of it shows Chaturtha Svara which is Shadja of Gandharva Gana. Two Svarās are shown in the last small finger, 'mandra in middle' and Atisvār slightly below the base, these are 'Dhaivat' and 'Nishâd' of Gandharva Gāna respectively. [26]

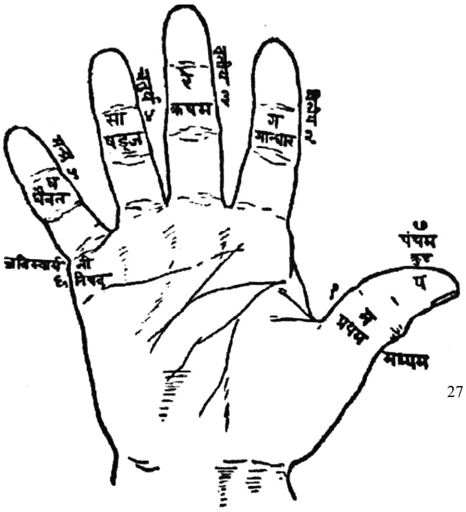

27

Conclusion :

By studying the Svaras, Shrutis and Veena, it can be seen that the Svaras of Samavedic Music are the basis of the Svaras of our present day Indian Classical Music. Hence, it can be concluded that Samavedic Music is the seed of present day Indian Classical music.

References :

1. On the basis of interview with Dr. Rishiraj Pathak, Assistant Professor of Sanskrit, Shyama Prasad Mukherjee College, University of Delhi.
2. Singh, T.J., 2016, Bharatiya Sangeet ka Itihās, Third Edition, Pg-107.
3. Amarkosh, Bhānuji Dikshit Vyākhya, 1.6.4
4. Rgveda, 8.72.7
5. Vivrit Karnāh Swarāh, Pāniniya Shiksha 3.81
6. Akārādyāh Svarāh Aukārāntachaturdash, Nātya Shastra 14.8
7. Nāradiya Shiksha 1.1.2
8. On the basis of interview with Dr. Rishiraj Pathak, Assistant Professor of Sanskrit, Shyama Prasad Mukherjee College, University of Delhi.
9. Nāradiya Shiksha 1.2.5
10. Ibid 1.5.5-6
11. Ibid.
12. Sharangdev, Sangeet Ratnakar, Kalaanidhi of Kallinath and Simhabhupala (https://archive.org/details/SangitaRatnakara/page/n1/mode/2up).
13. Pt. Sharangdev, Sangeet Ratnakar, Pratham Svargatadhyay, 3rd Edition, Shlok 8, 9.
14. Govardhan, S., Sangeet Shastra Darpan, Pg-22.
15. Sharangdev, Sangeet Ratnakar, 1.26.
16. Nāradiya Shiksha, Nārad Muni, Bhatt Shobhākar, 1.7.9
17. Ibid, 1.7.10, Pg-33.
18. Ibid 1.7.12, Pg 95.
19. Ibid, Pg 96.
20. Ibid, Pg 97
21. Ibid, 1.6.15-16 , Pg-77
22. Ibid 1.6.16-17, Pg 28
23. Dangwal, M., Nāradiya Shiksha main Sangeet, Pg 80.
24. Naaradiya Shiksha 1.5.17.
25. Ibid, 1.6.1, Pg. 25.
26. Dangwal, M., Nāradiya Shiksha mein Sangeet, Pg 194.
27. Sharma, P., (1996), Sama Gana: Udbhav, Vyavhaar evam Siddhaanth; Katyayan Vedic Sahitya Prakashan, Hoshiyarpur Pg-393.

परंपरा से आधुनिकता तक : हिंदुस्तानी संगीत में मेवाती घराने की भूमिका

आभा त्रिपाठी
शोध छात्रा, गायन विभाग
संगीत एवं ललित कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो॰ अलका नागपाल
शोध निर्देशक
संगीत एवं ललित कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश :

भारतीय संगीत के विकास क्रम में समयानुसार अनेक नवीन गायन विधाओं का जन्म हुआ जैसे ध्रुपद, ख्य़ाल, तराना, भजन, ठुमरी, जसरंगी आदि। विशेषतः उन्नीसवीं शताब्दी में ख्य़ाल गायन की बढ़ती लोकप्रियता ने विभिन्न नए घरानों के गठन को प्रेरित किया। इन घरानों ने अपनी विशिष्ट शैली, रचनात्मक दृष्टिकोण एवं पारंपरिक गायन परंपराओं के माध्यम से हिंदुस्तानी संगीत की विविधता और गंभीरता को एक नई दिशा प्रदान की। प्रस्तुत शोध पत्र में मेवाती घराने की संगीत परंपरा, उसकी गायकी की विशिष्ट विशेषताएँ तथा संगीत क्षेत्र में उसके योगदान का विश्लेषण किया गया है। यह घराना रागों की शुद्धता, मधुरता और भावनात्मक अभिव्यक्ति के कारण शास्त्रीय संगीत में एक विशिष्ट स्थान रखता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में मेवाती घराने का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा जिसमें शास्त्रीय संगीत के प्राचीन सिद्धांत के आधार पर नई गायन विधा जसरंगी गायन का जन्म हुआ। इस विधा की स्थापना पद्मभूषण पंडित जसराज जी के द्वारा की गई, जिन्होंने इसे एक समृद्ध आधुनिक गायन शैली के रूप में आकार दिया और इस विधा को संगीत जगत में एक नई पहचान दिलाई।

मुख्य शब्द :

मेवाती घराना, गायन विधा, जसरंगी गायन, हिंदुस्तानी संगीत, ख्य़ाल गायन।

हिंदुस्तानी संगीत में घराना :

हिंदुस्तानी संगीत में घराने का अस्तित्व उन्नीसवी शताब्दी के ख्य़ाल गायन विधा की प्रसिद्धि के कारण आया। घराना शब्द का सामान्य अर्थ 'घर' या 'परिवार' होता है जिस प्रकार एक परिवार में एक वंशज के सदस्य एक साथ रहते हैं उसी प्रकार संगीत के संदर्भ में घराने का अर्थ है समान गुण, लक्षण और गायन शैली का पालन करने वाले संगीतकारों का एक समूह। संगीत के संदर्भ में घराने को समझने के लिए इसकी विशेषताएँ समझनी होंगी। घराने की मुख्य विशेषता यह होती है की किसी भी विशेष व्यक्ति की संगीत परंपरा में कम से कम तीन पीढ़ियों तक वही परंपरा चलती रहनी चाहिए तथा उस परंपरा में एक विशिष्ट तथा भिन्न गायन शैली या गायन तकनीक का पालन होना चाहिए। जब एक गायक अपनी

गायकी में अपनी स्वतंत्र प्रतिभा से कुछ विशेषता या अन्य गायकों से भिन्नता ले आता है और वही गायकी अपने पुत्रों या शिष्यों आदि को सिखाने लगता है तो शिष्यगण भी उसी प्रकार की गायकी को गाने लगते हैं। कुछ पीढ़ियों तक गायकी की वही परम्परा चलने पर वह एक घराने के नाम से जानी जाने लगती है। इस प्रकार जब एक ही गायकी शिष्य प्रशिष्यों के रूप में अनेक पीढ़ियों तक चलती है तो उसे घराना परंपरा कहा जा सकता है।

घराना की विशिष्ट गायन शैली या 'रीति' जिस गायक-वादक द्वारा प्रवर्तित होती है वही उसके संस्थापक माने जाते हैं और उन्हीं के नाम से अथवा निवास स्थान से उस घराने का नामकरण होता है। घराने का सूत्रपात तब होता है जब घराने की शैली में कोई विशेषता हो कोई अनोखा तत्व हो। घराना परंपरा भारतीय संस्कृति की देन है। प्राचीन काल के वैदिक काल में गुरु शिष्य परंपरा का प्रचलन था जिस में मनुष्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा एवं ज्ञान कि प्राप्ति करता था। आधुनिक समय में कहा जा सकता है कि घराना परंपरा गुरु शिष्य परंपरा का ही एक विकसित रूप है जिस प्रकार प्राचीन काल में जाति गायन प्रचलित था तथा मध्य काल में उसका नाम राग गायन में परिवर्तित हो गया उसी प्रकार प्राचीन काल के गुरु शिष्य परंपरा का स्थान घराना परंपरा ने ले लिया।

भारतीय संगीत में नई-नई सोच या अलग-अलग मत की उत्पत्ति से नए-नए घरानों का जन्म हुआ। घराना शब्द प्राचीन काल में सुनने को नहीं मिलता है परन्तु अलग-अलग मत ज़रूर प्रचलन में थे जैसे- शिव मत, भरत मत आदि। प्राचीन काल से मध्य काल तक अलग अलग गीतियाँ भी प्रचलन में थी जैसे- शुद्धा गीति, बेसरा गीति, साधारणी गीति आदि। इन गीतियों में घराने के अंश मिलते है। घराना शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उन्नीसवी सदी में ख्याल की बढ़ती लोकप्रियता के कारण हुआ। ख्याल के क्रमिक विकास के साथ-साथ अनेक घरानों का गठन हुआ, जिनमें ग्वालियर, जयपुर, आगरा, दिल्ली, भिंडी बाज़ार, मेवाती तथा रामपुर-सहसवान घराने विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मेवाती घराने की उत्पति एवं विकास :

19वीं सदी के उतरार्द्ध में मेवाती घराने की स्थापना इंदौर के रहने वाले दो भाइयों द्वारा की गई - उस्ताद घग्गे नज़ीर ख़ान तथा बड़े भाई उस्ताद वहीद ख़ान।

उस्ताद घग्गे नज़ीर ख़ान ने ग्वालियर घराने के बड़े मोहम्मद ख़ान साहब के बेटे वाजिद अली शाह से ख़्याल गायन सीखा। उस्ताद घग्गे नज़ीर ख़ान की कोई अपनी संतान नहीं थी इसलिए उन्होंने अपने भाई के बेटे उस्ताद मुन्नवर ख़ान साहब को गोद लिया था। उस्ताद मुन्नवर ख़ान साहब ने गायन की तालीम घग्गे नज़ीर ख़ान साहब से ली तथा रुद्र वीणा की तालीम उस्ताद वहीद ख़ान से प्राप्त की। उस्ताद घग्गे नज़ीर ख़ान जी की गायिकी में गमक बहुत ज़ोरदार तथा आकर्षक होने के कारण उन्हें 'घग्गे' सम्मान में कहा जाता था अर्थात् उपाधि की तरह। घग्गे नज़ीर ख़ान ने अपने भांजे नत्थू लाल तथा चिमन लाल को ख्याल गायन की शिक्षा चौदह वर्ष तक दी। पंडित नत्थू लाल जी ने अपने भांजे पंडित मोतीराम जी को गायन शिक्षा दी। पंडित मोतीराम जी कश्मीर के राज गायक थे। पंडित मोतीराम जी के शिष्य उनके भाई पंडित ज्योति राम, उनके बेटे पंडित मणि राम थे। पंडित मणि राम जी के शिष्य उनके भाई पंडित जसराज जी तथा भांजे पंडित रतन मोहन शर्मा रहे। वर्तमान समय में पंडित जसराज जी के शिष्य इस घराने का सरंक्षण करने में एहम भूमिका निभा रहे हैं जिनमे से मुख्य शिष्य है- पंडित संजीव अभ्यंकर, पंडित रतन मोहन शर्मा, कला रामनाथ, अंकिता जोशी, श्वेता झावेरी, डॉ० विलीना पत्रा आदि।

हिंदुस्तानी संगीत में मेवाती घराना बीसवीं सदी में विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ, जिसका प्रमुख श्रेय महान गायक पंडित जसराज जी को दिया जाता है। मेवाती घराने की लोकप्रियता इस कारण भी है क्योंकि इस घराने में हिंदुस्तानी संगीत की कई विधाएँ गायी-बजायी जाती है जैसे- ख्य़ाल गायन विधा, हवेली संगीत, अभंग गायन, तराना गायन, भजन आदि। भजन जैसी संगीत विधा को आम मनुष्य भी चाव से सुनता और समझता है। पंडित जसराज जी के द्वारा रचित राग अड़ाना में माता कालिका नाम की बंदिश भजन के रूप में बहुत प्रसिद्ध हुई तथा इस रचना को श्रोताओं ने खूब सराहा। इसी रचना के द्वारा मेवाती घराने की लोकप्रियता बढ़ती चली गई।

मेवाती घराने की गायिकी में आध्यात्मिक पहलू का विशेष प्रभाव देखा जाता है। मेवाती घराने में ख्य़ाल गायन के आरंभिक चरण में राग के चलन के आलाप का प्रस्तुतीकरण आध्यात्मिक मंत्र के द्वारा किया जाता है इस मंत्र के बोल इस प्रकार है- 'ओम श्री अनंत हरि नारायण'। मेवाती घराने की परंपरा में अष्टछाप के कवि सूरदास, कुंभनदास और छीतस्वामी जैसे भक्त कवियों की रचनाओं से जुड़ी होती हैं। इस शैली में धार्मिक ग्रंथों से लिए गए पदों को भी शामिल किया जाता है। पंडित जसराज ने हवेली संगीत की शैली और रचनाओं को अपनी गायकी में आत्मसात किया और इस प्रकार एक विशिष्ट साहित्यिक रंग मेवाती घराने में जोड़ा।

द्वि-रागात्मक जुगलबंदी की अभिनव शैली- जसरंगी गायन :

अनेक गायन विधाओं के विकास के साथ-साथ मेवाती घराने में एक नवीन शैली का उद्भव हुआ, जिसे जसरंगी गायन के नाम से जाना जाता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की जसरंगी गायन विधा का अविष्कार पंडित जसराज जी के द्वारा किया गाया। यह प्राचीन भारतीय शास्त्रीय संगीत की मूर्छना पद्वति तथा पाश्चात्य की हार्मोनी पद्वति पर आधारित है।

जसरंगी गायन में दो कलाकार एक ही समय पर दो भिन्न रागों की प्रस्तुति देते हैं, जिसमें षड्ज-मध्यम संवाद अनिवार्य होता है। इसे जसरंगी जुगलबंदी भी कहा जाता है क्योंकि इसमें दो कलाकार शामिल होते हैं। जसरंगी गायन एकत्रित कला अविष्कार का एक वह आनंदित रूप है जिस में दो अलग-अलग कलाकार अपने घराने की गायिकी, विशेषता को एक साथ प्रस्तुत करने की स्वतंत्रा रखते है। जसरंगी गायन की पहली प्रस्तुति 1992 पुणे में हुई। वर्तमान समय में इस गायन श्रेणी के कलाकार हैं- पंडित संजीव अभ्यंकर तथा डॉ अश्विनी भिड़े देशपांडे, डॉ॰ विलीना पत्रा तथा साईं पंचम, डॉ॰ रिंदना रहस्या तथा डॉ॰ अविनाश आदि। मेवाती घराने में जसरंगी गायन विधा का आविष्कार भारतीय शास्त्रीय संगीत के जगत में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संक्षिप्त में मेवाती घराने की विशेषताएँ निम्न प्रकार है :

1. मेवाती घराने में मींड, घसीट तथा कण का बहुत प्रयोग होता है।
2. मेवाती घराने में गायन के दौरान शब्दों का महत्व स्थापित करना बहुत महत्वपूर्ण है।
3. इस घराने में आध्यात्मिक पहलू पर बहुत ध्यान दिया जाता है।
4. मेवाती घराने में शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है चाहे वह स्वर की शुद्धता हो, पद की शुद्धता हो, राग की शुद्धता हो या लय की शुद्धता हो।
5. कण युक्त छोटी मुर्कियों का प्रयोग।
6. शब्दों तथा स्वरों के भाव पक्ष पर विशेष बल दिया जाता है।
7. राग के रस को जीवित रखना।
8. मेवाती घराने में कंठ की तैयारी में विशेष बल दिया जाता है।

हिंदुस्तानी संगीत के प्रत्येक घराने से अलग-अलग गायन शैली का निर्माण होता है। इसीलिए हिंदुस्तानी संगीत में घराना पद्वति बहुत विशेष महत्व रखती है। गुरु शिष्य परम्परा जैसी महान भारतीय संस्कृति आज भी घराने के माध्यम से ही सुरक्षित है। मेवाती घराना हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत का एक भावप्रधान और भक्ति-प्रधान घराना है, जिसने गायन को सरलता, भावनात्मक गहराई और अध्यात्म से समृद्ध किया। पंडित जसराज जैसे महान गायकों के माध्यम से इस घराने ने जसरंगी जैसी नई विधाओं की शुरुआत की और संगीत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैलाया। इस घराने का योगदान भारतीय संगीत को एक नई दिशा और पहचान देने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कुमार चौबे (डॉ॰) सुशील, संगीत के घरानों की चर्चा (1977)।
2. बुद्धिराजा, सुनीता, रसराज पंडित जसराज (2018)।
3. मिश्रा, शम्भूनाथ, हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा (2014)।
4. अभ्यंकर, संजीव, 'पंडित जसराज', संगीत कला विहार (अक्टूबर नवंबर 2002)।
5. शर्मा, भगवत शरण, भारतीय संगीत का इतिहास (2019)।

रामचरितमानस में अभिव्यक्त आध्यात्मिकता की उत्तर आधुनिकतावादी युग में प्रासंगिकता

पुनीत कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय,
महेंद्रगढ़, हरियाणा

रोबिन
शोधार्थी, हिंदी-विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय,
महेंद्रगढ़, हरियाणा

शोध सार :

भारतीय सभ्यता और संस्कृति जितनी प्राचीन है उतनी ही प्रासंगिक भी। इस सभ्यता का उदय केवल कुछ वर्षो की कहानी मात्र नही है इसकी एक लंबी परंपरा रही है। भारतीय संस्कृति की एक बड़ी महत्वपूर्ण विशेषता है कि यहां पर समय-समय पर अनेक संस्कृतियों का आगमन हुआ परिणामस्वरूप संस्कृतियों की टकराहट हुई है जिससे एक नई चमत्कृत संस्कृति का विकास हुआ है, जिसके प्रभाव स्वरुप भारतीय समाज, संस्कृति और भाषाएं भी प्रभावित हुई है।भारतीय संस्कृति निरन्तर गतिशील रही है और अनेक विचारधाराओं का प्रभाव इस पर पड़ा है। साहित्यिक दृष्टि से देखे तो भक्तिकाल का साहित्य हिंदी नहीं अपितु सभी भारतीय भाषाओं का स्वर्णिम काल रहा है जिसका वैश्विक स्तर पर नैतिक एवं आध्यात्मिक महत्व है।तुलसीदास विश्व भर के साहित्य में भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले रामचरितमानस का प्रणयन धर्माचरण, सदाचार, अनुशासन एवं कर्त्तव्य पालन जैसे गुणों को समाहित करके करते हैं। उनके चिंतन में धर्म एवं संस्कृति के पोषक तत्व सम्मिलित है जो युगों युगों तक इस ग्रन्थ को स्थायित्व प्रदान करता है। तुलसी अध्यात्म को शक्ति के रूप में दिखाते हैं और यह भी सिद्ध करते है कि किस प्रकार से विनीत गुणों से बड़े बड़े संग्राम जीते जा सकते हैं। वर्तमान समय में भी मनुष्य द्वंद और चिंताओं से निरन्तर संग्राम लड़ रहा है, ऐसे में रामचरितमानस में अभिव्यक्त आध्यात्मिकता की वर्तमान प्रासंगिकता को स्पष्ट करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है। निसंकोच यह बात स्वीकृत की जा सकती है कि अध्यात्म आज के युग की आवश्यकता है लगभग सभी चिंतक, विचारक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक इसकी आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं। वर्तमान समय में अध्यात्म का स्वरूप बाहरी कर्मकांड धार्मिक कट्टरता से ऊपर उठकर आंतरिक मानवीय क्रिया व्यापारों पर आधारित हो गया है। अध्यात्म जीवन दृष्टि और जीवन शैली का समन्वय है यह जीवन को समग्र ढंग से देखने का एक नजरिया है यह जीवन की जड़ों तक पहुंचाने का एक मार्ग है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में अध्यात्म का मानव जीवन पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा है। यह मनुष्य को ऐसा मार्ग प्रदान करता है जो आत्मा और बुद्धि दोनों का पूरक है इससे व्यक्ति जितना आंतरिक रूप से दृढ़ होता है उतना ही बाहरी रूप से। विश्व को एक करने में अध्यात्म महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है जो आज व्यापक स्तर पर मानवीय सर्वलोक हितकारी बनकर

पूरे विश्व के सामने आया है। उत्तर आधुनिकतावाद ने विश्व के सामने कई चुनौतियां रखी है यह चुनौती जितनी सामाजिक है उतनी ही वैयक्तिक भी, अतः इन दोनों समस्याओं के बीच सामंजस्य बनाने में किस प्रकार अध्यात्म एक महत्वपूर्ण कारक बनता है, इस बात को भी इस शोध पत्र में दिखाया जाएगा।

बीज शब्द :

उत्तर आधुनिकता, अध्यात्म, भक्ति, भौतिकता, नैतिकता, आचरण एवं संस्कृति।

मूल आलेख :

तुलसीदास हिंदी साहित्य के ही नहीं विश्व साहित्य के महान कवियों में से एक थे। तुलसीदास भक्तिकालीन सगुणधारा की रामाश्रयी साखा के भक्त कवि थे जिन्होंने भक्ति आंदोलन को एक वैचारिक पृष्ठभूमि प्रदान की है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से भक्ति के मार्ग में आध्यात्मिकता के महत्व को दिखाते हैं। तुलसी जितना समाज के प्रति जागरूक हैं उतना ही व्यक्ति के प्रति सचेत भी। आध्यात्मिकता और भक्ति भावना उनके काव्य में गहराई से समाई हुई है। रामचरितमानस तुलसीदास द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो श्रीराम के जीवन और उनके आदर्शों का वर्णन करता है। इस ग्रंथ का प्रभाव केवल एक धार्मिक पुस्तक के रूप में नहीं है बल्कि इसमें अभिव्यक्त नैतिकता और आध्यात्मिकता का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में भगवान राम के प्रति अपने प्रेम और समर्पण के माध्यम से भक्ति के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया, जो मनुष्य के लिए मार्गदर्शक बनती है। तुलसीदास ने आध्यात्मिकता को जटिल और कठिन न मानते हुए उसे सरल और सुलभ बनाने की कोशिश की। उन्होंने भक्ति को किसी विशेष वर्ग या जाति से जोड़ने के बजाय सार्वभौमिक आध्यात्मिकता से जोड़ा। उनकी मान्यता थी कि ईश्वर की भक्ति में जाति, धर्म और सामाजिक भेदभाव का कोई स्थान नहीं है यही कारण था कि उन्होंने सामाजिक भेद को कुछ कम कर, समाज को पुनः एकीकृत करने का सफ़ल प्रयास किया। तुलसी की आध्यात्मिक भावना और मानस की चौपाइयों का भारतीय समाज पर एक लंबा और गहरा प्रभाव रहा है। उनकी कविताएं सामान्य लोगों को इतनी याद है कि वे हिंदी भाषा का मुहावरा बन गई हैं। राम के चरित्र को ईश्वरीय स्वरूप प्रदान कर वाल्मीकि ने मनुज को ईश्वर से जोड़ा तो तुलसी ने ईश्वरीय राम को संघर्ष और मानवीय गुणों से युक्त कर लोक का नायक बनाया।

किसी भी कवि की रचना के मूल्यांकन का प्रमुख आधार होती है उसकी तत्कालीन प्रासंगिकता, रामचरितमानस में वर्णित अनेक प्रकार के गुणों को देखा जा सकता है जो वर्तमान समय में समाज के लिए कल्याणकारी और लाभकारी है। तुलसीदास के काव्य में अभिव्यक्त भक्ति सुलभ मार्ग, रामराज्य की परिकल्पना, स्त्री पराधीनता, सामंती विचारों का विरोध और मानवीय संवेदनाओं का महत्व उनकी समाज विषयक चिंता को दिखाता है। तुलसी की भक्ति भावना लोकमंगल की अवधारणा पर आधारित है उसमें धार्मिक सहिष्णुता नहीं है, किसी धर्म के लिए कट्टरभाव नहीं है वह मूलतः मानववादी है उनकी महत्वता सामाजिक संबंधों के वर्णन करने में है, जनसाधारण की वेदना और मुक्ति की कामना में है। ''तुलसीदास की भक्ति संबंधी स्थापना केवल सामंती विचारों से लड़ने में ही मदद नहीं देती बल्कि वह पूंजीवादी सिद्धांतों से भी लड़ने में मार्ग दर्शन करती है।''[1] आधुनिक समाज में उत्तर आधुनिकतावाद जीवन की एक शैली है, जिसने मानव मानव के मध्य दूरी समाप्त करके एक विश्व संस्कृति के निर्माण का प्रयास किया है। सामान्य रूप से छोटे-बड़े, मुख्य-पिछड़े सभी की आवाज को उत्तर आधुनिकतावाद में

उठाया गया है। इसने शक्तियों को बहूकेंद्रीय बनाया साथ ही साथ विकेंद्रीयता और क्षेत्रीयता को प्रोत्साहन दिया है। अतिशय तार्किकता और बौद्धिकता के कारण आज ऐसा समझा जाता है कि जो चीज बिक्री के योग्य नहीं है वह मूल्यहीन है। कला संस्कृति,ज्योतिष भगवान, मानवीय संवेदना, देशभक्ति, अपराध एवं अध्यात्म सभी को बाजारवादी व्यवस्था में बिकाऊ माना जाता है लेकिन उत्तर आधुनिकतावाद इस बाजारवादी व्यवस्था का विरोध करता है और विज्ञान की जगह अनुभव की वापसी को प्रमुखता देता है। उत्तर आधुनिकता ने मनुष्य की भावनाओं और संवेदनाओं को नजदीक किया है साथ ही साथ जीवन में प्रेम, शांति, खुशी और विवेक जैसे पक्षों पर भी जोर दिया है। यह हमारे मानसिक जीवन और आंतरिक जीवन को समृद्ध करने के साथ-साथ हमारे आपसी संबंधों को भी बेहतर बनाता है। उत्तर आधुनिकता में इस बात पर जोर दिया गया है कि प्रतियोगिता और होड़ की इस दुनिया में अध्यात्म, मनुष्य को संतोष और विनय जैसे गुण प्रदान कर सकता है।

उत्तर-आधुनिकतावाद के लिए अंग्रेजी में पोस्ट मॉडर्निज्म शब्द का प्रयोग होता है। शब्द की संरचना के कारण से इसके कई आर्थ ग्रहण किए जाते हैं परंतु इसे आधुनिकता का अगला चरण ना मानकर इसे आधुनिकता की अतिश्यता से मुक्ति मानना चाहिए। उत्तर आधुनिकतावाद मूलतः एक विचारधारा है जो आधुनिकता की बौद्धिक मान्यताओं और मूल्यों के विरुद्ध एक प्रक्रिया है। सुधीश पचौरी कृत 'उत्तर आधुनिक साहित्यिक विर्मश' में इस तथ्य का उल्लेख मिलता है कि "उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिकता का अंतिम बिंदु नहीं बल्कि उसमें मौजूद एक नया बिंदु है।"[2] निसंकोच यह बात स्वीकृत की जा सकती है कि अध्यात्म आज के युग की आवश्यकता है लगभग सभी चिंतक, विचारक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक इसकी आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं। वर्तमान समय में अध्यात्म का स्वरूप बाहरी कर्मकांड, धार्मिक कट्टरता से ऊपर उठकर मानवीय क्रिया व्यापारों पर आधारित हो गया है। अध्यात्म जीवन दृष्टि और जीवनशैली का समन्वय है यह जीवन को समग्र दृष्टि से देखने का एक नजरिया है यह जीवन की जड़ों तक पहुंचने का एक मार्ग है। "तुलसीदास की आध्यात्मिक भावना न केवल भक्ति के प्रति उनकी गहरी आस्था को दर्शाती है, बल्कि यह मानवता के लिए एक प्रेरणादायक मार्ग भी प्रस्तुत करती है। तुलसी का विवेक कुछ मूल्यों पर आधारित है। उन मूल्यों के प्रतीक राम हैं चूंकि राम परात्पर ब्रह्मा होने के साथ साथ लोकमंगल के भी विधायक है, अतः वह जीवनवादी है और संघर्ष करने वाले है और राम का विवेकयुक्त संघर्ष विषमता में भी मनुष्य को प्रेरणा देता हैं।"[3] तुलसी की चेतना कल्पना के द्वारा वर्तमान से दूर अतीत और भविष्य दोनों में पहुँचती है और जन जीवन में संदर्भवान बनती है, जिसके कारण रामचरितमानस की महत्ता उत्तर आधुनिकतावादी युग में भी बनी हुई है।

तुलसीदास ने जीवन में बार-बार युद्धों के कारण आम जनता को त्राहि-त्राहि करते हुए देखा था, उस पर अक्सर महामारी का प्रकोप हो जाया करता था। तुलसीदास ने जीवन के अंतिम समय में भी इस प्रकोप को झेला था और अकाल में लोगो को अपने सगे संबंधियों को खोते हुए देखा था जिस कारण वो लिखते है "कलि बारहिं बार दुकाल परे"[4] आज विश्व स्तर पर कोरोना जैसी विनाशकारी महामारी ने भी लोगों के जीवन में त्रासदी मचाई है जिस कारण मनुष्य की आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर ही नहीं मानसिक स्थिति पर प्रभाव पड़ा है। ऐसे नकारात्मक समय में अपने अंदर की शांति को बनाए रखने के लिए अध्यात्म जरूरी है। कई विद्वानों का यह भी मानना है कि अध्यात्मिक दर्शन मनुष्य की समस्याओं के लक्षण को खत्म ही नहीं करता है अपितु उसे दूर भी करता है। तुलसीदास इस बात को स्वीकार करते है कि अध्यात्म खुद से बड़ी शक्ति को महसूस करने की प्रक्रिया है आध्यात्म किसी व्यक्ति को जीवन दर्शन

प्रदान करता है। साथ ही साथ अध्यात्म एक नजरिया देता है, जिससे मन और शरीर में स्वस्थ आदतें सकें। अध्यात्म आपको मानसिक और भावनात्मक शांति प्रदान करता है।

तुलसीदास जिस प्रकार निर्गुण और सगुण के भेद को दूर करते हैं। शैव और वैष्णव संप्रदाय के अनुयायियों को एक करते हैं वह इस तरह समन्वय की विराट चेष्टा प्रस्तुत करते हैं और भारतीय समाज को एकीकृत करने का प्रयास करते हैं। ''वे जिस राम के उपासक हैं वे सगुण और निर्गुण, प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों है। इसलिए तुलसीदास न तो विशुद्ध सगुणमर्गी है न विशुद्ध निर्गुणमार्गी''[5] तुलसीदास स्वयं लिखते हैं कि -

''अगुण सगुण दुई ब्रह्मा सरुपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥''[6]

इन पदों की रामविलास शर्मा ने आधुनिक संदर्भ में व्याख्या की है ''यदि प्राचीन दर्शन की शब्दावली को थोड़ी देर के लिए छोड़ दें तो इस युक्ति में ऐसी कोई बात नहीं है जो आधुनिक विज्ञान का आग्रह हो। मनुष्य का ज्ञान सीमित है उसके ज्ञान के साधन सीमित हैं। जगत अनंत है, इसलिए वह जितना जानता है, वह पूर्ण इकाई का अंश मात्र ही है।''[7] इस प्रकार से हम यह भी कह सकते है जिसे हम देखते हैं, वह अनदेखे से विलग नहीं है, वह उसी का अभिन्न अंग है। तुलसी भी इसी प्रकार सगुण और निर्गुण को बिल्कुल अलग न मानकर उसे एक परोक्ष सत्ता से जोड़ते हैं जिससे समस्त संसार उन्हें राममय दिखता है :

''सिया राममय में सब जग जानी।
करउँ प्रणाम जोरी जुग पानी॥''[8]

तुलसीदास की रामविषयक चेतना इतनी व्यापक है कि वह आज भी प्रासंगिक है। वे जड़ और चेतन दोनों को राम की भक्ति में एक कर देते हैं उसी प्रकार उत्तर आधुनिकतावाद ने भी जड़ और चेतन को एकीकृत स्वरूप में स्वीकार किया है। ''उत्तर आधुनिकता हर महानता को विदाई देती है और एक सामान्यता या न्यूनतमता सबको संभव करती है।''[9]

'जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि
बन्देउ सबके पद कमल सदा जोरी जुग पानि''[10]

उत्तर आधुनिकतावाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी एक सिद्धांत का नहीं वरन अनेक सिद्धांतों का पक्षधारी है इसमें नई अभिवृत्तियां और बौद्धिकता के नूतन पक्ष भी देखने को मिलते हैं। यह एक नई सांस्कृतिक अवस्था है। जो नई किस्म के अनुभवों, व्यवहारों और जिंदगियों से होकर गुजर रहा है यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बातों के प्रति सचेत है। उत्तर आधुनिकतावाद का संदर्भ सांस्कृतिक तत्वों से है, इसका तात्पर्य कला, फिल्म पुरातत्व तथा इस तरह की सांस्कृतिक वस्तुओं से है यह संपूर्ण अवधारणा सांस्कृतिक है और इसके कारण इसके सांस्कृतिक महत्व का विश्लेषण करते हुए इसे आध्यात्मिकता से भी जोड़ा जाता है। आधुनिकता के कारण मनुष्य अतिश्य बौद्धिक हो गया जिसके परिणाम स्वरुप पचास वर्ष के अंतराल में ही दुनिया को दो विश्व युद्ध का सामना करना पड़ा इससे उत्पन्न त्रास और मानवीय संवेदनाओं के क्षय होने के कारण लोग आध्यात्म की ओर अग्रसर हुए जिसके परिणाम स्वरुप यह उत्तर आधुनिकता की एक मुख्य विशेषता बना है।

वर्तमान परिदृश्य में देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्यात्म का संबंध केवल पुराने जमाने या संस्कारों से ही नहीं है इसका संपूर्ण आशय भक्ति तक न होकर व्यक्ति की मानसिक स्थिति तक है। ''धर्म उत्तर आधुनिकतावाद में एक व्यापक धारणा है जिसका मूल उद्देश्य मानव की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना है।''[11] यह प्रक्रिया वृद्धों के लिए ही नहीं युवकों के लिए भी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। अध्यात्म का संबंध केवल धार्मिक होने से नहीं है बल्कि हर प्रकार के बंधनों से मुक्त होने से है।

''अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥''[12]

तुलसीदास ने राम-नाम के जपने को सभी के लिए समान रूप से स्वीकार्य बताया, जिससे जाति, लिंग या अन्य भेदभाव मिट जाते हैं। उन्होंने यह दर्शाया कि राम-नाम जपने से सभी लोग एक समान रूप से भगवान के निकट जा सकते हैं। तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह धर्म पर अटल विश्वास रखते थे किन्तु उनका धर्म केवल देवोपासना और ब्रह्मचार में सिमट कर रह जाने वाला धर्म न था वरन् वह नैतिक आचरण का शसक्त करने वाला धर्म था। "तुलसी के धार्मिक विश्वास के आधारभूत तत्व हैं बौद्धिक चिंतन तथा सात्विक और सम्यक अनुभूति उनका धार्मिक दृष्टिकोण अत्यंत सुष्ट किंतु व्यापक है।"[13] तुलसी केवल धर्म के सैद्धांतिक पक्ष तक ही सीमित नहीं है वह उसे आचरण में भी लाने के पक्षधर हैं।

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहीं ते नर न घनेरे"[14]

"निर्मल मन जन सो मोहि भावा,
मोहे कपट छल छिद्र ना भावा॥"[15]

आधुनिकता के कारण मनुष्य भौतिकवाद की ओर उन्मुख हुआ जिसके कारण मनुष्यता का पतन हुआ है उत्तर आधुनिकतावाद इस पतन को अध्यात्म की दृष्टि से रोकने का प्रयास करता है युद्धों की विभाषिका के कारण मनुष्य अनेक कुंठाओं से ग्रसित हुआ है। "कलि बारहि बार दुकाल परे, अन्न बिनु सब लोग मरे"[16] लाभ-हानि, मान अपमान, सुख-दुःख, उत्थान-पतन सभी स्थितियों में आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलने से व्यक्ति आंतरिक रूप से सशक्त हो सकता है। उत्तर आधुनिकता और अध्यात्म दोनों को जब हम एक साथ देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में भौतिक पक्षों पर नियंत्रण कर हम आध्यात्मिकता की ओर बढ़ सकते हैं, अच्छा आचरण, सदाचार, आत्म अनुशासन, सम्मान, गरिमा जैसे गुणों को आध्यात्मिक साधना करके सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

"काम क्रोध मद लाभ सब नाथ नरक के पंथ
सब परिहरी रघुबीरही भजाऊं भाजही जेहि संत॥"[17]

वर्तमान जगत में जहां सभी सत्ता के पक्षधर है। अधिकांश निज कल्याण हेतु दूसरों के साथ अन्याय कर सकते हैं वहीं आध्यात्मिक राह पर चलने वाला व्यक्ति सभी जीवों को समान मानता है तथा वह अपने व्यवहार में सत्य और करुणा का उचित समन्वय करके दूसरों की सहायता और कल्याण भी करता है। तुलसीदास ने इस बात को भी स्वीकारते है कि जो मनुष्य ईर्ष्या और द्वेष की भावना रखता है वो कभी दूसरों की प्रसन्नता उन्नति में खुश नहीं रह सकता और दूसरों का सुख उसे सदा ही कष्ट प्रदान करता है :

"जग बहु नर सर सरि सम भाई।
जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥"[18]

तुलसी लिखते हैं कि इस जगत में तालाबों और नदियों के समान मनुष्य ही अधिक है, जो जल पाकर अपने ही बाढ़ से बढ़ते हैं अर्थात अपनी ही उन्नति से प्रसन्न होते हैं। समुद्र के समान तो विरला ही कोई सज्जन होता है जो चंद्रमा को पूर्ण देखकर (दूसरों को उत्कर्ष देख) उमड़ पड़ता हो यदि हम इसे वर्तमान समय में देखें तो इस समय पूंजी की होड़ मची हुई है बाजारों की कीमत बढ़ चुकी है, वस्तुओं की महत्ता दाम द्वारा निर्धारित की जाती है और सभी लोग कंज्यूमर (उपभोक्ता) बन चुके हैं। ऐसी गलाकाट प्रतियोगिता में स्वार्थ सिद्धि के लिए यथा-संभव लोग अपना हित साध कर दूसरों का बुरा कर सकते है। ऐसे में तुलसी की वाणी में इंगित बाते की संसार मायावी है और भौतिक संसाधन मात्र स्त्रोत हो सकते है सामग्री जुड़ाने के लिए परंतु वह सदैव हमारे चित्त को शान्ति प्रदान नहीं कर सकते।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में इस बात को स्वीकार किया है कि अतिशय आधुनिकता

के कारण पारिवारिक संस्थानों का क्षय होगा और मर्यादाओं का उल्लंघन होगा, स्त्री का शौषण बढ़ जाएगा और नैतिक मान्यताओं का उल्लंघन किया जाएगा। आज किसी भी संबंधों को लोग शक्ति अनुरूप ही महत्व देते हैं जो व्यक्ति जितना अधिक समृद्ध और बलशाली होगा उसके उतने ही अधिक संबंध होंगे। तुलसी की मान्यता यह है कि व्यक्तिगत एवं परिवारिक आचरण सामाजिक व्यवस्था की नींव होते हैं और उस नींव को सुदृढ़ करने के लिए व्यक्ति के हृदय में परिष्कृत मनोवृत्ति होनी चाहिए जिसके लिए उसके हृदय में विनम्रता और आत्मीयता होनी चाहिए, इन गुणों से हीन व्यक्ति व्यभिचारी और क्रूर होगा।

तुलसी इस बात से अवगत थे कि स्त्री का जीवन पराधीनता से भरा हुआ है वह लिखते हैं ''पराधीन सपनेहु सुख नाहि, होइए तो ओहस्म नहीं''[19] और पितृसत्तात्मक समाज अपने उपयोगिता अनुरूप ही स्त्री का प्रयोग करता है और स्त्री को बरगलाने की क्षमता भी रखता हैं। वर्तमान समय में जब स्त्रियां शिक्षित हुई और आर्थिक रूप से दृढ़ हुई तो वह व्यक्तिगत फैसलों के लिए अंशत स्वतंत्रत हुई तो उन्होंने अपने लिए उन्मुक्त प्रेम मार्ग का चयन किया जिससे लिविंग रिलेशनशिप, एबॉर्शन और शारीरिक शोषण भी बढ़ा और स्त्री का दोहरा शोषण आरंभ हुआ। तुलसीदास भारतीय समाज के लिए दाम्पत्य जीवन को उपयुक्त मानते हैं और कहीं न कहीं आज सीता राम के जीवन से यह संदेश प्रेषित होता है।

पतिव्रता पात्रों के माध्यम से तुलसी सबको यह संदेश देना चाहते हैं कि सीता उत्तम कोटि की पतिव्रता नारी है तो राम भी एक पत्नी व्रत के उच्चादर्श पालन करने वाले पुरुष हैं। उनका मानना है कि यदि स्त्री पतिव्रत धर्म का पालन करती है तो पुरुष के लिए परस्त्रीगमन भी दंडनीय अपराध है :

''अनुज बधू भगिनी सूत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हीं कुदृष्टि बिलोकई जोई।
ताहि बंधे कछु पाप न होई।।''[20]

उत्तर आधुनिकतावादी समाज में शासकिय ताकतों को सरकारें स्वयं ही निमंत्रित करती है, पूंजी के बाजार में बड़े-बड़े उद्योग तो स्थापित हो जाते हैं परंतु मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय टूट पूँजिया व्यापारियों की हालत मंदी हो जाती है, तुलसी के रामराज्य की कल्पना भी इसका पूर्णतः विरोध करती है वह सार्वभौमिक स्तत्पोषणीय विकास पर जोर देते है, केवल किस एक वर्ग के उत्थान से वह सहमत नहीं दिखाई पड़ते :

''मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कहूं एक।
पालई पोषई सकल अंग तुलसी सहित बिबेक।।''[21]

निःसंकोच यह बात स्वीकृत की जा सकती है कि अध्यात्म आज के युग की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक स्तर पर हमें अध्यात्म एक मार्ग प्रशस्त करता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में अध्यात्म का मानव जीवन पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा है। यह मनुष्य को ऐसा मार्ग प्रदान करता है जो आत्मा और बुद्धि दोनों का पूरक है इससे व्यक्ति जितना आंतरिक रूप से दृढ़ होता है उतना ही बाहरी रूप से पूंजीवाद के बढ़ते वर्चस्व के कारण आज सभ्यता और संस्कृतियों पर संकट बढ़ता जा रहा है ऐसी परस्थिति में विश्व को एक करने में अध्यात्म महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, वस्तुतः रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है जो आज व्यापक स्तर पर मानवीय सर्वलोक हितकारी बनकर पूरे विश्व के सामने आया है।

संदर्भ सूची :

1. चौधरी, मट्टुकनाथ; रामचरित्रमानस और कामायनी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-140
2. पचौरी, सुधीश; उत्तर साहित्यिक विमर्श, राधा कृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली-110051, तीसरा संस्करण, पृ० संख्या-7

3. सिंह, सुधीर प्रताप; आदिकालीन और भक्तिकालीन काव्य, श्री नटराज प्रकाशन, ए-507/12, साउथ गामड़ी एक्टेंशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-408
4. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 7/101/10
5. चौधरी, मटुक नाथ; रामचरितमानस और कामायनी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ॰-41
6. रामचरितमानस, बालकाण्ड 1/8/2
4. सिंह, सुधीर प्रताप; आदिकालीन और भक्तिकालीन काव्य, श्री नटराज प्रकाशन, ए-507/12, साउथ गामड़ी एक्टेंशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-407
7. शर्मा, रामविलास; परंपरा का मूल्यांकन, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण, पृ॰-60
8. रामचरितमानस, बालकाण्ड, 1/23/10
9. पचौरी, सुधीश; आलोचना से आगे, राधा कृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली 110051, तृतीय संस्करण, पृ॰-9
10. रामचरितमानस, बालकाण्ड 1/8/23
11. कौशिक, राजेश; स्मार्त धर्म और तुलसी का काव्य, संजय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ संख्या-5
12. रामचरितमानस, बालकाण्ड, 7/3
13. शुक्ल, डॉ॰ प्रेमशंकर; गोस्वामी तुलसीदास, पृ॰-159
14. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड 2/95/3
15. वही, सुन्दरकाण्ड, 37/3
16. वही, लंकाकाण्ड, 101/10
17. वही, सुन्दरकाण्ड, 37/4
18. वही, बालकाण्ड, 47/3
19. वही, बालकाण्ड, 46/2
20. वही, अयोध्याकाण्ड, 237
21. वही, अयोध्याकाण्ड, 2/3/15

रेखांकन का विवेचनात्मक अध्ययन : भारतीय पारम्परिक लघुचित्रों के सन्दर्भ में

राधिका विश्वकर्मा
शोध छात्रा,
चित्रकला विभाग, दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार :

इस शोध आरेख में रेखांकन की प्रणाली के सारतत्व का मनन करने के लिए रेखांकन का विवेचनात्मक अध्ययन भारतीय पारम्परिक लघुचित्रों के सन्दर्भ में उल्लेखित करने का एक सत्यनिष्ठ प्रयत्न किया गया है। जिससे की लघुचित्रों में रेखांकन की बारीकियों और उसकी कार्यशैली के विश्लेषण को विस्तारपूर्वक समझा जा सके। मध्यकालीन सम्राटों के आश्रय में विकसित हुई कला शैलियाँ भारतीय चित्रकला में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं तथा राजाधिराजाओं ने अन्य क्षेत्रों में विकास के साथ ही साथ कला को भी फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया। जिससे प्रत्येक शैलीयों तथा उनकी उपशैलीयों की अपनी स्वतंत्र विधा विकसित हुई। वस्तुतः यह शोध पत्र उस कालावधि में विकसित हो रही रेखांकन की सृजनात्मक यात्राओं का पता लगाने हेतु लघु चित्रण की कलात्मक एवं गीतात्मक शब्दावली को उजागर करने का प्रयास करता हैं। यद्यपि यह शोध आरेख उस काल की सामाजिक परिवेश, मानविय स्थितियों तथा प्रभावों के बारे में गहन अभिव्यक्ति की पंक्तिबद्ध राग हैं, तथा इसमें भारतीय लघुचित्रों में रेखांकन का सारणीबद्ध और सौन्दर्यपूर्ण रूप से अंकन करने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में लघुचित्रों के इन शैलियों और उपशैलीयों की भी अपनी अनोखी रेखांकन शैली, विशेषताएँ एवं धारणाएं थी। अतएव ये सभी कला शैलीयाँ अपनी-अपनी स्वतंत्र रेखांकन की खूबियों के साथ भारतीय कला पर अमिट छाप छोड़ती हैं।

बीज शब्द :

भारतीय पारम्परिक लघुचित्र, रेखांकन, पाल शैली, अपभ्रंश शैली, मुगल शैली, राजस्थानी शैली, पहाड़ी शैली, रागमाला, स्याह-कलम, खाका, सच्ची टिपाई, खुलाई, रंगमेजी, कर्ण स्पर्शी।

मूल आरेख :

भारत के मध्य कालीन कला इतिहास के अध्ययन से पता चलता हैं कि राजाश्रयों में फली-फूली चित्र शैलियाँ बेहद महत्वपूर्ण हैं। रेखांकन के दृष्टिकोण से विभिन्न राजघरानों के चित्र शैलीयों को देखा जाए तो इन सभी ने अपनी अलग पहचान बनाई तथा सभी शैलीयों की रेखा शैली परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं। इसी विशेषता ने प्रत्येक चित्रांकनों को महत्ता प्रदान किया व तत्कालीन संस्कृति, सभ्यता, धर्म, भाषा,

इत्यादि का इसमें चित्रित किये गये चित्रों से पता चलता हैं। लगभग 19वीं शताब्दी के समीप पहुँचते-पहुंचते चित्रकला के क्षेत्र में कलाभिव्यक्ति के प्रत्येक भाग में एक नया परिवर्तन आया और यह रूपांतरण भित्तिचित्रण से लघुचित्रण की ओर मुड़ता हुआ भली-भांति प्रतीत हो रहा था। यद्यपि लघुलित्रों में भित्तिचित्रण की विशेषताओं को महसूस किया जा सकता था। सामान्यतः पारम्परिक लघुचित्र उस समय की एकल रेखीय तकनीक को प्राथमिकता देते थे। अतः लघुचित्रों में भी रेखांकन को सबसे मौलिक और आवश्यक तत्व माना गया था।

मध्यकालीन भारत में लघुचित्रण व्यापक मानदंड पर हुआ हैं। जिनको भोजपत्र और ताड़पत्र पर बनाया गया और अन्त में धार्मिक पाण्डुलिपी के रूप में कागज पर चित्रित हुआ। भारत में ताड़पत्र पर जिन भी पाण्डुलिपियों को चित्रित किया गया उनका विषय बौद्ध धर्म था और यह पाण्डुलिपि बौद्ध धर्म की शाखा बङ्कायान से पूर्ण रूप से सम्बन्धित थी। भोजपत्र पर चित्रों को निर्मित करने के लिए सबसे पहले इन चित्रों का पूरा खाका वाह्य रेखांकन द्वारा तैयार करके, पूरे चित्र को सफेद परत से ढक दिया जाता था। तत्पश्चात् वर्णों को भरके चित्रों को पूर्ण किया जाता था और अन्त में वाह्य रेखा को काले रंग से खीचा जाता था। पाल शैली में चित्रों के रेखांकन काले रंग से बनाये गये हैं, एवं उन्हें देखकर ऐसा अभास होता है कि चित्रकारों ने तुलिका के स्थान पर निब का उपयोग किया है। इस शैली की चित्रों के रेखांकन में प्रवाहमयता तो मिलती हैं, परन्तु क्रमिक रूप से रेखाओं में उतार-चढ़ाव नही मिलता है। इन दृष्टांत चित्रों में अलंकारिकता को पर्याप्त रूप से समावेशित किया गया है। परन्तु चित्रों में आँखे वृहद, कर्णस्पर्शी एवं वक्र रेखाओं से बनाई गयी हैं। ''भारतीय चित्रकला के इतिहास में गुजरात शैली अपभ्रंश शैली और जैन शैली का नाम इसलिये उल्लेखनीय है कि उनके द्वारा जहां भारतीय चित्रकला का उज्जवल अतीत अवलोकित होता हैं, वहां उनके समागम से सुनहरे भविष्य की पृष्ठभूमि का निर्माण होता हैं।''[1]

अपभ्रंश शैली के चित्रों में मानवाकृतियों के चेहरे सवाचश्म एवं एक ही जैसे बने हैं। इन आकृतियों की नाक अनुपात से ज्यादा लंबी, नुकीली और पतले गाल की सीमा रेखा से आगे निकली बनाई गयी हैं। आँखे पास-पास, बड़ी-बड़ी परवल की फाक जैसी कुछ नुकीली, कटाक्ष रेखा दूर तक बढ़ी हुई और पुतली बहुत छोटी बनाने के लिए दो वक्रों के बीच में बिन्दी सी लगा दी जाती थी। अतः पुतली से बनावट एवं सीमा रेखा से बाहर निकले होने के कारण आंखें में उग्रता के भाव दिखाई देते थे। हाथ की उंगलियों का रेखांकन कठोर, कमजोर, अत्यधिक अलंकारिक एवं रूढ़िबद्धता से परिपूर्ण हैं। आकृतियों की सीमा रेखाएँ काली स्याही से बनाई गई है तथा रेखांकन वर्तुलाकार के जगह पर कोणात्मक प्रभाव उत्पन्न करती हैं व उसमें कोमलता का पूर्ण अभाव हैं। सभी जगह पर रेखाएँ एक ही तरह की मोटाई लिए चित्रित की गई हैं।

भारत में तैमूर वंश के साथ ही मुगल कला की शुरूआत हो जाती है। ''शहंशाह अकबर पहला कला प्रेमी शासक था, जिसने प्रसुप्त भारतीय चित्रकला को पुनरूज्जीवित किया।''[2] यद्यपि मुस्लिमों में कला सम्पूर्ण रूप से प्रतिबंधित थे और उसमें विभिन्न प्रकार के निषेध थें। इसके बाद भी मुगल सम्राट कला के प्रति बडे उदारचित्त रहे। अतएव भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद ही कला के क्षेत्र में नवीन मार्ग प्रशंसनीय हुए। दृढ निश्चयी शासक बाबर ने भयंकर मतभेद के पश्चात भारत को अपने प्रभुत्व में कर लिया। ''शहंशाह बाबर एक अद्भूत कला पारखी शासक था। वह एक सिद्वान्त कवि और साथ ही सुन्दर गद्य लेखक था।''[3] शासन की व्यस्तताओं के कारणवश कला प्रेमी होने के बाद भी वह कला के क्षेत्र में कुछ खास कर नहीं पायें। हालांकि अपने कला के प्रति प्रेम के संस्कार को अपने पुत्र हुमायूँ को विरासत स्वरूप दे गये।

कलाभिरूचि तो हुमायूँ को विरासत में मिली थी। किन्तु जीवन में राजनैतिक उतार-चढ़ाव ने उनके कला के प्रयत्नों में व्यवधान उत्पन्न किया। हुमायूँ के

ईरान प्रवास से लौटने के दौरान तबरेज में दो महान कलाकार अब्दुस्समद शीराजी और मीर सैय्यद अली से उनकी मुलाकात हुई। ये दोनों ही चित्रकार 'शीरी कलम' में निपुण थे। जिनमें अब्दुस्समद शीराजी पशु-चित्रण व मीर सैय्यद अली ग्राम्य चित्रण में पारंगत थे। अतः बादशाह ने दिल्ली की सल्लतनत संभालने के पश्चात इन दोनों चित्रकारों को अपने शाही दरबार में आमंत्रित किया। मुगल कालीन चित्रों में दो प्रकार की शैलियों का मिश्रण देखने देखने को मिलता हैं। जिसमें से एक भारतीय तथा दूसरी ईरानी शैली थी।

''यह शैली बाबर के राज्य काल में ईरान से आकर भारत में प्रविष्ट हुई, हुमायूँ के समय में इसका बीजारोपण हुआ। अकबर के राज्य में यह विकसित हुई, जहांगीर के समय में पूर्णता को प्राप्त हुई, शाहजहां के समय में पतन के चिन्ह दिखाई देने लगे और औरंगजेब के समय में प्रायः समाप्त हो गयी। इस प्रकार यह शैली केवल 200 वर्ष के अन्दर अपने जन्म, उत्थान पतन का युग देखकर ब्रिटिश सामाज्य के प्रारम्भ होते-होते समाप्त हो गयी।''[4]

मुगल चित्रों में बारीक एवं नुकीली तुलिका द्वारा साफ, कोमल महिन एवं लिपि से समानता रखती हुई रेखांकन खीचीं गई है एवं मुगल कालीन चित्रों के रेखाओं में गोलाई, वेग व जीवतंता के कारण चमक प्रस्फुटित होती हैं। इस शैली के चित्रों के रेखांकन पर ईरानी कला,चीनी कला, इस्लामी नक्काशी आदि का प्रभाव द्रष्टव्य होता हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सरल और शाक्तिशाली रेखांकन व ऊँची मनुष्याकृतियाँ इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं।

रेखांकन के परिदृश्य से शाहजहाँ का समय बहुत ही अनिवार्य रहा हैं। तथापि इसके शासनकाल में स्थापत्य कला ने अद्वितीय स्थान प्राप्त किया। परन्तु सामान्यतः कुछ ऐसे चित्र भी प्रकाशित हुए जिन्हें 'स्याह-कलम' नाम से परिभाषित किया गया। इस विधा में कागज के ऊपर फिटकरी मिल् सरेस या अण्डे की सफेदी की परत लगाकर अत्यधिक संभाल कर बारीक ब्रश से रेखांकन किया गया। इस प्रकार के रेखांकनों में सिर, दाढी आदि के बालों को सूक्ष्मता से अंकित किया जाता था तथा ओष्ठ, हथेली एवं आँखों में कम से कम वर्णो का उपयोग किया गया। वस्तुतः अत्यधिक वर्णों के प्रयोग द्वारा छाया प्रकाश को दर्शाया गया। सुनहरे एवं अन्य हल्के रंगों का प्रयोग केवल नाम मात्र किया गया। ''सम्भव है, ये चित्र खाके के रूप में चित्रकारों के पास रहते हो, जिनकी सहायता से आज्ञा प्राप्त होने पर इन्ही के आधार पर चित्र बनाकर और रंग भरकर चित्र दिये जाते हो।''[5] स्याह-कलम तकनीक में रेखाचित्रण करने वाले मुख्य चित्रकारों में चतुरमणि और मुहम्मद नादिर के नाम उत्कृष्ट हैं।

अतएव मुगल चित्र कलाओं में रेखाचित्रण के तीन स्तर देखने को मिलते हैं। इसमें पहले चरण में रेखाचित्रण अध्ययन का प्रारम्भिक सोपान था, जिसमें घोटकर तैयार किये गये चिकने कागज पर ''चित्रकार एक घुटने बैठकर ताजी तबियत से इसपर रेखांकन करता था।''[6] पहली रेखा जिसे ''टिपाई कहते हैं पर दो तीन बार पारदर्शी सफेद रंग लगा दिया जाता था। उसके ऊपर पुनः रेखांकन करते थे जिसे 'सच्ची टिपाई' कहते हैं।''[7] दूसरे प्रकार के रेखांकन चित्रण प्रकरण का अन्तिम स्तर होता था। जिसमें 'रंगमेजी' और 'गदकारी, के फलस्वरूप रेखांकन कर चित्रण को परिपूर्ण किया जाता था। और इन्हे चित्रों की 'खुलाई' के नाम से पुकारते थे। तीसरे प्रकार में वह रेखांकन सम्मिलित किए गए है, जिन्हें 'स्याह कलम' के नाम से पुकारा गया। रेखांकन के प्रतिष्ठा में मुगल शैली ने कला के महत्वपूर्ण परिदृश्य को आगे बढ़ाया, जो आगे चलकर राजस्थानी शैली व पहाड़ी चित्रकला के रूप में समृद्ध हुआ।

राजस्थानी शैली की उत्पत्ति अपभ्रंश शैली से हुई थी। परन्तु शुरू में उसपर किसी भी प्रकार का विदेशी प्रभाव नहीं था किन्तु यह शैली धीरे-धीरे मुगल के सम्पर्क में आई और उससे बहुत प्रभावित हुई। राजस्थानी

शैली रेखाओं से सुशोभित चित्रण शैली है। किन्तु पहाड़ी शैली की अपेक्षाकृत इस शैली की रेखाएं कठोर हैं। विद्वानों ने राजस्थानी कला को भित्तिचित्रण की परम्परा का मार्गदर्शक माना है। इस शैली के चित्रकारों ने विषय के रूप में प्रेम, धार्मिक आख्यानों, ग्रामीण हिन्दू लोकजीवन, बारहमासा, नायिका भेद इत्यादि का चित्रण सरलता एवं सुगमता के साथ अत्यंत गीतात्मक ढंग से सृजित किया था।

राजस्थानी शैली की खोज का श्रेय डॉ॰ आनन्द कुमार स्वामी को दिया जाता हैं। उन्होने इसे राजपूत शैली नाम से वर्गीकृत किया था। जिसे बाद में राजस्थानी शैली के नाम से पहचाना गया। डॉ॰ चित्रलेखा सिंह के नीचे लिखे गये विचार से समस्त राजस्थानी रेखांकनों का सारतत्त्व प्रस्तुत होता है :

"The drawing of Rajasthan school, it should be observed, are not at all to be dismissed as decorative art, thought they passess those qualites of rhythm and disien which are essential to all the greatest art. For the most part they are not even book illustrations, but independent works. They reflect with Extraodinary intimacy both-The life and the ideals of serious men."[8]

सामान्यतः जयपुर के कुछ रेखांकन चारकोल से सृजित किए गये थे, वही अपवाद स्वरूप है बाकि सम्पूर्ण रेखांकन पेन्सिल और रबर की सहायता से अज्ञात कलाकारों ने तूलिका से ही बनाये हैं। यहाँ नये चित्रों की निर्मिती के साथ ही साथ पुराने चित्रों की प्रतिलिपियाँ भी बनती थी। नये चित्रों के निर्माण में कलाकार लाल रंग से रेखांकन करते थे। परन्तु जयपुर में बनाये गये छवि चित्रों के रेखांकन में सीपिया या काले वर्णो का उपयोग हुआ है। चित्रों के रेखांकन पूर्ण होने के पश्चात् उसपर सफेद परत चढ़ा दी जाती थी। जिसमें से लाल रेखांकन स्पष्ट रूप से झलकता था। उसके बाद और अधिक विवरण और सुधार के साथ अधिक परिष्कृत रेखांकन किया जाता था। यह कार्य प्रथम रेखांकन को आधार बनाकर ही किया जाता था। चित्रों में त्रुटियों के निवारण के लिए सफेद परत लगाकर उसके ऊपर रेखांकन कर दिया जाता था और अन्त में बादामी, काली रेखाओं से सम्पूर्ण कार्य को पूर्ण कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त चित्रकार चित्रों की प्रतिकृतियाँ तैयार करने में जिस प्रणाली को उपयोग में लाते थे, उसे खाका कहते थे। सामान्यतः कलाकार अपने कार्यों को सुरक्षित करने के लिए या उसको अपनी अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए प्रतिलिपियाँ बनाते थे। तथा यह प्रतिलिपियाँ कभी-कभी इतनी यथार्थ बना दी जाती थी कि मूल और अनुकृति में अन्तर स्पष्ट नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार की कार्य विधि में मुख्य कार्य को कई तह वाले मोटे कागज पर रखकर रुपाकारों की वाह्य रेखा पर अत्यधिक सूक्ष्मतम सुई से छिद्र करने के पश्चात् छिद्र किए गये कागज को दूसरे कागज पर रखकर चारकोल के चूर्ण को छिड़कर चित्र को उतार लिया जाता था, इसके बाद सफेद रंग की पतली तह लगाकर उसपर सीपिया रंग से पुनः रेखांकन कर लिया जाता था व इस प्रकार की कई प्रतिकृतियां बना ली जाती थी।

हालांकि राजस्थानी शैली में कुछ हल्की रंगत वाले रेखांकन भी मिलते हैं। जिनमें वर्णों को बहुत कम महत्व दिया गया है। इस प्रकार की हल्की रंगत वाले रेखांकन में चित्रकार बहुत कोमल एवं सपाट रंगों का उपयोग करता था। ऐसे उदाहरण अध्ययन हेतु अभ्यास के रूप में या स्वतंत्र कार्य के रूप में दोनों प्रकार से किये गये थे। इसी क्रम मे अगर राजस्थानी शैली की उपशैली किशनगढ़ के रेखांकनों की चर्चा की जाए तो इस शैली की रेखाएँ महिन व कोमल हैं। तथा इनकी मर्मस्पर्शी रेखाओं में प्रवाहमयता तथा गतिपूर्णता स्पष्ट रूप से दर्शित होती हैं। महिन-महिन रेखाओं के द्वारा भौहें तथा केशों को बनाया गया है चित्रों के अन्त में काली रेखाओं का उपयोग किया गया है।

यहाँ पर राजस्थानी शैली के कुछ रेखांकनों का वर्णन किया जा रहा हैं। जिससे की इस शैली के रेखांकन पद्धति को आसानी से समझा जा सके।

तोते पर राधा और कृष्ण :

इस रेखांकन में राधा और कृष्ण एक तोते पर सवार हैं जो एक सम्पूर्ण प्रकृति के साथ एकता का सूचक हैं। एक चौरी बजाने वाला उड़न खटोला उड़ा रहा हैं। दो संगीतकार एक नर्तक और एक ढ़ोलकिया, इस अनोखी घटना के आनंदमय भागीदार हैं। व तोते के चेहरे पर सन्तुष्टि का भाव प्रकट होता हैं। अतः इस समग्र संयोजित रेखांकन में लयात्मकता एवं प्रवाहपूर्णता का भाव दृष्टिगोचर होता है। (चित्र सं॰-01)

चार सिरों का अध्ययन :

यह चित्र अभिव्यंजनात्मक चेहरों के साथ एक अद्भुत रेखाचित्रण है। इस रेखांकन में एक आकृति चोटी बाँधे किसी पवित्र व्यक्ति का प्रतीत होती है, जो गोमुख में अपनी माला गिन रहे हैं। अन्य तपस्वी के सिर भी एक ही जैसे रेखांकित किए गए हैं। (चित्र संख्या-02)

पहाड़ी शैली मुगल चित्रकला के एश्वर्य व स्थानीय सुन्दरता का एक मिलता जुलता आकर्षक रूप था। इस शैली के चित्र शास्त्रीय संगीत साहित्य व स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं से प्रेरित थे। इस शैली में प्रकृति, स्त्री के साथ ही साथ संरक्षकों के भी व्यक्तिचित्र उत्कृष्टता से चित्रित किए गए। क्रमश इस शैली में पहाड़ियों के नीचे के भागों में बारीक रेखा व वर्तता के द्वारा गहरे वर्णों से छाया तथा प्रकाश का एक ही साथ आभास दे दिया गया था। ''कोमल रेखाएँ मंद मधुर छटा लावण्य एवं सुरम्य प्रकृति का पार्श्वभूमि के लिए किया उपयोग अन्यतम विशेषताएँ हैं।''[9] अतएव पहाड़ी चित्रकला अजन्ता की कला के समरूप विशेष रूप से रेखा पर आधारित थी। इस शैली के चित्रों के विषय वैष्णव धर्म से सम्बन्धित थे। व रीतिकालीन कवियों तुलसीदास, सूरदास, केशव, मतिराम, देव और बिहारी आदि के काव्यों पर आधारित चित्रण बहुलता से चित्रित किये गये थे इसके अतिरिक्त 'रागमाला' में रागों का व्यक्तिकरण करके चित्रों को अत्यन्त आकर्षित तरीके से चित्रित किए गये थे। पहाड़ी शैली की उपशैलियाँ में भी रेखाएँ अपनी अलग-अलग विशेषताएँ रखती हैं। जैसे- ''कांगड़ा शैली के चित्रों की शैली की प्रमुख विशेषता रेखा की कोमलता, रंगों की चमक तथा आलंकारिक विवरणों की सूक्ष्मता है अजन्ता की कला के समान कांगड़ा की कला भी विशेष रूप से रेखा की कला है। आनन्द कुमार स्वामी ने कांगडा शैली में शक्तिशाली वक्रीय सीमा रेखा को चित्र की भाषा का आधार माना हैं। वास्तव में रेखा की कोमलता प्राप्त करने के लिए कलाकार ने गिलहरी के बालों की बनी तूलिका का प्रयोग किया है।''[10]

कांगडा शैली के चित्रों में मुगल चित्रों की भाँति क्षितिज रेखाएँ नीचे की तरफ बनायी गयी हैं। बसोहली शैली की रेखाओं में गति और उन्मुक्तता का आभास होता हैं तथा चम्बा शैली के चित्रों में कोमल एवं बारीक रेखाओं का प्रयोग हुआ था। इसी क्रमबद्धता में गढ़वाल शैली के चित्रों में रेखा कम कोमल, कम गोलाईयुक्त और डौलपूर्ण नहीं हैं। इस शैली के चित्रों में रेखांकन अधिक शक्तिशाली तथा प्रवाहपूर्ण हैं।

अतः रेखाओं द्वारा आकृतियों तथा मुद्राओं में भावों की जितनी सफल अभिव्यक्ति पहाड़ी शैली में हुई, उतनी राजस्थानी शैली में नहीं हुई। पहाड़ी शैली की रेखाओं में जीवनप्रवाह, मृदुता तथा भावों का स्पंदन है और साथ ही लघुचित्रों की परम्पराओं को भी सौन्दर्यबद्ध रूप में प्रदर्शित किया गया है।

रेखांकन एवं टिपाई करना :

तूलिका एवं कागज बनाने के उपरान्त कलाकार गेरु का रंग लेकर कागज पर चित्र बनाना शुरू करता था। प्रथम रेखांकन को टिपाई या आंकना कहते थे। प्रथम रेखांकन के लिए गेरू के रंग के अतिरिक्त पेवड़ी, काजल, हरिताल, जैसे निश्चित वर्ण भी प्रयोग किए जाते थे। ''टिपाई दो चरणों में की जाती थी। प्रथम कच्ची टिपाई जो कि गेरू प्योड़ी आदि से की जाती थी। इसके उपरान्त खाके पर सफेदा या खड़िया के रंग की पतली तह लगाते थे। इस प्रक्रिया को जमीन बाँधना कहते हैं। यह तह हल्की पारदर्शी लगाई जाती थी, जिससे नीचे की रेखाएँ छुप न जाये। ऐसा इसलिए करते थे जिससे कच्ची टिपाई में जहाँ गलती हुई हो, उसे सुधारा जा सके। इसके पश्चात हल्के काले रंग से सच्ची टिपाई करते थे, जिसे स्याह कलम कहते हैं।''[11]

खुलाई अथवा अन्तिम रेखांकन :

''अन्तिम रेखांकन को खुलाई (उन्मीलन) कहते थे।''[12] इससे चित्र को पूर्णता प्राप्त होता हैं। रंग में उपस्थित धब्बो को खत्म करने तथा छाया लगाने के लिए परदाज का उपयोग किया जाता था। यहाँ छाया का उपयोग गोलाई तथा उभार दिखाने के उद्देश्य से किया जाता था। परदाज को विभिन्न प्रकार से अनेक प्रकार की रेखाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया था। ''सीधी रेखाओं द्वारा दर्शाया गया परदाज खत परदाज, बिन्दुओं द्वारा दाना परदाज, परस्पर काटती रेखाओं द्वारा जाली परदाज तथा जिसमें एक-एक बाल स्पष्ट दिखाई दे उसे एक बाल परदाज कहते हैं। इसके अतिरिक्त मिश्रित परदाज को धूहा कहते हैं।''[13]

यहाँ पहाड़ी शैली के कुछ रेखांकनों की चर्चा की जा रही है, जो उनकी कलात्मक पहलुओं को समझने में सहायता प्रदान करेगी।

संत कबीर अपने अनुयायियों के साथ :

यह रेखांकन सीपिया रंग में कुछ रंग के धब्बो के साथ चित्रित किया गया है तथा चित्र में चेहरे के भाव कोमल और संवेदनशील हैं। इस संयोजन में संत कबीर अपनी कुटिया के बाहर धोती पहने दर्शाये गये हैं और अन्य दो आगंतुक जो मुस्लिम प्रतीत हो रहे है, जामा और टोपी पहने हुए है। कबीर अपनी खादी पर व्यस्त है। अतएव कबीर हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ धार्मिक श्रोताओं और प्रवचनों के लिए जाने जाते थे। (चित्र सं0-3)

भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी :

इस रेखांकन में भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी को कमल के शयनासन पर बैठे हुए दर्शाया गया है एवं देवी लक्ष्मी के चित्र को हल्के नारंगी रंग चित्रित किया गया है। (चित्र सं0-4)

निष्कर्ष :

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि भारतीय पारम्परिक लघु चित्रकला में भी रेखांकन का अध्ययन बहुत गहराई से किया गया है। भारतीय चित्रकला में रेखा का प्रमुख स्थान है। तथा रेखाओं द्वारा लघु चित्रकला के क्षेत्र में भी विभिन्न प्रयोग किए गये। जिसका परिणाम हमें भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में विकसित हो रही विभिन्न शैलीयों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता हैं। उदाहरण स्वरूप पाल शैली व अपभ्रंश शैनी के रेखाओं में कोमलता का अभाव है तथा चित्र कोणात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वहीं मुगल लघु चित्रों की रेखाएँ बारीक साफ और लिपि की रेखाओं जैसी समतुल्यता रखती है। इसी क्रम में अगर राजस्थानी एवं पहाड़ी शैली के रेखांकनों का वर्णन किया जाए तो इस शैलीयों की रेखाएँ कोमल, बारीक, भावपूर्ण तथा लयात्मक हैं। इन शैलीयों की रेखाओं में प्रवाहपूर्णता के साथ ही साथ पंक्तिबद्ध गीतात्मक रेखाओं की स्पष्टता को भली-भांति अनुभूत किया जा सकता है। अतः इस समयावधि के कलाकारों ने भी रेखांकन में संप्रभुत्व स्थापित करने के लिए रेखांकन अनुशीलन की अनिवार्यता पर अधिक बल दिया। इन शैलीयों के चित्रकारों ने अपनी कला के माध्यम से इस बात पर जोर दिया कि रेखाचित्रण में सिद्धहस्त होने के लिए धैर्य और सतत् समर्पण की आवश्यकता होती है। अतः स्पष्ट है कि पारम्परिक शैलीयों एवं उपशैलीयों की रेखांकन पद्धति अपनी-अपनी खासियत के साथ भारतीय कला पर अपना असीम प्रभाव रखती हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं॰-133
2. वाचस्पति गैरोला, भारतीय लित्रकला, पृष्ठ सं॰-177
3. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं॰-178
4. डॉ॰ शुकदेव श्रोत्रिय, भारतीय चित्रकला : पाल से पहाड़ी शैली तक, पृष्ठ सं॰-39
5. डॉ॰ गिरिराज किशोर अग्रवाल, कला और कलम, पृष्ठ सं॰-208
6. डॉ॰ गिरिराज किशोर अग्रवाल, कला और कलम पृष्ठ सं॰-216
7. डॉ॰ रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृष्ठ सं॰- 164
8. Dr. Chitralekha Singh, Drawing of Rajasthan, पृष्ठ सं0-10
9. स्मार्त, स्व. वासुदेव बलवन्त राय, ठाकोर, सुश्री ज्योति चन्देश, (2005), कला दर्पण, पृष्ठ सं॰-181
10. अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास पृष्ठ सं॰-244
11. डॉ॰ प्रेमशंकर द्विवेदी (1997), भारतीय चित्रकला के विविध आयाम, पृष्ठ सं॰-111
12. वही
13. डॉ॰ प्रेमशंकर द्विवेदी (1995), भारतीय लघु चित्रों में गति गोविन्द, पृष्ठ सं॰-40

Manifestation of Women in Anita Desai's Novels : A Reading

S. Gnanaraj
Ph.D. Research Scholar
Department of English & Comparative Literature
Madurai Kamaraj University, Madurai

Dr. Mohan. K .
Associate Professor and Head
Department of English
Madurai Kamaraj University, Madurai

Abstract :

Anita Desai's selected novels serve as a lens through which to examine the role of women in Indian society. It illustrates the significance of women in a variety of contexts, including the home, the community, and the workplace. In almost every aspect of women's lives in Desai's novels demonstrate how thegroups of women in India are entwined with one another. She engages with the middle-class Indian woman, who is representative of the great majority of Indian women, rather than fleeing the conventional world of Indian women. She has written a great deal on Indian women today and the challenges they encounter. She has also studied the obligations and responsibilities Indian women have to society and to themselves. They are quite cognisant of themselves. For them, a mother and a wife are insufficient; they need more. The search for female characters in Anita Desai's writings have been compared and contrasted on different view of points.

Keywords :

Feminist perspectives, women equality.

Introduction :

From past to present, women have been the subject of numerous literary works. It is difficult to overlook half of the population in a time when everything is changing and developing. English-language Indian writers have also emerged from their "non-attachment" shells and begun to recognise the importance of Indian women in a culture dominated by men. The idea of Indian women has changed dramatically throughout the years and is as diverse as the nation itself. India has experienced several transformations, including from agrarian revolution to cyber technology, from spiritual supremacy to communal conflicts, from captivity to independence, and from a brilliant past to deterioration. The role of the Indian woman has also changed from that of deity to devadasi, from shakti to abala and from homebound creature to a professional outfit.

It is crucial to note that Indo-Anglian fiction also consistently depicts the shifting socioeconomic conditions of this tur-

bulent century. It might be easy for those who want to categorise Indian English fiction to split it into two main groups: writers from before and after independence. Her concept of the "nodal period" when several Indian writers of English-language fiction attempt to examine and manifest Indian reality, is aptly matched with the post-Independence era of recent Indian history.Those authors attempt to bring together the traditional outlook of the past with the rapidly changing realities of modern living conditions, but they lack the dedication of the earlier era or even the humorous narration of the middle class's struggles.

The authors of the post-Independence era turn inward in this endeavour. They attempt to assess the societal impact on their characters' psyches and become increasingly psychologically prepared. This shift from externally glaring realities to internally complex issues found its spokesperson in a number of female novelists who, due to their unique circumstances, have been able to observe Indian complexities up close, where sensitive people are subjected to limitations of many hues and shades. Women authors' fiction offers perspectives, a plethora of knowledge, a storehouse of meanings, and a topic for conversation. Women's issues have gained attention, and female writers concentrate on them. Such topics have been covered in a number of English-language creative works by authors such as Nayantara Sehgal, Shashi Deshpande and Shobha De.

Anita Desai is one of the various voices of contemporary Indian English fiction among the myriad hues and colours of women novelists. She documents the problems that people encounter in the metropolitan environment of India. Her 1963 book *Cry The Peacock* ushers in a new era of psychological realism in this genre. Similar to Kamala Markandaya, Anita Desai has made human relationships the focal point of her creative work. With female characters serving as the primary protagonists, she is primarily interested in the journey that her characters take. Therefore, the suffering of living in a conservative, male-dominated, and hostile culture is a recurring theme in her writings.

Though their approaches differ, contemporary women writers have similar subject concerns. They are all chroniclers of the conflict that has arisen since India became a developing country. A conflict between tradition and modernity can also be found. Women who are conventional in their lifestyle yet have a modern perspective and the ability to maintain their individuality are described in the novels written by women authors. The supremacy of the traditional social fabric, where the individual finds his weakness, clashes with awakened individuals.Anita Desai has looked for fresh ways to express the recently discovered inner and exterior reality. In order to capture the eddies and currents in her characters' stream of consciousness, she has employed a style that is flexible and suggestive enough to portray the fever and anxiety.

The interplay of thoughts, feelings and emotions is reflected in language, syntax and imagery for her, "it is depth which is interesting, delving deeper and deeper in a character, a situation or a scene, rather than going round about it". (Jain: "Interview with Anita Desai" P. 68) Anita Desai

attempts to introduce a contemporary psychological vein that is typically absent from other Indo-Anglian fiction writers by capturing psychological realism as intensified impressionism. She conveys an intimate expression of her characters' inner worlds by making the setting less important than the characters. "Facing, single handed, the ferocious assaults of existence," she writes of her characters. For her, the plot is significant mainly because it captures her characters' obsessions. Lesser scene and people are based on real life, according to Anita Desai's interview, although lesser characters and events are either wholly fictional or a combination of multiple persons and incidents. Virginia Woolf, who likewise penetrated the characters' thoughts and showed little regard for the actual outside action, is closely compared to Anita Desai. Similar to the works of Virginia Woolf and James Joyce, Desai's novels focus on human nature and relationships. Existential tones control the main theme of Anita Desai's novels, which is the interaction between a man and a woman.

Alienation, despair, dissatisfaction, anxiety and the emotional life of the individual are the primary topics that existentialists address. Desai addresses these issues as well because she studies the "emotional life" of individuals and is interested in the "human condition." Her main focus is on the extremely sensitive spouses and the depressing, heartless, thoughtless, poorly picked husbands. She has chosen to depict multiple subjects simultaneously in her novels, and these themes appear to repeat in each one. She typically introduces sensitive and dissimilar characters at the beginning of her novels.

They become rebels because they are unable to follow the prevailing trend. They consequently isolate themselves and lead a solitary existence on their own islands. These folks begin to obsess over their life because they are sensitive. In the end, they either reach a new insight or recognise the truth or reality from which they had attempted to flee. However, in some books, characters are unable to deal with reality and seek solace in murdering themselves or other people. As a result, her subjects often diverge from those of other authors. Every element blends into the others, and occasionally several themes are interwoven. Using these themes as a foundation the writer is able to build up the characters into significant whole.

In her 1965 second book, Voices in the City, Anita Desai focusses on the impact of Calcutta on the three family members rather than the city's physical features. The four portions of the book are called "Nirode", "Monisha", "Amla" and "Mother." The personalities mentioned in the title are the focus of each of these parts. 'Nirode', the opening segment, discusses Nirode's mental turmoil and isolation. He is an artist who is having difficulties in both his life and his art. He launches a magazine called Voice, but he is dissatisfied with its performance and eventually sells it.

In this book, Anita Desai explores the issue of connections and alienation. In *Clear Light of Day*, she herself states, "about time as a destroyer, as a preserver, and about what time does to people," time plays a significant role in the book. In the book, she makes it apparent that although time goes by, nothing changes-except for the pattern. The four Das children-Bim,

Tara, Raja, and Baba-are the focus of the family drama *Clear Light of Day*. The narrative is told from the perspective of the book's protagonist, Bim.

Their mother passes away from diabetes, and Bim and Tara are sisters. The parents lived a hectic life playing cards and had no time for their kids. Bim must take up the responsibilities of her sister and brothers. She educates and marries her siblings, giving up her life for them. She also assumes responsibility for the deteriorating house, her elderly aunt Mira Masi and her brother Baba, who has a mental disability. Tara travels overseas after marrying Bakul, a foreign ambassador. Raja also departs from Bim and his home to see Hyder Ali in Hyerabad. He settles there after marrying his daughter. Bim feels abandoned and hurt by everyone.She can't accept Tara and Raja. Bim declines to travel to Hyderabad for Raja's daughter's wedding. She considers sending Baba to the wedding out of rage, but she quickly realises her error. She eventually admits her frailty and expresses regret for what she did to Raja, Baba, and Tara. She matures to forgive everyone after realising the truth in *Clear Light of Day*.

Women have been shifted from various life stages and the novelist pays close attention to the woman's emotional responses during these encounters. Since she accurately portrays Indian culture's issues, ambiguities, complexities, and paradoxes, she may be said to as its spokeswoman. She is skilled at portraying how women respond to various situations, such as the husband's disinterest, the in-laws' mistreatment, or the parents' apathy. Because of her tenacious spirit and willingness to make concessions, she portrays the Indian woman as a fighter, a victim, a survivor, a courageous woman, and ultimately a winner in her later novels.

The works of Anita Desai have a direct bearing on societal reality. New family customs and social realities are linked, and a girl may find it challenging to cope with these situations. However, Anita Desai does not dwell on social issues like other people do. She delves further into the factors that influence a woman's development in this patriarchal, male-dominated environment. Without claiming to be a social reformer, she investigates social reality from a psychological perspective. Her novels explore the inner lives of humans, and she is skilled at describing small details that are typically overlooked.

It is a disorder that causes mental instability, extreme depression, and feelings of inadequacy and pessimism that make it difficult to stay interested in life. The same is true of Anita Desai's female characters, who struggle with rejection, despair, and frustration. They enjoy privacy and solitude. The despair and oppression of these highly introverted female characters who are unable to express their feelings are Anita Desai's concerns. As in *Cry, the Peacock,* moving from one pit of despair and depression toanother, Sita's feeling of hopelessness and dejection is depicted by: "All order is gone out of my life. There is no plan, no peace, nothing to keep me within the pattern of familiar everyday life." (79)

There is a significant dispute, quarrel, or ongoing conflict between the sexes. Conflict is evident after marriage when men do not act in a way that meets women's expectations and vice versa. When Sita chooses to travel to the island while pregnant, her husband becomes agitated in

Where Shall We Go this Summer? He says "Not much longer to go now, Sita, it'll soon be over. You are doing a blunder." (Anita Desai : 1975; P. 21) But she wasn't ready to listen and in frustration she says "I am trying to escape from the madness here, escape to a place where it might be possible to be sane again." (Anita Desai: 1975 : P. 23)

One of the main causes of marital discord in Anita Desai's novels was isolation. Isolation functions on both a mental and physical level in the novels. A woman may experience physical isolation if she is alone in her home and no one is available to take care of her, and emotional isolation if she believes her husband does not value her. *Custody*, the absence of unity between Deven and Sarla is the issue. She anticipates that her spouse will continue to be responsible for her care. Their temperaments are so different that they rarely spend time together. Sarla suffers from mental trauma and leads a solitary existence as a result of this isolation.

A major theme in Anita Desai's writings is the alienation between husband and wife that results from a lack of communication and erratic inappropriateness. The love and unity of strength that Anita Desai's women recognise as the solution to the world's problems are what they yearn for. Isolation and separation are inevitable outcomes of their unwillingness to give up and their inability to accept their partner's viewpoint. Because of their inability to communicate, Sita finds herself estranged from her husband, just like in *Where Shall We Go This Summer?* She is still a forgotten figure. She constructs her own universe and populates it with incredibly sensitive creatures. Lack of understanding on the part of her husband, and incapacity in them both to strike a sympathetic chord between each other leads to discord.

Conclusion :

Women's status in modern India is a bit of a conundrum. On the one hand, she is at the pinnacle of achievement, but on the other hand, she is oblivious to the violence perpetrated against her by her own family members. Women in current times have accomplished far more than women in the past, yet they have still travelled a long way. Their route is littered with stumbling stones. The women have left the safe haven of their homes and are now fully equipped with their abilities on the battlefield of life. They had proven their worth. However, they have yet to receive their dues in India. Their novels seem to have a repeating topic of marital strife. Marriage does not appear to provide them with a remedy, but rather exacerbates their predicament. Anita Desai's early works are mostly about man-woman relationships, and she depicts the predicament of modern women in a male-dominated society, as well as their destruction at the altar of marriage. According to Anita Desai, the majority of marriages end in incompatibility, despite the fact that there are a variety of reasons for this. A certain sequence and pattern may be found if one reads her novels in chronological order. Her novels' titles themselves are meaningful and hint at this trend. The prior chapters have gone into great detail about this. They lose their ability to reason. Desai's female characters reflect life's hardships, with more females attempting suicide in the end. Women require life independence and solutions to

all of their problems. Desai portrays the entire chapter as a novel psychological trick. Thus, it is identified that the majority of Desai's novels, which have a female protagonist, explore the psychological problems.

References:

1. Desai, Anita, Clear Light of Day, New Delhi: Allied Publishers, 1980.
2. Desai, Anita, Cry, The Peacock, Delhi: Orient Paperback, 1980.
3. Acharya, Shanta, 'Problem of Self in the Novels of Anita Desai', Indian Women Novelists, Book 2, ed. R. K. Dhawan, New Delhi: Prestige Book, 1977.
4. Anandalakshmi, S. (2014). The female child in a family setting. The Indian Journal of Social Work, 2(1), 12-23.
5. Bande, UshaBande "The Outsider Situation" in Baumgartner's Bombay, Indian Women Novelists, Book. 4 ed. R. K. Dhawan, New Delhi: Prestige Book, 1991.
6. Bande, Usha, The Novels of Anita Desai, New Delhi: Prestige Books, 1988.
7. Gopal, N. R., A Critical Study of the Novels of Anita Desai, New Delhi: Atlantic publishers, 1995.
8. Jain, Jasbir, "Stairs to the Attic" The Novels of Anita Desai, Jaipur: Printwell, 1987.

Temporal Design Across Art Forms : An Ethnographic Study of Rhythm in Performance Traditions

Sahithya V.
Research Scholar
Deparment of Music & Fine Arts,
School of Ancient Indian Studies & Fine Arts,
Vistas, Pallavaram, Chennai

Dr. U. Bhavani
Research Supervisor & Assistant Professor
Deparment of Music & Fine Arts,
School of Ancient Indian Studies & Fine Arts,
Vistas, Pallavaram, Chennai

Abstract :

Rhythm is an omnipresent element in human creativity, serving as both a structural and expressive foundation across artistic disciplines. While its role is deeply studied within music and dance, its application extends into other Kalās in traditional Indian arts, that employ rhythm in nuanced, context-specific ways. This study investigates the manifestation of rhythm in multiple art forms, including Carnatic and Hindustani music, Bharatanatyam, Kathak, Kerala percussion ensembles, and selected performative practices among the 64 Kalâs. Drawing on scholarly literature from ethnomusicology, performance studies, and biomechanics, the paper examines rhythmic organisation in oral percussion systems like Konnakol, metric layering in Hindustani improvisation, choreographic translation in classical dance, and cyclical progression in temple percussion traditions. A minor yet significant focus is given to the 64 Kalās, wherein rhythm functions as an organisational principle beyond performance, influencing architecture, sculpture, poetry and martial practices. The findings suggest that rhythm operates simultaneously as a technical framework, and a cultural semiotic code, uniting seemingly disparate art forms under a shared temporal logic. This interdisciplinary analysis highlights rhythm as a connective aesthetic force with applications across traditional and contemporary creative domains.

Keywords :

Rhythm, Indian classical arts, Konnakol, Bharatanatyam, 64 Kalās.

Introduction :

Rhythm constitutes one of the most fundamental elements in the arts, serving as both a temporal and structural framework for performance and expression. In the Indian cultural context, rhythm (*tāla* or *laya*) operates not only in music and dance but also in a variety of traditional practices, from poetry to martial arts. Within classi-

cal Indian epistemology, the 64 Kalās has been enumerated in treatises such as the *Nāṭyaśāstra* which represents a holistic spectrum of human creativity, where rhythm appears both overtly in performative forms and subtly in non-performative disciplines.

While much scholarship addresses rhythm within single art forms, such as the metric complexity of Carnatic *Konnakōl* (Nelson, 2008) or improvisational timing in Hindustani music (Bhake, Rao, & Anand, 2025), there is less attention to rhythm as an interdisciplinary phenomenon spanning multiple Kalās. This paper seeks to address that gap by investigating rhythm's functional diversity as a codified structure, a performative device, and a cultural connector across arts. The study will focus on selected representative forms where rhythm is not merely supportive but intrinsic to the creative process.

Literature Review :

Rhythmic Codification in Carnatic Tradition :

Carnatic music provides one of the most elaborate systems of rhythmic organisation in the world. Nelson (2008) presents *Solkattu* and *Konnakōl* as oral percussion languages that codify complex rhythmic structures into syllabic patterns. These systems not only serve as pedagogical tools but also facilitate improvisation and composition.

Reindl (2023) extends this discussion by noting that Western composers have adopted Indian rhythmic principles to expand their temporal palettes. Such intercultural adaptation highlights rhythm's universal appeal and adaptability.

Technological Approaches to Dance Rhythm :

Recent work by Mallick, Das and Majumdar (2020) explores computational detection of beats in Bharatanatyam using speech recognition algorithms. Their findings underscore that Bharatanatyam's footwork (*aḍavus*) integrates rhythm as an inseparable component of movement vocabulary, with beat precision central to choreographic integrity.

Expressive Timing in Hindustani Music :

Bhake, Rao and Anand (2025) analyse expressive timing in Hindustani vocal performance, showing how deviations from the metronomic beat create tension and release, deepening emotional engagement. Their research underscores that rhythm is not merely mechanical but an expressive dimension that interacts dynamically with melody.

Biomechanics of Dance Footwork :

Bhalerao and Gharote (2024) investigate postural deviations in female Kathak dancers, linking rhythmic foot patterns (*tatkār*) with biomechanical strain. Their work demonstrates that rhythm has physiological consequences, influencing performer health and longevity.

Cyclical Rhythm in Kerala Percussion Traditions :

Kerala's percussion ensembles, such as *Panchari Melam*, offer a contrasting example of large-scale rhythmic architecture (Kerala Tourism, 2011; Killius, 2019). These traditions involve a progressive acceleration of tempo within fixed cyclic structures, creating both auditory and kinaesthetic climaxes in temple festivals.

Analysis and Discussion :

Rhythm as an Organising Principle in Performative Kalās :

Across classical dance forms, rhythm determines not only the timing of steps but also the architecture of choreography. In Bharatanatyam, rhythmic structures (*tāla*) dictate the arrangement of *aḍavus* into *jathis*, linking movement phrases to musical cycles (Mallick et al., 2020). In Kathak, the *tatkār* exemplifies how rhythm is both an auditory and visual component, with footwork producing percussive sound that interacts with accompanying instruments (Bhalerao & Gharote, 2024).

In Hindustani vocal music, rhythm manifests through *layakari* which is the manipulation of speed and subdivision within a metric cycle, allowing performers to weave rhythmic counterpoints against the underlying *tāla* (Bhake et al., 2025). Similarly, in Carnatic *Konnakol*, verbalised percussion patterns serve as both performance and notation, enabling intricate rhythmic dialogues between artists (Nelson, 2008).

Rhythm in Non-Performative Kalās :

Although rhythm is most visible in music and dance, it also appears in Kalās such as architecture, poetry, and martial arts. Temple architecture in Kerala and Tamil Nadu employs rhythmic repetition in structural motifs, creating a sense of temporal flow in visual space. In poetry, metre functions as a rhythmic scaffold for language, paralleling *tāla* in music. Martial arts like *Kalaripayammu* incorporate sequences of movements executed in time with rhythmic breathing, demonstrating a kinesthetic form of temporal regulation.

Cultural Semiotics of Rhythm :

Rhythm also operates as a cultural signifier. In Kerala's *Panchari Melam*, the gradual acceleration from a slow *vilambit* pace to a fast climax symbolises the intensification of devotional energy (Killius, 2019). In Bharatanatyam, the juxtaposition of rhythmic precision with expressive gesture (*abhinaya*) creates layered narratives that embody cultural and spiritual ideals.

Interdisciplinary Resonances :

When examined across multiple Kalās, rhythm emerges as a unifying principle. It is a mnemonic device in oral traditions (Nelson, 2008), an aesthetic strategy in choreography (Mallick et al., 2020), a physiological influence on performers (Bhalerao & Gharote, 2024), and a symbolic element in ritual contexts (Kerala Tourism, 2011). This convergence suggests that rhythm is not merely an artistic technique but a cognitive and cultural framework.

Conclusion :

Rhythm permeates diverse Indian art forms, serving as a connective tissue between seemingly unrelated practices. While its technical manifestations vary from the syllabic articulation of *Konnakol* to the accelerating crescendos of *Panchari Melam* and its underlying function remains consistent: to structure time, embody cultural meaning, and engage audiences through patterned expectation. The minor presence of rhythm within the broader spectrum of the 64 Kalās underscores its adaptability beyond strictly performative contexts, influencing spatial, linguistic and kinetic arts. Future research may explore modern interdisciplinary practices, such as multimedia performance that can draw from these

traditional rhythmic frameworks to create new hybrid forms.

References :

1. Bhalerao, P., & Gharote, G. (2024). Foot postural deviations in female Kathak dancers. *ResearchGate*.
2. Bhake, Y., Rao, P., & Anand, A. (2025). Expressive timing in Hindustani vocal music. *arXiv preprint arXiv:2503.21142*.
3. Bhake, Y., Anand, A., & Rao, P. (2025). Melodic and metrical elements of expressiveness in Hindustani vocal music. *arXiv preprint arXiv:2508.04430*.
4. Kerala Tourism. (2011). Traditional orchestras of Kerala. *Kerala Tourism Newsletter*, (217).
5. Killius, R. (2019, June 18). Panchari Melam [Audio–visual artifact]. *South Asia Commons*.
6. Mallick, T., Das, P. P., & Majumdar, A. K. (2020). Beat detection and automatic annotation of the music of Bharatanatyam dance using speech recognition techniques. *arXiv preprint arXiv:2004.08269*.
7. Nelson, D. P. (2008). *Solkattu manual: An introduction to the rhythmic language of South Indian music*. Middletown, CT: Wesleyan University Press.
8. Reindl, T. (2023). Indian rhythmic systems as sources of inspiration for Western composers. *Analytical Approaches to World Musics*, 11 (2).

Saint Meerabai - In The Lens of Vedanta

Sanghamitra Chakravarty
Research Scholar
Swami Vivekanand Subharti University,
Meerut

Prof. (Dr.) Bhawna Grover
Supervisor
Head, Performing Arts Department.
Faculty of Fine Arts,
Swami Vivekanand Subharti University, Meerut

Dr. Gautam Chatterjee
(Co-Supervisor)
Ex-Director. Abhinava Gupt Academy, Varanasi

Abstract :

P*redominantly well known as an icon of 'Bhakti', devotion, the sixteenth century woman poetess of India, Meerabai stands extraordinary celebrated till today. Born as a beautiful princess during 1555 or 1573 (approximately) in a village named Merta of Rajasthan in the royal family of Rathores, Meera was a single child of her parents. As a customary with royal families, she was well trained in music, archery, martial arts, knowledge of scriptures, horseback riding, driving chariots and also to wield weapons in case of war.*

Key words :

Saint Meerabai, Devotion, Personality, Life, Surrender, Dvaita Vedanta, Advaita Vedanta, (Duality and Non-duality), Trancendental, Consciousness, Upanishads.

The seeds of Divine romance with Lord Krishna germinated right from her childhood, when Meera was three years old girl, a wandering Sadhu came to her family home and gifted a doll of Sri Krishna to her father, Raja Ratan Singh Rathore. Incidentally, the Rathores were great devotees of Lord Vishu. Her father was not willing to hand over the doll of Krishna to her, he thought she would not appreciate it, as a piece of play or sport or toy in this tender age where children likely are thrilled with amusements and mere toys. But, small Meera refused to eat untill the doll of Krishna was handed over to her. She was found to be extremely joyfull and contented holding the doll of Krishna. Apart from the Rishikas of the Vedic Age, this was perhaps the first time during the sixteenth century - one heard a woman speak. Many of Kabir's verses, creations, of longing are voiced as if by a woman waiting for her faraway lover, the same applies in the poetry of Soordas. By assuming the female role, these male poets cultivated the capacity for the intense emotion

that they and their culture supposed to be the particular province of women and also the sense of homebound captivity that produced it. In India, images of womanhood has a constrast to this one of Meerabai's - it applies the title Power (sakti) to many of its goddesses and it recognizes that human women can be far more threatening to the men in their lives than their position in society would imply, but the image of the tenacious woman whose strength is learned in love and suffering was the one that seemed most relevant to the religious needs of male figures in the *Bhakti* world.

Vedanta in the Advaita way states, "*Ayam Atma Brahman*"- the soul is Brahman, the Absolute consciousness. It is devoid of sex where a mere human body of a man or a woman has no existence. This is the primary angle of Vedanta, which rotates in Saint Meerabai's entire life, personality and work. For her, womanhood before God was no religious factor, but a total identity. Her verses, songs transports her to a different level in the eyes of those who look upon her as an ordinary woman. Though, the yearning, longing towards the Krishna -Bhakti part relates as the love, devotion of the '*Gopis*' yet, Meerabai's appeal throws a fearless light as one with Krishna and not as a 'Gopi', a 'woman' craving for her lover only. This fearless approach of Meerabai touches the Vedantic aspect of 'ABHI'-fearlessness, straight as a soul-'*Atma*', not a woman body of flesh and blood of the sixteenth century India.

Meerabai sings :

''राणा जी माने बदनामी लगे मीठी, कोई
निंदा कोई बिना, चलूँगी चाल अनूठी''

Glorifying the virtues of Krishna, she turned to a soul embedded in deep bhakti and devotion. Attaining to the Supreme divine was the sole goal and highest aim of her life in context of the '*Jivatma'* (a living body of a human or a creature) and '*Paramatma'* (the Supreme consciousness according to Vedanta), the relationship of Meerabai with Krishna is similar to a worldly soul with constant yearning towards the Supreme in the path of Yoga and unification of the Divine and human spirit. Her inner eyes forever fixed on the path intensely awaiting for Him (Krishna), constantly praising His glories-Saint Meerabai turned out to be the apex figure in the world of 'Bhakti' and Vedanta in true sense. To achieve her ultimate goal, unification with Krishna, she had to face tremendous hurdles, most often curses, mockery from her in-laws, common people of her society, yet she stood upright with her own convictions, her ethical principles for which, sometimes found herself caught among controversies, severe power struggles. One such striking incident in Vrindavan was Meerabai's interaction with Jiva Goswami, the disciple of Mahaprabhu Shri Chaitanya, which depicts her extraordinary courage and total disregard of gender discrimination in a light of Vedanta. It happened as such as , Jiva Goswami refused to come and meet her because she was a woman by birth. Fearlessly, Meerabai conveyed him through a written note, her belief that there lived only one '*Purusha*'(a male) who was none other than Giridharilal-Krishna, Himself, in Vrindavan , rest all others are '*Gopis*' (female devotees addressed as Gopis). She threw an open challenge towards the great Jiva Goswami, who himself was/is an iconic figure among Krishna devotees, that

if he truly believed himself to be a Purusha and not a Gopi, he should immediately leave the holy Vrindavan. Finding Meerabai's stunning message, Jiva Goswami realised what actually she meant in terms of Bhakti towards Krishna. He bowed down in front of Saint Meerabai with high regard and admiration.

Meerabai sings :

''मेरे तो गिरधर गोपाल दुसरो न कोई....''

The core concept of Advaita Vedanta lies in- "Brahma Satya Jagat Mithya"-only Brahman is real, the truth, the world is false. Saint Meerabai proved this through her entire life and footsteps as an inseparable entity from Lord Krishna. Each and every worldly situation, person, hurdles came to her turned to be negligible in front of her worship, love towards Krishna. She became one with the Supreme being, transcendental state of bliss-Satchidananda-Existence, Knowledge and Bliss. Never content with the family that marriage had given her, Princess Meera proceeded to replace it with another-the company of the saints (*sadhu sang*) who were attached deeply with Krishna and Bhakti. Her sister-in-law tried to dissuade her from associating with wandering sadhus, tried numerous ways to detach from her holy associates, also persuaded her to drink a cup of poison, which she gladly accepted as a nectar. The poison turned to be a blessing indeed-"as an immortal liquid from His feet". This is one of the central event in Meerabai's heroic life which reflects her Vedantic personality. Her path of extreme surrender to Krishna, her ideal deity, leads as a spiritual, philosophical , self inquiry in the Vedantic aspect, totally devoid of worldly pleasures, mundane happenings-standing erect as an enlightened, illumined soul of consciousness.

Pure love was Saint Meerabai's weapon and light. This pure love was intense. A constant yearning for Krishna which made her absorbed fully in Krishna consciousness. A state of a human body with no worldly agony, fear, expectations-only pure existence of immortal bliss. With severe longing for Krishna, Meerabai sings :

''ए री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दर्द न जाने कोए....''

According to the core principles of Dvaita Vedanta, Reality consists of two fundamentally different entities: Ishvara (God)- Supreme, independent and perfect (identified with Vishnu or Narayana) and Jiva (Individual Soul)- Dependent, distinct and eternally separate from God. God and soul are eternally distinct- there is never a time when they are or can become one. Jiva (Soul) are numerous, individual and eternal. They differ in nature, status and destiny . Liberation (moksha) is not merging with God, but living in His presence and enjoying bliss through devotional service *(bhakti). Bhakti* (Devotion) is the primary path to liberation. Knowledge and good conduct are important but secondary to devotion. Dvaita Vedanta accepts the authority of the *Vedas, Upanishads, Bhagavad Gita, and Brahma Sutras*, but interprets them in a dualistic way. This feature of Dvaita Vedanta lies densely in Saint Meerabai's entire life, work and personality. As a North Indian custom decrees of marriage, particularly a girl's marriage at an early age, since the girl is ever expected to regard her husband's family as her own, Meerabai's struggles with her husband and his

family essentially occupied her entire life. The problem was desperately simple. Ever she was a little girl, she knew perfectly well whom she wanted to have for her husband - Krishna - and no earthly man could complete. Her countless poems, verses, rotate around Shri Krishna Girdhar, Bansiwala, Madan Mohan, Sanwara, Shyam, Murliwale - the one and only *'Purusha'*, whom she heartily accepts as her husband - a path of worship, sadhana through purest love in the arena of Dvaita Vedanta. The final journey in Meerabai's life took her in the opposite direction from her native Rajasthan towards the western part of India, to a great temple of Krishna in Dwaraka, on the shores of the Arabian sea, to serve her Lord once again.

Viewing in the lens of Vedanta, the school of Indian philosophy based on the Upanishads, Brahma Sutras and Bhagavad Gita-Brahman is the ultimate reality, infinite, eternal, formless, changeless and the source of all that exists. The individual soul (Atman) is not different from the universal soul (Brahman). Realization of this unity is the goal of Vedanta. The phenomenal world appears real but is ultimately an illusion; it hides the underlying unity of Brahman. Not knowing one's true nature as Brahman leads to ego, attachment and the cycle of birth and death (samsara). Freedom is attained through the realization of one's true nature as Brahman, beyond body and mind. The path to realization involves–inquiry into the Self through study, reasoning, and meditation. Bhakti Yoga (Path of devotion)–surrender to God as a means to purify the heart and realize unity. Karma Yoga (Path of selfless action) – performing duty without attachment to results. Saint Meerabai's each and every action, step absolutely matches the Vedantic philosophy-complete surrender as a devotee, lover, performing each and every task selflessly, unattached to the worldly matters, affairs false emotions, a communion - Yoga with her deity, Lord Krishna.

ध्रुपद में डागर वाणी की भूमिका – एक अवलोकन

सीमा कुमारी
शोध छात्रा
संगीत एवं ललित कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ॰ दीप्ति बंसल
शोध निदेशक,
एसोसिएट प्रोफसर,
संगीत विभाग, दौलत राम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश :

ध्रुपद भारत की सबसे प्राचीन गायन शैली है। इसकी उत्पत्ति पवित्र संस्कृत ग्रन्थ सामवेद की जप शैली में निहित है, जिसमे नाद योग का केंद्रीय तत्व है। ध्रुपद का प्रारंभ मंदिरों से माना जाता है। आध्यत्मिक विशेषता इसकी खास बात है। इसका महत्व राग के प्रस्तुतीकरण के अनुशासन में है। यह लय पर विशेष ध्यान के साथ वीर, भक्ति और बहुत ही अभिव्यंजन शैली है। समय के साथ-साथ ध्रुपद में विशेष भिन्नताओं के कारण वाणियों का जन्म हुआ। ध्रुपद की चार वाणियाँ गोरहार, खंडार, नौहार और डागरवाणी है। वर्तमान में गोरहार और डागरवाणी ही प्रचार में है। प्रत्येक वाणी में ऐसी महान विभूतियाँ हुई हैं, जिन्होंने अपनी संगीत साधना से अपने वाणी और संगीत को गौरवान्वित करने में विशेष भूमिका निभाई है, जिनमें डागरवाणी विशेष स्थान रखता है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा ध्रुपद में डागरवाणी की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द :

भारतीय शास्त्रीय संगीत, ध्रुपद, डागरवाणी, दरबार, गायनशैली।

विषय प्रवेश :

प्राचीन काल में ध्रुपद में संस्कृत श्लोक को गाकर ही हमारे ऋषि मुनि भगवान की आराधना किया करते थे। इस शैली में ध्वनि पर ब्रह्म से संवाद करती है। इसकी साधना सबसे कठिन मानी जाती है। प्राचीन प्रबंध गायन शैली से ही ध्रुपद की उत्पत्ति मानी जाती है। प्राचीन समय में 'सालग शुड' प्रबंध अधिक प्रचलित था। ध्रुपद 'ध्रुव' और 'पद' दो शब्दों के मेल से बना है। जिसका अर्थ है- अटल जिसे बदला नहीं जा सकता है। उसे ही विद्धानों ने ध्रुपद कहा है।[1] ध्रुपद्कारों के विशिस्ट घरानों में डागर घराने की परम्परा प्राचीन कही जाती है। डागर घराने की नींव बाबर के समय श्री गिरिधरनाथ पांडेय से हुई थी। इनके प्रपौत्र गद्दाधर और ज्ञानधार पांडेय जिन्होंने वृन्दावन के स्वामी हरिदास जी से संगीत की शिक्षा ग्रहण की।[2] स्वामी हरिदास जी की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले मुख्य ध्रुपद्कारों में बाबा गोपालदास प्रमुख है। गोपालदास को उनके साथी ब्राम्हणों ने बहिष्कृत कर दिया था। क्योंकि उन्होंने दिल्ली के

मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले द्वारा ध्रुपद के उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए दिए गए पान को चबा लिया था। धर्म परिवर्तन के बाद गोपालदास जी इमामबक्श डागर के नाम से प्रसिद्ध हो गए।[3] इनके दो पुत्र हुए हैदर खां तथा बेहराम खां डागर जो 18वीं शताब्दी के उतरार्ध से 19वीं शताब्दी तक के प्रसिद्ध ध्रुपद्कार हुए। उन्नीस पीढ़ियों के इतिहास से ये पता चलता है कि डागर परंपरा के उस्ताद बेहराम खां की कुशल देख-रेख में अपनी जड़ें मज़बूत की। बाबा बेहराम खां डागर ने जयपुर में अपना गुरुकुल स्थापित किया। ध्रुपद में उनके महान योगदान को सभी स्वीकार करते हैं। उस्ताद फहीमुद्दीन डागर के अनुसार - 'डागर बेहरामखानी' भी कहलाते है। बेहराम खां ने अपने जीवन के 120 साल गायकी की शुद्धता स्थामति करने और ध्रुपद के साथ ख्याल को लोकप्रिय बनाने में बिताया। वे एक बेहतरीन शिक्षक थे। उनके प्रिय शिष्यों में आलिया-फत्तू, गोहकी बाई, काले खां और अब्दुल्लाह खां शामिल थे। इनकी मृत्यु के बाद उनके बेटे उस्ताद सद्दू खान उदयपुर के मुख्य दरबारी संगीतकार बने। बेहराम खां के पोते मुहम्मद जान खां के दो प्रसिद्ध बेटे थे- उस्ताद ज़किरुद्दीन खां और उस्ताद अल्लाह्बंदे खां।[4] 20वीं पीढ़ी में सात डागर हुए और उनके कुछ सुशिक्षित शिष्य इस समृद्ध विरासत को काफी कुशलता से आगे बढाया। पद्मभूषण से सम्मानित उस्ताद अमीनुद्दीन डागर ने अपने बड़े भाई नसीर मोईनुद्दीन डागर के साथ मिलकर डागर वाणी को न केवल भारत में बल्कि पश्चिम में भी लोकप्रिय बनाया। ये सीनियर डागर ब्रदर्स के नाम से जाने जाते थे। परिवार में रुद्रवीणा के उस्ताद ज़िया मोईनुद्दीन डागर और उनके छोटे भाई उस्ताद ज़िया फरीदुद्दीन डागर ने ध्रुपद केंद्र भोपाल में गुरु के रूप में अनेक शिष्य-शिष्याओं को ध्रुपद की तालीम दी तथा खूब प्रसार-प्रचार किया। ध्रुपद में ये उत्तम गुरु हुए तथा सुर की बारीकियों को समझने और समझाने में उन्हें महारथ हासिल थी। इनका कहना था कि स्वरों के आघात के पूर्व स्वरों का आभास होना चाहिए। इन्होने ध्रुपद की शिक्षा

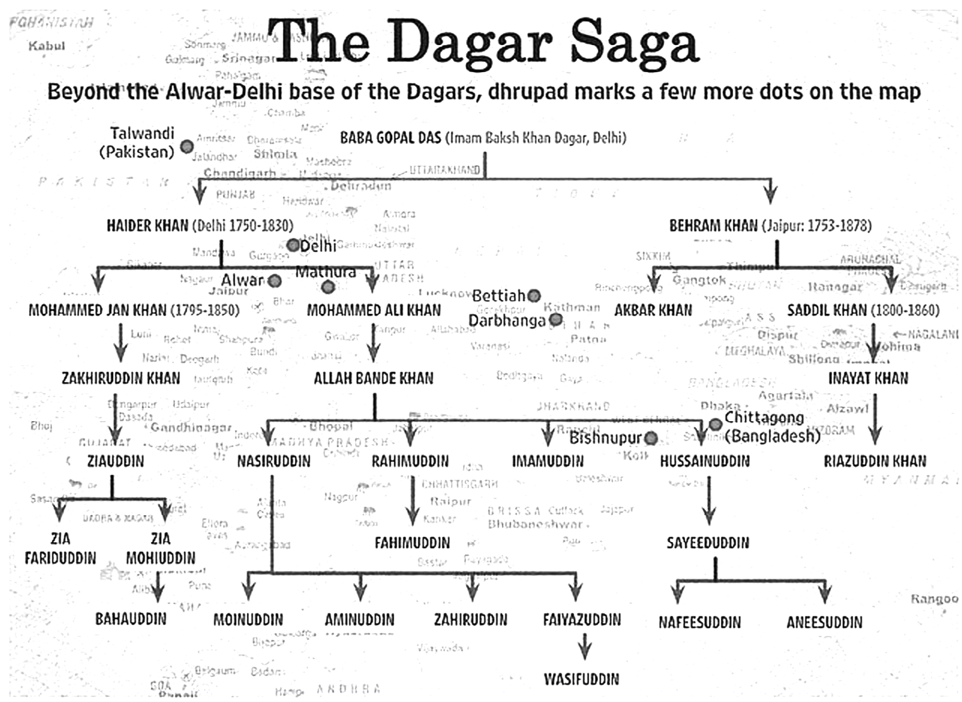

देने में जो संघर्ष किया वो उनके शिष्यों में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। चचेरे भाइयों में उस्ताद नसीर ज़हीरुद्दीन तथा नसीर फैयाजुद्दीन जो जूनियर डागर ब्रदर्स के नाम से लोकप्रिय थे, इन्होने भी ध्रुपद का अच्छे से प्रसार–प्रचार किया। उस्ताद फहीमुद्दीन डागर ध्रुपद के महान विद्वान् तथा ध्रुपद के सैधांतिक और व्यावहारिक पहलुओं के प्रदर्शन में बहुत कुशल थे तथा उस्ताद हुसैन सैदुद्दीन डागर भी आलाप और ध्रुपद की भावपूर्ण और मधुर प्रस्तुति के लिए जाने जाते थे।

वर्तमान में चार संगीतकार डागर घराने (परिवार) के है- उस्ताद ज़िया मोहिउद्दीन डागर के बेटे उस्ताद मोहि बहाउद्दीन डागर जो रुद्रवीणा वादन में बहुत कुशल है। उस्ताद फैयाजुद्दीन के बेटे उस्ताद फैय्याज वासिफुद्दीन डागर है जो ध्रुपद के अद्वितीय कलाकार है इनके द्रुत आलाप को लोगों में बहुत पसंद किया जाता है। उस्ताद हुसैन सैदुद्दीन डागर के बेटे अनिसुद्दीन डागर और नाफिसुद्दीन डागर जो जुगलबंदी प्रदर्शन करते हैं।[6] संक्षेप में कहें तो डागर घराने के ध्रुपद्कारों तथा बीनकारों की यह परंपरा आज भी ध्रुपद गायकी के आधार स्तम्भ के रूप में भारतीय संगीत में प्रतिष्ठित है। हमारे पूर्वजों द्वारा संगीत के जिस आध्यात्मिक पक्ष की सराहना कर संगीत को मोक्ष प्रदान कराने वाली कला कहा है, उसका सजीव चित्रण 'डागर घराने' के आलापचारी अंग में खींचा रहता है।

डागर परंपरा की संगीतात्मक विशेषताएँ :

प्रमुख विशेषताएं : डागर परंपरा में कंठ संस्कार (Cultured Voice) बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस परंपरा में आलाप पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जब श्रोता आलाप सुनते हैं तो उन्हें एक अलग ही आनंद की अनुभूति होती है। आलाप को एक-एक स्वर-संवाद के साथ प्रस्तुत किया जाता है तथा सुरों की बारीकियों पे विशेष ध्यान दिया जाता है। इन सुक्ष्म स्वरों का सही उपयोग करने के लिए संगीत में कानों को कई वर्षों का प्रशिक्षण लेना पड़ता है।

उस्ताद फैयाज़ वासिफुद्दीन डागर जी के अनुसार– ध्रुपद की डागर वाणी में दस स्वर लक्षण माने गये हैं– आकार, डगर, धुरन, मुरन, कम्पित, आंदोलित, लहक, गमक, हुड़क, स्फूर्ती साथ ही मीड़ और सूत ये बारह पूर्ण सिध्दांत कहलाते है। किन्तु ध्रुपद के महत्वपूर्ण सिध्दांत दस है। मीड़ और सुत ख्याल में भी बरता जाता है।

''ओम अन्तरम् त्वम् तरन तारन त्वम् अन्नत हरि – नारायण ओम'' ये अलग–अलग क्रियाओं के द्वारा आलाप में बरता जाता है। आकार, साकार, नाकार, उकार, ये क्रियाओं का एक सिस्टम है। तालु, जिव्हा, दंतव्य, औष्ठय, मूर्धन्य, नासिका, अनुनासिका, निरंनासिका इनके प्रयोग से ये गाये जाते है। यह पूरा एक वैज्ञानिक तरीका है।[7]

आकार डागर परंपरा की गायकी का प्रमुख अंग है। आवाज़ की सहज उत्पत्ति और विशुद्ध उत्पादन आकार से ही संभव है। इस परंपरा में तानपुरे की अहम् भूमिका होती है तथा ज्यादातर संगीत साधक आपने गायन में केवल तानपुरा तथा पख़ावज और कभी-कभी रूद्र वीणा ही प्रयोग में लाते है, अन्य वाद्य यंत्र का प्रयोग नहीं के बराबर होता है।

एक स्वर से लचकती हुई गति के साथ किसी स्वर तक पहुँचना डगर है। धुरन, मुरन की जोड़ी आरोह-अवरोह क्रम में गायक द्वारा प्रस्तुत किया जाता

है। ये उल्लासित तथा नामित गमकों की तरह होते है। कम्पित, आंदोलित गमक में मध्य, द्रुत लय में आरोहात्मक अवरोहात्मक स्थाय वर्ण के उलट-पुलट में अथवा एक–एक स्वर के पुनरावृत्ति गमक का मंद्र स्वर से होते हुए पुनः उसी स्वर पर पहुँचाने का प्रयोग है। लहक में साँस का विशेष बल प्रयोग करके एक लहर के समान स्वर–विन्यास झूलता है। संगीत रत्नाकर में वर्णित हुम्फित गमक के समान हुदक को समझा जाता है। इसमें हुम की ध्वनि के साथ गमक ली जाती है। स्फूर्ति में द्रुतगति में स्वर संचरण कई स्वर समुदाय, अलंकार, तान आदि के सहारे लेते हैं। उस्ताद फरीदुद्दीन डागर जी के अनुसार– डागर घराने के विशिष्ट ध्रुपद गायकी शस्त्रोक्त पंच गीतियों में साधारनी गीति से सम्बंधित है जो शुद्धा, भिन्ना, गौडी, बेसरा इन चार गीतियों के मिश्रित रूप का प्रमाण है। प्रायः डागरों द्वारा गेय ध्रुपद रचनाओं का साहित्य भगवत लीला से ओत-प्रोत है। डागर वाणी में गायन और वीणा वादन हमेशा से एक-दूसरे के पूरक रहें हैं। सभी अच्छे वीणा वादक (बीनकार) अच्छी तरह से प्रशिक्षित गायक थे। उस्ताद ज़िया मोहिउद्दीन डागर जो बीनकार थे, वे एक बेहतरीन गायक भी थे।[8] इस प्रकार ध्रुपद गायकी को जीवित रखने व उसके प्रचार में सहयोगी डागर घराने की देन अद्वितीय है।

ध्रुपद में डागर वाणी की कुछ बंदिशें :

1. **राग भूपाली (चारताल) :**

स्थाई : तान तलवार
तार की सीफ़र लिए फिरत
गुड़ि अपने मनमानी
जहाँ तहाँ जितत फुरत।

अंतरा : सुर कमान बोल बान छुटत जों ही
लागत रीझत ते ही सब जानी विद्याधर
झुरत।।[9]

2. **राग अडाना (सूलताल) :**

स्थाई : शिव शिव शिव, शंकर आदिदेव
शम्भू भोलानाथ, योगी महादेव।

अंतरा : महाबली शिव, आदि अंत शिव
पूरन सकल काज, हर हर महादेव।।[10]

3. **राग अहीर भैरव (धमार) :**

स्थाई : चलो सखी बृजराज
जगत की लाज सों नहीं काज करे हो।

अंतरा : कोई कहे गोशाम के डिग गई
जाहु तिह देख ओर कहाँ करे हो।।

प्रसिद्ध सीनियर डागर बंधु द्वारा गाया गया राग मालकौंस में चारताल में बंदिश :

4. पूजन चली महादेव चन्द्रवदनी मृगनयनी हंसगमनीपारवती।

कर अग्र थाल लिए पुष्पों के गुथे हार मुख दियरा जराय देवन में महादेव।।

निष्कर्ष :

भारतीय शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद से ही सभी गायन शैली की उत्पत्ति हुई है। ध्रुपद गायन में एक केंद्रीय अवधारणा नाद योग का अभ्यास है। डागरवाणी में राग को एक व्यक्तित्व मान के गाया जाता है। सिर्फ बंदिशों का गान नही किया जाता बल्कि आलाप के हर स्वर पे ध्यान दिया जाता है। आलाप में स्वरों पे ही सबसे ज्यादा ध्यान दिया जाता है। कुछ वर्षों में ध्रुपद ने न केवल भारत में बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भी जोरदार वापसी की है। वर्तमान समय में ध्रुपद में डागर परंपरा के कई कलाकार इस शैली को आगे ले जा रहे है। जिनमें पंडित ऋत्विक सान्याल, पद्मश्री गुंदेचा बन्धु, पद्मश्री वासिफुद्दीन डागर, पंडित उदय भवालकर, पंडित निर्माल डे इत्यादि मुख्य रूप से प्रचलित हैं।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा डॉ॰ अनीता, प्राचीन संगीतिक परम्पराएं एवं ध्रुपद शैली एक अध्ययन, संजय प्रकाशन नई दिल्ली, 2004 पृ॰ सं॰-1
2. कुरैशी हुमरा, डागर व ध्रुपद, नियोगी बुक्स नई दिल्ली, 2019 पृ॰ सं॰-27
3. सन्याल डॉ॰ ऋत्विक, ध्रुपद की डागर परंपरा, dhrupad annual vol-1, 1986 पृ॰ सं॰-49
4. संगीत ध्रुपद- धमार अंक जनवरी-1964, पृ॰सं॰-144
5. तैलंग डॉ॰ मधुभट्ट, ध्रुवपद गायन परंपरा, जवाहर कला केंद्र जयपुर, 1995 पृ॰ सं॰-52
6. सन्याल डॉ॰ ऋत्विक, डागर परंपरा, अमेरिका का ध्रुपद संगीत संस्थान, 2022
7. बंधु गुंदेचा, सुनता है गुरु ज्ञानी, मंजुल पब्लिशिंग हाउस भोपाल, 2019 पृ॰ सं॰-11
8. सन्याल डॉ॰ ऋत्विक, डागर परंपरा, अमेरिका का ध्रुपद संगीत संस्थान, 2022
9. बृहस्पति आचार्य, ध्रुपद और उसका विकास, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना 1970 पृ॰ सं॰-383
10. https://youtu.be/wdnq5YZHlK4?si=OzYYjozghsMLLS-0

काशी के संगीत महोत्सव एवं आयोजन : परंपरा और आधुनिकता का संगम

श्रेया मिश्रा
शोधार्थी, वाद्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रो० संगीता सिंह
शोध निर्देशिका, वाद्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सारांश :

संगीत की नगरी काशी वर्षों से भारतीय संगीत, संस्कृति और अध्यात्म का केंद्र रही है। काशी के संगीत महोत्सव तथा आयोजनों ने न केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत को संरक्षित व संबंधित रखा बल्कि उसने यहाँ की परंपराओं को जीवित रखते हुए उसे आधुनिकता तथा नवाचार से भी जोड़ रखा है। यहाँ के अनेक साहित्यिक कार्यक्रम जैसे की गंगा महोत्सव, काशी संगीत सम्मेलन, घाट संध्या, संकट मोचन संगीत समारोह, ध्रुपद महोत्सव तथा उनके साथ कई अनेकों आयोजन भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा व विरासत का जीवंत उदाहरण है। इन कार्यक्रमों में बनारस घराने के विख्यात कलाकारों की प्रस्तुतियां, शास्त्रीय संगीत की परंपरा की ओर दर्शाती है तथा वहीं दूसरी और नवोदित कलाकारों की सहभागिता आधुनिक अभिव्यक्ति तथा नवीन तकनीक व प्रयोग से जुड़ी रहती है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया व डिजिटल माध्यमों के माध्यम से ये महोत्सव तथा आयोजन अब विश्व स्तर पर पहुंच रहे हैं, जिससे काशी की शास्त्रीय संगीत परंपरा विश्व पटल पर पहुंच चुकी है। काशी केवल संगीत कला का ही नहीं बल्कि धार्मिक तथा सांस्कृतिक तथा अन्य कई माध्यम बन चुकी है। काशी के परंपराओं और आधुनिकता का संगम ऐतिहासिक दृष्टि के साथ ही साथ सांस्कृतिक रूप से भी समृद्ध होता है।

मुख्य शब्द :

काशी, संगीत, परंपरा, कार्यक्रम, महोत्सव, डिजिटल प्लेटफॉर्म।

विषय प्रवेश :

काशी न केवल भारतवर्ष की संस्कृति की राजधानी मानी जाती है बल्कि यह आध्यात्म, दर्शन और संगीत कार्यक्रमों का भी केंद्र रही है। काशी की संगीत परंपरा कई वर्षों पुरानी है। यहाँ गलियों गलियों में संगीत की गूंज वर्षों से सुनाई देती आई है। सदियों से चलती आ रही संगीत की इस परंपरा से काशी का प्रेम व संगीत के प्रति लगाव समय-समय के साथ-साथ गहरा होता चला गया है। यह काशी में पीढ़ियों से चली आ रही संगीत परंपरा आज भी गुरु शिष्य परंपरा, सांगीतिक कार्यक्रम व संस्थागत प्रणाली तथा अन्य विद्यालय में सिखाए जा रहे संगीत विद्या के द्वारा अभी भी जीवित है। काशी में मनाए जाने वाले

संगीत कार्यक्रम व सांगीतिक आयोजन वर्तमान में इस बात का जीवंत उदाहरण है कि किस प्रकार संगीत परंपरा व आधुनिकता के संगम का संयोग एक साथ संभव है।

काशी के प्रमुख संगीत महोत्सव व आयोजन :

काशी में वर्षों से चलते आ रहे कई संगीत आयोजन तथा महोत्सवों ने काशी की संगीत परंपरा को जीवित रखा है तथा यहाँ पर पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही संगीत परंपरा नवोदित कलाकारों तथा युवाओं द्वारा जनमानसों तक पहुंचाई जा रही है। कुछ ऐसे सांगीतिक कार्यक्रमों तथा आयोजन एवं महोत्सवों के नाम इस प्रकार है :

1. **गंगा महोत्सव :**

   यह महोत्सव काशी में आयोजित की जाती है। यह पांच दिवसीय कार्यक्रम है, जो गंगा नदी के तट पर गंगा नदी की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाती है। इस महोत्सव में विभिन्न सम्मानित बड़े तथा वरिष्ठ कलाकारों द्वारा शास्त्रीय संगीत तथा नृत्य एवं रंगमंच आदि प्रस्तुतियों सहित अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। इस कार्यक्रम के द्वारा भारत की आध्यात्मिक राजधानी के रूप में काशी की संगीत परंपरा को बढ़ावा दिया जाता है।

2. **संकट मोचन संगीत समारोह :**

   यह संगीत समारोह हर वर्ष संकट मोचन मंदिर में हनुमान जयंती के पावन एवं शुभ अवसर पर आयोजित किया जाने वाला एक भव्य संगीत समारोह है। जिसमें देश-विदेश के अनेकों बड़े एवं प्रतिष्ठित कलाकार अपनी संगीत प्रस्तुति देते हैं। यह समारोह काशी की सबसे बड़ी तथा प्रतिष्ठित संगीत परंपराओं में से एक है। यह संकट मोचन कार्यक्रम रात्रि से लेकर भोर तक चलने वाला कार्यक्रम है।

3. **श्री कूष्मांडा दुर्गा जी वार्षिक श्रृंगार महोत्सव :**

   यह श्री कूष्मांडा दुर्गा जी वार्षिक श्रृंगार महोत्सव सात दिवसीय आयोजित कार्यक्रम है, जो दुर्गाकुंड स्थित दुर्गा मंदिर में मां के दरबार में उनके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ पर भी देश-विदेश के प्रतिष्ठित कलाकार मां की श्री चरणों में अपनी संगीत साधना से संगीतांजली अर्पित करते हैं। यह काशी का प्राचीनतम, पारंपरिक, आध्यात्मिक तथा अग्रणी संगीत समारोह माना जाता है।

4. **गुलाब बाड़ी संगीत सम्मेलन :**

   होली के उल्लासमय पर्व के बाद जब चैत्र मास में गुलाब पुष्पों की मनमोहक सुगंधि से वातावरण मदहोश होने लगता था, तो गुलाब पुष्पों से सुगंधित वातावरण में गुलाब बाड़ी संगीत सम्मेलन में चैती गायन की महफिल के आयोजन के लिए काशी के रईसों में होड़ लग जाया करती थी। इस सम्मेलन में गुलाबी पगड़ी, गुलाबी कुर्ते, गुलाबी धोती, चादर, दुपट्टे में यह लोग एक दूसरे को अबीर गुलाल लगाते हुए संगीत का आनंद लेते हैं। इस सम्मेलन में गुलाबी प्रकाशव्यवस्था, गुलाबी परिधान, गुलाबी आवरण सज्जा, मंच व्यवस्था, गुलाब जल छिड़काव, गुलाब पुष्प की वर्षा, इत्र गुलाब से सुगंधित वातावरण से सुशोभित इस संगीत महफ़िल को गुलाब बाड़ी संगीत सम्मेलन कहा गया।[1] यह सम्मेलन चैत्र मास में आयोजित किया जाता है। यह संगीत सम्मेलन उल्लास उत्सवों में से एक माना जाता है।

5. **ध्रुपद मेला :**

   ध्रुपद मेला हर वर्ष तुलसी घाट पर आयोजित किया जाने वाला एक वार्षिक उत्सव मेला है, जहाँ प्राचीन भारतीय शास्त्रीय संगीत का उत्सव मनाया जाता है। इस ध्रुपद मेला के महोत्सव में देश-विदेश भर के प्रसिद्ध ध्रुपद कलाकार और संगीतकार एक साथ शामिल होते हैं और विभिन्न

गतिविधियों के साथ ध्रुपद मेला में एक मेला भी लगता है जो इसे महत्वपूर्ण, सांस्कृतिक और पर्यटन कार्यक्रम बनाता है। यह ध्रुपद मेला महोत्सव हर वर्ष फरवरी या मार्च के महीने के आस-पास आयोजित होता है। यह पांच दिवसीय महोत्सव है। ध्रुपद मेला महोत्सव, भारतीय शास्त्रीय संगीत की समृद्ध विरासत पर भी प्रकाश डालता है।

6. **महिंद्रा कबीरा उत्सव :**

यह उत्सव हर वर्ष दिसंबर के माह में 19 से 21 दिसंबर को आयोजित किया जाता है। यह उत्सव गंगा नदी के किनारे आयोजित होता है। इस उत्सव में संगीत, कला और साहित्य के माध्यम से इस उत्सव का जश्न मनाया जाता है। इसमें इसकी इस गतिविधि में शास्त्रीय तथा लोक संगीत और कुछ कला प्रदर्शन तथा इसके साथ ही साथ गंगा आरती का भी आयोजन होता है। यह उत्सव 15वीं सदी के रहस्यवादी कवि और संत कबीर के जीवन का सम्मान करता है।

काशी की संगीत परंपरा और आधुनिकता का संगम एवं प्रभाव :

काशी की संगीत परंपरा का क्रमबद्ध इतिहास यों तो प्रमाणिकता के अनस्तित्व में अप्राप्य सा है। भारतवर्ष के कुछ ही नगर ऐसे हैं जो व्यक्ति-विशेष, वस्तु-विशेष एवं संस्कृति-विशेष के कारण सदियों से अलग पहचाने जाते हैं। काशी नगरी को यह गौरव प्राप्त है।[2] काशी में चलते आ रहे वर्षों से यह संगीत परंपरा अब सिर्फ शास्त्रीय सुरों तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान में हो रहे आयोजन व महोत्सव अब नई तकनीकों, ध्वनि संयोजन और डिजिटल माध्यमों के प्रयोग से विश्व भर में प्रचारित व प्रसारित हो रहे हैं, तथा इन माध्यमों का प्रयोग कर कार्यक्रमों को नवोदित कलाकार एवं युवाओं वर्ग के लिए और भी आकर्षित बनाया जा रहा है। अब के समय में नई पीढ़ी के कलाकार आधुनिकता को अपना जड़ बनाकर अपनी प्रस्तुति दे रहे हैं जिसमें वह फ्यूजन, बैंड, ऑनलाइन कोलाबोरेशन और नई तकनीक का प्रयोग कर संगीत परंपरा को आधुनिकता से जोड़ रहे हैं।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की बढ़ती भूमिका :

वर्तमान कोरोना समय काल के समय से सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म व डिजिटल दुनिया ने नई रफ्तार पकड़ ली। इस समय काल में कलाकारों ने लाइव कंसर्ट, लाइव रिकॉर्डिंग बंद कर ऑनलाइन कार्यक्रम शुरू कर दिए, जिसके माध्यम से यूट्यूब, इंस्टाग्राम आदि को संगीत कार्यक्रम का जरिया बना दिया गया और संगीत के प्रचार- प्रसार तथा प्रदर्शन और प्रयोग का भी नया माध्यम बना दिया गया। सोशल मीडिया के प्रचार व प्रयोग से युवा कलाकारों को मंच प्रदर्शन का नया अवसर प्राप्त हुआ तथा इन सभी की संगीत को एक नई दिशा मिली है और इसने साथ ही साथ संगीत परंपरा की गहराई को भी जीवित रखा।

नवोदित कलाकारों के लिए अवसर :

इन सांगीतिक आयोजन व महोत्सवों के माध्यम से न केवल वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित कलाकारों को सम्मान मिल रहा है बल्कि उसके साथ ही साथ नवोदित तथा युवा वर्ग के कलाकारों को मंच प्रस्तुति का भी अवसर मिल रहा है, जिससे वह अपनी प्रतिभाओं का मंच प्रदर्शन कर अपनी चलती आ रही संगीत परंपराओं को आगे जन-जन तक पहुंचा रहे हैं। इन युवाओं के संगीत प्रदर्शन से काशी की भारतीय संगीत की निरंतरता और समृद्धि जीवित रह रही है। वर्तमान समय में डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से काशी की संगीत तथा यहाँ की संगीत परंपरा पूरे विश्व भर में प्रचारित तथा प्रसारित हो सम्पूर्ण विश्व के जन-जन तक इन डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से पहुंच रही है।

निष्कर्ष :

काशी की संगीत महोत्सव संगीत के उत्सव के साथ ही साथ एक जीवित परंपरा है, जो सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है और यहाँ की संस्कृति,

भक्ति, अध्यात्म, विरासत समय के साथ-साथ आगे बढ़ रही है। काशी की संगीत परंपरा की गहराई तथा आधुनिकता की नवीनता एक दूसरे से टकराने के बजाय मिलकर एक ऐसा नवीन एवं अद्भुत संगम बनती है जो श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती है। काशी केवल अपने संगीत महोत्सव तथा परंपराओं के लिए ही प्रचलित तथा प्रसिद्ध ही नहीं बल्कि आधुनिकताओं, नवीनताओं, अध्यात्म, भक्ति तथा संस्कृति का एक अनूठा संगम है। वर्तमान में इन आयोजनों में संगीत परंपरा की गहराई और आधुनिकता के नवीनता का समन्वय देखने को मिलता है और परंपरा और आधुनिकता का यही संगम काशी को 'संगीत की नगरी-काशी' के रूप में अमर करती है। काशी की यही विशेषता है कि जहां परंपरा और आधुनिकता एक साथ चलती है वही सुरों की एक अखंड यात्रा बनती चली जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मिश्र, कामेश्वरनाथ, 1997, काशी की संगीत परंपरा, संस्करण-1, पृष्ट संख्या-58
2. मिश्र, कामेश्वरनाथ, 1997, काशी की संगीत परंपरा, संस्करण-1, पृष्ट संख्या-1

सामाजिक न्याय और समुदाय सहभागिता में कला शिक्षा की भूमिका

श्री सुशील कुमार
सहायक प्रोफेसर,
ललित कला विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सारांश :

कला शिक्षा में वह परिवर्तनकारी शक्ति निहित है जो कक्षा की सीमाओं से परे जाकर सामाजिक न्याय के मुद्दों को संबोधित करने और समुदाय की सार्थक भागीदारी को बढ़ावा देने का मंच प्रदान करती है। यह शिक्षा न केवल आलोचनात्मक सोच, सांस्कृतिक जागरूकता और सृजनात्मक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करती है, बल्कि छात्रों सहित व्यक्तियों को सामाजिक असमानताओं को चुनौती देने और हाशिए पर मौजूद आवाजों को स्थान देने के लिए सशक्त बनाती है। सहभागी कला अभ्यासों और समावेशी शिक्षण विधियों के माध्यम से कला शिक्षक ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकते हैं जो सहानुभूति, संवाद और सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रेरित करें।

समकालीन समाज में जहाँ दृश्य संस्कृति जनचेतना को गहराई से प्रभावित करती है, वहाँ कला की भूमिका सामाजिक मुद्दों पर दृष्टिकोण और प्रतिक्रियाएँ गढ़ने में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। जब कला शिक्षा को समानता और समावेशन की दिशा में केंद्रित किया जाता है, तब यह छात्रों को नस्लभेद, लैंगिक असमानता, पर्यावरणीय न्याय और आर्थिक विषमता जैसे विषयों को समझने और उनका सामना करने में सक्षम बनाती है। सामुदायिक कला परियोजनाएँ सामाजिक एकता का माध्यम बनकर विविध समुदायों को संवाद और सहयोग के अवसर प्रदान करती हैं। यह शोधपत्र दर्शाता है कि कला शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास ही नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मुख्य शब्द :

कला शिक्षा, सामाजिक न्याय, समुदाय सहभागिता, समावेशी शिक्षाशास्त्र, सहभागी कला।

1. कला शिक्षा और सामाजिक न्याय : एक संक्षिप्त परिचय :

कला शिक्षा-चित्रकला, मूर्तिकला, डिजाइन आदि का व्यवस्थित अध्ययन है, जो संवेगबोध, सृजनात्मकता, बौद्धिक विकास, भावनात्मक समझ और सांस्कृतिक चेतना को बढ़ावा देती है। भारत में यह शिक्षा शास्त्रीय और लोक परंपराओं से जुड़ी रही है (सक्सेना, 2010, पृ॰ 112)।[1]

- जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे ने कला को आत्मा की सृजनात्मक अभिव्यक्ति माना। गांधीजी ने

इसे व्यावहारिक शिक्षा और नैतिकता से जोड़ा (गांधी, 1953, पृ.-221)।[2]

- लोगविज्ञानी रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कला को आत्मा की सृजनात्मक अभिव्यक्ति बताया (ठाकुर, 1937-2005, पृ.-58)।[3]
- स्वामी विवेकानंद ने इसे चरित्र-निर्माण और मानसिक विकास से जोड़ा (विवेकानंद, 1963, खंड 3, पृ.-145)।[4]
- ड्यूई ने कला को अनुभव माना, जबकि हर्बर्ट रीड ने इसे शिक्षा और प्रदर्शन कला से जुड़ा सामूहिक शिक्षण बताया (रीड, 1943-2005, पृ.-77)।[5]

कला शिक्षा के माध्यम से सृजनात्मक सोच, सांस्कृतिक समझ, आत्म-परिचय और अन्य विषयों में एकीकरण संभव है। यह भविष्य के लिए आवश्यक नवाचार, डिज़ाइन और उद्यमिता जैसे कौशल भी विकसित करती है।

सामाजिक न्याय का तात्पर्य है - सभी को समान अधिकार और अवसर देना। इसमें समुदायिक सहभागिता, व्यक्तियों को जीवन के प्रश्नों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करती है (सेन, 2009, पृ.-35)।[6] कला इन दोनों के बीच सेतु का कार्य कर सकती है- वह असमानताओं पर प्रश्न उठाने, अनुभव साझा करने और सामुदायिक उपचार में सहायक होती है।

भारत में महिलाएँ, आदिवासी क्षेत्र और सरकारी विद्यालयों में सामुदायिक कला परियोजनाएँ हाशिए के समुदायों को सशक्त बनाने में सहायक रही हैं (शर्मा, 2018, पृ.-89)।[7]

21वीं शताब्दी में डिजिटल तकनीक और नई शिक्षा नीति 2020 ने कला शिक्षा को समावेशी, सहभागितापूर्ण और सामाजिक सरोकारों से जोड़ने के अवसर दिए हैं। आज युवा कलाकार सोशल मीडिया के माध्यम से दलित, आदिवासी और हाशिए की आवाजों को प्रकट कर रहे हैं (कुमार, 2022, पृ.- 55)।[8]

21वीं सदी में भारत वैश्वीकरण, डिजिटल परिवर्तन और सामाजिक-राजनीतिक चुनौतियों से गुजर रहा है। ऐसे समय में कला शिक्षा एक महत्वपूर्ण, समावेशी और सहभागितापूर्ण मंच प्रदान करती है, जो युवाओं और समुदायों को समानतामूलक समाज निर्माण में जोड़ती है (जोशी, 2021, पृ.-67)।[9]

नई शिक्षा नीति (2020) ने कला को मुख्यधारा की शिक्षा में सम्मिलित कर सृजनात्मक और अनुभवात्मक शिक्षण को बढ़ावा दिया है। डिजिटल तकनीकों के माध्यम से अब कला शिक्षा दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच रही है। इंस्टाग्राम, यूट्यूब जैसे मंचों पर दलित और आदिवासी कलाकार सामाजिक न्याय के पक्ष में अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं (गुप्ता, 2023, पृ.-118)।[10]

2. अनुसंधान पद्धति :

इस विषय पर अपनाई गई पद्धति गुणात्मक सैद्धांतिक दृष्टिकोण है, जो आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र और सन्दर्भात्मक विश्लेषण पर आधारित है। यह विधि पाउलो फ्रेरे, बेल हूक्स और जेनेवा गे जैसे शिक्षाविदों के सिद्धांतों पर आधारित है, जो यह जांचने में सहायता करते हैं कि कला शिक्षा किस प्रकार सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित कर सकती है और हाशिये पर स्थित समुदायों को सशक्त बना सकती है।

यह पद्धति भारतीय परिप्रेक्ष्य में वास्तविक जीवन के उदाहरणों का वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करती है, जैसे आदिवासी कला रूपों, समुदाय-आधारित कला पहलों, और सामाजिक रूप से संलग्न शैक्षिक प्रयोगों का अध्ययन। यह दृष्टिकोण अनुभवात्मक कथाओं और केस-आधारित विश्लेषण को सम्मिलित कर यह स्पष्ट करता है कि कला किस प्रकार प्रतिरोध, प्रतिनिधित्व और सहानुभूति के निर्माण का साधन बन सकती है। यह दृष्टिकोण शिक्षा में जटिल सामाजिक मुद्दों की पड़ताल के लिए उपयुक्त है।

3. सैद्धांतिक आधार : कला शिक्षा और सामाजिक समावेशन :

- पाउलो फ्रेरे की क्रिटिकल पेडागॉजी शिक्षा को संवादात्मक और मुक्तिदायी प्रक्रिया मानती है। वे बैंकिंग मॉडल का विरोध करते हुए शिक्षक-छात्र की साझेदारी से ज्ञान निर्माण को महत्व देते हैं (फ्रेरे, 1970-2005, पृ॰-72)।[11] भारत में यह विचार गांधीजी की नई तालीम और टेगोर की समग्र शिक्षा दृष्टि से मेल खाता है। शंकरदयाल शर्मा और जगदीश चंद्र बोस ने भी छात्रदृकेन्द्रित एवं स्थानीय अनुभव आधारित शिक्षा पर बल दिया (शर्मा, 1992, पृ॰-43)।[12]
- कला शिक्षा में यह दृष्टिकोण विद्यार्थियों को सामाजिक असमानताओं और अपनी पहचान को सृजनात्मक माध्यमों से अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है।
- बेल हुक्स (Bell Hooks) शिक्षा को मुक्ति का अभ्यास मानती हैं। वे जाति, वर्ग और लिंग जैसे आयामों को कक्षा में स्थान देने की बात करती हैं (हुक्स, 1994, पृ॰-110)।[13] भारत जैसे समाज में जहाँ पितृसत्ता और जातिवाद गहरे हैं, यह दृष्टिकोण समावेशी कला शिक्षा को बढ़ावा देता है। खोज और आर्टरीच इंडिया जैसे समूह इस विचारधारा से प्रेरित हैं।

सांस्कृतिक बहुलतावादी शिक्षा विभिन्न सांस्कृतिक भूमि को पाठ्यक्रम से जोड़ती है। भारत में यह मिट्टी, लकड़ी, वारली जैसी लोक कलाओं को शामिल कर विद्यार्थियों को सांस्कृतिक गर्व और आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान करती है (कश्यप, 2015, पृ॰-89)।[14]

मीडिया कलाएँ, जैसे फिल्म, स्ट्रीट आर्ट या मीम्स, सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम हैं। भूपेन खख्खर और शेब्बी एन॰ पी॰ जैसे कलाकारों ने इसे सामाजिक बदलाव का औजार बनाया। कला शिक्षा में इसकी भूमिका विद्यार्थियों को जागरूक नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण है (जोशी, 2020, पृ॰-67)।[15]

4. कला शिक्षा और सामाजिक न्याय :

कला शिक्षा आज सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने का एक प्रभावशाली मंच बन चुकी है। यह न केवल पहचान, अभिव्यक्ति और सहानुभूति को विकसित करती है, बल्कि विद्यार्थियों को सामाजिक मुद्दों पर सोचने और प्रतिक्रिया देने के लिए प्रेरित करती है। कला की सृजनात्मक और भावनात्मक शक्ति भाषायी और सांस्कृतिक सीमाओं को पार कर, शिक्षण को एक परिवर्तनशील प्रक्रिया में बदल देती है।

- **प्रतिरोध और अभिव्यक्ति का माध्यम :**

  इतिहास में कला अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का साधन रही है-चाहे वह राजनीतिक ग्रैफिटी हो या विरोध पोस्टर। शिक्षा में यह विद्यार्थियों को विवादास्पद विषयों पर विचार करने और अपनी दृष्टि प्रस्तुत करने का अवसर देती है। पाउलो फ्रेरे (1970-2005, पृ॰-72)[16] के अनुसार शिक्षा 'स्वतंत्रता की प्रक्रिया' होनी चाहिए और कला इसके लिए एक सशक्त माध्यम है।

- **हाशिए की आवाजों का प्रतिनिधित्व :**

  बेल हुक्स (1994, पृ॰-110)[17] ने शिक्षा में 'वॉयस' की भूमिका पर बल दिया। उनके अनुसार कक्षाओं को विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक भूमि से बोलने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। कला शिक्षा दलित, आदिवासी, स्ळठज्फ़ और प्रवासी समूहों को अपनी कहानियाँ कहने का अवसर देती है। जब इनके अनुभवों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है तो वह केंद्रित कला इतिहास को चुनौती देता है।

- **जाति, लिंग और वर्ग पर संवाद :**

  कला जाति, लिंग और वर्ग जैसे संवेदनशील मुद्दों पर संवाद को संभव बनाती है। भीमजी डकवाले, कंवल ओबेरॉय और एस॰ ओवेवोवे जैसे कलाकारों के कार्य विद्यार्थियों को असमानता, पहचान और प्रतिरोध पर सोचने के लिए प्रेरित करते हैं (जोशी, 2020, पृ॰-67)।[18]

- **सहानुभूति और सक्रियता का विकास :**

कला शिक्षा विद्यार्थियों में सहानुभूति को विकसित करती है। जब वे अपनी या दूसरों की कहानियों को कलात्मक रूप में व्यक्त करते हैं, तो वे सामाजिक विभेदों को समझने लगते हैं। यह उन्हें अधिक संवादशील, जिम्मेदार और सक्रिय नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करती है (कश्यप, 2015, पृ॰-90)।[19]

5. कला के माध्यम से सामुदायिक सहभागिता :

- **सामुदायिक कला परिभाषा और स्वरूप :**

  सामुदायिक कला वह प्रक्रिया है जिसमें कलाकार, शिक्षक और समुदाय मिलकर स्थानीय इतिहास, पहचान और सामाजिक मुद्दों पर आधारित कलाकृतियाँ तैयार करते हैं। भारत जैसे सांस्कृतिक विविधता वाले देश में यह कला सामाजिक एकता, सांस्कृतिक संघर्षों के संरक्षण और समकालीन समस्याओं के समाधान में सहायक होती है। यह ग्रामीण-शहरी, पारंपरिक-आधुनिक और विशेषाधिकार प्राप्त-वंचित समूहों के बीच संवाद का पुल बनती है (सेन, 2012, पृ॰-85)।[20]

- **सामुदायिक कला की परिभाषा और क्षेत्र :**

  सामुदायिक कला या सामाजिक रूप से जुड़ी कला, सहभागिता और समावेशी प्रवृत्तियों पर आधारित होती है, जिसमें सामाजिक संदर्भ को प्राथमिकता दी जाती है। यह पारंपरिक दीर्घाओं से बाहर-सार्वजनिक स्थानों, गाँवों और सामुदायिक केंद्रों में अभिव्यक्त होती है। भारत में इसकी विविधता लोक और जनजातीय कलाओं से लेकर आधुनिक भित्ति चित्रों और प्रदर्शनों तक फैली हुई है। यह परंपरागत शैलियों (जैसे-वारली, मधुबनी, गोंड) को आधुनिक विषयों से जोड़ती है (केस्टर, 2004, पृ॰-56)।[21]

- **सामुदायिक कला परियोजनाओं के लाभ :**

  सामुदायिक कला सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करती है और पारंपरिक कलाओं को जीवित रखती है। उदाहरणस्वरूप, महाराष्ट्र में वारली चित्रकला ने आदिवासी महिलाओं को आत्मनिर्भरता और आत्मबल प्रदान किया (शर्मा, 2018, पृ॰-102)।[22]

- यह हाशिए पर रह रहे लोगों को सार्वजनिक मंच देती है, जैसे झुग्गियों में किए गए भित्ति चित्र।
- यह विभिन्न समुदायों में संवाद और सामूहिकता को बढ़ावा देती है, विशेषकर मुंबई और बैंगलोर जैसे बहु-सांस्कृतिक शहरों में।
- यह शिक्षा और जागरूकता का माध्यम बनती है, जैसे-जल संकट या प्रदूषण पर आधारित पर्यावरणीय कला।

प्रमुख उदाहरण :

दिल्ली का खोज इंटरनेशनल प्रोजेक्ट, शहर की झुग्गियों में स्टार्ट इंडिया फाउंडेशन और मुंबई का धारावी कला कक्ष सामाजिक मुद्दों पर संवाद और सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करते हैं (गुप्ताए 2020, पृ॰-61)।[23]

सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक एकता में कला की भूमिका :

कला समुदायों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ती है और आपसी सम्मान व सहानुभूति की भावना को विकसित करती है। भारत जैसे बहुलतावादी समाज में यह सामाजिक सौहार्द और समावेशिता को बढ़ावा देती है (जोशी, 2021 पृ॰-44)।[24]

6. सहभागिता कला प्रथाएँ :

सहभागिता कला प्रथाएँ कलाकारों, शिक्षकों और समुदायों के सहयोग पर आधारित होती हैं, जहाँ स्थानीय आवाजों और इतिहास को रचनात्मक अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया जाता है। भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से विविध और सामाजिक रूप से जटिल देश में यह पद्धति उपेक्षित समुदायों को जोड़ने, लोक-परंपराओं को संरक्षित करने और सामाजिक मुद्दों को सामूहिक

रचनात्मकता से व्यक्त करने का प्रभावी माध्यम बन चुकी है (केस्टर, 2004, पृ॰-88)।[25]

- **कलाकार, शिक्षक और समुदाय का सहयोग :** यह प्रक्रिया पारंपरिक कला-निर्माण की औपचारिक संरचनाओं को चुनौती देती है, जिससे समुदाय केवल दर्शक नहीं बल्कि सृजन में भागीदार बनते हैं। हरियाणा में ललित कला विशेषज्ञ ललित शर्मा द्वारा ग्रामीण लोक कथाओं को चित्रकथाओं और प्रदर्शनों के माध्यम से संरक्षित करने के प्रयास कला को शिक्षा और स्थानीय ज्ञान से जोड़ते हैं (मित्रा, 2012, पृ॰-143)।[26] इसी तरह, 'शाम्रुकद्रु' का कला भवन भी ग्रामीण विकास से जुड़ी सामुदायिक कला परियोजनाओं को प्रोत्साहित करता है।

- **स्थानीय इतिहास और कथाओं का समेकन :** जनजातीय कला जैसी विधाओं में पारंपरिक प्रतीकों और कथाओं को समकालीन रूप में पुनर्जीवित किया जाता है। दिल्ली स्ट्रीट आर्ट प्रोजेक्ट में शाहजहाँपुर और हौज खास जैसे इलाकों की स्थानीय कहानियाँ भित्ति चित्रों के जरिए व्यक्त की गईं, जिससे समुदाय की पहचान और भागीदारी को बल मिला (सेन, 2015, पृ॰-97)।[27]

- **स्थल-विशेष और संवादात्मक परियोजनाएँ :** मुंबई की 'फ्लाइओवर आर्ट्स' पहल और केरल में मछुआरों के साथ की गई परियोजनाएँ सामाजिक और पर्यावरणीय सरोकारों को जोड़ती हैं। ये कलात्मक हस्तक्षेप न केवल सार्वजनिक स्थलों को पुनर्जीवित करते हैं बल्कि संवाद और चेतना का माध्यम बनते हैं (रैना, 2018 पृ॰-211)।[28]

- **सामुदायिक संवाद और उपचार :** चेन्नई में 'आर्ट फॉर पीस' जैसी पहलें कला को संवाद, सहानुभूति और सामूहिक उपचार का माध्यम बनाती हैं। कला कार्यशालाओं और सामूहिक प्रदर्शनों के जरिए भाग लेने वाले समुदायों को अभिव्यक्ति और पुनर्निर्माण का अवसर मिलता है। इस प्रकार सहभागिता कला सामाजिक एकजुटता और मानसिक पुनर्जागरण को संभव बनाती है (केस्टर, 2011, पृ॰-132)।[29]

7. द्रश्य कला शिक्षकों की भूमिका :

भारत में कला शिक्षक न केवल संज्ञानात्मक कौशल को विकसित करने में सहायक होते हैं, बल्कि विद्यार्थियों में सामाजिक चेतना और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को भी प्रोत्साहित करते हैं। जाति, लिंग, धर्म और वर्ग जैसे प्रश्नों से प्रभावित भारतीय संदर्भ में, कला शिक्षक सामाजिक परिवर्तन के प्रभावकारी एजेंट बन सकते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के वाहक के रूप में शिक्षक भारतीय कला शिक्षा पारंपरिक भूमिका से आगे बढ़कर संवाद, सहयोग और चिंतन को प्रोत्साहित करते हैं। पर्यावरण, लैंगिक असमानता, सांस्कृतिक पहचान जैसे विषयों पर आधारित कलात्मक गतिविधियाँ विद्यार्थियों में सक्रियता लाती हैं। मिट्टी, लकड़ी, ओरिगामी जैसी लोक कलाओं को पाठ्यक्रम में शामिल कर ग्रामीण-जनजातीय पहचान को मान्यता दी जाती है, जो शहरी दृष्टिकोण को चुनौती देती है (दुबे एवं शर्मा, 2018 पृ॰-112)।[30]

- **समावेशी एवं आलोचनात्मक पाठ्यचर्या का निर्माण :** राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीईआरटी, 2005, पृ॰-56, 2020 पृ॰-74)[31] क्षेत्रीय कला रूपों और सामुदायिक इतिहासों को शिक्षा में जोड़ने पर बल देती है। दलित, आदिवासी और महिला दृष्टिकोण को कला परियोजनाओं जैसे 'शहरी भित्तिचित्रों' में स्थान देना आवश्यक है (नाइक, 2019; पृ॰-88)[32] और पटेल, 2017 पृ॰-56)।[33]

- **विविधता से युक्त कक्षाओं की चुनौतियाँ :**

  कई शिक्षक सामाजिक पूर्वाग्रहों, भाषाई-सांस्कृतिक विविधता और सीमित संसाधनों से जूझते हैं। ऐसे में शिक्षक को पूर्वाग्रह मिटाकर सहानुभूति और संवाद को बढ़ावा देना पड़ता है। ग्रामीण एवं सरकारी विद्यालयों में कला की उपेक्षा से असमानता और गहराती है।

- **व्यक्तित्व विकास और सामाजिक सहभागिता :**

  फील्ड विजिट, कार्यशालाएँ और सामुदायिक भागीदारी जैसे माध्यमों से शिक्षकों को सामाजिक न्याय आधारित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। फ्रिरे (1970 पृ॰-45)[34] और बॉब गूडल (1994 पृ॰-152)[35] के विचारों के आधार पर, शिक्षक को सह-शिक्षार्थी बनकर संवाद और आलोचनात्मकता को बढ़ावा देना चाहिए।

यह भूमिका केवल कला सिखाने तक सीमित न रहकर, समाज में संवेदनशीलता, समावेशिता और परिवर्तन को प्रेरित करने तक विस्तृत हो जाती है।

८. संस्थागत और नीतिगत सहयोग : कला शिक्षा, सामाजिक न्याय और सामुदायिक सहभागिता :

भारत में सामाजिक न्याय और सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए कला शिक्षा की भूमिका संस्थागत ढाँचों और नीतिगत सहयोग पर निर्भर करती है। विद्यालय, संग्रहालय, सांस्कृतिक संस्थान, सरकारी एजेंसियाँ और NGO मिलकर ऐसा वातावरण निर्मित करते हैं जो लोकतांत्रिकता, समावेशिता और सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करता है।

- **विद्यालय, संग्रहालय और सांस्कृतिक संस्थानों की भूमिका :**

  विद्यालय कला शिक्षा का मुख्य केंद्र हैं, जहाँ एनसीईआरटी द्वारा पाठ्यक्रम में कला को शामिल किया गया है। यद्यपि, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की असमानता इसका प्रभाव घटाती है। संग्रहालय जैसे नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट (एनजीएमए) प्रदर्शनी, कार्यशालाओं और शैक्षिक गतिविधियों के माध्यम से समुदाय से जुड़ते हैं। इसी प्रकार, नाट्य मंडलियाँ और थिएटर ग्रुप स्थानीय कलाकारों को दर्शकों और आधुनिक दृष्टिकोणों से जोड़ते हैं (एनसीईआरटी, 2005, पृ॰37)।[36]

- **सरकारी और एनजीओ का योगदान :**

  सांस्कृतिक मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय द्वारा 'कला सांस्कृतिक विकास योजना' जैसी योजनाओं से पारंपरिक और समकालीन कलाओं को प्रोत्साहन मिलता है। वहीं, खोज और सामाजिक परिवर्तन के लिए कला जैसे एनजीओ समुदायों में कला के माध्यम से सामाजिक मुद्दों पर सक्रियता फैलाते हैं। यद्यपि, फंडिंग और संस्थागत चुनौतियों के कारण इन प्रयासों का प्रभाव सीमित रहता है (गुप्ता, 2012, पृ॰-89)।[37]

- **सामाजिक न्याय के पाठ्यक्रम में समावेशन :**

  नई शिक्षा नीति 2020 में समावेशी शिक्षा, सांस्कृतिक विविधता और सक्रिय चिंतन को महत्व दिया गया है। एनसीईआरटी की पुस्तकों में अब लोककला और पारंपरिक कलाओं को शामिल किया जा रहा है, किन्तु जाति, लिंग और पर्यावरण न्याय जैसे विषयों पर सामग्री और शिक्षकों का प्रशिक्षण अभी अपर्याप्त है (नई शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, पृ॰-45)।[38]

९. चुनौतियाँ और सीमाएँ :

भारत में कला शिक्षा को सामाजिक न्याय और सामुदायिक सहभागिता से जोड़ने की बड़ी संभावनाएँ हैं, किन्तु इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ सामने आती हैं। विद्यालयों में सामाजिक, जातिगत और लैंगिक विविधताओं को कला के माध्यम से उठाना अक्सर विवादास्पद माना जाता है। परीक्षा-केंद्रित शिक्षा व्यवस्था

और अभिभावकों की अपेक्षाओं के कारण कला केवल सहायक विषय तक सीमित रह जाती है (कुमार, 2019; शर्मा, और मेहता, के॰ 2020, पृ॰-42)।[39]

ग्रामीण और सरकारी विद्यालयों में संसाधनों, प्रशिक्षित शिक्षकों और उचित स्थान की कमी प्रमुख बाधाएँ हैं, जबकि निजी विद्यालयों में अपेक्षाकृत सुविधाएँ बेहतर हैं (एनसीईआरटी, 2020, पृ॰-37)।[40] जाति और लिंग आधारित भेदभाव वंचित समुदायों के विद्यार्थियों की भागीदारी सीमित करते हैं (नटराजन, 2016, पृ॰-65)।[41]

सांस्कृतिक विविधता और स्थानीय दृष्टिकोणों की अनदेखी से सामाजिक विरोध और सांस्कृतिक विखंडन की आशंका भी रहती है (रिजवी, 2020, पृ॰-78)।[42] साथ ही, कला शिक्षा के सामाजिक प्रभाव जैसे समावेशिता और सक्रियता को मापना कठिन होता है (पटेल, 2019, पृ॰-91)।[43]

10. भविष्य की दिशाएँल कला शिक्षा और सामाजिक न्याय :

जैसे-जैसे भारतीय समाज राजनीतिक, सामाजिक और तकनीकी रूप से विकसित हो रहा है, कला शिक्षा को सामाजिक न्याय की दिशा में नए अवसरों और चुनौतियों के अनुरूप ढलना होगा। इसके चार प्रमुख आयाम उभरते हैं।

- **डिजिटल कला और सोशल मीडिया :**

  आधुनिक समय में कलाकार और शिक्षक सोशल मीडिया जैसे इंस्टाग्राम, यूट्यूब और ट्विटर का प्रयोग सामाजिक प्रश्नों को उठाने में कर रहे हैं। आर्टिविस्ट इंडिया और दलित कला संग्रह जैसे प्लेटफॉर्म नई आवाजों को मंच प्रदान करते हैं (रिजवी, 2020, पृ॰-112)।[44]

- **वैश्विक दृष्टिकोण और सहयोग :**

  यूनेस्को और संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाएँ कला को समावेशी समाज निर्माण का साधन मानती हैं। भारतीय विश्वविद्यालय अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के साथ मिलकर सांस्कृतिक विविधता, पहचान और मानवाधिकार पर शोध व अनुदान कार्यक्रम चला रहे हैं (एनसीईआरटी, 2020, पृ॰-56)।[45]

- **अंतर्विषयी दृष्टिकोण और नवाचार :**

  कला को पर्यावरण विज्ञान, मीडिया अध्ययन और मनोविज्ञान से जोड़कर छात्रों को सामाजिक प्रश्नों पर सृजनात्मक सोच विकसित करने के अवसर दिए जा रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी अंतर्विषयी शिक्षा पर बल देती है (शर्मा, और मेहता, के, 2020, पृ॰-74)।[46]

11. निष्कर्ष :

भारत में कला शिक्षा सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने, सहानुभूति विकसित करने और वंचित समुदायों को सशक्त बनाने का सशक्त माध्यम है। पारंपरिक भित्तिचित्रों से लेकर डिजिटल सक्रियता तक, कला असमानताओं को चुनौती देने और परिवर्तन लाने की भाषा बनती है। इस शोध में आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, सामुदायिक कला और अंतर्विषयीय नवाचारों पर चर्चा हुई है। भारत की जाति, लिंग और वर्गगत विषमताओं को देखते हुए पाठ्यक्रम, नीतियों और व्यवहार में सामाजिक रूप से संलग्न कला का समावेश आवश्यक है। समावेशी, भागीदारीपूर्ण और सांस्कृतिक रूप से आधारित दृष्टिकोणों को अपनाते हुए शिक्षकों, कलाकारों, नीति-निर्माताओं और एनजीओ के सामूहिक प्रयास से ही न्याय और सामूहिक उपचार की दिशा में सार्थक प्रगति संभव है।

समाप्ति नोट :

1. सक्सेना, एस॰ (2010), भारतीय कला शिक्षा का इतिहास, प्रयाग पब्लिकेशन।
2. गांधी, एम॰ के॰ (1953), बेसिक एजुकेशन, नवजीवन प्रकाशन।
3. ठाकुर, र॰ (2005), साधना (मूल प्रकाशन 1937), विश्व भारती।

4. विवेकानंद, स्वामी, (1963), द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानंद (खंड-3), अद्वैत आश्रम।

5. रीड, ह॰ (2005), एजुकेशन : आर्ट (मूल प्रकाशन 1943), लंदन : फैबर एंड फैबर।

6. सेन, अमर्त्य, (2009), द आइडिया ऑफ जस्टिस, पेंगुइन बुक्स।

7. शर्मा, एस॰ (2018), सामुदायिक कला और शिक्षा, मोतीलाल बनारसीदास।

8. कुमार, पी॰ (2022), कला और युवा आंदोलन, राजकमल प्रकाशन।

9. जोशी, आर॰ (2021), आधुनिक भारत में कला शिक्षा, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।

10. गुप्ता, एस॰ (2023), डिजिटल कला और सामाजिक न्याय, वाणी प्रकाशन।

11. फ्रेरे, पाउलो, (2005), पीड़ितों की शिक्षा (मूल प्रकाशन 1970), अनुवाद : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

12. शर्मा, शंकरदयाल, (1992), भारतीय शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक प्रकाशन।

13. हुक्स, बेल, (1994), टीचिंग टू ट्रांस्ग्रेस : एजुकेशन ऐज द प्रैक्टिस ऑफ फ्रीडम, न्यूयॉर्क : रूटलेज।

14. कश्यप, डी॰ (2015), भारतीय लोककला और शिक्षा, वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ।

15. जोशी, आर, (2020), भारतीय आधुनिक कला और शिक्षा, दिल्ली : प्रयाग प्रकाशन।

16. फ्रेरे, पाउलो, (2005), पीड़ितों की शिक्षा (मूल प्रकाशन 1970), अनुवाद : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

17. हुक्स, बेल, (1994), टीचिंग टू ट्रांस्ग्रेस : एजुकेशन ऐज द प्रैक्टिस ऑफ फ्रीडम, न्यूयॉर्क : रूटलेज।

18. जोशी, आर, (2020), भारतीय आधुनिक कला और शिक्षा, दिल्लीरू प्रयाग प्रकाशन।

19. कश्यप, डी॰ (2015), भारतीय लोककला और शिक्षा, वाराणसीरू भारतीय ज्ञानपीठ।

20. सेन, ए॰ (2012), संस्कृति और विकास। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।

21. केस्टर, जी॰ (2004), वार्तालाप कृतियाँ : आधुनिक कला में समुदाय और संचार। बर्कले : कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस।

22. शर्मा, एस॰ (2018), आदिवासी कला और महिला सशक्तिकरण। वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ।

23. गुप्ता, आर॰ (2020), भारत में सामुदायिक कला प्रथाएँ। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।

24. जोशी, ए॰ (2021), कला, संस्कृति और सामाजिक समरसता। दिल्ली : राजकमल प्रकाशन

25. केस्टर, जी॰ एच॰ (2004), वार्तालाप कृतियाँरू आधुनिक कला में समुदाय और संचार। बर्कले : कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस।

26. मित्रा, एस, (2012), भारत में सामुदायिक कला पद्धतियाँ। नई दिल्ली : रूटलेज इंडिया।

27. सेन, आर॰ (2015), समकालीन भारत में स्ट्रीट आर्ट। नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।

28. रैना, ए॰ (2018), सार्वजनिक कला और शहरी परिवर्तन। मुंबई : तूलिका बुक्स।

29. केस्टर, जी॰ एच॰ (2011), एक और अनेक : वैश्विक संदर्भ में समकालीन सहयोगात्मक कला। डरहम : ड्यूक विश्वविद्यालय प्रेस।

30. दुबे, एम॰ एवं शर्मा, ए॰ (2018), भारतीय शिक्षा में सामाजिक न्याय और कला शिक्षा, नई दिल्ली : रावत प्रकाशन।

31. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT), (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, नई दिल्ली।

32. नाइक, आर॰ (2019), शहरी कला और सामाजिक परिवर्तन, मुंबई : लोकभारती प्रकाशन।

33. पटेल, एस॰ (2017), दलित और आदिवासी कला दृष्टिकोण, अहमदाबाद : भारतीय सामाजिक विज्ञान प्रकाशन।

34. फ्रिरे, पाउलो, (1970), Pedagogy of the Oppressed. न्यूयॉक : हेरडर एंड हेरडर।

35. गूडल, बॉब, (1994), Community Art and Education. लंदन : रूटलेज।

36. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी), (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली : एनसीईआरटी।

37. गुप्ता, आर॰ (2012), भारत में सामाजिक परिवर्तन के लिए कला, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस।

38. शिक्षा मंत्रालय, (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली : भारत सरकार।

39. कुमार, आर॰ (2019), कला शिक्षा और समाज, दिल्ली : आकार बुक्स।

40. एनसीईआरटी (2020), कला शिक्षा पर स्थिति पत्र, नई दिल्ली : एनसीईआरटी।

41. नटराजन, एस॰ (2016), भारत में जाति और शिक्षा, चेन्नई : ओरिएंट ब्लैकस्वान।

42. रिजवी, ए॰ (2020), शिक्षा की सांस्कृतिक राजनीति, जयपुर : रावत प्रकाशन।

43. पटेल, एम॰ (2019), कला शिक्षा के प्रभाव का मापन, मुंबई : हिमालय प्रकाशन।

44. रजवी, ए, (2020), शिक्षा की सांस्कृतिक राजनीति, जयपुर : रावत प्रकाशन।

45. एनसीईआरटी, (2020), कला शिक्षा पर स्थिति पत्र, नई दिल्ली : एनसीईआरटी।

46. शर्मा, पी॰ और मेहता, के॰ (2020), कला शिक्षण-शास्त्र में चुनौतियाँ, नई दिल्ली : सेज प्रकाशन।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भाटिया, एन॰ (2019), भारत में कला शिक्षा : चुनौतियाँ और संभावनाएँ, जर्नल ऑफ आट्र्स एंड एजुकेशन।

2. चटर्जी, एस॰ (2017), भारतीय झुग्गियों में शहरी सामुदायिक कला और सामाजिक समावेशन, जर्नल ऑफ सोशल आट्र्स।

3. चौहान, आर॰ (2019), दिल्ली में सामुदायिक भित्ति चित्रकलाल शहरी इतिहास के साथ संवाद, जर्नल ऑफ विजुअल कल्चर।

4. ड्यूहर्स्ट, एम॰ (2014), सोशल जस्टिस आर्टल एक्टिविस्ट आर्ट पैडागॉजी के लिए एक रूपरेखा, हार्वर्ड एजुकेशन प्रेस।

5. आइजनर, ई॰ (2002), द आट्र्स एंड द क्रिएशन ऑफ माइंड, येल यूनिवर्सिटी प्रेस।

6. फ्रेरे, पी॰ (1970), पीडागॉजी ऑफ द ओप्रेस्ड, हेरडर एंड हेरडर।

7. गे, जी॰ (2000), संस्कृति-संवेदी शिक्षणल सिद्धांत, शोध और व्यवहार, टीचर्स कॉलेज प्रेस।

8. भारत सरकार, (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय।

9. हुक्स, ब॰ (1994), टीचिंग टू ट्रांसग्रेसल एजुकेशन ऐज द प्रैक्टिस ऑफ फ्रीडम, रूटलेज।

10. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, (2021), कला संस्कृति विकास योजना।

11. कुमार, ए॰ - बनर्जी, आर॰ (2021), डिजिटल युग में आर्टिविज्मल इंस्टाग्राम पर भारतीय कलाकार, जर्नल ऑफ डिजिटल कल्चर।

12. कुमार, के॰ (2005), औपनिवेशिक भारत में शिक्षा की राजनीति, रूटलेज इंडिया।

13. कुमार, आर॰ (2019), भारतीय विद्यालयों में कला शिक्षा की राजनीति, समकालीन शिक्षा समीक्षा।

14. कुमार, आर॰ - शर्मा, पी॰ (2018), वारली कला का पुनरुत्थानल सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से सशक्तिकरण, इंडियन जर्नल ऑफ कल्चरल स्टडीज।

15. कुमार, एस॰ (2017), झारखंड में जनजातीय कथाएँ और सामुदायिक कला, इंडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क।

16. मुखर्जी, एस॰ (2018), भारत में संग्रहालय और सामाजिक सहभागिता, जर्नल ऑफ कल्चरल हेरिटेज।

17. नाइक, ए॰ (2019), बैंगलोर की भित्ति चित्रकलाल सार्वजनिक स्थलों में सामुदायिक कथाएँ, आर्ट एंड सोसाइटी।

18. नटराजन, एम॰ (2016), समकालीन भारत में कला और सामाजिक एकता, कल्चरल डायनेमिक्स।

19. नटराजन, एम॰ (2016), जाति और सृजनशीलताल समावेशी कला शिक्षा में चुनौतियाँ, इंडियन जर्नल ऑफ आट्र्स एजुकेशन।

20. एनसीईआरटी, (2020), कला शिक्षा पर स्थिति पत्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
21. एनसीईआरटी, (2020), माध्यमिक विद्यालयों के लिए दृश्य कला पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
22. पटेल, ए॰ (2019), भारत में सामुदायिक कला और सामाजिक परिवर्तन, सोशल आर्ट्स रिव्यू।
23. पटेल, ए॰ (2019), सामुदायिक कला के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का मूल्यांकन, आर्ट्स एंड सोसाइटी जर्नल।
24. पटेल, ए॰ (2019), सतत कला प्रथाएँ और सामुदायिक परिवर्तन, इंडियन आर्ट्स रिव्यू।
25. रैना, एन॰ (2018), शांति के लिए कलाल कश्मीरी युवाओं को दृश्य कलाओं से जोड़ना, पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट स्टडीज।
26. राव, एम॰ (2017), लोककला और सांस्कृतिक स्थिरता, इंडियन जर्नल ऑफ कल्चरल स्टडीज।
27. रेड्डी, के॰ (2020), भारत में सामुदायिक कला हस्तक्षेपों में नैतिक चिंताएँ, कल्चरल प्रैक्टिस क्वार्टरली।
28. रेड्डी, के॰ (2020), जमीनी कला पहलों के लिए वित्तीय चुनौतियाँ, आर्ट मैनेजमेंट क्वार्टरली।
29. रेड्डी, एम॰ (2022), भारतीय कला शिक्षा में वैश्विक नेटवर्क और स्थानीय आवाजें, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट एजुकेशन।
30. शर्मा, आर॰ - मेहता, डी॰ (2020), परीक्षा-केंद्रित शिक्षा और भारतीय विद्यालयों में कला का हाशियाकरण, एजुकेशन एंड सोसाइटी।
31. शर्मा, एस॰ - जोशी, एन॰ (2020), भारत में शिक्षा और सक्रियता के लिए पर्यावरण कला एक उपकरण के रूप में, जर्नल ऑफ आर्ट्स एंड सस्टेनेबिलिटी।
32. शर्मा, वी॰ - सिंह, आर॰ (2022), भारतीय कला शिक्षा में आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट एजुकेशन।
33. टैगोर, र॰ (1930), मनुषेर धर्म मनुष्य का धर्म,, विश्व-भारती।
34. यूनेस्को, (2010), आर्ट्स एजुकेशन के लिए रोड मैप, विश्व कला शिक्षा सम्मेलन।

Songs of Separation : A Study of Biraha as a Folk Song Genre

Ms. Shubhangi Srivastava
Research Scholar
Department of English
University School of Humanities & Social Sciences
Guru Gobind Singh Indraprastha University,
New Delhi

Abstract :

This paper analyzes Anguri Mein Das Le Biya Naginiya, a Biraha folk song by Mahendra Misr, exploring its representation of female longing and separation caused by male migration in Bihar. Bihar's perpetual socio-economic instability has driven men to migrate, leaving behind fractured families and women who bear the emotional burden of absence. Biraha songs serve as an oral archive expressing these experiences, particularly through women's voices that reveal suppressed desires and social constraints. Misr's song uses the metaphor of the naagin (snake bite) to symbolize the wife's repressed sexual anguish, communicated through coded language to navigate patriarchal taboos on female sexuality. Biraha songs have historically functioned as both personal lament and collective memory, preserving histories of displacement and colonial labor migration. The folk form critiques gendered power relations, revealing how female sexuality and autonomy are controlled and silenced. Through metaphor, voice, and performance, Anguri Mein Das Le Biya Naginiya exemplifies the active role of folk traditions in documenting social realities and transmitting cultural identity across generations. This study contributes to understanding the intersections of migration, gender, and folklore in Bhojpuri cultural expression.

Keywords :

Migration, Biraha, Sexuality, Mahender Misr, Folk songs.

The history of migration in Bihar has spanned centuries and continues to this day. Perpetual socio-economic collapse within the state has time and again warranted the migration of people from their home-towns to adjacent states (such as Kolkata), and even foreign countries like Mauritius, Trinidad, Tobago, Fiji, and Guyana, in the form of indentured labourers. In addition to the pervasive presence of illiteracy, gruesome poverty, seasonal and unsatis-factory employment and the oppressive

caste system in India, particularly in Bihar and eastern Uttar Pradesh; the migration was influenced by a number of other factors, including "British revenue policies, the collapse of local handicraft industries, and disasters like floods, droughts, and famines" (Boodho, 2021, p. 21).

The folk cultural expression of Bidesia, thus emerged as an emotional and political outlet to express the growing anxieties, frustrations and loss of the folk due to migration. As a word, Bidesia can be translated to 'foreigner'. When put within the context of the folk idiom, Bidesia can mean a 'migrant' who has lost their roots and connection to their hometown and family. Such a negative connotation to Bidesia is also rooted in the historical accounts of men leaving behind their wives, children, and families to look for work in other places, but often settling in 'Bides' with new families, and never returning. This often led to the permanent separation of families, friends, and kin. Bidesia, as a folk form, includes folk theatre, folk songs, folk dances, and folk art. Some renowned Bidesia folk song genres include Purbi, Biraha, Jatsaari, Vilaap Geet, and Sanskaar Geet. This paper will particularly study the folk song genre of Biraha, and textually analyse a popular song in the tradition, written by Mahender Misr, titled, *Anguri Mein Das Le Biya Naginiya*.

The essence of Biraha, according to Hiralal Yadav, is to "sing out the cry of separation: the separation that the cowherdesses experienced when they were separated from Lord Krishna; the agony Sita experienced when she was separated from Ram" (Narayan, 2018, p. 136). The central theme of the majority of Biraha songs is separation, with migration frequently serving as the narrative and emotional backdrop. These songs often explore the marital dislocation brought about by male migration, expressing the unsaid desires and grief of women who are left behind, including the sexual disappointments and anxieties that are caused by this marital separation. Therefore, Bhojpuri folk songs that discuss sexuality have a legitimate context in the migration of men. The protagonist is mostly "a lamenting woman whose husband has migrated leaving her behind in the village" (Singh, 2015, p. 171). This left-behind woman expresses her longings through songs. Some known forms of biraha songs include, alha, kaubali, kajari, sohar, purbi, chhaparhiya, gorau geet, kaharwa, dhobiyukt geet, chaulriya, nayakwa, belwariya, khemta, nirgun, birhini, jhoomar, lachari, piriya geet, dadra and jantsar. Biraha songs are usually performed with the nine rasas: *shringar*, *hasya*, *karun*, *veer*, *raudras*, *bhayanak*, *vibhats*, *adbhut* and *shantras*. In addition to preserving history, the collective consciousness expressed through these folk songs helps keep it alive in the collective memory of folk. This is achieved through various forms of folklore, such as folk tales, music, myths, rituals, literature, and other traditions that are created and passed down over time. Historian Kerwin Lee Klein once said, "If history is objective in the coldest, hardest sense of the word, memory is subjective in the warmest, most inviting senses of that word" (Klein, 2000, p. 130).

Written in the late 1800s, Mahendra Misr's *Anguri Mein Das Le Biya Naginiya* is regarded as one of the most renowned

works in the Biraha song tradition. Mahender Misr (1886–1946), popularly known as the 'Purbiya Samrat', i.e. the King of Purbi, was a prominent Bhojpuri poet and folk artist from Mishrawalia village in Bihar. Similar to Biraha, Purbi is also a folk song genre that discusses the themes of separation, majorly due to migration. Renowned for his mastery of the Purbi genre, he composed songs in several folk song genres, that aimed at reflecting rural life, devotion, romance, and themes of social injustices. His major literary works include *Apurva Ramayan*, *Mahendra Manjari*, *Mahendra Diwakar* and *Krishna Gitawali*. A polyglot, he was fluent in Bhojpuri, Sanskrit, Hindi, Urdu, Persian, Bangla, Awadhi, and Braj, and skilled in instruments like the harmonium, tabla, sitar, and flute. Misr was also involved in India's independence movement, secretly printing counterfeit currency to support revolutionaries, for which he was arrested and jailed. Portions of *Apurva Ramayan* were written during his imprisonment. His songs remain influential in Bhojpuri literature and folk traditions, blending lyrical prolificacy with deep cultural resonance.

Anguri Mein Das Le Biya Naginiya is one of Misr's masterpieces. It has been written and performed from the perspective of a newly married woman, evokingly conveying her emotional turmoil and longing for her husband who has migrated to someplace else. The song uses rich, poetic imagery to explore the woman's repressed desires and anguish without resorting to overtly sexual language. "Sexuality is a motif which cuts across all traditions of folk songs," Singh says. The most common motif in which a woman laments her helplessness in the male genres is her sexual desires, which are sung in the first-person feminine. (Singh, 2015, p. 175)

The opening stanza of the song introduces the symbol of the *'naagin'*:

> *A naagin has bitten my finger, o sister-in-law*
>
> *Please turn on the lights*
>
> *I feel angst perforating through all my pores, o sister-in-law*
>
> *Please call your brother* (Mishra, n.d.)

The wife's repressed sexual urges are symbolised by the snake, aka *naagin*. These urges are described as intrusive and uncontrollable, like snake bite poison. The allusion to her sister-in-law draws attention to the wife's situation: the younger and more naive sister-in-law serves as a safe confidante in a patriarchal home where easy conversations about female sexuality are treated as taboo. This dynamic emphasises how the wife is unable to comfortably express her feelings to other family members due to the social conventions that bind her. Her request to "turn on the lights" is a reflection of her desire, as well as her attempt to avoid the stigma attached to her desires. Patriarchal views on female sexuality are also reflected in the song. According to Jassal, women's sexual autonomy is frequently viewed as "potentially disruptive to the social order" (Jassal, 2012, p. 205), which calls for its control or suppression. This is highlighted by the wife's subdued language, which shows how she balances expressing her feelings while also adhering to social norms. She reinforces the previously discussed argument by using her silent longing for her absent husband as a socially acceptable

framework to express her desires. It also symbolises how the female body has been targeted as "a metaphor for nation and community. Women's bodies not only represent honour, but it is the symbolic marker of the boundary between 'us' and 'them'" (Gopal & Sabala, 2010), where 'us', particularly in the context of Biraha can refer to the family that is left behind, while 'them' refers to the men who would lust after abandoned wives once their husbands have migrated. Moreover, control over the 'access' that women should ideally have of themselves, is the very "keystone of the [traditional kinship] system.... controlling women thus means controlling the reproduction of the production unit" (Katrak, 2006, p. 199).

The next stanza further portrays her anguish :

I went to the east, I went to the west

But I couldn't find any antidote for this poison, o sister-in-law

Please turn on the lights

A naagin has bitten my finger, o sister-in-law

Please call your brother (Mishra, n.d.)

Here, the woman's desperation intensifies. Her quest for an "antidote" might allude to her attempts to find comfort or fulfilment in other men's company when her husband is not around. But these efforts are in vain because she only finds true fulfillment in her husband. The word "poison" is used to emphasise the damaging effects of her unmet desires, which slowly consume her. Her constant cries for her husband to return represent her frustration and hopelessness. The "supremacy and legitimacy of a husband's sexual rights and his ownership over his wife's body" (Singh, 2015, p. 176) are frequently emphasised in Biraha songs, as Singh notes. The portrayal of the wife as reliant on her husband to alleviate her suffering serves to further solidify this dynamic.

The final stanza reveals the extent of her emotional and physical distress :

My body pines and pants, just like a fish without water

This bed seems like a bed of thorns to me, o sister-in-law

Please turn on the lights

A naagin has bitten my finger, o sister-in-law

Please call your brother (Mishra, n.d.)

The wife's sense of suffocation and restlessness in her husband's absence is portrayed through the metaphor of a fish out of water. In his absence, the bed, typically a symbol of marital intimacy, becomes a place of suffering, and is thus referred to as a "bed of thorns". The pain of unmet desire is perfectly conveyed by this imagery. She reiterates her request to her sister-in-law as the song comes to a close, highlighting the intensity of her desire and the desperate plea that suggests that only her husband can ease her pain.

Conclusion :

The textual analysis of *Anguri Mein Das Le Biya Naginiya* demonstrates how Bhojpuri folk songs can function as intensely personal yet universally relevant manifestations of social constraint, desire, and separation. The emotional toll that migration takes on both those who leave and, perhaps more importantly, those who remain, is captured in the Biraha genre.

The song's female voice serves as a medium for expressing longing, suppressed sexuality, and the psychological effects of being abandoned in a patriarchal culture. The song gently criticises the emotional costs of gendered silence and the denial of female autonomy through rich symbolism. In addition, this folk expression serves as a living memory archive, connecting individual suffering to a broader history of colonial labour exploitation, displacement, and shattered familial bonds. Such songs continue to be essential to comprehending how the rural imagination navigates trauma and resilience by capturing the intersection of gender, migration and cultural identity. Through performance, metaphor, and voice, they actively contribute to the transmission of history in addition to preserving it.

References :

1. Boodhoo, S. (2023). *Geet Gawai: Bhojpuri folk songs in Mauritius*. Prabhat Prakashan.
2. Gopal, M., & Sabala. (2010). Body, gender and sexuality: Politics of being and belonging. *ResearchGate*. https://www.researchgate.net/publication/Body_Gender_and_Sexuality_Politics_of_Being_and_Belonging
3. Jassal, S. T. (2012). *Unearthing gender: Folksongs of North India*. Duke University Press.
4. Katrak, K. H. (2006). *Politics of the female body: Postcolonial women writers of the Third World*. Rutgers University Press.
5. Klein, K. L. (2000). On the emergence of memory in historical discourse. *Representations, 69*, 127–150. https://doi.org/10.2307/2902903
6. Mishra, M. (n.d.). अंगुरी में ड़ंसले बिया नगीनियाँ मोर बलटुआँ हो [Poem]. Kavita Kosh. https:/kavitakosh.org/kk/अंगुरी_में_ड़ंसले_बिया_नगीनियाँ_मोर_बलटुआँ_हो_/_महेंद्र_मिश्र
Note: Translation by author.
7. Narayan, B. (2020). *Culture and emotional economy of migration* (2nd ed.). Routledge.
8. Singh, A. (2015). Of women, by men: Understanding the "first person feminine" in Bhojpuri folksongs. *Sociological Bulletin, 64* (2), 171–196. http://www.jstor.org/stable/26290777

वर्ली लोक चित्रकला की उन्नति व सफलताएँ

शुभ्रा बरनवाल
शोधार्थी
चित्रकला विभाग
श्रीमती बी॰ डी॰ जैन गर्ल्स पी॰ जी॰
कॉलेज, आगरा, उत्तर प्रदेश
डॉ॰ भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश

डॉ॰ नीलम कान्त
एसोसिएट प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष
चित्रकला विभाग
श्रीमती बी॰ डी॰ जैन गर्ल्स पी॰ जी॰
कॉलेज, आगरा, उत्तर प्रदेश
डॉ॰ भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश

सारांश :

वर्ली लोक कला भारत के महाराष्ट्र राज्य की वर्ली जनजाति से उत्पन्न एक कला है जिसने राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की हैं। वर्ली को विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त है। प्रारम्भ में वर्ली जनजाति के लोगो की जीविका शिकार थी। वर्ली लोक कला प्रकृति को महत्व देने वाली कला है जिसे परम्परागत रूप से केवल महिलाओं को ही चित्र बनाने का अधिकार था। समय के साथ वर्तमान समय में पुरूष भी इस कला में अपना योगदान दे रहे हैं। परम्परागत रूप में वर्ली चित्रों के विषय अनुष्ठानिक व औपचारिक प्रयोजन थे परन्तु वर्तमान समय में शहरीकरण व पर्यावरण जागरूकता जैसे विषय वर्ली चित्रों में बन रहे हैं। प्रारम्भ में वर्ली चित्रण के लिए गोबर, चावल के आटे के घोल का प्रयोग किया जाता था परन्तु वर्तमान समय में ये माध्यम कागज, कैनवास साथ ही डिजिटल मीडिया के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। समय के साथ वर्ली लोक कला ने अन्य कलाओं के समान ही प्रगति की है जिसमें वर्ली कलाकारों व वर्ली लोक कला को सहयोग देने वाले संगठनों ने अपना प्रमुख योगदान दिया है अर्थात इस लघु शोध के माध्यम से वर्ली लोक कला की प्रगति व उसकी मुख्य सफलताओं पर अध्ययन किया जायेगा।

विशेष शब्द :

वर्ली लोक कला, जनजाति कला, डिजिटल मीडिया, जिव्या सोमा म्हशे, राजेश चैत्य वनघड।

प्रस्तावना :

कला कलाकार के जीवन और उससे जुड़ी हर चीज जैसे धर्म, रीति-रिवाज, आजीविका, परिवार व रिश्ते, मृत्यु के साथ सम्बन्ध को दर्शाती है। मात्र इसी संदर्भ में वर्ली चित्रों के वास्तविक सार को समझा जा सकता है। वर्ली चित्र का नाम महाराष्ट्र की वर्ली जनजाति से लिया गया है। गुजरात और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में फैले होने के बावजूद वर्ली मुख्य रूप से महाराष्ट्र के ठाणे जिले के दहानू और तलासेरी तालुका में केन्द्रित है। यह क्षेत्र पश्चिमी घाट के उत्तर की सह्याद्री पहाड़ियों पर स्थित है। वर्ली शब्द 'वरल'

शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ होता है भूमि का टुकड़ा या खेत।[1] वर्ली का प्रकृति के साथ सम्बन्ध सम्मानजनक आदान-प्रदान का है। विभिन्न ऋतुओं में सक्रिय प्रकृति की शक्तियों को उनके देवताओं के देवत्व में प्रदान किया जाता है जिसमें केंद्रित स्थान मातृ देवी को दिया जाता है। यह संबंध वर्ली के सांस्कृतिक जीवन का महत्वपूर्ण बिंदु है और चित्रकला इन शक्तियों का प्रतीकात्मक अभिषेक है।

वर्ली लोक चित्रण की पारम्परिक क्रियाविधि :

वर्ली लोक चित्र झोपड़ी के अंदर बनाए जाते हैं। घरों की दीवारों को पहले मिट्टी तथा गोबर के मिश्रण से लीपा जाता है फिर पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए उसके ऊपर गेरूआ रंग लगाया जाता है। रेखांकन के लिए नुकीली बांस की टहनियों और पतले चावल के घोल का उपयोग किया जाता है। घरों की दीवारों के अभाव में बाँस के खम्बों को भी इस शैली में सुन्दर ढंग से चित्रित किया जाता है।[2]

1. वर्ली लोक चित्रकला

वर्ली लोक चित्रण के पारम्परिक विषय :

वर्ली चित्रकारों द्वारा निर्मित किए गये चित्रों में प्रकृति को विशेष महत्व दिया गया है। परम्परागत रूप से चित्र हमेशा सुवासिनी (विवाहित महिलाएँ जो विधवा नहीं हैं), धनलेरी (विवाहित पुजारिन) उत्सव का माहौल बनाते हुए साथ-साथ गाती हैं। चित्रों के विषय-वस्तु अवसर एवं पूजे जाने वाले देवताओं के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। चित्रों के अलंकरण जटिल सजावटी हैं जो अनुष्ठानों, लोक कथाओं, परम्पराओं व लोगो के मुख्य व्यस्तताओं को दर्शाते हैं जैसे शिकार, बोआई व कटाई, जन्म, विवाह व मृत्यु, पेड़ जो वर्ली की आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं उन चित्रों पर सावधानीपूर्वक ध्यान दिया गया है। पक्षियों, गिलहरियों, बंदरों, साँपों और अन्य जानवरों के भी क्रियाशील रूप को चित्रित किया गया है, जो चित्रों को जीवंतता और गति प्रदान करते हैं। प्रकृति में अन्य तत्व जैसे धाराएँ और चट्टानें भी चित्रित की गई हैं। मानव रूपों का उपयोग अक्सर अमूर्त स्वरूप व ज्यामितीय आकृतियों को प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। शैलीगत रूप से वर्ली चित्र मध्य भारत में शैल चित्र के नवपाषाण चरण के साथ संबंध का सुझाव देते हैं।

वर्ली लोक चित्रकला अपने त्रिकोणीय आकार के लिए प्रसिद्ध है जो भारतीय प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों के समान प्रतीत होती है

2. मध्य पाषाण कालीन प्रागैतिहासिक गुफा चित्र

3. प्रागैतिहासिक शैल चित्रों के सामान वर्ली लोक चित्र (लोक उत्सव)

प्रकृति को एक सर्वव्यापी माँ के रूप में देखा गया है, जिसने अपने गर्भ में जीवन और मृत्यु को बनाए रखा। दार्शनिक रूप से वर्ली के लिए चित्रकला की प्रक्रिया अंतिम चित्र से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि पूजा के बाद चित्र को मिटा दिया जाता है या फीका पड़ने दिया जाता है, जो संभवतः जीवन के सभी पहलुओं की क्षणभंगुरता का संकेत देता है। उनमें से अधिकांश प्रकृति में उर्वरता और उत्पादकता पर जोर देते हैं। पूजा के हर अवसर पर चित्र करने का कार्य जीवंत और चंचल जीवन से समृद्ध आंतरिक 'गर्भ स्थान' में बार-बार शरण लेने पर जोर देता है जो प्रजनन के बराबर है।

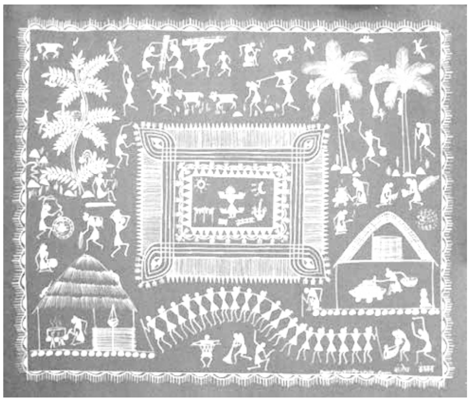

4. पारम्परिक वर्ली लोक चित्रकला

वर्ली लोक कला के सभी चित्रों में से विवाह के अवसर पर बनाए गए चित्र वर्ली के पूरे अस्तित्व को समाहित करते हैं। यह चित्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा इन चित्रों की अनुपस्थिति में विवाह नहीं हो सकता। इन चित्रों को चौक कहा जाता है, जो विस्तृत संकेद्रिक स्वरूप के साथ बड़े अलंकृत चौकों के चारों अलंकरण किए गए है। वनस्पतियों और जीवों के अलावा, दूल्हे की बारात को अक्सर एक कोने में दर्शाया जाता है। चौक में सभी तत्व प्रतीकात्मकता से भरे होते हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण है उर्वरता की देवी जिसे चौक के बीच में प्रमुखता से चित्रित किया गया है।

विकास :

विद्यालय शिक्षा के स्थान पर वर्ली जनजाति के लोग विरासत में प्राप्त लोक कला में पारंगत होते हैं। सन् 1966 में आरम की हो एक अमेरिकावासी कलाप्रेमी सेविका डॉ॰ हेमलता ने यहाँ के प्रवास के दौरान पारम्परिक मित्र चित्रण कला में बच्चों की रूचि देखी तो उन्हें प्रोत्साहन देने तथा उनकी लोक कला जैसी कला को व्यापक मंच प्रदान करने के लिए तान्सा घाटी में आर्ट एवं क्राफ्ट स्कूल की स्थापना की जो आश्रम के वर्तमान गुरू स्वामी चिद्विलास नंद (गंरूमाई) के निर्देशन पर प्रसाद चिकित्सा संस्था द्वारा संचालित की जा रही है।[3] इसके पश्चात् कलाकारों को पहचान व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ व सन् 2002 में उद्देश्य भाव से दिल्ली की ऑल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसाइटी में आदिवासी बच्चों के कुछ प्रमुख चित्रों को प्रदर्शित किया गया जिसमें बड़ी संख्या में लोगो ने प्रदर्शनी का अवलोकन किया व कलाकारों को सराहना भी प्राप्त हुई। अनेक चित्रों की बिक्री भी हुई।

वर्ली लोक चित्रकला की सफलताएँ :

वर्ली लोक कला के कलाकार जिन्होने अपनी परम्पराओं व रीतिरिवाजों के अनुसार चित्रण कार्य किया परन्तु समय के साथ इन कलाकारों ने अपनी कला में नए प्रयोग किए, वर्ली कलाकारों की चर्चा करे तो सर्वप्रथम श्री जिव्या सोमा म्हशे का नाम लिया जाता है तथा यही वह प्रथम कलाकार थे जिनके चित्रों से वर्ली लोक कला को पहचान प्राप्त हुई थी। जिव्या सोमा म्हशे ने केवल धार्मिक कार्यो पर चित्र बनाने के अलावा अपने दैनिक जीवन के आधार पर भी चित्र बनाना आरम्भ किया तब सन् 1970 में वारली कला में परिवर्तन आया। इनके इस हुनर को जल्द ही पहचाना गया और सन् 1976 में इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा गया।[4] जिव्या सोमा म्हशे को वर्ली लोक कला में अपना प्रमुख योगदान देने के कारण इन्हे राष्ट्रीय पुरस्कार पद्म श्री से सन् 2011 में सम्मानित किया गया। कलाकार

जिव्या शोमा म्हशे पहले ऐसे वर्ली कलाकार थे जिन्होने वर्ली चित्र को कागज पर बनाया व अपने चित्रों की प्रदर्शनी लगाई। इनसे प्रभावित होकर अन्य कलाकारों ने व्यवसायिक लाभ के लिए वर्ली चित्रों को बनाना प्रारम्भ किया। गणेश महादेव वांगड़ वर्ली कला को अपने व्यवसाय के रूप में प्रयोग किये, आज वर्ली कला के चित्र कपड़ो व कागज पर आधुनिक कलाकारों द्वारा निर्मित की जा रही है। सुमन संथालिया, इन्होने भी वर्ली कला को पुर्नजीवित किया। इन्होने वर्ली कला का प्रशिक्षण लिया व प्रशिक्षण के पश्चात् इस कला में नवीन प्रयोग किये उदाहरण वर्ली शैली के चित्रों को पॉटरी, हैंडमेड पेपर, लकड़ी की सजावटी वस्तुओं और कपड़ो पर उकेरा व इनके द्वारा किया गया यह नवीन प्रयोग पसन्द किया जाने लगा जिससे इनकी कलाकृतियों की मांग होने लगी। इस वजह से वह दिल्ली स्थित कॉटेज इम्पोरियम में नियमित रूप से अपनी कलाकृतियों की सप्लाई करती हैं।[5]

5. वर्ली लोक कला का विज्ञापन में प्रयोग

2010 में 'कोका कोला'कम्पनी द्वारा दिपावली के त्योहार पर एक TV विज्ञापन का निर्माण किया गया जिसमें वर्ली लोक चित्रकला के दृश्यों का प्रयोग किया।

वर्ली चित्रों के संरक्षण के लिए 'आदिवासी युवा सेवा संघ' कार्यरत है और यह संघ दहाणु जनपद, ठाने, महाराष्ट्र में स्थित है। इस संघ ने वर्ली कलाकारों को एक मंच प्रदान किया व इन्हे इनकी कला के माध्यम से ही आजिविका भी प्रदान कराया। इस संघ ने वर्ली लोक चित्रकला को एक प्रमुख स्थान दिलाने व अपनी कला को सुरक्षित रखने के लिए जून 2011 में जी॰ आई॰ टैग प्राप्त कराने के लिए आवेदन किया व इस संघ के प्रयास से वर्ली लोक कला को 31 मार्च 2014 में जी॰ आई॰ टैग की मान्यता प्राप्त हुई।

वर्तमान समय की वर्ली लोक कला :

वर्ली की परम्परागत शैली को विभिन्न माध्यमों में चित्रित किया गया उदाहरण के रूप में पोस्टर, तैल, जल व ऐक्रेलिक रंगों से कागज व कपड़े पर चित्रित करने के अतिरिक्त धातु, प्लास्टर, मिट्टी, सीमेन्ट, थर्माकोल, प्लास्टिक आदि पर भी काम किया गया। वर्तमान समय की वर्ली लोक कला ने प्रगति की है। वर्ली चित्रों का प्रयोग आधुनिक मीडिया में किया जा रहा है। फैशन, वस्त्र, बैग, साड़ी, टी-शर्ट, स्टेशनरी, कार्ड, कॉर्पोरेट ब्रांडिंग, पैकेजिगं (उदाहरण फैब इडिया उत्पाद) में वर्ली चित्रो को बनाया जा रहा है। 3D चित्रण माध्यम से भी वर्ली चित्र बनाये जा रहे हैं।

6. बैग पर वर्ली चित्रण

वर्ली कलाकार राजेश चैत्य वनघड :

राजेश चैत्य वनघड का जन्म 1975 गंजाड, महाराष्ट्र में हुआ था। इन्होने अपनी माँ से ही वर्ली चित्रण की शिक्षा प्राप्त की है। इन्होने प्रारम्भ में वर्ली चित्रण का कार्य भित्ति व कागज पर किया परन्तु इन्होने

समय के साथ नवीन माध्यमों से भी अपनी कला का प्रस्तुतिकरण किया। राजेश ने शिल्प संग्रहालय, दिल्ली, होमी भाभा टाटा मेमोरियल अस्पताल मुम्बई व मुम्बई के अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे के टी-2 टर्मिनल पर उल्लेखनीय भित्ति चित्रों का निर्माण किया है साथ ही जापान, जर्मनी, स्पेन, इंग्लैंड व अन्य देशो में अपने वर्ली चित्रों को प्रदर्शित किया है। इनका कहना है कि हम वर्ली जनजाति के लोग प्रकृति की गोद में रहते हैं जो ये बताता है कि हम हैं कौन व पीढ़ियों से हम अपनी कहानियों को इस कला के माध्यम से कहते आ रहे हैं परन्तु वर्तमान समय में हमारा अस्तित्व ही संकट में है। इन्होने आभासी वास्तविकता (Virtual Reality) के माध्यम से 3D चित्रण के द्वारा अपनी संस्कृति व परम्परा को प्रस्तुत करने का नवीन प्रयास किया। राजेश जी ने इस आधुनिक कला माध्यम से अपनी आदिवासी ग्रामीण संस्कृति को दृष्टिगत करने का प्रयास किया है।

7. समकालीन वर्ली लोक चित्रकला
चित्र विषय : वायु, जल, जमीन
(चित्रकार राजेश चैत्य वनघड)

निष्कर्ष :

इस शोध लेख में वर्ली लोक कला का किस प्रकार विकास हुआ इस विषय पर चर्चा की गई है। यह लोक कला एक जीवन शैली थी जिसे समय के साथ वर्ली कलाकारों ने समाज से परिचित कराया। इस लोक कला ने भारत की अन्य लोक कलाओं के समान ही प्रसिद्धि प्राप्त की है। वर्तमान समय में तो वर्ली लोक कला विश्व से परिचित है तथा सामान्य जन में इसकी अधिक मांग भी है क्योकि यह कला कागज पर चित्रण के साथ-साथ उपयोगी व कलात्मक वस्तुओं पर भी निर्मित हो रही है। वर्ली लोक कला को संग्रहीत किया जा रहा है। वर्ली के प्रारम्भिक स्वरूप से लेकर वर्तमान समय तक इस कला ने अधिक सफलताएँ प्राप्त की हैं अर्थात् वर्ली लोक कला अपने विकासपथ पर चल रही है।

सन्दर्भ सूची :

1. किरण डॉ॰ उषा, कुमार श्री हेमन्त, 2015, वर्ली लोक-कला : भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, भारत की लोक कलाएँ, पृ॰ सं॰-27, रघुनाथ गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, मेरठ, उ॰प्र॰, भारत।
2. यादव रामकिशोर, 2015, महाराष्ट्र की वर्ली लोक चित्रकला और शिल्प, भारत की लोक कलाएँ, पृ॰ सं॰-9, रघुनाथ गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, मेरठ, उ॰ प्र॰, भारत।
3. यादव रामकिशोर, 2015, महाराष्ट्र की वर्ली लोक चित्रकला और शिल्प, भारत की लोक कलाएँ, पृ॰ सं॰-9, रघुनाथ गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, मेरठ, उ॰ प्र॰, भारत।
4. किरण डॉ॰ उषा, कुमार श्री हेमन्त, 2015, वर्ली लोक-कला : भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, भारत की लोक कलाएँ, पृ॰ सं॰-28, रघुनाथ गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, मेरठ, उ॰ प्र॰, भारत।
5. किरण डॉ॰ उषा, कुमार श्री हेमन्त, 2015, वर्ली लोक-कला : भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, भारत की लोक कलाएँ, पृ॰ सं॰-29, रघुनाथ गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, मेरठ, उ॰ प्र॰, भारत।

Pictures Sources :

1. https://www.memeraki.com/blogs/posts/warli-art-tribal-art-of-india
2. https://learnpro.in/mesolithic-rock-paintings-in-india-insights-into-prehistoric-life/
3. https://www.flickr.com/photos/72746018@N00/4489190461/
4. https://www.myindianculture.com/2011/04/indian-folk-art-warli-paintings.html#google_vignette
5. https://oaklores.com/2024/09/05/warli-art-a-journey-from-tradition-to-modernity/
6. https://sumaavi.in/products/handpainted-balloon-tote-bag-warli-art-design-with-mirror-work
7. https://ojasart.com/artists-cpt/rajesh-chaitya-vangad/

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय संगीत शिक्षा

सोनाली केशरी
शोध छात्रा, वाद्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रो॰ संगीता सिंह
शोध-निर्देशिका, वाद्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

शोध सार :

भारतीय संस्कृति एवं कला अत्यंत प्राचीन है, जिसमें संगीत शिक्षा भी अत्यंत समृद्ध रही है। शिक्षा मनुष्य के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना की मनुष्य का सांस लेना। एक शिक्षित मनुष्य ही अपने आत्मिक प्रवृत्तियों का निर्माण व समाज का सृजनकर्ता है। संगीत शिक्षा प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परंपरा रही तत्पश्चात घराने में परिवर्तित हुई और अब संस्थागत शिक्षण पद्धतियों द्वारा हो रही है, जिससे संगीत सीखना सुलभ व आसान हो गई है। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत सभी विषयों के साथ संगीत शिक्षा को भी अनिवार्य कर दिया है, जिससे छात्रों का समग्र रूप से विकास हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में संगीत को मुख्य विषय के रूप में चुना गया, क्योंकि भारत की प्राचीन कला, संस्कृति का संवर्धन व समृद्धि हो सके। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक संगीत शिक्षा में बहुत परिवर्तन हुए। वर्तमान में सभी विद्यालय और विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा को महत्वपूर्ण कर दिया गया है, जिससे संगीत को नई पहचान मिल रही है। संगीत एक मनोरंजन का साधन ही नहीं, अपितु यह मनुष्य के मानसिक व शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मूल शब्द :

संगीत शिक्षा, संस्कृति, कला, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नवाचार।

प्रस्तावना :

शिक्षा एक सोचने, समझने की प्रक्रिया है, जिस पर समान रूप से सभी मनुष्यों का अधिकार है। शिक्षा से ज्ञान और सीखने की क्षमता को विकसित किया जाता है इससे व्यक्ति के विचारों में नैतिकता, सामाजिकता, आत्मनिर्भरता उत्पन्न होती है व समाज में सकारात्मक विचार प्रदान करती है।

सा विद्या या विमुक्तये।।विष्णुपुराण

अर्थात विद्या मोक्ष का साधन है। विद्या द्वारा परिष्कृत और विकसित की गई बुद्धि ही वास्तविक शक्ति है। वर्तमान में शिक्षा मंत्रालय द्वारा शिक्षा पद्धति में विभिन्न परिवर्तन किए गए, जिससे आत्मनिर्भर सशक्त भारत की कल्पना की जा सके इसलिए स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य है, कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता पूर्ण व्यापक रूप से सुधार लाना। जहां एक ओर

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के द्वारा भारत की प्राचीन गौरवमयी संस्कृति कला परंपरा की उन्नति होगी, वही दूसरी ओर 21वीं सदी की वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए भारत के युवाओं को तत्पर करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत के संविधान में वर्णित मनवांछित शिक्षा के अधिकार को भी परिलक्षित करेगी। यह नन्हें बालकों का शारीरिक तथा मानसिक दायित्व को कम करेगी, वही उच्च स्तर पर विद्यार्थियों के अनुसंधानात्मक शिक्षण को बढ़ावा देगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मुख्य लक्ष्य है, कि वह आज के विद्यार्थियों के रचनात्मकता और तार्किक सोच को बढ़ावा दे, उनकी अवधारणात्मक समझ बढ़े, नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य, बहु-भाषिकता, जीवन कौशल, सीखने के लिए सतत मूल्यांकन, तकनीकी पर जोर, भारतीय संस्कृति व परंपरा का संवर्धन, विविधता को बढ़ावा देना, उत्कृष्ट स्तर के शोध को बढ़ावा मिले। वह छात्र को रोजगार के लिए भी सक्षम बनाएं, जिससे छात्र अपने भविष्य का निर्माण कर सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्राचीन कला, संस्कृति व संगीत के संवर्धन तथा संरक्षण के लिए संगीत विषय को सभी छात्रों के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। संगीत विषय एक वैकल्पित विषय था वही वर्तमान में संगीत विषय को मुख्य कर दिया गया है। संगीत सुनने मात्र से ही सोच और कौशल में वृद्धि होती है। संगीत शिक्षा सभी के बौद्धिक विकास को बढ़ाती है एवं सभी अवस्था के विद्यार्थियों के लिए शैक्षणिक स्तर को बढ़ावा देती है। संगीत से तनाव में कमी, किसी भी मानसिक स्थिति में सुधार और सकारात्मक वातावरण प्रदान करता है। कला व संगीत विद्यार्थियों को संस्कृति व प्राचीन परंपरा से जोड़ने का साधन है। संगीत शिक्षा समूह में कार्य करना, सहयोग, समस्या, समाधान और नवाचार जैसे विभिन्न कौशलों का विकास करती है। यह छात्रों को आत्म-संदर्भ और स्व-अध्ययन का महत्व सिखाता है, जिससे उनकी स्वतंत्रता और संवेदनशीलता बढ़ती है। संगीत से मनुष्य के रचनात्मक, भावात्मक मस्तिष्क का विकास होता है। संगीत शिक्षा से छात्र के संज्ञानात्मक क्षेत्र में भी विकास होता है।

वर्तमान में संगीत शिक्षा के मुख्य उद्देश्य है, कि :

1. संगीत द्वारा व्यक्तित्व का विकास करना।
2. संगीत शिक्षा द्वारा मंच प्रदर्शकों का निर्माण करना।
3. संगीत की भिन्न-भिन्न शाखाओं जैसे- शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, गायन, वादन, राग, ताल और संगीत के इतिहास आदि का अध्ययन और समझने का स्तर बढ़े।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार केवल पुस्तकों या ग्रंथों का ज्ञान तथा कक्षाओं में व्याख्यान देने से शिक्षा पूरी नहीं हो सकती। एक उत्कृष्ट शिक्षा के लिए व्यावहारिक, शास्त्र, समूह में चर्चा के साथ ही साथ, बाह्य जगत के गतिविधियों पर आधारित एवं कौशल प्रधान ज्ञान को सीखना अति आवश्यक है। शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत अन्य विषयों के साथ-ही-साथ संगीत विषय को भी जोड़ा है, जिससे सांस्कृतिक प्रगति, भाषा का विकास और सामाजिक सहगमन की अनुभूति हो सके। संगीत शिक्षा को विद्यालयी एवं विश्वविद्यालय स्तर पर भी अनिवार्य किया गया है, जिससे रुचिशील छात्र शिक्षा प्राप्त कर सके। छात्रों को शिक्षा के नए-नए उदाहरण के साथ और तकनीकों के साथ शिक्षा दी जा सके। संगीत के द्वारा सांगीतिक कार्यक्रम का आयोजन हो रहा जिससे छात्र अपने कला के माध्यम से से अपने रचनात्मकता को व्यक्त कर रहे है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत संगीत विषय को इसलिए अनिवार्य किया गया है, क्योंकि संगीत में डोपामाइन और सेरोटोनिन नामक रसायन निकलने का सामर्थ्य है, जिससे मनुष्य में सकारात्मक अनुभव आविर्भूत होते है इन्हीं अनुभवों से विद्यार्थियों में आत्मविश्वास और रचनात्मकता का विकास होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत संगीत के अध्ययन से भारतीय कला और संस्कृति के प्रति चेतना को बढ़ाने और अपने प्राचीन संस्कृति से जोड़ने में मदद करेगी। नई नीति के अनुरूप छात्र किसी भी विषय को स्वतंत्र रूप से चुन सकते है चाहे वह विज्ञान, गणित, इतिहास, हिन्दी या संगीत विषय ही क्यों ना हो। संगीत शिक्षकों की प्रशिक्षण में सुधार करने का प्रयत्न किया जा सके और संगीत शिक्षा को नए स्वरूप के साथ नए तकनीकों द्वारा सिखाया जा सके। संगीत शिक्षा को विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न परंपराओं पर अनुसंधान और दस्तावेजीकरण द्वारा बढ़ावा देना, संगीत शिक्षण को आधुनिक रूप प्रदान करना तथा नवाचार को भी बढ़ावा देना है। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थियों के लिए विभिन्न राष्ट्रीय संभावनाओं को सामने ले आई जिससे छात्रों के सर्वांगीण विकास के साथ अपने जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। छात्र सम्पूर्ण रूप से राष्ट्र के निर्माण में सहायक बनते हुए, वैश्विक स्तर पर अपना सार्थक योगदान प्रदान कर सके।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य यही है कि नई शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों को बहु-विषयी, मातृभाषा पर जोर और समग्र रूप से उनके विकास पर जोर दिया जाए। शिक्षा के क्षेत्र में संगीत का योगदान केवल मनोरंजन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास, उनके रचनात्मकता, मानसिक संतुलन और उनके सांस्कृतिक सजगता को प्रेरित करता रहे। छात्रों को प्राचीन संस्कृति कला व संगीत को केवल याद करने ही नहीं बल्कि समझने और उसमें प्रायोगिक रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। जिस प्रकार युग परिवर्तन हो रहे है, उसी प्रकार संगीत शिक्षा में भी बहुत से नव विस्तार हो रहे है। जो शिक्षा प्राचीन समय में गुरुकुल पद्धति द्वारा होती थी आज वही शिक्षा संस्थागत हो गई है। आधुनिक काल के संगीत के क्षेत्र में कई प्रकार के डिजिटल व तकनीकी उपकरण, एप व ऑनलाइन के माध्यम इत्यादि से संगीत शिक्षा को दिया जा रहा है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. https://www.researchgate.net
2. https://www.education.gov.in
3. https://www.divyahimachal.com
4. https://hindivivek.org

Protest Songs Beyond Boundaries : Transnationalism Through Music

Urmi Samaddar
Research Scholar,
Department of Vocal Music
Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Dr. Sangeeta Pandit
Professor, Department of Vocal Music
Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University,Varanasi

Abstract :

This paper focuses on cultural transnationalism through music with special reference to "protests" as context. It depicts the "protest psyche" of humans to participate in revolution and raise their voices regardless of caste, creed, sex, gender etc. based on their common grounds of grievances, and violent injustices faced by them making it transnational. Music being an integral part of culture and a powerful weapon in the hands of humanity has become an important tool for raising people's voices. This study delves deep into the examples of such compositions that have crossed borders as protest music and have become the roar of the masses against injustice uniting nation-states on humanitarian grounds.

Keywords :

Transnationalism, Cross-Border, Protest Songs, Resistance, Oppression.

Introduction :

The term "Transnationalism" has its roots in the early 20th century when multinational corporations and international organizations started transcending nation-state borders. It gained prominence and was introduced in academic literature in the 1970s by the work of American Political scientists Joseph Nye and Robert Keohane. They defined trans-national relations as contacts, coalitions and interactions across state boundaries that are not controlled by the central foreign policy organs of government' (Hoffmann, 2021, 796-810). Very often the terms Globalization and Transnationalism are used interchangeably but both bear different meanings. While globalization is a more general term that includes the growing integration of economies and cultures worldwide, transnationalism describes the linkages and partnerships that cross national boundaries. Transnationalism has been broadly classified into three types: economic, political and socio-cultural. Socio-cultural transnationalism refers to

the cultural transactions of practices, ideas and values across borders. Music is an integral part of culture acting as a tool for expression. Protest songs have been serving as a powerful tool for expressing defiance and challenging systems since ancient times. Saints and mystic poets in India have been using their writings to speak out against oppression, religious dogma and social injustice long before modern protest songs became international icons of rebellion. Here are a few instances of such examples: Through the spiritually infused vakhs, a 14th-century Kashmiri poet-saint named Lal Ded (Lalleshwari) criticized religious dogma and social conventions, emphasizing unity and the pointlessness of meaningless rituals. Saint Kabir Dasji who lived in Kashi in the late 15th and early 16th centuries, in his couplets strongly condemned caste divisions and religious hypocrisy while promoting a straightforward, inclusive view of God. Raidas (Ravidas), a prominent member of the Bhakti movement and a native of Varanasi, used his poetry to promote equality and justice by challenging social hierarchy and elevating marginalized communities. His impact can still be seen in sacred texts like the Sikh Guru Granth Sahib.

Protest songs have transcended national boundaries, resonating with diverse audiences and movements. This transnational appeal is made in two primary ways: through the preservation of both lyrics and melody across different contexts and through the adaptation of melodies with new localized lyrics. This paper explores how protest songs cross nation-state boundaries, examining their modes of transmission and adaptation highlighting specific examples.

Methodology :

This research employs a qualitative approach, analyzing instances of protest songs that have transcended their original national contexts around the globe. Data is collected from journals, books, academic articles, youtube videos and reputable news sources. The selected songs are examined for their lyrical content, historical background, modes of transmission, and the sociopolitical movements they influenced or were influenced by. The analysis focuses on two categories : songs that maintain both original lyrics and melody across borders, and songs where the melody is retained but lyrics are adapted to new contexts.

1. Preservation of Lyrics and Melody :

In this section, such protest songs are discussed that maintain their original form as they cross borders, resonating with regional audiences due to their universal themes of resistance and justice.

- **"Hum Dekhenge" :**

Written in 1979 by Pakistani poet Faiz Ahmed Faiz, "Hum Dekhenge" became an anthem of resistance in Pakistan. Its powerful verses, envisioning the fall of tyrants and the rise of the people, transcended borders and were adopted by protestors in India during the 2019–2020 anti-CAA (Citizenship Amendment Act) protests.(*'Hum Dekhenge': Faiz's Iconic Song Defines The Anti-CAA Protests | The Quint*, 2020) The song's universal message of hope and defiance made it a unifying force across national lines.

- **"Ekusher Gaan : Amar Bhaier Rokte Rangano Ekushe February" :**

"Ekusher Gaan" (*Amar Bhai Er Rokte

Rangano, 2015) was written in 1952 by Bangladeshi writer Abdul Gaffar Chowdhury and later set to music by Abdul Latif to commemorate the Bengali Language Movement in East Pakistan (now Bangladesh). It became a symbol of linguistic and cultural identity. Its poignant lyrics, mourning the martyrs of the movement, have been embraced by Bengali communities in India, particularly in West Bengal, during language and cultural preservation movements. The song's emotional resonance underscores the shared cultural heritage across borders.The same song has been sung in 12 different languages from around the world (*Amar Bhaier Rokte Rangano in 12 Languages* |১২ ভাষায় আমার ভাইয়ের রক্তে রাঙানো | *Project 21*, 2017).

- **"Do You Hear The People Sing" :**

This song was written in 1980 for the Musical "Les Miserables".(*Song From 'Les Misérables' Has A Long History In Pro-Democracy Movements*, 2021) The original French version of this is titled " A la Volonté du Peuple" It was penned by Alain Boublil and composed by Claude-Michel Schönberg. This song has been used for protest in various demonstrations around the globe. For example, during the Euromaidan revolution in 2013; in Wisconsin in 2011 during a budget bill demonstration ; for reforms of the Thai Monarchy in Thailand in 2020 etc (Zhang, 2020).

- **The Rapist Is You" :**

Originally titled "Un Violador en Tu Camino" in Spanish translated to English as "The Rapist Is You" is a feminist protest song from Chile that originated in 2019. It spread like a wildfire worldwide acting as a voice of women against oppression towards them. Women protested against sexual abuse in universities, workplaces, unequal treatment in workplace etc through this song. Protests have taken place in France, India , Mexico, Argentina, Venezuela and other places around the globe where this song has been used as an anthem of feminist protest. (WION, 2019, #)

- **"Baraye" :**

In the early days of 2022, Iranian singer-songwriter Shervin Hajipour composed this song titled "Baraye" as a protest and soon it became an anthem for protest. The background behind this composition is an incident that took place in Iran on 16th September 2022 , when a 22 year old Iranian woman named Mahsa was arrested by the police for not wearing hijab and died due to coma after police brutality. Baraye is about aspirations for a normal, prosperous existence. Along with freedom, liberty, and wealth, it discusses issues related to the environment, endangered animals, dying trees, refugee rights and psychological issues.

On October 22nd, this song was performed by the British Rock-band Cold-Play along with Iranian exiled actor Golshifteh Farahani in order to support the Iranian movement from Argentina. (*#AdabFest2020, 2 Feb: Saad Haroon Talks About Making Burqa Woman (Parody of Pretty Woman)*, n.d.) Australian Indie Folk Singer-songwriter Shelley Segal made an English version of Baraye in support of the Iranian protests and their freedom.

2. Adaptation of Melody with New Lyrics :

In this section such compositions are discussed wherein new lyrics are crafted

to suit different socio-political contexts keeping the melody intact.

- **"We Shall Overcome" :**

Originally an American civil rights anthem, "We Shall Overcome" found resonance in different parts of the world. In India, it has been translated into Hindi as "Hum Honge Kamyab," and Bengali "Amra Korbo Joy" and used as a staple in schools and protest movements, symbolizing hope and unity. The song's adaptability highlights the universality of its message and its capacity to inspire the mass. There are instances in Bangladesh where the Bengali version has been used for protest.

- **"Kalo Jole kuchla tole" :**

This is a traditional Bengali folk song. The melody of the song has been retained while the lyrics have been changed and two different songs have been made, one by India and the other by Bangladesh for two different protests. In India the song is titled " Deshta Shobar,Tomar Amar, Shono Shoirachari…" used for the Tilottama rape case protest in West Bengal (*RG Kar Protest | Viral Song | গানে গানে বিদ্রোহ বাংলায় ! Bangla News* |, 2024). While in Bangladesh the song has been titled, "Deshta Tomar Baper Naki" (*Deshta Tomar Baper Naki*, 2024) used for the Bangladesh student protest. Both the songs are in Bengali language and potray people's protest for protecting "freedom of speech" and warning the government against its injustice.

- **"Bella Ciao" :**

Bella Ciao is an Italian folk song sung by women rice paddy workers in North-East Italy. It became an anthem for the Italian resistance groups during world war who fought against the Italian Social Republic as well as the occupying troops of Nazi Germany. This tune has been used in India after altering the lyrics during the Citizen Amendment Act and NRC protests. The Indian version of this song has been titled : "Wapas Jao".(*Wapas Jao(Bella Ciao Hindi Version) | Poojan Sahil | Ft. CAA-NRC Protests | BuddyBits*, 2020).

- **"The Internationale" :**

This is a revolutionary anthem composed by Pierre De Geytar and penned by Eugene Pottier in French. This has become an anthem for communist revolution. Keeping this tune intact, Hemango Biswas an Indian singer, composer, lyricist and political activist penned the song titled " Jago Jago Sorbohara" in Bengali (*International (জাগো সর্বহারা অনশনবন্দী ক্রীতদাস) - Hemanga Biswas (হেমাঙ্গ বিশ্বাস)*, 2015). This song was prominently used during the 1960 peace initiative in Assam, which aimed to end the Assamese-Bengali riots triggered by the state's decision to make Assamese the sole official language. Similarly there are other versions of these songs in different languages such as Hindi, Russian, Chinese, Sinhalese etc penned and composed for protest in different parts of the world.

- **"John Henry" :**

This was originally a folk ballad. John Henry was an African-American freedman who is said to have worked against a steam-powered rock drill, a race that he won only to die in victory with a hammer in hand as his heart gave out from stress. Bengali composer, Hemango Biswas used the tune of this song, kept the name John Henry in it and penned lyrics for the working class protest. (*John Henry by Hemanga Biswas*

Ganasangeet (CHORUS) (*নাম তার ছিল জন হেনরি . হেমাঙ্গ বিশ্বাস,* 2018). This song is sung on May Day every year in Bengal.

- **"Burqa Woman" by Saad Haroon :**

This song "Burqa Woman" is created by a Pakistani comedian Saad Haroon. It is a satirical song set to the tune of American singer-songwriter Roy Orbison and Bill Dees "Pretty Woman,". (*#AdabFest 2020, 2 Feb : Saad Haroon Talks About Making Burqa Woman (Parody of Pretty Woman)*, n.d.) Pretty woman was created as a result of a very casual conversation. Saad Haroon through his song Burqa Woman critiqued societal attitudes towards women and the veil. The song sparked conversations about gender roles and freedom of expression, highlighting how parody and humor can be effective tools in protest music.

Conclusion :

Protest songs from around the world have demonstrated a remarkable ability to transcend national boundaries, uniting people transnationally in shared struggles for justice, identity, and freedom leading to cultural transnationalism through music. Whether preserving their original form or adapting to new contexts, these songs serve as powerful expressions of collective consciousness and resistance. Their enduring relevance underscores the universal human desire for dignity, equality and liberation and the power of music to become transnational regardless of any other factor.

References :

1. *#AdabFest2020, 2 Feb: Saad Haroon talks about making Burqa Woman (parody of Pretty Woman)*. (n.d.). Youtube.com. https://youtu.be/MGmJhhCKATs?si=TFlq8h5byAtPT93C
2. *Amar Bhai Er Rokte Rangano*. (2015, May 12). Youtube.com. https://youtu.be/lNSBpPMZ078?si=1OwBo_Yb1gkOqdEg
3. *Amar bhaier rokte rangano in 12 languages | ১২ ভাষায় আমার ভাইয়ের রক্তে রাঙানো | Project 21*. (2017). Youtube.com. https://youtu.be/seaacRKtjF0?si=7UR9IbRSlhDqDLXx
4. *কোটা আন্দোলনের বিজয়ী গজল | Bay Najnin | আমরা করব জয় | Amra Korbo Joy | Protest from india #gojol*. (2024). Youtube.com. https://youtu.be/72SkEqXSClY?si=pe6_Tg9D-LxPj1BT
5. Cheves, B. (2023, February 9). Baraye : Understanding Iran's Song of Protest and Compassion. *Ajam Media Collective*. https://ajammc.com/2023/02/09/baraye-irans-song-of-protest/
6. *Coldplay perform Iranian protest song Baraye in Buenos Aires: 'We send our support'*. (2023). Guardian News. https://youtu.be/aJb3uc1D1D8?si=oJdXiijwb9rHuDGF
7. *Deshta Tomar Baper Naki*. (2024, December 14). Youtube.com. https://youtu.be/zAcVMKgs6BA?si=UrTAty0rBsih6LvK
8. *Dheu uthchhe, kara tutchhe-Salil Chowdhury IPTA*. (2011, june 17). Youtube.com. https://youtu.be/Gq_y6HyQgIQ?si=8KlwHFs-YBbYy6My
9. *Feminist Anthem 'A Rapist in Your Path' Sung Around the World | NowThis*. (2020). Youtube.com. https://youtu.be/vjganfYZtk0?si=U0wE55ZZZEdWpGcl
10. *Ham honge kamyab ek din song by protesters at jantar mantar*. (2013, January 1). Youtube.com. https://youtu.be/8NaTHEjSO1I?si=smUN4RQPTEoLZNqC
11. Hoffmann, A. (2021, March 5). The transnational and the international: from critique of statism to transversal lines. *Taylor & Francis Online*, *35*(6), 796-810. https://doi.org/10.1080/09557571.2021.1893271
12. *Hum Dekhen Ge*. (2023). Youtube.com. https://youtu.be/KkWfDzkPbv4?si=Nqfwh_sTTTrdF2Io

13. *'Hum Dekhenge': Faiz's Iconic Song Defines The Anti-CAA Protests | The Quint*. (2020). Youtube.com. https://youtu.be/bIWbO-6I7r4?si=2eTZ__GC9ArEkN1t

14. *The Internationale (English)*. (2017). Youtube.com. https://youtu.be/3sh4kz_zhyo?si=gWtx0Fvvb1-Uhana

15. *International (জাগো সর্বহারা অণশনবন্দী ক্রীতদাস) - Hemanga Biswas (হেমাঙ্গ বিশ্বাস)*, (2015). Somtirtha Nandi. https://youtu.be/dvtNyCtVmNk?si=VHjLvlI7XyHX0LMJ

16. *John Henry by Hemanga Biswas ganasangeet (CHORUS) নাম তার ছিল জন হেনরি . হেমাঙ্গ বিশ্বাস* (2018). Youtube.com. https://youtu.be/sUqoQ_gksIo?si=78rv2MHp-why32VT

17. John Henry -Pete Seeger. (2014). Youtube .com. https://youtu.be/A9Zt0O2lyhk?si=SVcL5uF7J-V8yaP-

18. KARAR OI LOUHO KOPAT | DOHAR | KAZI NAZRUL ISLAM | PROTEST SONG | WE WANT JUSTICE. (2024, August 20th). Youtube.com. https://youtu.be/qexC0EpsMcM?si=BKOmJfqPRy9LQu_e

19. Lee, S. (2025, may 27). Transnationalism and Globalization Explain. Number Analytics. https://www.numberanalytics.com/blog/transnationalism-and-globalization-explained#:~:text=Transnationalism%20refers%20to%20the%20connections,%2Dis%2DGlobalization%2D).

20. RG Kar Protest |Viral Song| *গানে গানে বিদ্রোহ বাংলায়* ! Bangla News |. (2024). RG Kar Protest | Viral Song | গানে গানে বিদ্রোহ বাংলায় ! Bangla News |.

21. Shelley Segal X Tomorrow Pictures - Baraye (English Version Shervin Hajipour Cover). (2022, September). Youtube.com. https://youtu.be/QA499t4LZC8?si=av42MbzAr _CSA0x6

22. Shervin Hajipour - Baraye (full version with English lyrics). (2023). Youtube.com. https://youtu.be/0th9_v-BbUI?si=WJIbwaLN6Tqn58s_

23. Song From 'Les Misérables' Has A Long History In Pro-Democracy Movements. (2021, March 3). npr. https://www.npr.org/2021/03/03/973198208/song-from-les-miserables-has-a-long-history-in-pro-democracy-movements

24. "The rapist is you." On #International WomensDay, remembering this feminist anthem from Chile. (n.d.). Youtube.com. https://youtube.com/shorts/uKZYqVLBjj0?si=vlP4RNd7XWkr0Izf

25. Wapas Jao(Bella Ciao Hindi Version) | Poojan Sahil | Ft. CAA-NRC Protests | BuddyBits. (2020). BuddyBits. https://youtu.be/NJJoVMIQeCw?si=N7bPuQ5oNbk2qKnv

26. WION. (2019, December 9). *Chilean Feminist Chant 'The Rapist Is You' Garners Traction Worldwide*. WION. https://www.youtube.com/watch?v=gJzCFROKHnc

27. Zhang, A. (2020, April 24). *Songs of Protest: How "Do You Hear the People Sing?" Tells the Universal Story of Rebellion — afterglow*. Afterglow ATX. Retrieved June 7, 2025, from https://www.afterglowatx.com/blog/2020/4/24/songs-of-protest-how-do-you-hear-the-people-sing-tells-the-universal-story-of-rebellion.

Music and Cultural Representation in 777 Charlie Film : An Analysis of Diverse Musical Styles

Varnika Sharma
Research Scholar
Doon University

Dr. Karuna Sharma
Supervisor
Doon University

Abstract :

This study aims to analyze the diverse songs featured in the 2022 National Award-winning Kannada film 777 Charlie, focusing on their cultural representations, instrumentation, and role in the film's narrative progression. The researcher investigates the integration of Indian and foreign musical traditions, analysing how the soundtrack enhances the emotional and cultural dimensions of the film through musician interviews, location studies, and content analysis.

The songs and music of 777 Charlie amalgamates styles like folk, classical, western and contemporary. The Paper concludes that the film's soundtrack presents a musical microcosm of India, integrating diverse musical traditions from various places. The soundtrack encompasses many languages, such as Kannada, Rajasthani, Goan, and English, providing an audio exploration of India's diverse musical legacy, enhanced by modern influences and how the music represents many states of India.

Keywords :

Film777 Charlie, Music Analysis, Culture Representation, Content Analysis. Diverse Music.

Introduction :

Indian cinema, has a longstanding reputation for incorporating several musical styles into its soundtracks. Film music frequently embodies the varied cultural, regional, and historical influences inherent in the nation. 777 Charlie is a 2022 Indian Kannada film directed by Kiranraj K, with Rakshit Shetty in the lead role of Dharma, accompanied by a dog named Charlie.

The songs from "777 Charlie" are available in five languages: Kannada, Tamil, Telugu, Malayalam, and Hindi. The film "777 Charlie" is predominantly a Kannada production, although it was released with dubbed versions in the specified languages, indicating that each song in the

soundtrack is accessible in all five languages.

The film portrays the deep connection between a man and a stray dog, emphasizing themes of compassion, nurturing, and the transformative power of human-animal connections.

Research Methodology :

Researcher examines the historical and cultural context of 777 Charlie's production, emphasizing the socio-political environment, contemporaneous cinema industry trends, and the cultural relevance of the music with the narrative and themes of the film.

Researcher conducted the content analysis of the interviews, articles and videos that elucidate the composer's objectives, influences and creative methodology.

Interviewed musician Mr. Deepak Mattoo, founder of the Academy of Arts in Himachal Pradesh, to acquire a comprehensive grasp of the instruments utilized and the significance of music in amplifying the film's emotional resonance.

Researchers also interviewed local individuals from Rajasthan Ms Sangeeta Tiwari and Mohit Dubey to comprehend the cultural importance of the songs.

Findings :

Examination of the Musical Diversity in 777 Charlie.

The film's soundtrack features different musical styles, each symbolizing a unique regional or global identity. These comprise:

Rajasthani Folk Song : "Tan Kattey"

Goan Composition : "O Ga"

Kannada Song : "Margasa"

English Song : "Welcome to the Fire"

Sufi Composition : "The hymn of Dharma"

Each musical genre is associated with distinct cultural contexts, employing unique instruments and thematic elements that characterize the various regional or spiritual traditions. The diversity of musical styles within a single soundtrack illustrates the growing trend in Indian cinema to integrate various musical identities, so reflecting diverse aspects of Indian society and attracting a wider audience.

Examination of Musical Genres and their Cultural Importance :

Rajasthani Folk Song : "Kattey"

In the context of Rajasthan, folk songs have always assumed a very significant position in the society and among the people of Rajasthan. Folk songs in Rajasthan are not only related to life-cycles like birth, marriage and death, and to different festivals, but are also part of the tradition of professional singing done by some performing caste musicians like the Langas, the Manganiyars, the Bhatis etc. The latter practice is peculiar to Rajasthan, in that the professional caste musicians are patronized by different castes, which continues till date. (Agarwal, 2012)

The Rajasthani folk song "Kattey," in the movie performed by Bhawri Devi, is associated with the Bhopa community.

Nayak Adivasis are located in eastern region of Rajasthan, categorized on the basis of their commitment to the divine ancestral heritage of Pabuji s Phad. They proudly enunciate themselves as Bhopa Community. The epic narrative of Pabuji ki Phad is an exclusive tradition found only

in Nayak Bhill tribe of Rajasthan. In this Epic woman is the principal singer and the whole epic is woven around the heroic deeds of folk hero, Pabuji, an incarnation of God Laxmana from Ramayan (Mathur, 2015).

Kattey" song and lyrics by Ram Sampath is a traditional Rajasthani folk song the singer expresses that both her husband ("Sanwariya") and Lord Ram ("Ramaiyo") inhabit her heart, illustrating a spiritual bond with her beloved and the divine. The vocalist articulates her longing and despair, inquiring where she may seek her husband or beloved. This line conveys the song's emotional profundity and yearning.

Rajasthani music, particularly its complex utilization of percussion instruments like the ravanna hattha and khartal, in conjunction with the sarangi-a string instrument that elicits melancholic tones.

The selection of this song to depict the trip of Dharma and Charlie was intended by the director to preserve the authentic character of Rajasthani music.

The same goes for the film's soundtrack, which includes Rajasthani and Konkani folk songs. "When Dharma and Charlie embark on a journey, we wanted to retain these travel songs in their original language. Even with the songs where the lyrics were changed, we did not go for a line to line translation but roped in lyricists who would get the crux right," the director remarks (Kiranraj, 2022)

Cultural Representation :

The employment of these traditional instruments and the expressive vocal performance exemplify the robust oral heritage of Rajasthan, wherein music functions as both entertainment and a medium for storytelling.. In the setting of 777 Charlie, this song evokes nostalgia and yearning, reflecting the protagonist's trip and his bond with Charlie.

Goan Composition : "O Ga"

Konkani song o ga conveys the spirit of travelling and adventure and it also highlight the free spirit and hippy attitude of Goa.

Nobin Paul's composition possesses a natural, acoustic essence, while the graphics of the music video enhance the audience's connection to the authentic "journey" theme of the film.

I remember watching a video almost four years ago on Facebook in which a young goan singer crooned a beautiful acoustic track. The lyrics were in local Konkani and even though I couldn't understand their literal meaning, I was completely mesmerized by the vibe of the song that I immediately felt that my film should have something like this. For '777 Charlie', quite specifically, the song captures the spirit of traveling and an intense journey, and the visuals show just that. (K, 2022)

The language of Konkani can be traced back to being as old as the 2 nd Century and is mainly spoken by the people along the Konkan coastline or the Western Coast of India. A majority of the Konkani speaking population can be found in Mangaluru, Goa, the Southern Coast of Karnataka, Northern Coast of Kerala and Northern Karnataka. Konkani is also the official language of the State of Goa. (VAZ, 2016)

Instruments Utilized :

"O Ga" exemplifies Goan music that integrates Indian and Western musical components. The musical instruments utilized in the song are an acoustic guitar, a nylon guitar, a Goan traditional percussion instrument, a piano, and a violin. The song's lively tempo and rhythmic energy emphasize the festive essence of Goan celebrations and everyday life, serving as a vivid portrayal of the region's diverse cultural amalgamation.

Kannada Composition : "Journey song"

The Kannada composition "Journey song is entrenched in the classical musical heritage of Karnataka, particularly within the realm of Carnatic music. The composition showcases complex melodic and rhythmic structures, highlighting spiritual and philosophical motifs. It is probably executed with instruments such as the mridangam (a double-headed drum), flute, and violin, which are fundamental to Indian classical music.

Instruments Utilized :

Mridangam Flute Violin Cultural Representation : The incorporation of classical South Indian instruments in "Journey song " signifies the intellectual and spiritual legacy of Karnataka. This song relates to the profound religious nature of Indian classical music, wherein songs frequently delve into themes of divine love and philosophy. In 777 Charlie, the song's contemplative nature amplifies the film's emotional profundity, accentuating the protagonist's internal odyssey.

English Song : "Welcome to the Fire"

"Welcome to the Fire" presents a striking contrast with its Western rock influence, using instrumentation like electric guitars, synthesizers and drums. It embodies a powerful, anthemic essence that aligns with current worldwide music trends.

Instruments Utilized :

Electric Guitar Synthesizers Drums Cultural Representation : Despite being in English, this song's use in an Indian film shows the increasing internationalization of Indian filmmaking. The contemporary rock instrumentation generates a feeling of urgency and intensity, contrasting with the traditional Indian sounds present in other parts of the film. The inclusion of this genre enhances the film's attractiveness, particularly to younger viewers acquainted with contemporary Western music trends.

Sufi Composition : "The Hymn of Dharma"

Sufi music in India possesses a rich legacy of engaging with the spiritual domain. "The Hymn of Dharma" is profoundly entrenched in the Sufi tradition, which amalgamates Islamic mysticism with Indian devotional music. The composition incorporates instruments such as the tabla, dhol, harmonium and sitar, fostering an ambiance suitable for spiritual reflection.

Instruments Utilized :

The song has utilized various Indian instruments like Tanpoora, kanjira, rawab, ektara, sarod and flute.

Cultural Representation: Sufi music occupies a distinctive position in Indian cultural life, particularly in the northern and western regions. The recitation of sacred texts and the rhythmic patterns in the music induce a trance-like state, illus-

trating the amalgamation of Islamic mysticism with indigenous Indian traditions. The song's ethereal nature in 777 Charlie highlights the film's spiritual themes and expresses a feeling of transcendent connection.

Song Title	Region/ Genre	Instrument Used	Cultural Context &Significance	Relevance to Film
Tan kattey	Rajasthani Folk Song	Ravanhatta, Khartal, Sarangi	Derives from the Bhopa community of Rajasthan; folk music is intricately linked to caste traditions and narrative storytelling (e.g., Pabuji ki Phad).	Conveys yearning and commitment; employed to express emotional profundity and nostalgia throughout the voyage.
O ga	Goan/ Konkani Composition	Acoustic guitar, Nylon gui-tar, Goan percussion, Piano, Violin	Embodies the dynamic culture of Goa; emphasizes a liberated, hippy mentality; Konkani is a historic coastal language.	Embodies the spirit of exploration and adventure, enriching Dharma and Charlie's voyage with cultural depth.
Journey Song	Kannada Classical (Carnatic)	Mridangam, Flute, Violin	Grounded on South Indian Carnatic traditions; encompasses themes of heavenly love and introspection.	Represents the protagonist's inward metamorphosis and intellectual contemplation.
Welcome to the fire	Western Rock (English)	Electric Guitar, Synthesizers, Drums	Contemporary, dynamic composition embodying worldwide musical tendencies; juxtaposes conventional Indian themes.	Engages the youth; denotes fervor, dynamism, and the modern ethos of specific story trajectories.
The Hymn of Dharma	Sufi Composition	Tanpura, Kanjira, Rawab, Ektara, Sarod, Flute, Tabla, Dhol, Harmonium	Grounded sufi and infused with Indian devotional music; elicits spirituality and transcendence.	Augments the spiritual and introspective motifs of the film, epitomizing Dharma's emotional progression.

Table 1.1

Conclusion :

The soundtrack of 777 Charlie exemplifies India's vast musical diversity, highlighting regional, spiritual and international music styles. The integration of traditional Rajasthani folk music, classical components from Karnataka, the many influences of Goan music, the worldwide impact of rock, and the spiritual profundity of Sufi music collectively enhance the auditory experience that aligns with the film's themes. The meticulous choice of instruments in each composition is essential for accurately depicting each location and tradition, while also enhancing the emotional and narrative trajectories of the film. By merging many musical forms, 777 Charlie demonstrates the versatility and adaptability of Indian film in integrating both traditional and modern musical components, providing an enriching cultural experience for international audiences.

References :

1. Agarwal, K. (2012). POPULARIZING AND IDENTI(TY)FYING THE FOLK:A Study of Rajasthani Folk Songs and Music in Popular Culture and the Resultant Formations of Identities . *OPULARIZING AND IDENTI(TY)FYING THE FOLK:A Study of Rajasthani Folk Songs and Music in Popular Culture and the Resultant Formations of Identities* . Jawaharlal Nehru University .
2. K, K. (2022). O'Ga track captures the true traveler spirit of '777 Charlie. (S. Kodur, Interviewer) Times of India .
3. Kiranraj. (2022). Waiting tables to directing a blockbuster : 777 Charlie director Kiranraj interview. (S. U, Interviewer) The News Minute .
4. Mathur, P. (2015). Women in Tribal Folk Narrative of Rajasthan. *International Journal of Multidisciplinary Approach and studies* .
5. VAZ, J. (2016). A study on the role of media in the promotion of the Konkan language . Christ University .

अंजलि इला मेनन के चित्र सृजन में नारी-अंकन

विनीता देवी
शोध छात्रा, चित्रकला विभाग
दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार :

अंजलि इला मेनन भारतीय समकालीन कला की एक विशिष्ट चित्रकार हैं, जिनकी कृतियों में नारी-अंकन एक प्रमुख विषय है। उनकी चित्रों में नारी के विभिन्न रूप, उसकी भावनाएँ, सामाजिक स्थिति, संघर्ष और आध्यात्मिकता का गहन चित्रण देखने को मिलता है। जिसमें उनकी तकनीकी शैली, रंग योजना, विषय-वस्तु और कलात्मक दृष्टिकोण शामिल हैं। उनकी चित्रकला बाइजेंटाइन प्रभाव, पारंपरिक भारतीय कला और आधुनिक संवेदनाओं का मिश्रण प्रस्तुत करती है। उनकी चित्रों में महिलाएँ आत्मचिंतनशील, रहस्यमयी और सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं। विशेष रूप से, उनकी कृतियों में मातृत्व, आध्यात्मिकता, एकाकीपन और सामाजिक सीमाओं में बंधी नारी के मानसिक संघर्ष को दर्शाया गया है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी चित्र केवल सौंदर्यशास्त्रीय नहीं हैं, बल्कि नारीवादी दृष्टिकोण को भी व्यक्त करती हैं। अंजली ने कला को नए भावसत्यों से जोड़ा है, तथा उसे भारतीय संदर्भों में विलय कर उसे अधिक सार्थक रूप दिया। ''इनकी कला में फैंटेसी की दुनिया भी है और अतियथार्थ से प्रेरित जीवन की छवियां भी, यही कारण है कि जब हम इनकी कृतियों के सामने आते है या हाते तो वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के आर्दश की कल्पना में डूबते अपनी अनुभूतियों में उतरने लगते।''[1] जिससे उनकी कृतियों को एक विशिष्ट पहचान मिलती है। उनकी कृतियाँ नारी जीवन की जटिलताओं, सामाजिक संरचना में उसकी भूमिका और उसकी आत्म-परिभाषा को उजागर करती हैं। यह शोध-पत्र अंजलि की कला में नारी की संवेदनशीलता और उसकी बहुआयामी छवि को गहराई से विश्लेषित करता है।

बीज शब्द :

नारी-अंकन, मातृत्व, आत्मचिंतन, आधुनिक चित्रकला, स्त्रीवाद, सामाजिक संरचना।

मूल आलेख :

भारतीय समकालीन कला जगत में अंजलि इला मेनन एक प्रतिष्ठित नाम हैं, जिनकी कृतियाँ नारी-अंकन के लिए विशेष रूप से प्रसांगिक हैं। उनकी महत्वता इस कारण है कि वे समकालीन भारतीय कला को एक नया आयाम देने में सफल रही हैं। उनके रंग हो या रूपाकार, चित्रों के विषय हो या आकृतिमूलता की प्रयोगधर्मी पद्धतियाँ, अंजली ने कला को नये आयाम से तो जोड़ा ही है, उसे भारतीय

सन्दर्भों में विस्मय कर उसे अधिक सार्थकता और व्यंजकता भी दिया है। अंजलि की कला अपने-आप में सम्मोहन की कला है। इन्होंने घरेलू उपयोग की जाने वाली वस्तुओं में कपबोर्ड, खाली कुर्सी, झरोखा, आर्मचेयर आदि का उपयोग करके दैनिक जीवन की वस्तुओं से नया सन्दर्भ प्रस्तुत किया है यहाँ नया का अर्थ सन्दर्भ है, उनकी दृष्टाता का एक अलग कलात्मक प्रयोग।

अंजलि इला मेनन का जन्म 17 जुलाई 1940 को के वर्नपुर, जिला बर्दबान (पश्चिम बंगाल) में हुआ था। इनकी बचपन से ही कला के प्रति रूचि थी, यह तमिलनाडु स्थित लवडाले में लॉरेंस को-एडुकेशनल बोर्डिंग स्कूल में हुई थी। उनके प्रवृत्ति के विपरीत वह स्कूल सैनिक परंपरा पर आधारित था। ''उस स्कूल का कला विभाग बड़ा सुंदर, शांत और सुरुचिपूर्ण था, जिसका श्री सुशील मुखर्जी के जिम्मे था। वे अपने अध्ययन कक्ष में सुंदर चित्रों वाली पुस्तकें, खासकर प्रभावशादी कलाकारों की निर्मित कृतियां दिखाते थे।''[2] 15वर्ष की आयु तक, उन्होंने अपने कुछ चित्र बेच दिए थे, जो उनकी कला के प्रति प्रारंभिक समर्पण को दर्शाता है। वे दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य और उन्होंने चार वर्षो (1956 ई॰ से 1960 ई॰) तक मुंबई के सर जे॰ जे॰ स्कूल ऑफ आर्ट में अध्ययन के दौरान अंजली ने बहुत-सी प्रदर्शनियां देखीं, ''वहीं पहली बार एम.एफ. हुसैन और मोहन सामंत की कृतियाँ देखकर वे आश्चर्य में पडी। सामंत की प्रारंभिक कृतियां अमूर्त थीं, पर वे प्रभाववादी चित्र थीं, मैं देखकर प्रभावित हुई कि, कैसे एक कलाकार स्थान के विस्तार और उसके खालीपन को नया अर्थ दे सकता है।''[3] मेनन ने 1961-62 ई॰ में फ्रांसीसी सरकार की छात्रवृत्ति पर इकोले डेस ब्यूक्स आर्ट्स में फ्रेस्को पेंटिंग का अध्ययन किया, इस अवधि के दौरान उन्होंने यूरोप भर में व्यापक रूप से यात्रा की, वहाँ रोमनस्क और बाइजेंटाइन कला का अवलोकन किया, जिसका तत्व बाद में उनके काम में भी दिखाई दिए, जैसे कि उनके चित्रों में आकृतियों का सामने की ओर झुकाव और थोड़ा बढ़ा हुआ होना। ''इसी बीच पेरिस से न्यूयॉर्क भी जाना पड़ा जहाँ इन्होंने 'हरलेम पिक्चर्स' पर एक शृंखला निर्मित की जो पेरिस में बिकी थी।''[4] एक कलाकार के रूप अंजलि ने भारत और विदेशों में बेहतर कला शिक्षा पाई है। आपने बचपन के ही मित्र राजा मेनन से विवाह किया व परिवार के दायित्वों को भी बखूबी निभाया। कला के गहरे अर्थों में आप ऐसी कलाकार के रूप में जानी जाती हैं जिनके सरोकार व्यापक हैं।

अंजलि के चित्रों को समीक्षकों ने 4 चरणों में विभाजित किया है - ''सन् 1961-1970, सन् 1971-1980, सन् 1990-2000 और सन् 2001 से अब तक। इन चरणों में अंजलि के काम अलग-अलग भावक्षेत्रों को दृश्य में लाते हैं, पर उनका केन्द्रीय 'थीम' एक है- मनुष्य को प्रकृति और अन्य जीवों के साथ विन्यस्त करते हुए उसकी दुरभिसन्धियों तथा जटिलताओं की अभिव्यक्ति।''[5] अंजलि के प्रारम्भिक कार्यों में पारम्परिक चित्र-पद्धति स्पष्टत रूप से देख सकते है तथा उन्होंने आकृतियों को तोड़े बिना गहरे तूलिकाघातों से रंगों में अपने भावों को प्रदर्शित किया है। इस दौर में वान गॉग, मोदिग्लीआनी व अमृता शेरगिल का प्रभाव पड़ा है। इस समय के चित्रों में 'मार्था', 'अर्चीन', 'द बाथर', 'मडोना', 'पोर्ट्रेट ऑफ निशा', चित्र शामिल हैं। दूसरे चरण में अंजलि की कृतियाँ अधिक प्रभावशाली हो जाती हैं इस दौर के चित्रों में 'मैरी प्रोफेट', 'ड्रीम गर्ल विद ए मंकी', 'गर्ल विद कैट्स' 'मालाबार', 'न्यूड विद पियर्स' 'न्यूड विद ए डॉग' आदि शामिल हैं। जिनमें अंजलि एक कलाकार के रूप में जहां नई रूप खोजती हैं, इस दौर की चित्रों में कहीं अंजलि रूपाकारों को तोड़ती हैं, तो कहीं उसे विचारमग्न छवियों में विस्मय करती हैं। चित्रों में कहीं धुधला रंग प्रयुक्त हैं तो कहीं गहरे, चटख रंगो का प्रयोग। इनके

के इस दौर के अधिकतर कामों में स्त्रियां ही दिखती हैं, जिनमें यथार्थ का वेग है तो रहस्य की झीनी बनावट भी है। अंजलि की नारी आकृतियाँ प्रकृति को सहचर मान उसके साथ मौजूद होती हैं, इनके साथ बाघ, छिपकली, बकरा, बिल्ली, कौवे जैसे प्रतीकों का प्रयोग दिखाई देते हैं। इनके चित्रों में स्त्री यहां खामोश है, जानवर संवाद करते प्रतीत होते हैं, मानों वे स्त्री का साथ देने के लिए प्रस्तुत हों। कौवे बड़े ही अर्थपूर्ण प्रतीक के रूप में यहां जगह पाते हैं। वे यहां चीखते नहीं, सोच की मुद्रा में बैठे या कुछ चुगते दिखाई देते हैं।

अंजलि के तीसरे चरण के कार्यों में पतंग, साइकिल, कुत्ता आदि के माध्यम से एक विलक्षण प्रयोग है। इस समय के चित्र 'जेमिनी', 'चेयर', 'झरोखा, 'क्राउज ऐट डस्क', 'आफ्टर नून इन ए देल्ही गार्डेन', 'जागेश्वरी', 'कैंडोलिम', 'ड्रीमिंग ऑफ एन इंडियन समर', 'द रूम', 'गर्ल विद मास्क', 'द मिरर', 'खादी बाजार', 'फतेहपुर', 'रिक्शा', 'फेमिली वेडिंग डे', 'जूनो', 'गंगा', 'चेत्तिनाद', 'शक्ति', 'विसर्जन', 'जादू', 'फेस्टिवल' आदि चित्र दिखयी देते है। पहले के अपेक्षा इन दौर के चित्रों में बदलाव आने लगे, इन कृतियों में वे धार्मिक प्रतीकों को भी तोड़कर उसे नया रूप देती हैं। अंजलि के यहां ऐसी बहुत से कृतियां भी हैं, जिसमें उनके बचपन की स्मृतियों और गुजर चुके जीवन की गहरी यादों को दर्ज किया गया है। जैसे 'कुर्सियां', 'चारपाई', 'दूरियां', 'गुब्बारे', 'विस्तृत नीला आकाश' और 'पतंगों' के माध्यम से अंजलि अपने अतीत को खोजती हैं, तथा तब उन्हें गिरती दीवारें, टूटे हुए खिलौने हाथ लगते हैं, जा उनके गुजरे अतीत की यादों को एक दुःख में बदल देते हैं। अंजली केवल कैनवस पर ही काम नहीं करतीं उनहोंने पैनेल, लकड़ी की खिड़कियां, लकडी के कपबोर्ड, आलमारी, 'मेसोनाइट पर तैल', 'कंप्यूटर की छवियों' पर भी काम किया है, 'संस्थापन' भी बनाए हैं, 'भित्ति चित्र' बनाए, अप्रतिम 'चित्र' छापा जैसे माध्यम भी उनकी कला की अभिव्यक्ति के साधन बनते हैं। एक पेंटर महिला के रूप में ऐसी प्रायोगिक विविधता दूसरे कलाकारों में कम मिलती है। ''समकालीन भारतीय कला में एक मूर्धन्य कलाकार के रूप में स्वयं को स्थापित कर अंजलि ने समकालीनता को नया अर्थ दिया है तथा भारतीय स्त्रियों को भी एक वैचारिक भूमि दिया है।

अंजलि की कला की अद्वितीयता उनके इसी अवदान में है, जिसकी चर्चा के बिना समकालीन भारतीय कला का मूल्यांकन अधुरा है।''[6] वह दिल्ली में रहती हैं और निरंतर चित्रकर्म में लीन रहती हैं। उनकी चित्रकला में नारी के विविध रूपों का सजीव और संवेदनशील चित्रण मिलता है, जो भारतीय समाज, संस्कृति और परंपराओं का गहन प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। मेनन की कृतियाँ न केवल सौंदर्य की दृष्टि से मनमोहक हैं, बल्कि वे नारी जीवन की जटिलताओं, भावनाओं और संघर्षों को भी उजागर करती हैं। उनकी कला में बाइजेंटाइन प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जो उनकी विशिष्ट रंग योजना और शैली में परिलक्षित होता है।

अंजलि इला मेनन के चित्रों में नारी-अंकन :

अंजलि भारतीय समकालीन कला की अग्रणी चित्रकारों में से एक हैं। उनकी कला में भारतीय परंपरा, बाइजेंटाइन प्रभाव और आधुनिकता का अनूठा संगम देखने को मिलता है। विशेष रूप से, उनकी कृतियों में नारी-अंकन एक प्रमुख तत्व के रूप में उभरकर आता है। उनकी पेंटिंग्स में महिलाओं की भावनाओं, उनकी संवेदनशीलता, उनके संघर्ष और आध्यात्मिकता का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनकी चित्रकला में स्त्री-अंकन एक व्यापक विषय है, जिसे उन्होंने विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। उनकी स्त्रियाँ शांत, आत्मचिंतनशील और रहस्यमयी प्रतीत होती हैं। उनकी कलाकृतियाँ अक्सर भारतीय नारी की सामाजिक भूमिका, उसके मनोवैज्ञानिक पहलुओं और आध्यात्मिक स्वरूप को उजागर करती

हैं। उनकी कई पेंटिंग्स में महिलाओं को अकेले, शांत मुद्रा में बैठे हुए दिखाया गया है। उनकी आँखों में गहराई होती है और चेहरों पर रहस्यमयी भाव देखने को मिलते हैं।

ईव (चित्र सं.-1) यह इनकी आरम्भिक कृतियों में एक है, चित्र में एक स्त्री कामुक रूप में दर्शकों को परिलक्षित हैं, जो अपने स्वप्न में एकान्त भाव में लेटी हुई है। उसका चेहरे पर शान्त भाव दिख रहा है, जो इस बात का प्रमाण है कि वह अबोधता में खोई है। इन धुंधली नग्न आकृतियों में जो सरल भाव लिए हुए हैं वह इस प्रकार नग्नता उनके कार्यों में हमेशा अनुभवों के साथ ध्वनित रही रहती है। अंजली की नग्न आकृतियाँ जो स्त्री-सिद्धान्तों को कई स्तरों पर सांकेतिक रूप में प्रस्तुत करती है, जिसमें पवित्रता, पारिवारिक, माँ और बच्चे को अलग तरह से प्रदर्शित करती है। अंजलि कहती हैं कि वे ईव से बहुत प्रेरित हुई है, खासकर इटालियन मूर्तिकार जिसेलबर्ट्स से। इस चित्र में जो स्त्री लेटी है, उसको सफेद और पीले रंग से पिरोया गया है, महिला को नीले रंग के बिस्तर पर लेटे हुये दिखाया गया है। पुरे वातावरण को शान्ती छायी है।

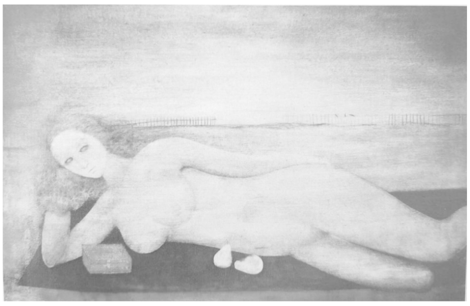

चित्र-1 : ईव, अंजलि इला मेनन, 1970

चित्र-ड्रीम (चित्र सं.-2)[7] इस चित्र में सांकेतिक बिम्ब में पशु-पक्षी के साथ नग्न नारी आकृति जिसके हाथ वास्तविकता से बहुत लंबे दर्शाया गया हैं। स्त्री की नग्न आकृति चित्र के बीच में खड़ी है, इसके बाल हवा में लहरा रहे हैं। वह काँटेदार तार के बीच खड़ी हैं जिसके कारण एक रहस्यमय भाव उत्तपन्न हो रहा है जो अंजलि का चित्रों को देखने के बाद ऐसा एहसास होता है की वह एक अबूझ स्वप्न हैं। अंजलि का यह चित्र सौन्दर्यपरकता को परिभाषित करता है। चित्र के धरातल पर रंगों का प्रयोग आश्चर्यजनक है, जिसमें वस्तुओं के साथ बकरी, कौआ आदि जानवर का अंकन रहस्यपूर्ण और जटिलापूर्ण विचारों का निरन्तर भाव दिखाई दे रहा है। इस चित्र में खास आकर्षण के अलावा उनमें बहुत ही व्याकुलता और आन्तरिक संघर्ष करते भाव भी दिखाई देता है। कही-कही उन्होंने इस प्रकार के रंगों का चयन किया जो दर्शक में जटिल प्रतिक्रिया को भी जागृत करें। चित्र के पृष्ठभूमि में लाल व मटमैला रंग तथा कही-कही पीले रंग की आभा दिखयी दे रहा है, अंजलि ने चित्र में संयोजन का भी बहुत सुन्दर ध्यान रखा है जिससे चित्र और भी अधिक आकर्षक बन पड़ा है।

चित्र-2 : Dream, Anjoli Ela Menon, 1997, Oil on Masonite, 48 x 36 Inch.

शक्ति (चित्र सं.-3) 1999 ई॰ - अंजलि की शक्ति चित्र विशेष महत्वपूर्ण है, जो उनकी कला में एक आवर्ती और केंद्रीय विषय का प्रतिनिधित्व करती

है- महिलाओं की अंतर्निहित शक्ति और दिव्य शक्ति। 'शक्ति' की अवधारणा - जिसका अर्थ है दिव्य स्त्री ऊर्जा या शक्ति। चित्र में एक साधारण महिला को देवी के रूप में दिखाया है। स्त्री के बाल सर्प जैसे है उसके अन्दर देवी का रूप दिखाई देता है। हाथों में पुरुष का कटा हुआ सिर है पूरे वातावरण में एक आक्रोश का भाव है जिसमें पीला, लाल रंगों की अधिकता है व अंजलि की ये चित्र दर्शक को अन्दर से झकझोर देती हैं। चित्र में नीले रंग की विकराल रूपवती नारी आकृति एक ओर गहराई से देखने वाले दर्शक को सम्मोहित करती है, वहीं दूसरी ओर उसका हाथ में पकड़ा हुआ पुरुष-मुख यह संकेत करता है कि यह स्त्री शक्ति केवल सौंदर्य नहीं है, वे क्रोध और संहार की शक्ति भी है। स्त्री आकृति के शरीर पर उकेरी गई स्वर्णिम देवी दुर्गा की छवि, जो हाथों में शस्त्र लिए दानव का वध कर रही हैं, इस बात का प्रतीक है कि नारी के भीतर ही सृजन और संहार दोनों विद्यमान हैं। पृष्ठभूमि में सुनहरे और भूरे रंगों का संतुलन, शक्ति और रहस्य का आभास कराता है। नारी का खुले बालों वाला रूप, उसकी स्वतंत्र चेतना और शक्ति का प्रतीक है। चित्र के दाईं ओर स्थित पुरुष आकृति, स्त्री के विराट रूप के सामने मौन और अचंभित दिखाई देता है। अंजलि ने इस चित्र के माध्यम से नारी के पौराणिक स्वरूप को आधुनिक चेतना के साथ जोड़ते हुए यह संदेश दिया है कि स्त्री अब केवल पूज्य नहीं है, वे सजग और सक्रिय भी है।

चित्र-3 : शक्ति, Anjoli Ela Menon, 1999, Mixed Media, 36 x 24 Inch. Collection -Lalit Kala Akademi, New Delhi.

मदर एंड चाइल्ड (चित्र सं.-4)[९] इस चित्र में एक माँ ने अपने शिशु को गोद में लिए हुए दिखाया गया है। माँ के चेहरे पर करुणा, प्रेम और सुरक्षा का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। यह चित्र भारतीय मातृत्व की अवधारणा को बल देती है और यह दर्शाती है कि माँ केवल पोषण और देखभाल करने वाली ही

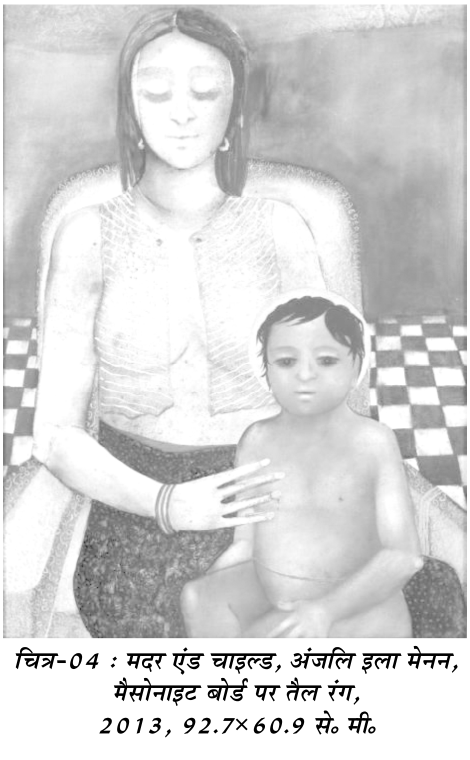

चित्र-04 : मदर एंड चाइल्ड, अंजलि इला मेनन, मैसोनाइट बोर्ड पर तैल रंग, 2013, 92.7×60.9 से० मी०

नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक भी होती है। उनके चित्रों में बाइजेंटाइन प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनकी चित्रों में भूरे, नीले और सुनहरे रंगों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है, जो बाइजेंटाइन कला की विशेषता है।

उनकी कृतियों में नारी-अंकन एक प्रमुख विषय-वस्तु के रूप में उभरकर आता है, जिसमें महिलाओं की भावनाओं, उनकी संवेदनशीलता, उनके संघर्ष और आध्यात्मिकता का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनकी चित्रकला में स्त्री-अंकन एक व्यापक विषय है, जिसे उन्होंने विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। उनकी स्त्रियाँ शांत, आत्मचिंतनशील और रहस्यमयी प्रतीत होती हैं। उनकी कलाकृतियाँ अक्सर भारतीय नारी की सामाजिक भूमिका, उसके मनोवैज्ञानिक पहलुओं और आध्यात्मिक स्वरूप को उजागर करती हैं। उनकी पेंटिंग्स में महिलाओं को अकेले, शांत मुद्रा में बैठे हुए दिखाया गया है। उनकी आँखों में गहराई होती है और चेहरों पर रहस्यमयी भाव देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए, उनकी प्रसिद्ध पेंटिंग मेडिटेटिव वुमन में एक महिला को नीले और भूरे रंगों की छाया में दर्शाया गया है, जो चिंतनशील अवस्था में बैठी हुई है। उनकी आँखें अतीत के अनुभवों की गहराई को दर्शाती हैं, और दर्शक इस पेंटिंग को देखकर भावनात्मक रूप से प्रभावित होता है। उनकी चित्रकला में मातृत्व की झलक भी देखने को मिलती है। मदर एंड चाइल्ड उनकी ऐसी ही एक प्रमुख पेंटिंग है, जिसमें एक माँ को अपने शिशु को गोद में लिए हुए दिखाया गया है। माँ के चेहरे पर करुणा, प्रेम और सुरक्षा का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। यह पेंटिंग भारतीय मातृत्व की अवधारणा को बल देती है और यह दर्शाती है कि माँ केवल पोषण और देखभाल करने वाली ही नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक भी होती है। उनकी पेंटिंग्स में आध्यात्मिकता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सेज वुमन उनकी एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें एक महिला ध्यान मुद्रा में बैठी हुई है और उसका चेहरा दिव्यता से आलोकित प्रतीत होता है। इस पेंटिंग में भारतीय संत परंपरा और योग ध्यान का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनकी कई कृतियाँ स्त्रियों के मानसिक और भावनात्मक पहलुओं को भी उजागर करती हैं। उदाहरण के लिए, उनकी पेंटिंग 'इनर टरमॉइल' में एक महिला के चेहरे पर विरोधाभास और तनाव स्पष्ट रूप से झलकता है। यह चित्र महिलाओं के आंतरिक संघर्ष और समाज द्वारा उन पर लगाए गए प्रतिबंधों को दर्शाने का प्रयास करता है। इसके अलावा, उनकी पेंटिंग विलेज वुमन में एक महिला को पारंपरिक परिधान में दिखाया गया है, जिसकी आँखों में गहन अनुभवों की छाया है। यह चित्र भारतीय ग्रामीण जीवन, उसकी कठिनाइयों और संघर्षों का प्रतीक है। मेनन की कला में तकनीकी कौशल और विषय-वस्तु का यह संयोजन उनकी कृतियों को विशेष बनाता है, जो दर्शकों को गहराई से प्रभावित करता है।

सम्मान व पुरस्कार : वह भारत और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक एकल प्रदर्शनियां कर चुकीं हैं, अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में उनकी हिस्सेदार रही। अंजलि को बहुत से राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सम्मान भी मिले हैं। **2000 ई॰ में उन्हें 'भारत सरकार' का 'पद्मश्री' सम्मान मिला। उन्हें 2017-18 ई॰ का 'मध्य प्रदेश' के 'कालिदास सम्मान' से सम्मानित किया गया।**

उनकी कृतियाँ राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, चंडीगढ़ संग्रहालय और पीबॉडी एसेक्स संग्रहालय सहित कई प्रमुख संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। 2006 में, सैन फ्रांसिस्को के एशियन आर्ट म्यूजियम ने उनकी तिप्तिक कृति यात्रा का अधिग्रहण किया। उनकी कला में धार्मिक विषयों, चित्रों और नग्न चित्रों का समावेश है, जिसमें जीवंत रंग योजना और विभिन्न शैलियों का उपयोग किया गया है, जो क्यूबिज्म से लेकर यूरोपीय पुनर्जागरण कलाकारों की तकनीकों तक फैली हैं।

अध्ययन का उद्देश्य : यह शोध-पत्र उनकी कृतियों में नारी-अंकन के विविध पहलुओं का विश्लेषण करता है।

निष्कर्ष :

अंजलि इला मेनन की चित्रकला में नारी-अंकन केवल सौंदर्य का चित्रण नहीं है, बल्कि यह नारी के भीतर छिपी भावनाओं, संघर्षों और आध्यात्मिकता को भी उजागर करता है। उनकी पेंटिंग्स में आत्मचिंतन, मातृत्व, अकेलापन, भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक गहराई की झलक मिलती है। उनकी कृतियाँ भारतीय समाज में नारी के अस्तित्व, उसकी भूमिका और उसकी सशक्त उपस्थिति को उकेरती हैं। नारी-अंकन को उनके चित्रों में भावनात्मक गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है, जिससे उनकी कला भारतीय आधुनिक चित्रकला में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

जिसमे काल्पनिक दृश्य जैसे नग्न स्त्री, पुरुष, कौआ, झरोखा, कुर्सी, नारी के अन्दर देवी का रूप, सर्प जैसे धुँधराले बाल, बच्चे को आरी से कटा हुआ, औरत के साथ गणेश, वास्तविकता से अधिक बड़ी आँखे, स्वप्निल दृश्य व रहस्यमय दृश्य के साथ मन को झकझोर देने वाला तत्व जिन्हें देखकर दर्शक के मनःस्थिति में वास्तविकता का बोध नहीं होता बल्कि उन्हें एक सपने जैसा प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सम्पा॰ ज्योतिष जोशी, समकालीन कला, अंक-28 (नवम्बर 2005 - फरवरी 2006) ललित कला अकादमी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 34
2. सम्पा॰ इंदिरा दयाल, अंजलि इला मेनन, 1995 ई॰।
3. राकेश गोस्वामी, भारतीय आधुनिक एंव समकालीन कलाकार, चतुर्थ संस्करणः मार्च 2024, गोस्वामी पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर, प्रयागराज, उ॰ प्र॰, पृष्ठ संख्या-183-184।
4. सम्पा॰ ज्योतिष जोशी, समकालीन कला, अंक-28 (नवम्बर 2005-फरवरी 2006) ललित कला अकादमी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-35।
5. वही, पृष्ठ संख्या-35।
6. ज्योतिश जोशी, भारतीय कला के हस्ताक्षर, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण-अप्रैल 2013, पृष्ठ संख्या-258।
7. सम्पा॰ ज्योतिष जोशी, समकालीन कला, अंक 28 (नवम्बर 2005-फरवरी 2006) ललित कला अकादमी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-37।
8. Betty Salddanda, Lalit Kala Contemporary, December 2023, Dr. Sudhakar Sharma Secretary, Lalit Kala Akademi Rabindra Bhavan, New Delhi, Page No.41.
9. https://www.grosvenorgallery.com/exhibitions/35/works/artworks-935-anj

Folk Arts and Crafts of Shantiniketan : A Study of Birbhum District of West Bengal

Dr. Rajesh Ekka
Assistant professor,
Department of Education,
BBAU, Lucknow

Abstract :

Folk art and craft is a growing industry in India. It provides a great oppourtunities to explore the natural and cultural set up of Rural India. It also helps in economic growth and changing of cultural diversities among the people. Birbhum district of West Bengal is known as 'Land of Red Soil' has emerged as a new destination for rural handicrafts with its unique cultural richness. The unique feature of Shantiniketan with its greenery and aesthetic values gives different taste to the people. The interaction of the tourists with the locals gives unique feelings. The rural communities of Shantiniketan find themselves blessed with such oppourtunities, while meeting the different people from the different parts of the world. Today, we see that Shantiniketan is transformed into a rural handicraft hub through its beauty and cultural.

Keywords :

Alpana, Art, Craft, Folk, Kantha, Kansa, Scroll, Shola pith.

Introduction :

Shantiniketan declared a heritage by UNESCO in 2023 is one of the beautiful places situated in the Birbhum district of West Bengal. Shantiniketan is about 160 KM from the capital of West Bengal, India Northwest of Kolkata. Rabindra Nath Tagore, a great poet, writer, philosopher and educationist established Visva Bharti, Shantiniketan University (A central University) in 1921 attracting many people from different castes, creed, religions and also people from east to west, come together and learn under one Umbrella. Departments such as Kala Bhavana and Sangeet Bhavana attract the most creative minds of the country. Students from across the world today take admissions in Kala Bhavana and Sangeet Bhavana, where they get Diploma, Bachelor, Master and Doctorate Degree in Art, Craft, Design, Music and Dance.

Objectives :

1. To identify the different forms of folk

arts of Shantiniketan and surroundings.

2. To know the importance of folk artists in cultural transmission.

Methodology :

Survey method is used under the Descriptive research. For the data collection the researcher has applied the survey method, it also included the printed resources such as books, journals, newspapers and reports etc. Different factors such as socio-economic, cultural etc. are considered to fulfill the research work.

Kansa : Brass and Bell Metal Craft :

"Kansa" is the mixture of bronze and copper, where the mixture contains little proportion of copper than bronze. Hence, the bell metal or "kansa" used for making bells, bowls, plates, different kinds of utensils, vessels, tools, weapons etc. are made by the local folk artists of Shantiniketan and surrounding villages (Gupta, 2019). "Pital" which is known as brass, is the mixture of copper and zink used for making different brassware items such as pots, water containers, plates used for worship purpose, singhasana, idols, khagri, bogi etc. Therefore, the brass and bell metal craft of Shantiniketan has an ancient reputation in the history of West Bengal.

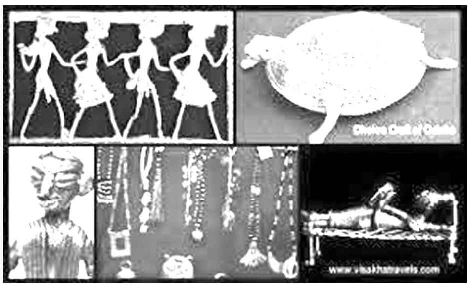

Girls Murti, Tortoises, Jewellery of Copper
Lord Krishna Murti of Kansa

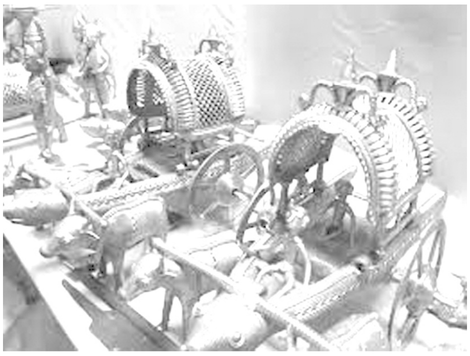

Kansa Thalli Set Brass Bulls Bullock Cart

Shola Pith Craft :

Shola pith, also known as Indian cork is an aquatic plant (herbal ivory reed), which is found mostly in water and marshy land of West Bengal. The Malakars or Shola artists of Shantiniketan of Birbhum district of West Bengal are known for their creative skills for making decorative

articles and various kinds of ornaments (Bhattacharya, 2007). Shola artists are famous for making 'toper' (Bridal's cap), 'Daker Shaaj' (decorative ornaments of Goddess Durga), ornaments for the goddess, crowns for the goddess, garlands and other shola pith crafts.

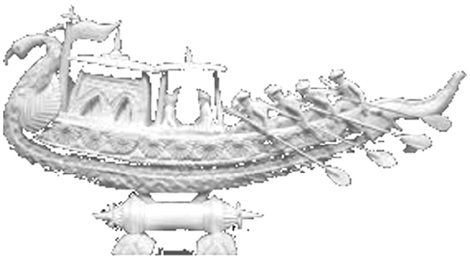

The king is sitting on the Elephant Nawka made of Shola pith

Goddess Durga made of shola pith Palanquin made of shola pith

Scroll Paintings :

'Patachitra' or 'Patakatha' is one of the unique ways to depict the stories or parables through the scroll paintings in West Bengal. The Patua artists depicts the stories or parables related to myth, mysteries, legend personalities and epics through the scroll paintings (Majumdar, 2016). The art form of 'Patachitra' or 'Patakatha', a form of pot painting and scroll painting is peculiar to the Patua community, with incidental emphasis put on music and storytelling. What is more, it is not only the manifestation of the creativity and talent of numerous artists but also one of the effective ways to educate and keep people informed about various cultures. The art of the Patua has always been didactic in purpose and has been employed by the Patua to impart moral values, narrate cultural tales, and even handle social concerns (Ghosh, 2015).

Patua artist with his painting Patua artist with scroll painting

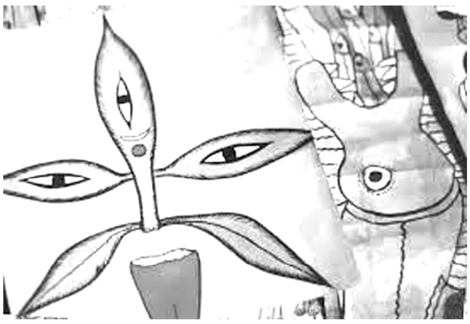

Scroll painting of legends Scroll painting of myth

Alpana :

'Alimpon' a Sanskrit word used for 'Alpana' is a unique method of design, which is similar to rangoli. In rangoli we use different kinds of colours but in 'Alpana' we use power of rice and flour, water mixed with natural colours and also done in earthen vessels. 'Alpana' is designed or coated during the different rituals, practices, festivals and some auspicious days related to folk art. Therefore, 'Alpana' represents joy, happiness, positivity and liveliness of a household. It also represents the folk artists artistic side signifying the beauty of natural creations and divine blessing. An auspicious symbol replicates the designs and materials used and creates a sense of balance. 'Alpana' brings prosperity, good health, blessing to the house through the different celebrations.

Alpana drawn by Shantiniketan student
Alpana drawn at the entrance of the house

Pot Paintings or Pottery :

The art of the Pot painting community known as 'Kumbhokar'/'Kumbhohar' of Shantiniketan contribute a lot to folk education through the painting on pots and on earthen vessels. It shows the cultural meaning with a special emphasis on its cultural importance in fostering appreciable values, beliefs, and traditions of the surroundings (Thompson, 2013).

Painting on pots/earthen vessels Kumbhokar crafting earthen vessels

Crafting of pots Female artist painting a pot

Wood Craft :

Traditional wood carving is quite popular in Birbhum district of West Bengal. The art and skill of wood carving practiced is common among the inhabitants of Shantinketan. There are many 'Kutir udyog' in Shantiniketan, where local artisans are involved in making different kinds of decorative articles. As a result, we see that many houses, institutions village temples, domestic shrines are carved by wood in classical styles. The wood artists mainly use mango wood, teak, sisam, neem wood, bel wood, mahogany for wood crafting.

Mastaks made by wood craving Goddess made by wood craving

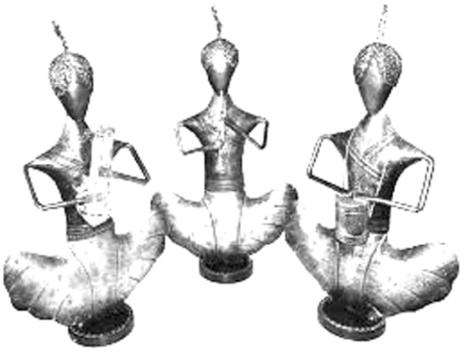

Dolls made by wood craving Putul and images of god made by wood craving

Bamboo Craft :

Bamboo craft is a significant part of the culture and heritage of Shantiniketan. Bamboo and cane is an important craft of Birbhum district of West Bengal. The weave and designs of articles fashioned from bamboo and cane are distinctive in Birbhum district. The high level of workmanship has transformed the bamboo craft into a work of beauty. The local bamboo and cane artists are fashioning articles of daily need such as baskets used for different purposes, articles for personal use such as hat, belt, rain shield etc. Ornaments and necklaces made of fine strips of bamboo and cane are very popular in Shantiniketan.

Bamboo artists busy in making baskets Baskets of different shapes

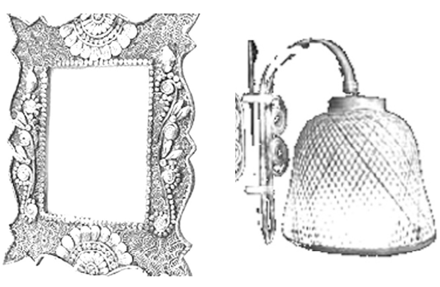

Photo frame made by bamboo Table lamp made by bamboo

Kantha Stitch :

Shantiniketan's boutique work is very popular in West Bengal for its designs and is used in Kantha stitch clothing, wall decorations and other decorative materials (Smith, 2018). Kantha Stitch Sarees, kurtas and kurtis are symbols of Shantiniketan culture (Acharya, 2004). Therefore embroidery craft work namely Kantha art is one of the most popular done in Shantiniketan. We see the Kantha Art products such as Kantha sarees, Kurtas, Kurtis, etc. re traditionally worn by the people in Shantiniketan. Therefore it is a great attraction for the tourists who visit the place.

Kurta made of kantha
(Images collected from Google)

Conclusion :

Rabindra Nath Tagore is known for his intellectual and cultural landscape of our country he was not only a poet, writer, philosopher, thinker but he was also a great wonderer. He loved the beauty of nature. Therefore, in Shantiniketan he taught the students in an open place. Today, we still see students learning under the trees. West Bengal is known for the richness of cultures from different segments of India. Due to its cultural diversity, it attracts tourists from different parts of India as well as abroad. The cultural design of Shantiniketan involves different festivals and fairs organized at Shantiniketan. These Festivals and Fairs provide an opportunity for the folk artists to show their talents by selling their locally made materials. Hence, the folk arts and craft of Shantinikeatan integrates indigenous knowledge systems, particularly in relation to education, physical well-being, and cultural preservation.

References :

1. Bhattacharya, A. (2007). Visva-Bharati Patrika : Nirbachito Probondho Sangroho 1942-2006 Prosongo Shilpo O Sangeet. Visva Bharati Granthan Bivag, Kolkata.
2. Acharya, N. (2004). Rarher Loksanskriti, Loksanskriti o Adibasi Sanskriti Kendra. Tathya o Sanskriti Bibhag, Paschimbanga Sarkar
3. Thompson, J. (2013). Revitalization of indigenous arts: The case of Patua paintings. Indigenous Art Review, 134-150. https://doi.org/10.1000/j.iar.2013.0011
4. Ghosh, A. (2015). Visual storytelling in Patua paintings. Visual Narratives Journal, 184-198. https://doi.org/10.1000/j.vnj.2015.0013
5. Majumdar, N. (2016). Educational value of folk traditions in rural Bengal. Folk Education Review, 207-221. https://doi.org/10.1000/j.fer.2016.0014
6. Smith, E. (2018). Folk education as a global phenomenon. International Education Journal, 123-138. https://doi.org/10.1000/j.iej.2018.0016
7. Gupta, R. (2019). Cultural transmission in Patua art. Cultural Studies Quarterly, 56-71. https://doi.org/10.1000/j.csq.2019.001

भारतीय जनजीवन और लोक संस्कृति के सच्चे साधक जायसी

डॉ॰ राजेश कुमार चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
वसंत महिला महाविद्यालय
राजघाट, वाराणसी

सामान्य से विशिष्ट बनना मानव की स्वाभाविक चेष्टा रही है, पर कभी विशेष की अनुभूति विशिष्ट से सामान्य की ओर जाती है। सामान्यीकरण दूसरे शब्दों में साधारणीकारण सत्य काव्य की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। काव्य की आत्मा लोक है वह लोक की जमीन से रंग ग्रहण करती है और नए-नए व्यापारों में नजर आती है, भले ही उसका कलेवर शास्त्रीय सीमाओं को स्पर्श करता हो। लोकपक्षधर्ता साहित्य की मूल थाती है जिसकी उपेक्षा कर साहित्य खड़ा नहीं हो सकता। हिंदी साहित्य के भक्ति काल में अनेक कवियों ने लोकमानस की भावनाओं, मान्यताओं और जीवन दृष्टि को स्वर दिया। इन कवियों में मलिक मोहम्मद जायसी एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। जायसी की काव्य रचनाएं विशेषता पद्मावत लोक जीवन, लोक विश्वास, और लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति का जीवंत दस्तावेज है। उन्होंने अपने समय की जन भावनाओं, सामाजिक संरचनाओं, धार्मिक प्रतीकों और लोक परंपराओं को काव्यगत सौंदर्य के साथ प्रस्तुत किया।

जायसी भक्तिकाल के ऐसे महान कवि हैं जिन्होंने अपनी उदारता और सहिष्णुता का परिचय देते हुए अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक टकराहटों के युग में एक विराट सांस्कृतिक समन्वय का संदेश भारतीय जनता तक पहुंचाने का प्रयास किया। जायसी की सभी रचनाएं लोक जीवन और लोक संस्कृति में उनकी गहरी पैठ का परिचय देती हैं। पद्मावत और चित्ररेखा की प्रत्येक पंक्ति यह प्रकट करती है कि जायसी भारत भूमि की मिट्टी, भारतीय जनमानस और विशेष रूप से हिंदू समाज के साथ कितना घनिष्ठ संबंध रखते थे। उन्होंने अपनी प्रबंध कृतियों की कथावस्तु का चयन अवध प्रांत में प्रचलित लोक कथाओं से किया है। इन कथाओं की घटनाएं उच्च वर्ग से संबंधित जरूर है पर जायसी ने इनका ऐसा चित्रण किया है कि उनमें लोक जीवन और लोक संस्कृति का समावेश हो गया है। उनकी व्यापक दृष्टि से लोक संस्कृति की शास्त्रीय एवं व्यवहारिक भूमि की सामान्य से सामान्य बातें भी ओझल नहीं होने पाई हैं। जायसी ने अपने पद्मावत में पारिवारिक संबंधों, संस्कारों, संगीत की रागनियों, मूर्ति एवं स्थापत्य कला की

बारिकियों, व्यवसाययों, वैदिक विधानों, लोकाचारों, काव्य रूढ़ियों , विविध पूजा विधानों एवं श्रंगारिक उपादानों को समावेश करते चलते हैं।

मलिक मोहम्मद जायसी एक ऐसे समय में उत्पन्न हुए जो भारतीय जीवन में धार्मिक संघर्ष को सांस्कृतिक

संबंध में बदलने वाला समय है। यह संस्कृति के इतिहास में नए जागरण का युग है। यही वह समय है जब धार्मिक विश्वासों की रुढ़ टकराहट से उबकर विभिन्न जातियों और विचारों के कवियों ने भक्ति के एक सामान्य मार्ग को खोजने के बहाने मनुष्य की एकता की खोज की। इसी समय हिंदू मुस्लिम सभ्यताएं, सांस्कृतिक व्यवहार और जीवन के क्षेत्र में एक दूसरे पर असर डालने लगी थी- वह एक दूसरे के निकट आ रही थी। ऐसे समय में जायसी ने भी अपनी उदार और समन्वयवादी दृष्टि का परिचय देते हुए अपनी कविताओं में भारतीय लोक संस्कृति और लोक जीवन का समन्वय करते हुए अपने कविताओं के माध्यम से हिंदू मुस्लिम एकता को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने हिंदू धर्म के सिद्धांतों, विवाह, संस्कार, रहन-सहन, खान-पान, तीज-त्योहार का जीवंत वर्णन किया है। पद्मावत की कथा पूर्ण रूप से भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित है। उनके नारी पात्र भारतीय आदर्श नारी का प्रतीक है।

जायसी इस्लाम के साथ-साथ हिंदू दर्शन एवं विचारधारा से पूर्ण रूपेण परिचित थे। उनको लोक मानस में निहित जीवन दर्शन की अच्छी परख थी, यही कारण है कि वह भारत भूमि पर दो विभिन्न संस्कृतियों में तादात्म्य एवं सामंजस स्थापित करने में पूर्ण रूपेण सफल हो सके। उन्हें धर्म संस्कृत, आचार- विचार, संगीत, ज्योतिष, कामकला के साथ-साथ पशु- पंछियों, ग्राम संस्कृति, अवतारवाद तथा भारतीय आभूषणों तक का सूक्ष्म ज्ञान था।

तुरकी अरबी हिंदुई, भाषा जेही आहिं
जेहि मां मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि

केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल
जो यह पढ़ै किहानी, हम संवरै दुआ बोल

सूफी संत महाकवि जायसी जहां काव्य, संस्कृति, कला एवं भारतीय संत परंपरा के प्रकाशमान नक्षत्र-पिंड है वहीं वे दो संस्कृतियों, परंपराओं एवं भावनात्मक समय के देवता भी हैं। जायसी को भारतीय जनजीवन एवं लोक संस्कृति का अच्छा ज्ञान था। वह लोक देवता के निष्ठावान उपासक थे। यही कारण है कि डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने उन्हें 'पृथ्वी पुत्र' की संज्ञा दिया है। जायसी अवध के थे। उनका अल्लाह, इस्लाम धर्म एवं संस्कृति के प्रति अटूट आस्था तथा फारसी भाषा और फारसी काव्य परंपरा से परिचय था। इसके बावजूद उनके पद्मावत पर सबसे गहरी छाप अवध की लोक संस्कृति की है, फारसी या ईरानी संस्कृति की नहीं। पद्मावत की समूची रचना सामग्री का आधार अवध का लोक जीवन और ग्राम संस्कृति है। पंडितों की दृष्टि में जिस मिट्टी का कोई मोल ना था उसी को जायसी ने आंखों में बसा लिया और उसे अनमोल बना दिया- ''दिस्टि जौ माटी सौ करें माटी होइ अमोल।'' यही कारण है कि जिस प्रकार जायसी ने लोक की महिमा को माथे से लगाया उसी प्रकार लोक ने जायसी की महिमा को।

जायसी के महाकाव्य पद्मावत की कथा का आधार है लोक जीवन का व्यापक अनुभव। इसी अनुभव से जायसी को वह प्रेम गाथा मिली है, जो पद्मावत की कथा बन गई है। जायसी लोक संस्कृति के रूप रंग व्यवहार को अपने काव्यानुभव में घुलाते चलते हैं। जायसी ने अपने कथानक में लोक कथाओं और मिथकों का व्यापक समावेश किया है। लोक कथा में निहित वीरता, प्रेम, बलिदान और आदर्श नारीत्व की अवधारणा को उन्होंने काव्य में आत्मसात किया है। इनमें जो ऐतिहासिक घटनाएं या चरित्र हैं, वे भी इतिहास से नहीं, लोक वार्ताओं से ग्रहीत किए गए हैं। जायसी ने स्वयं पद्मावत के संबंध में लिखा है- ''आदि अंत जस गाथा अहै, लिखि भाखा चौपाई कहै।'' इससे स्पष्ट होता है कि पद्मावत का कथानक लोक गाथा से गृहीत है और उसके ऐतिहासिक पाठ और घटनाएं लोक गाथा के अंग हैं। पद्मावत में 48 कथानक रुढियां है। डॉक्टर सत्येंद्र ने इनका विस्तृत विश्लेषण करके यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है

कि यह समस्त कथा रूढ़ियां लोकमानस लोक संस्कृति का आधार है। लोक वार्ताएं एवं लोक गाथाएं लोक मानस की उपज है। युगीन लोक- गाथाएं जायसी की रचनाओं का आधार है। अतः इनमें लोक संस्कृति की व्यंजना स्वतः हो गई है।

जायसी ने भारत की प्राचीन लोक कथा पद्धति को पद्मावत की कथा का आधार बनाया है :

''सिंहल दीप कथा अब गावौ
औ सो पद्मिनी बरनि सुनातौ''

जायसी के पद्मावत के नायक और नायिका भले ही राजघराने के हो, पर युग के अंतर्मन की व्यथा का पूरा का पूरा अंतर्मंथन पंक्ति-पंक्ति में झांक रहा है। लोक विश्वास, लोक- रूढ़ियों, लोक प्रथाओं के जीवंत चित्रों के सहयोग से ही कथावस्तु आगे बढ़ रही है :

''कोई करै बेसाहिनी, काहू केर बिकाइ
कोई चलै लाभ सन, कोई मूर गवाइ''

जायसी की सृजनशील कल्पना को लोक-संस्कृति की घनिष्ठ पहचान से एक व्यापक आधार प्राप्त हो गया है। उन्होंने लोक- संस्कृति के मानस-साक्षात्कार के द्वारा वह अनुभव लोक प्राप्त किया था जिसमें लोक- संस्कृति के असंख्य पक्षों या नाना-रूपों से उनकी महाकाव्य की गाथा व्यापक समृद्धि पाती है। लोक जीवन के ठेठ शब्दों की बड़ी पूंजी जायसी के पास है पर इतनी ही पूंजी लोक संस्कृति का कुल मानचित्र नहीं बनाती । शब्दों में वह लोकभूमि विचारणीय है जिसमें जन्म, राग, प्रेम, विवाह, गीत-गान, लोक-कथाएं, युद्ध, स्थापत्य' जादू-टोना, आभूषण, आभरण, श्रृंगार, मैत्री, स्मृतियां, रहस्य-रसायन, ईर्ष्या- द्वेष सब एक दूसरे में गुंथे हुए हैं। पनिहारिनों का सौंदर्य, वेश्याओं का सौंदर्य, हॉट बाजार का सौंदर्य, आनंदोत्सव, भोज, सजावट, श्रृंगार, सरोवर, शतरंज, चौगान, दूतियां- यह सभी प्रसंग मिलकर इस प्रेम कथानक का ऐसा संसार बनाते हैं जिस पर एक जीवित लोक संस्कृति की छाप अंकित है।

पद्मावत के आरंभिक सिंहलद्वीप-संबंधी वर्णन में पनिहारिनों का, हाट- बाजार का और वेश्याओं का जो चित्रण है, वह लोक इतिवृत्ति का ही यथार्थ है :

''पानि भरै आवहि पनिहारी। रूप सरूप पद्मिनी नारी।।
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भंवर लागि तिन्ह संग फिराहीं।।''

इसी क्रम में यह व्यापार- सक्रिय हाट- परिवेश भी है जिसमें रन-द्रव्य, आभरण-श्रृंगार, चकित कर देने वाले हैं :

''कनक हाट सब कुहकुहं लिपि।
बैठ महाजन सिंहलदीपी।''

रत्नसेन- पद्मावती के विवाह का जो मंडप इस कथानक में रचा गया है, वह लोक जीवन की रंगप्रेरणा के बाहर नहीं है :

''रचि- रचि मानिक मांडव छावा।
औ भुइ रात बिछाह बिछावा।।
चंदन खांभ रच बहु भांती।
मानिक दिया बरहिं दिन राती।।''

लोक कृत्य प्रसंगोचित स्थान पर आकर कथा को हिंदू पारिवारिक संस्कृति के निकट ला देती है। पद्मावती विवाह खंड में कवि ने हिंदू जाति में प्रचलित शास्त्रानुसार विवाह प्रथा का सजीव चित्र खींचा है। विवाह की हिंदू पद्धतियों को जायसी ने पढ़ा ही नहीं था, निकट से देखा था। इसलिए उसमें सजीवता का अंकन सर्वत्र दिखाई देता है :

''चांद सुरज सत भांवर लेहीं, नखत मोति
नेबछावरि देहीं। फिरहिं दुऔ संत फेरे छुटै कै,
सातौ फेर गांठ से एकै।।''

सामाजिक जीवन में प्रीति-भोजों का भी महत्व है। पद्मावत में प्रीति- भोज के प्रसंग रत्नसेन पद्मावती विवाह और रत्नसेन अलाउद्दीन मैत्री के संदर्भ में आए हैं। विवाह में गंधर्वसेन द्वारा दिया प्रीति-भोज अधिक स्वाभाविक है। इसमें विवाह के भोजन के

विधि विधान भी वर्णित है।

"भई जेवनार फिरा खंडपानी, फिरा अरगजा कुंहू
कुंहू पानी। फिरा पान बहुरा सब कोई।"

मुहूर्त, ज्योतिष, शकुन, अपशकुन जादू-टोना और अलौकिक घटनाओं पर विश्वास लोक आस्था का महत्वपूर्ण अंग है। चित्ररेखा और पद्मावत दोनों कृतियों के अनेक प्रसंगों में ज्योतिष के प्रति विश्वास की व्यंजन की गई है :

"अदिति सूक पश्चिम दिसि राहू, बीफै दखिन
लंक दिसि दाहू। सोम सनीचर पुरब न चालू,
मंगल बुध उत्तर दिसि कालू।"

पर्वोत्सव एवं ऋतु उत्सव लोक-जीवन के अभिन्न अंग हैं। जायसी ने वसंत, होली और दीपावली के उत्सव का वर्णन किया है। वसंत का वर्णन पर्वोत्सव और ऋतु उत्सव के रूप में हुआ है। दीपावली का प्रसंग नागमती वियोग वर्णन में बारहमासा के अंतर्गत आया है :

"अजहूं निठुर आउनहि बारा, परब देवारी होइ संसारा।
सखि मानहिं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि।"

वेश-भूषा लोक-जीवन को व्याख्यायित करती है। प्रेम काव्य के रचयिता होने के कारण जायसी के काव्य में नारी के वेशभूषा को विशेष महत्व मिला है, पर कहीं-कहीं योगियों, सैनिकों और जाति विशेष की वेश-भूषा का वर्णन है।पद्मावत के बादशाह दूती खंड में जोगिनी का वेश वर्णन द्रष्टव्य है :

"चंद्र बदन औ चंदन देहा, भसम चढ़ाय कीन्ह तन खेहा।
मेखल सिंधी चक्र धंधारी, जोग-बाट रुदराक्ष अधारी।"

लोक-सांस्कृतिक संदर्भों के अंतर्गत सामान्य जनता के द्वारा अपनाए जाने वाले व्यवसायों की चर्चा भी आती है। जायसी ने पद्मावत में वेश्यावृत्ति व्यवसाय, व्यापार- व्यवसाय, चारण- व्यवसाय, सोनार, माली, कलार, पटवा, बारी के व्यवसायों तथा पुरोहित एवं दूत-कर्म के व्यवसाओं का उल्लेख किया है।

कलाएं मनुष्य की अनुभूतियों की व्यंजक होती है। किसी देश या जाति की सांस्कृतिक प्रगति उसकी कला चेतना के विकास के माध्यम से जानी जाती है। जायसी के काव्य में संगीत, वाद्य, नृत्य, स्थापत्य, मूर्ति एवं वास्तु कलाओं का विवरण आया है। उन्होंने 6 रागों एवं 36 रागनियों के नाम गिनाएं हैं तथा पखावज, बीन, वेणु, महुअर, कमाइच, उपंग, तूरा, झांझ, मंजीरा, दुंदुभी, शंख और डफ आदि वाद यंत्रों की चर्चा की है।

"कनक छत्र सिंहासन साजा,
पैठत पंवरि मिला तेहि राजा।"

जायसी ने दो प्रकार के नृत्य का वर्णन किया है। लोक-नृत्य नर्तकियों का नृत्य। इनके द्वारा प्रस्तुत नगर, महल और दुर्गों के विवरण उस युग की मूर्ति एवं स्थापत्य कला का बोध कराते हैं। इनसे इस तथ्य का ज्ञान भी होता है कि लोक कथाओं के नायकों एवं युगीन राजाओं के भव्य वैभव की परिकल्पना जनमानस में कैसी थी।

"हीरा ईंट कपूर गिलावा, मलयागिरी चंदन सब लावा।
चूना कीन्ह औंटि गजमोती, मोतिहु चाहि अधिक
तेहि जोति।।"

जनसाधारण की जीवन-स्थितियों का बोध उनके द्वारा मनोरंजन के लिए खेले जाने वाले खेलों से होता है। लोक- संग्रही कवि जनजीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने के लिए अपनी रचनाओं में जन संस्कृति के इस पक्ष का चित्रण करते हैं। जायसी के काव्य में चौगान, पासा और शतरंज का उल्लेख है। जल-बिहार के साथ-साथ लकुट-रास और धमार का चित्रण पद्मावत में आया है।

जायसी की रचनाओं में भारतीय जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक झांकी सर्वत्र मिलती है। नागमती भारत की पतिपरायण नारी का आदर्श प्रस्तुत करती है :

"ऐ रानी मन देखु बिचारी
ऐही नैहर रहना दिन चारी"

में 'सास ननद बोलिहि जीउ लेही' आदि के माध्यम से संयुक्त परिवार का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह विशुद्ध रूप से भारतीय हिंदू परिवार का ही चित्र है।

पद्मावत की संरचना में लोकगीतों की भाव भूमि और संवादधर्मिता जगह-जगह मौजूद है :

''आई बजावति बैठि बराता,
पान फूल सिंदूर सब राता।''

जायसी के काव्य की भाषा वर्णवस्तु की तरह लोकजीवन से अभिन्न है। उन्होंने आज से 500 वर्ष पहले गांव की जनता की बोल-चाल की भाषा को काव्य भाषा बनाया। जिसमें प्राचीन पूर्वी अवधि का स्वाभाविक मिठास विद्यमान है। जायसी की काव्य भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता उनके शब्द चयन में ओत-प्रोत भारतीयता है। जिसके बल पर उन्होंने विदेशी और विजातीय आदर्शों और सिद्धांतों को इस देश के संस्कारों के वातावरण में प्रस्तुत कर सकते में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। अल्लाह को करतार, पैगंबर मोहम्मद को वासीठ, उनके यारों को मीत, उस्मान को पंडित, कुरान को पुरान, कलमों का वचन, किताब को गिरंथ कहकर इस्लाम के प्रसंग में हिंदू धर्म की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग इनकी इसी विशेषता को स्पष्ट करता है।

''संवरौं आदि एक करतरू''
* * * * * * *
''प्रथम जोति विधि तिन्ह कै साजी।''

जायसी की भाषा का एक-एक शब्द लोक संस्कृति की कहानी कहता है। इनका उपमान विधान काल्पनिक नहीं है। असंख्य उपमान लोक जीवन से चुने गए हैं। जायसी द्वारा प्रयुक्त तेलिया, केचुरि, खूसट, रहट, रेहू, तेली, बैल ओरी, दीपक-बाती, महबट-नरूि, ओला, भार, खंगरा, थूनी, थाम घुंघुची, गोहूं, लोना, हारवा, सरौता, राममुनी, पीजर लहू, पूरी, मेहंदी, सुराही, करील, अमिली, महुआ, मकरि कतार, लेजुरि, झड़बेरी, गेरू, गुड, चाट, सावन नीरू, कौड़ी बेरी, माला, मकोय, आदि उपमान लोक-जीवन से संबंध हैं।

''नैन चुवहिं जस महवट नीरू।''

जायसी अवध प्रदेश के कवि हैं। और अवधी भाषा पर उनका सहज अधिकार है। यह भाषा भावानुरूप कितनी मीठी और कितनी दक्ष है, जायसी इसे अच्छी तरह पहचानते हैं। अवध का लोक जीवन भी कितना मृदु और कोमल है, जायसी इसके भी खरे पारखी हैं। वे अवध प्रदेश की धरती से अपने लंबे सहचार्य के नाते उसके एक-एक रग रेशे से भली-भांति परिचित हैं। वे मूलतः एक ग्रामीण एवं लोक भाषा के कवि हैं, और अपनी इसी दृष्टि से ही उन्होंने रत्नसेन, नागमती, पद्मावती, अलाउद्दीन तथा उनके साथ जुड़े सारे आख्यान को देखा है। उनकी सारी कल्पना उनका सारा निरीक्षण, वह जीवन का हो या प्रकृति का, मनुष्य से संबंधित हो या मानवेतर हो, उनकी निपट ग्रामीण एवं लोक दृष्टि का ही साक्ष्य देता है। उनकी भाषा ही नहीं, उनके उपमान, कथा कहने की उनकी शैली, पात्रों की मनोवृतियों को थाहने पहचाने का उनका तरीका, सब कुछ, उनके ठेठ ग्रामीण लोक अंदाज को ही सूचित करता है।

जायसी ने बिंबो की योजना में लोक मानस का आधार लिया है। ग्रामीण जीवन की वस्तुओं में जायसी ने ओलानी की धार का बिम्ब दिया है। वह रूप साम्य के आधार पर है :

''बरसै मेघा झकोरि झकोरि,
मोर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी।''

रहट का बिम्ब जायसी को प्रिय है। उन्होंने एकाधिक स्थान पर इसका प्रयोग किया है :

''भए वे नैन रहंट की घरी,
भरी ते ढांरी छूढ़ी भरी।''

भाषा में लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग उनकी अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ाते हैं जायसी ने लोक संस्कृति की कहानी लोकोक्तियों के माध्यम से कहीं है। लोकोक्तियों

का प्रयोग इनकी सभी रचनाओं में मिलता है। इनके प्रत्येक छंद में किसी न किसी लोकोक्ति, कहावत अथवा मसले का बड़ा ही सफल प्रयोग हुआ है। जायसी ने इनके द्वारा ईश्वर प्रेम, नेकी दान, अहं की व्यर्थता और भाग्यवाद के प्रति विश्वास की व्यंजना की है :

''अब साईं सो नेह करू, फेरि न यह संयोग।
कोल्हू से खरि ऊतरी, रही बैल के जोग।''

जायसी की कविताओं में लोक विश्वासों और धार्मिक परंपराओं का सुंदर समन्वय मिलता है। उनके काव्य में हिंदू देवी-देवताओं सूफी विचारों और इस्लामी प्रतीकों का समन्वय दिखता है जो लोकधर्म की समन्वयकारी भावना को प्रकट करता है। जैसे नायक के रूप में रत्नसेन, गूढ़ संकेतों में आत्मा-परमात्मा की एकता आदि लोक धार्मिक विश्वासों का हिस्सा बन जाता है।

जायसी के कविताओं में स्त्रियों का चित्रण भी लोक जीवन के परिपेक्ष में हुआ है। जायसी के काव्य में स्त्रियां केवल सौंदर्य की प्रतीक नहीं है, बल्कि वे लोक नारी की भूमिका में है। नारी की वेदना, प्रेम, त्याग, ईर्ष्या और आत्म बलिदान का चित्रण उनके काव्य को लोक संस्कृति के करीब लाता है। पद्मावती और नागवती जैसे स्त्री पात्रों के माध्यम से उन्होंने स्त्री मन की भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है जो तत्कालीन लोक समाज की स्त्री संवेदनाओं को उद्घाटित करती है।

जायसी के कविताओं में प्रकृति का चित्रण भी लोक जीवन के परिपेक्ष में हुआ है। जायसी की कविताओं में प्रकृति का चित्रण अत्यंत संजीव और लोक प्रेम से ओतप्रोत है। ऋतु वर्णन, पशु- पक्षियों का उल्लेख, ग्रामीण परिवेश, पर्व-त्यौहार, मेलों और आस्थाओं का समावेश उनके काव्य में लोक जीवन की आंतरिक आत्मा को प्रकट करता है।

जायसी की कविताओं में लोक संगीत और लोक छंदों का सुंदर प्रयोग हुआ है। जायसी अपने कविताओं में छप्पय, सोरठा, दोहा आदि छंदों का प्रयोग करते हैं जो लोक मानस और लोक गायन की परंपराओं से जुड़े हैं। यह छंद शैली उस समय की लोकगीतों और संगीत परंपराओं से निकटता बनाए रखती है। इससे पता चलता है की जायसी न केवल एक कवि थे बल्कि लोक गायक की संवेदना और सरोकारों से भी जुड़े थे।

समग्रता कहा जा सकता है कि जायसी का काव्य लोक संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है। उनकी कविताओं में लोक जीवन की आत्मा बसती है- चाहे वह भाषा हो, भाव हो, कथावस्तु हो या प्रतीक। उन्होंने लोक कथाओं को काव्य का रुप देकर उन्हें अमर बना दिया। उनकी भाषा, उनकी कल्पना, उनकी अभिव्यक्ति शैली इन सब का लोक जीवन से सीधा संबंध है। वे बड़ी सहजता के साथ एक आत्मीय रूप में हिंदू परिवारों में प्रवेश कर गए और उनके एक-एक विश्वास, मान्यता, रीति-रिवाज, तिथि-त्यौहार, आदि को बड़ी विश्वसनीयता के साथ उनके समक्ष प्रस्तुत किया। पद्मावत सच पूछा जाए तो लोक जीवन का महाकाव्य है। जिस मिट्टी से जायसी का संबंध था उसकी सारी महक उसमें आदि से अंत तक व्याप्त है।जायसी की रचनाएं आज भी इसलिए प्रासंगिक हैं क्योंकि वे लोक जीवन की सच्चाई, संवेदना और सौंदर्य को प्रतिबिंबित करती हैं। इस दृष्टि से जायसी न केवल भक्त कवि हैं, बल्कि लोक संस्कृति के एक सशक्त संवाहक हैं। निःसंदेह जायसी अवधी भाषा के शीर्षस्थ कवियों में अपनी लोक जीवन की खरी पहचान के नाते हमेशा याद किए जाएंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. जायसी : एक नव्यबोध- अमर बहादुर सिंह 'अमरेश', साहित्य कुटीर लखनऊ, 1979
2. जायसी : राम पूजन तिवारी, राधा कृष्ण प्रकाशन नई, दिल्ली, 1965
3. जायसी : विजय देवनारायण शाही, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 2012

4. जायसी और उनका पद्मावत : एक सर्वेक्षण : राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1962
5. सूफी महाकवि जायसी : डॉक्टर नारायण प्रसाद वाजपेई, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 1971
6. जायसी कोश : आशा किशोर, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1976
7. जायसी ग्रंथावली : संपादक रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008
8. सूफी कवि जायसी का प्रेम-निरूपण : डॉक्टर निजामुद्दीन अंसारी, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, 2014
9. जायसी आकलन के आयाम-संपादक : सदानंद शाही, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद , 2006
10. पद्मावत की जमीन : डॉक्टर विद्योतमा मिश्रा, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 2001
11. जायसी : परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
12. जायसी का शिल्प विधान : डॉक्टर छोटेलाल दीक्षित, अतुल प्रकाशन, कानपुर, 1982

Jatra : Bengal's Grand Folk Spectacle

Suparna Chatterjee
HOD - Music
Nistarini College
Purulia

Abstract :

The cultural tapestry of Bengal is deeply interwoven with performing arts that serve as both entertainment and social commentary. The author in this work has established the inseparable relationship of music in the folk theatre, particularly with the Jatra which is an immensely popular form of folk culture in Bengal, and the eastern India in general, including the neighbouring Bangladesh. The Jatra initially dwelt upon the puranic themes and other folklores, but with the passage of time, the composers of plays got them attuned to the social and political issues of the country depending on the needs of the hour. The themes of the twentieth century jatra has undergone a sea change in comparison with the tradition of the earlier trends practiced in the eighteenth or nineteenth century Bengal and the type of music which has been playing a significant role in the propagation of Jatra among the masses of the country has passed through long alleys of renovation. This study further explores how these melodic shifts mirror the changing heartbeat of the Bengali people.

Key words :

Folk theatre, Jatra, music.

1. Introduction :

The historical evolution of Bengali performance art is inextricably linked to the shifts in regional identity and collective consciousness. Within this context, the structural integration of melodic elements serves as a vital lens through which the modernization of traditional theatre can be analysed. In the scenario of Indian cultural tradi-tions, the folk theatre based on folklores have been resonating the ambience of popular entertainment composed with the synthetizations and amalgamation of diverse forms of extravaganzas blended with music, dance, drama and folk theatre to name a few of the art forms[1] that bear a deep-rooted bond in the local character imbibed in the multi-ethnic and multilingual society and the innate indigenous culture, each of which is distinguished by its own traits of uniqu-eness in its manifestation. The folk theatres depict various facets of the local culture portraying social phenomena of human behaviour, beliefs, rituals and social norms[2].

The tradition of the folk theatre and the accompanying folk music has the legacy of being manifested in both the unsophisticated, yet pleasing, bucolic, pastoral forms of expression of language and the refined tenor of elegance and subtlety in urbanized expressions of the devotional themes, love ballads and the sagas over the intrepidity of the protagonists of the play. Although the tradition still continues harping on the themes pertaining to the epochs dating back to sixteenth century, in the twentieth century, it has undergone a radical change and particularly in post-independence era, the art form has assumed a new dimension in dissemination of the real problems engulfing the society along with its being a form of entertainment[3]. The role of music in folk theatres based on the folklores is by no means a lesser one as it promotes the audience to get drifted to the theme of the theatrical play making them share the weal and woes as well as the ecstasy and euphoria of the characters involved in the narrative. The *Jatra*[4] an exceedingly popular form of folk theatre in the eastern India, namely in the states of Orissa, Bihar, West Bengal and also the neighbouring country of Bangladesh, has its origin in the fifteenth century when the *Bhakti* movement swept the country. The music in the *Jatra* follows the combination of classical, semi-classical as well as the folk songs accompanied by drums, flutes, violin, cymbals, harmonium, clarinet, *pakhwaj, tabla, khol and dholak.*

2. The Folk Theatres in India :

The technical and thematic fluidity of Jatra underscores its enduring relevance as a medium of mass communication. This stylistic progression highlights the medium's capacity to synthesize classical heritage with contemporary socio-cultural exigencies. As already mentioned in the introduction, the folk theatre is the outcome of the amalgamation of aspects of "music, dance, pantomime, versification, epic and ballad recitation, graphic and plastic arts, religion and festival peasantry[5]" and is established on its widespread acceptance of the people in general throughout the Indian subcontinent harping on the tunes of the messages on social, political and cultural matters and has been playing a very significant role to arouse the consciousness of the millions of Indians deprived of basic education and literacy. The themes at the initial stage of development of this art form mainly concentrated on the folklores based on themes of devotion to deity, religion, mythology and the myths of some intrepid warriors and saviours of the suppressed people in general.

The structural morphology of regional performance art is best understood through its fundamental ideological divisions. The folk theatre broadly classified into two categories such as religious and secular gradually emerged as the "Ritual Theatre and Theatre of Entertainment respectively[6]." The most widely known forms of the folk theatre include[7], *Bhand Pather* (Kashmir), *Saang* (Rajasthan, Haryana, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh), Nautanki (Uttar Pradesh), *Raasleela* (Mathura, Vrindavan in Uttar Pradesh, West Bengal), *Bhavai* (Gujrat), *Jatra* (Bengal, Orissa, Bihar), *Maach* (Madhya Pradesh), *Bhaona* (Assam), *Tamasha* (Maharashtra), *Dashavatar* (Goa and Konkan), *Krishnattam, Mudiyettu and Koodiyaattam* (Kerala), *Yakshagana* (Karnataka), *Therukoothu* (Tamil Nadu), Harikatha (Andhra Pradesh, Telangana, Maharashtra and Karnataka), Burra Katha (Andhra Pradesh and Telangana).

In this work, the author tries to establish the influence of music on Jatra, a form of folk theatre prevalent in Bengal and the eastern part of India in general.

2.1 The *Jatra* in Bengal :

The performative landscape of Eastern India is characterized by a sophisticated synthesis of oral tradition and rhythmic storytelling. Central to this heritage is a multi-sensory theatrical apparatus that bridges the sacred and the secular through rigorous aesthetic discipline. The *Jatra* most popular form of folk theatre in the eastern India is presented through a combination of acting, rendition of songs, dance and music and playing of a plethora of instruments at high pitch of sound and with sensational gestures to create a flash of inspiration among the members of the audience. The *Jatra* sprouted in Bengal in 16th. century by the direct inspiration from Sri Chaitanya[8] emerging as *Krishna Jatra (Chaitnya Jatra)* and by degrees became by its own merit of popularity and sensitivity of themes as a medium of manifestation of people's social problems with the passing of decades beyond the Chaitanya era. The other forms that evolved are known as *Shakti Jatra, Nath Jatra* and *Pala Jatra*. As divulged in BANGLAPEDIA[9], performances of the *Jatras* were arranged in the temple yards, on the sites of public festivities and courtyards where the spectators used to surround the public stage on a raised platform, a practice which is still in existence in modern renditions of *Jatra*. Music and songs with the accompaniment of *Dholak, Mandira, Karatal* and *Khol* dominated a major part of the drama intended to communicate the true message of the theme of the story. As the cultural appetite of the region shifted toward more realistic and fast-paced narratives, established theatrical conventions were recalibrated to better engage contemporary sensibilities. With the changes introduced by Madanmohan Chattopadhyay[10], the mode of presentation underwent a metamorphosis through introduction of prose dialogue, shortened lyrics of songs, replacement of classical ragas with trendy popular songs.

2.2 Music in *Jatra* :

In the twentieth century, the Jatra like any other medium of public entertainment, passed on to professional houses from amateur hands and staging Jatras performed by professional artists and companies of private proprietorship acquired popular recognition as operas which is evident from the names of such groups attaching the word "opera" to the brand name of their company. The institutionalization of traditional performance art marked a significant departure from community-based roots toward a more structured commercial framework. The Jatra, the dramas not only include the prosaic dialogues used in common parlance, but also is replete with musical soirees and dances including chorus and solos to keep the audience spell bound during the performances on the stage. The urban intellectuals acquainted with the western culture of histrionic and musical renditions came across with the similarities in the style of performance and the themes as well consisting of songs, music arranged in structures usually found in burlesque or librettos found in theatrical spectacles of the nineteenth century Europe and preferred to use the term "Opera" which became synonymous with the entities organizing dramas in different corners of Bengal[12]. Adopting the "Opera" label signalled a shift toward professional, high-quality entertainment, promising the audience

a spectacle of high-production value that went beyond simple folk storytelling.

It is needless to say that *Jatra* that has been passing over as one of the strong cultural traditions in Bengal's cultural arena and this continuity for centuries and decades since its inception can be traced back to the prolific use of music in variegated forms contributed by lyricists and composers, the most notable of them, who have made a permanent niche in the development of the libretto-type theatrical rendition or more precisely, the opera culture in Bengali, include, "Paramananda (1733-1823), Govinda Adhikary (1798-1870), Krishnakamal Goswami (1810-1887), Brajamohan Roy (1831-1876), Nilkanta Mukhopadhyay (1841-1911), Madanmohan Chattopadhyay and Mukundadas (1878-1934)[13]".

Apart from the classical and semi-classical traditions of music that had been in vogue in the musical firmament of Bengal including the Kirtan, there were numerous other popular forms created and disseminated by the wandering minstrels like *Charans* and *Bauls* and also the folk songs in the form of "Letogaan, Bhadugaan, Kobigaan, Kathakatha, Jhumur"etc. composed by artists of rural sectors of Bengal.

The paragraphs below enunciate and leaves a brief account of the exotic incorporation of the said types of songs and music in the *Jatras* of Bengal.

2.2.1 Kobigaan :

Beyond the purely narrative structures of traditional drama, the evolution of Bengal's performative arts was significantly shaped by the emergence of improvisational oral contests. '*Kobigaan* or *'Kobir Larai'* predominated the scenarios of *Jatra* during the nineteenth century which is, indeed a duel among two or more poets harping on episodes on the mythological themes. The performance included an extempore debate in verse between two poets or *Kobiaals* supported by their assistants known as "*Dohars*" with the accompaniment of dances like *Khemta* and *Kheur* and the befitting music. Usually, it was performed in open space of fairgrounds in the courtyards of *Zemindars* surrounded by the large group of enthusiastic watchers who cheered up the poets of their own choice to attack his opponent with sensual, erotic, and lewd comments through the extempore lyrics. The winning poet was the usual recipient of a prize awarded by the local *Zemindar* or the Landlord[14]. or The picture below as

Reference : DARICHA.
Weblink: https://www.daricha.org/sub_ genre.aspx?ID=38&Name=Kobi%20Gaan

presented by DARICHA[15] illustrates the performance of duel between two poets in the nineteenth century Bengal incorporation of which in *Jatras* was an additional tool for the opera organizers to draw larger crowds and wider appreciation of the themes propagated by them at the cost of the earlier subtle themes of spiritual and patriotic leitmotifs :

2.2.2 Juri gaan :

The transition of Jatra from its rudimentary folk roots to a more refined theatrical structure was largely catalyzed by the innovative interventions of visionary practitioners. Madanmohan Chattopadhyay of Chandannagar, Hoogly one of the most famous composers of *Jatra*, popularly known as "Madan Mashter," introduced reforms by bringing in changes in the presentation of songs and dances in this popular performing art. His popular *palas* or plays include Prahlad-charitra, Rambanobash, Harishchandra, and Vidya-Sundar[16].

Madanmohan set a new trend in the music in *Jatra* by insertion of chorus, that came to be known as *Juri* song. In this style of rendition of music, *Juris* or the artists consisted of a group of performers who had the expertise in rendering both folk and the classical music. In absence of the female performers, the voice of the adult singers was used to render the male voice and the voices of the young singers and teenagers were used to perform the role of a female singer. However, the musical rendition in *Jurigaan* system usually took large chunk of time of the *performance of Jatra,* which became a source of boredom of the spectators and so it gradually made an exit from the musical part practised in the *Jatragaan* and got replaced by the "Vivek."

2.2.3 Vivek :

The drive toward modernizing Jatra's auditory framework necessitated a critical re-evaluation of established choral traditions to enhance the dramatic pacing of the performance. Mathur Shah, a noted *Jatra* composer, formally discarded the juri system in 1911 without making any curtailment of the musical sequences which were designed to attract the crowd. In the newly introduced system, a fictitious character was introduced[17], named 'Vivek', meaning the 'Conscience', who had access to anywhere in the midst of the characters, be it 'in bed chamber, in a king's court, in heaven, in hell, in a burning ghat, in a forest, in a street. He enjoys unrestricted freedom. As and when any wrong is done by a particular character, Vivek turns up and warns in a song. If a king is doing wrong, unfair or injustice, the Vivek suddenly appears to check him. Vivek often comes like a madman-his head and feet bare, eyes glazed, beard tangled - he wears a robe of black, saffron, or white. The movements are usually sharp, agile, and conclusive. He enters the gangway on the run and disappears in the same way.' It is the role of an ideal person, who 'could also be the brother of a villain, a genuine servant, a monk, a beggar or a guru[18], preaching the true philosophy of life involving solidarity, fraternity, and philanthropy and through his songs shakes the conscience of the evildoer. It may be mentioned here that the 'concept of Vivek was popularized by the playwright-actor Ahi Bhusan[19] Bhattacharya'.

2.2.4 Sakhir Gaan (Songs of dancing girl) :

The early twentieth century marked a pivotal shift in the aesthetic priorities of folk drama, as practitioners sought to

reconcile traditional vocal structures with the demands of an evolving urban audience. The trend setters in Jatra, like Motilal Ray, introduced[20] a technique of staging a dance and music to permit the artists to get prepared for the new scene or act which called for change in attire and rearranging the sets of scenarios. This tactics of eliminating the changeover period by maintaining the continuity of performance was of course a novel phenomenon that came to stay in the Jatras for over a long time until in the mid-sixties, when the modernization of the stages of Jatra and more sophisticated use of techniques of lighting gradually pushed this practice to extinction.

3. Political *Jatra* :

The landscape of folk performance underwent a radical ideological shift as the burgeoning struggle for independence demanded more potent vehicles for political mobilization. The partition of Bengal in 1905, sparked off the *Swadeshi* movement when the intellectual class of Bengal and rest of India felt the need of a cultural medium for the dissemination of the concept of nationhood and propagate the idea of solidarity to fight against the British Imperialists. At this critical hour, the *Jatra* emerged[21] as a vital medium to convey the political ideas and the patriotic feelings amongst the common illiterate masses to strengthen the agitation against partitioning of Bengal. During this juncture, nay the critical hour of our endangered identity, the *Jatra* played an especially vital role in the propagation of the thoughts of freedom movement during the rest of the British domination. It is needless to mention that Mukunda Das served as the trailblazer to awaken the masses through his performance in the stages and he and his ilk made the leaders feel that they could create a more charming and convincing effect on the audience than 'hours of platform speaking[22]'. Das showed that how the cohesiveness and solidarity can attain reality through the rendition of patriotic songs during the performance of *Jatra* in a stage, held in Jessore, when "Women audiences were reported to have broken their English made glass bangles, in a fit of excitement[23]."

In the post-independence era Utpal Dutta, the famous stage player and film actor also staged many of his dramas in the form of political *Jatra* to propagate the concept of an exploitation-free society. Dutta believed that music was a part and parcel of the *Jatra* and so "He resurrected outmoded elements like the narrator and *Vivek* (Conscience), by means of investing certain characters with the task of acting as conscience[24]." Dutt had reintroduced these two types of musical trend as a clever stratagem to reflect the scenario of the mock-trials before his audience with the *Vivek* and *Jury* as the judges in disguise and the spectators as the jury in a trial court where the latter are sworn to decide a case or give a verdict by examining the evidence in a court, thus making it almost improbable for the audience to witness the theatrical episode as mere meek spectators but getting imbued with the theme of the story and react concertedly to rise relentlessly against the social oppression and injustice[25]. The bold presentation of the rebellion of the monks in Bengal that took place about two hundred and fifty years back, in one of his best theatrical performances attuned to the tenor of *jatra* in *Sanyasir Tarabari*[26] (The Crusade of the Monk) was probably the most brilliant allegory that was utilized by Dutt to make it conspicuous to his audience that the atrocity with which the rebellion was suppressed is still pursued with

more brutal and barbarous approach to silence the people's voice in the twentieth century, making the fetters of suppression invulnerable and perpetual.

As reported by Banerjee[27] , "Attempting to preach nationalism to villagers, Das (Mukunda Das) heavily relied on the structure of the *jatra*-its operatic conventions, melodramatic gestures and hypnotic songs, "all of which unfailingly captivated a rural audience" (Bharucha 1983, 90).

Reference (28): https://yakshagana.com/ jatra-folk-theater-of-india-by-balwant-gargi-continued/

The above photographs depict the scenes of *Jatra* published by YAKSHA-GANA.

Conclusion :

In the annals of the evolution of the folk culture and traditions, it has been observed that folklores have been playing an important role to give birth to various novel streams of culture such as *Rasleela, Nautanki, Jatra* and in many other forms thriving for centuries throughout the Indian subcontinent, nay the world, which in general have its genesis in mythology, fairy tales, the saga of the legendary figures shaping the destiny of the society.

In whatever form it is encountered, it is a common experience to watch that music has been playing a vital role in the folk theatres and its importance in the animation of the dispirited soul, still now is amply relevant to the Indian Society. The *Jatragaan*, which is a folk culture, derived its stories not only from different folklores of the Puranic events of the ancient ages and fairy tales but has drawn its inspiration from the social and political problems also with the passage of time. In this respect, down the lanes of the history of the folk theatre, music made its presence conspicuous by its eternal appeal by capturing the emotion of millions of spectators and drove them to enter a bond of solidarity as fellow human beings and fight for a common cause.

Bibliography :

1. Theatrical Conventions and Performance Styles. https://theenglishprofessor.in/folk-traditions/ (Accessed Jan. 26, 2024).
2. Grover, Neha. Folk Theatre -Art and Culture Notes. https://prepp.in/news/e-492-folk-theatre-art-and-culture (Accessed Jan. 26, 2024).
3. ibid.
4. Jatra, The Bengali Folk Theatre of East India and Bangladesh. https://disco.teak.fi/asia/jatra-the-bengali-folk-theatre-of-east-india-and-bangladesh/
5. Folk Theatre. https://www.insightsonindia.com/indian-heritage-culture/theatre/folk-theatre/
6. ibid.
7. ibid.
8. *Jatra* . BANGLAPEDIA.
9. ibid
10. ibid
11. Ghatak, Arpita. Jatragaan in Bengal: A Study in Musical Traditions. https://www.academia.edu/62602309/Jatragaan_in_Bengal_A_Study_in_Musical_Traditions.
12. ibid.
13. ibid.

14. ibid

15. Kobi Gaan. DARICHA, Window to India's Indigenous Heritage. https://www.daricha.org/sub_genre.aspx?ID=38&Name=Kobi%20Gaan (Accessed on 01/27/2024).

16. Banerjee, Sumanta. A Tale of Two Cities Under Colonial Rule: Chandernagore and Calcutta. OCCASIONAL PUBLICATION 39. https://aws-static.iicdelhi.in/s3fs-public/2020-11/283210August292012_IIC%20Occasional%20Publication%2039.pdf (Accessed on 01/27/2024).

17. IndiaNetzone. *Vivek in Jatra*. https://www.indianetzone.com/59/vivek_jatra.htm

18. ibid.li

19. ibid

20. Ghatak, Arpita. Jatragaan in Bengal: A Study in Musical Traditions. (n -11).

21. Patra, Manasi. Das and "Swadeshi" Jatra: Making Jatra Political in Bengal. Volume 16 2023, Journal of the Department of English. Vidyasagar University Midnapore-721102 WB. http://inet.vidyasagar.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/6780/1/13_Manasi%20Patra.pdf

22. ibid

23. ibid.

24. ibid.

25. Banerji, Arnab. "Rehearsals for a Revolution: The Political Theater of Utpal Dutt." South Eastern Review of Asian Studies (2012). https://digitalcommons.lmu.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1004&context=thea_fac

26. ibid.

27. ibid.

28. Gargi, Balwant. Jatra (Folk Theater of India). Yakshagana. https://yakshagana.com/jatra-folk-theater-of-india-by-balwant-gargi-continued/

Technical terms on Music in Bharatakośa

Prof. V. Premalatha
Head, Department of Music,
Dean, School of Performing Arts and Fine Arts,
Central University of Tamil Nadu, Thiruvaur

Mr. Arutla Rohith
Research Scholar,
Department of Music,
Central University of Tamil Nadu, Thiruvaur

Abstract :

Bharatakośa is a very important work in Samskrta compiled by Manavalli Ramakrishna Kavi and published in the year 1951 and then reprinted in 1999. This is actually a dictionary of technical terms on music and dance, with corresponding extracts from various works on music and dance. Kavi has meticulously prepared and presented this dictionary, which would be a valuable source of reference to those who wish to undertake a serious study on the history of Indian music and dance.

The present article gives a detailed noted on the various aspects of the book, the manner in which the information is presented and their significance. Though the work gives references to many works, the original source to the terms had to be found out. Bharatkoœa will also help researchers and scholars to understand the application and usage of different technical terms used in Indian Music and Dance tradition, over the years. Since many are not aware of this important book, the present article, will be an eye-opener for present day researchers and proceed their study in a more systematic manner.

Key-words :

Nāṭya, Gīta, Bharatakośa, Ramakrishna Kavi, Lakṣaṇa grantha.

1. Introduction :

Bharatakośa is a dictionary of technical terms with definitions on music and dance, collected from various Saṁskṛta works written by Bharata of 2nd century to the works of 18th century. This book consists of technical terms in the form of extracts and quotations from various musicological works. The terms that occur in this book can be grouped under the topics, gīta, vādya and nāṭya, including nṛtta, rasa and bhāva. These terms are collected and compiled, in a highly meticulous manner and arranged in alphabetical order. The author of this book is Manavalli Ramakrishna Kavi, who had made this magnum opus creation possible, out of his rich experience for six to seven decades in surveying, collecting, studying and editing hundreds of unpublished musical texts from various manuscripts libraries of India (Kavi, 1951, p.i).

The present article is to understand the organisation and presentation of the technical terms by Manavalli Ramakrishna Kavi (hereafter to be called as Kavi) in his Bharatakośa and bring out the importance of the book.

2. Brief note on the Book :

Bharatakoœa was first published in the year 1951 under the authority of Sri Anna Rao, Executive officer on behalf of the board of trustees, TTD Tirupati. Later, it was reprinted in 1999 by TTD Religious Publications, under the initiative of Dr. I. V. Subba Rao, I.A.S., Executive Officer, T.T.D., Tirupati. Bharatakośa happens to be an outcome of Kavi's dedicated study in bringing out Abhinavabhārati and in connection to that, numerous Saṁskṛta works.

3. Structure and organisation :

The book consists of an introduction by Kavi in English for 26 pages, which is then followed by the actual compilation of terms from pp.1-784. Few more terms, probably left over in the earlier list has been given under "Pariśiṣtam" till p.984. Each of these are elaborated below.

3.1 Introduction :

This is a unique section of Bharatakośa (BK), wherein Kavi has provided an overview of several Saṁskṛta works, authors, commentators and information related to the contents and availability of the works. At the end he also acknowledges the various sources like the libraries, Rulers, patrons and his research assistants, for the comple-tion of the work.

He outlines its content thus :

"(1) the extension of each subject, (2) the manner of the inclusion of the technical terms and (3) a bibliographical notice of authors who contributed material for the denotation of each word the authors whose works have contributed to the definitions."

(Kavi, 1951, p. i)

The introduction of BK holds paramount importance. A brief note on the kind of information found in this section is given below.

- **Basic information** like – Name of the work, author and date:

  E.g.:- Hammīra – author: Śṛṅārahāra.

  He must have lived earlier than 1300 A. D (Kavi, 1951, p.viii).

- **Identity of the authors :**

  E.g.:- Mokṣadeva, son of Bhīmadeva, minister to King Bhīma of Gujarat.

  Mokṣa was also a commentator on Lilāvati (Kavi, 1951, p.ix).

- **Clarification or authenticity of Authors :**

  The author also shares his view on instances where the same name appears across different periods, leading to confusion.

  E.g.:- Jagadekamalla of the modern period and Jagadekamalla of 1100 A.D. are two different individuals (Kavi, 1951, p. xxvi).

- **Content briefing :**

  Chapters and their contents of the works are mentioned.

  E.g.: Saṅgītaratnavali by Somanātha consists of nine small chapters composed in 1180 A.D (Kavi, 1951, p.iv).

- **Names of Instruments :**

  E.g.:- Varieties of vīṇa-s – such as Vīṇottama, Brahma vīṇa, Kailāsa and

nearly 30 other names – as mentioned in Panditārādhyacaritam of Pālkuriki Somanātha, a Telugu work (Kavi, 1951, p. vi).

- **References to Unknown Works :**

  Certain works that are known to us because they are quoted or cited in other surviving texts.

  E.g.: Maṇidarpaṇa, Caturasabhāvilāsa, Kātyāyana found within Tālakalāvārdhi (Kavi, 1951, p.xxii).

Thus, this section serves as an excellent gateway for a scholar to understand the whole book.

3.2 The Index :

This is the main section of the work, that is, the huge list of technical terms. It begins with a Maṅgala Caraṇa in Saṁskṛta (p.1), where Kavi speaks of his family lineage, with details of his Grandfather Venkatakuppa, father Rama Sastri and himself. This is followed by listing of the authors on Bharata (writers on Indian music and dance). It is noted that Kavi had quoted in his BK, the extracts from these authors. At the end, he conveys his gratitude to, Narasimha tatacharya who was a rese-arch student for assisting in this project.

From p.3, begins the lists of terms as found in various works starting with 'अ' and goes in alphabetical order. Most of the technical terms belong to a broader topic or an area like svara, gīta, rāga, prabandha, tāla, nātya, vādya, etc. For each entry, the key term is given first, followed by the broad area it belongs to, then its meaning, and finally the name of the author.

A sample from the book is presented below:

1 2 3 4

अंशः - जातिलक्षणम्

अयमपि दशलक्षणः ।

यस्मिन्भवति रागश्च यस्माच्चैव प्रवर्तते।
मन्द्रश्च तारमन्द्रश्च योऽत्यर्थमुपलभ्यते।।
ग्रहापन्यासविन्यासन्याससन्यासगोचरः।
अनुवृत्तश्च यस्येह सोंऽशः स्याद्दशलक्षणः।।

भरतः

Fig.-1

The arrow marks given above will illustrate the arrangement of technical term and other details.

- **1 -** points to "Aṁśaḥ" – the technical term.
- **2 -** points to "Jātilakṣaṇam" – the broader topic to which the technical term belongs.
- **3 -** verses extracted from Bharata's work
- **4 -** "Bharata" – the author's name.

Names of the authors are provided in BK in shortened form as follows :

Śārṅgadeva	Śārṅga
Nāṇyadeva	Nāṇya
Vemabhūpāla	Vema
Jagadekamalla	Jagadeka
Anūpasiṁha	Anūpa

For a few terms, the broad area or topic is not specified. In some cases, the author's name is not provided, but the name of the work is quoted. There are entries where neither the author nor the broad area can be seen. In such instances where the information was not available, Kavi has given his own interpretations as prose passages based on context and his understanding

and also wherever it is felt necessary. The sample pages below will be illustrative.

उरभ्रमसंबाधम्

स्वस्तिकयकृतितां नीत्वां निभ्रन्तो बहिरेव तत्।
करौ निवृत्तौ वेगेज्ञ मिथस्सांमुख्यधारिणौ।
यत्रोरोभ्रमसंबाधचालयं तत्तुदीरितम्।।

Fig-2

In the above figure (Kavi, 1951, p. 806), "उरभ्रमसंबाधम्", is the technical term and the three lines of verses do not have the name of the source/author. This kind of references are found at some places, in BK, and hence the sources for them had to be verified and related to their originals.

In some instances, a single word has quotations from various authors, for which Kavi has provided the respective names of authors.

रेवगुप्तः-रागः
आर्षभीममध्यमोत्पन्नो रेवगुप्तोऽथ लक्ष्यते।
षड्जग्रामांशकश्चैष मध्यमान्तविराजितः।
सप्रसन्नाद्यलङ्कारो रेवगुप्त इति स्मृतः।।

हरिः ←

वीररौद्राद्भुतरसे ताने जीवनसंज्ञके।
अभिरुद्गतायां मुर्छायां...मध्यमाश्रुतौ।।
आर्षभ्यां ऋषभेऽप्यंशन्या मयोष्षड्जवर्जितः।
जितसंग्रामगुप्तेन रेवगुप्तः प्रकीर्तितः।।

नान्यः ←

आर्षभीजातिसंभूतो ऋषभांशस्तदन्तकः।
संपूर्णो रेवगुप्तस्तु विद्वद्भिष्षड्जषाडवः।।

कश्यपः ←

रेवगुप्तो रिग्रहांशो मान्तो मर्षभसोत्कटः।

नारायणः ←

मध्यमार्षभिकाजात्यो रेवगुप्तोरिरंशकः।
मध्यमन्याससंयुक्तः संपूर्णो गीयते बुधैः।।

मोक्षः ←

Fig.-3

In the above illustration (Kavi, 1951, p. 560), extracts by Hari(pāla), Nānya (deva), Kaśyapa, Nārāyaṇa, Mokṣa (deva) are provided for the reference to the term, "Revagupta"- a rāga.

In the below example, one can notice that a term happened to have had different connotations as per the context in which they were specified in various works. For example, the term, "Rephaāh" has been referred to by different authors under various contexts, like, vādanam and dhatu by Sārṅga (deva), Vīṇāyam ubhaya hasta vyāpāraḥ by Kumbha, Vyañjanadhātuḥ by Kumbha, Nanya and Bharata, auḍukkika hāstapātaḥ by Vema (Kavi, 1951, p. 559)

रेफः – वादनम् (उभयहस्तव्यापारः) ←
दक्षिणानामया यत्र तन्त्रीरन्तर्निहन्यते।
वामस्य मध्यमाङ्गुल्या बहिस्तं रेफमूचिरे।।
शार्ङ्गः

→ – धातुः
रेफस्त्वेकस्वरो घातः कमात्सर्वाङ्गलीकृतः।
शार्ङ्गः

→ – वीणायामुभयहस्तव्यापारः
दक्षिणानामया तन्त्री यदान्तः सः प्रहन्यते।
वाममध्यमया बाह्ये रेफो नाम भवेत्तदा।।
कुम्भः

→ – व्यञ्जनधातुः
कराङ्गुलीभिस्सर्वाभिः कमादेकस्वरो यदा।
कुम्भः

यस्तु सर्वाङ्गलीभिः स्यात्प्रहारः कमवानिह।
पर्यायेणैकतन्त्र्यां तु रेफ इत्यभिधीयते।।
नान्यः

सर्वाङ्गुलिसमाक्षेपो रेफ इत्यभिधीयते।
भरतः

→ – हौडुक्किकहस्तपाटः
रेफः स्यात्स्कन्धसंज्ञेन सकलाङ्गलिताडनाल्।
सह धों झें झें द्रः झें हें झें झें द्रः झें हें दः। **वेमः**

Fig-4

The following is an example for a term, for instance, Kalyāṇaḥ (Kavi, 1951, p. 123), which has different definitions provided by Kavi from various works :

कल्याणः – देशीतालः
ताले कल्याणसंज्ञे तु तृतीयोर्ध्वद्रुतो भवेत्।
o o ȯ
दोमोदरः

– मेलकर्ता
यत्र शुद्धौ सपौ स्यातां गनी च सपतौ सपौ।
साधारणोऽपि गान्धारो मेलः कल्याणसंभवः।।
त्रिषड्जो गोयते सायं पूर्णः कल्याणसंज्ञकः।
रित्रयोणाथवा युक्तः प्रोक्तस्सङ्गीतवेदिभिः।।
श्रीकष्ठ

– मेलरागः
मस्तु तीव्रतरी यस्पिन्गनी तीव्राविती‌रितौ।
गान्धारोद्ग्राहकल्याणे नारोहे तिष्ठतो मनी।।
तृतीय प्रहरोत्तरे गेयः।
अहोबिलः

Fig-5

Accordingly, this term denotes :

i. A **Deśītāla :** as mentioned in Saṅgīta-darpaṇa of Catura Dāmodara, can be referred to (Deśītāladhyāya, p.153), edited by K. Vasudeva Sastri, published by the Sarasvati Mahal Library, in 1952.

ii. A **Melakarta :** as mentioned in Rāsakaumudīby Śrīkaṇṭha – can be identified as verses 162 & 163 from the edition by A. N. Jani, Oriental Institute, Baroda, 1963.

iii. A **Melarāga-** as mentioned in Ahobila's Saṅgītapārijāta, verse-401, p.48, in the work, Saṅgītapārijāta, edited by R S Gondhalekhar, 1897

4. Note on the Sources that occur in BK :

BK deals with terms occurring in several sources that widely covers broad areas, as tabulated below :

Term	Broad area	Source given in BK	Name of the Work/ Author	Page No.
Antarbhediḥ	Sṛutiḥ (Music)	Pārśva	Saṅgīta samayasāra	29
Gūrjari rāgadhyānam	Rāga (Music)	Srikaṇṭha	Rasakaumudi	181
Muktāvali	Prabandaḥ (music)	Someśvara	Mānasollāsa	495
Vṛṣabhaḥ	Svarajātih (music)	Aumāpatam	Umāpati	634
Cakra recitam	Karaṇam (Dance)	Haripāla	Sa ṇgītasudhākara	195
Añcitam	Karanam (Dance)	Jyāyana	Nṛttaratnāvali	08
Apakrāntaḥ	Cāri (Dance)	Vema	Saṅgītacintāmaṇi	21
Kokilapriyah	Deśītālah (Tala)	Vema	Saṅgītacintāmaṇi	152
Cakravartitālaḥ	Deśītālah (Tala)	Lakṣmaṇa	Saṅgīta sūryodaya	195
Dundubhiḥ	Avanaddham (Vādya)	Someśvara	Mānasollāsa	273

Aṭṭatālaḥ	Desītālaḥ (Tāla)	Madana	Karmavipāka	09
Kālaḥ	Tāla prāṇaḥ	Tālalakṣaṇam	Acyutarāya	132
Suśira vādhyani	Wind (vādya)	Sangitarāja	Mahārāṇā Kumbha	734
Aṭṭaaḥ	Dṛuvatāla (Tāla)	Veṅkaṭamakhi	Caturdaṇḍī Prakāśikā	09

Few Rare and Unknown authors and works on Gīta, Nṛtta and Vādya mentioned in BK :

- Balarāma from Malabār – 1760 AD, his work on Nṛtta- incompletely written.
- Desīnṛtta Samudram
- Vicitra Kaumudi
- Rāmānanda's Rasamālika
- Ratnakośa of Sāgaranandi
- Bālabhodhana – A commentary on Bharata's Natyaśāstra – 1350 AD
- Saṅgītamudra
- Saṅgītasāgara

Few works remain unpublished for various reasons, such as less awareness about manuscripts and transcripts available in libraries and about catalogues, unclear or damaged materials, loss or concealment in private collections and lack of interest in the research area among scholars. During the study, it is found that some works that were unpublished before or during the time of Bharatakośa, were published later. However, few editors have consulted BK for their edition, as a secondary reference.

- ***Nṛtta Ratnāvali*** *of Jaya Senāpati* was critically edited with an introduction and notes by V Raghavan, Published in 1965, under the authority of government of Madras.
- ***Bharatabhāṣyam*** *of Nānyabhūpāla*, was edited by Chaitanya P. Desai in two volumes. Volume 1, comprising Chapters 1 to 5, was published in 1965 and Volume 2, containing Chapters 6 to 8, was published in 1986 by Indira Kala Sangit Vishwavidyalaya, Khairaghad.
- ***Aumāpatam*** *of Umāpati, Bharatārṇava of Nandikesvara*, *Saṅgīta Darpanam* were edited by K Vasudeva Sastri.
- ***Nṛtyādhyāya*** *of Asokamalla* edited by Dr. Priyabala Shah and published by Oriental Institute, Baroda, 1963.

Some Lakṣaṇa grantha-s or sections or chapters of bigger Samskrta works on music came to light through research done, as part of dissertation works for the Ph.D. degree. References to theses are found in the websites, https://shodhganga.inflibnet.ac.in/ http://www.musicresearchlibrary.net/.

5. Significance of the terms given in BK :

A through study of BK brings plenty of unknown information to limelight. Kavi recorded many unknown music treatises and authors. This book is not just mentioning or listing the names of books and authors, but provides extracts of corresponding verses. For instance, verses from the works written by authors like Nandin, Kīrtidhara, Vema, Simhana, Vikrama, Madana, Para-

mesvara, Sadâsiva and others, are worthy and helps a scholar to further probe into several primary sources, for their research. An index of this kind is a blessing and boon to scholars and one should realise, the dedication of Kavi in compiling this. This shows the depth of his knowledge and gives us a glimpse of how much resources once existed and how much is now lost. For various reasons, Kavi couldn't always disclose details like locations or full information about the manuscripts, but he still included whatever was possible. It is evident that many unpublished manuscripts were consulted by Kavi and prepared notes and made transcripts. Most of them are available in the Oriental Research Institute, S V University, Tirupati, even today (Premalatha, 2010).

The terms existing in BK are collected from various published and unpublished works by Kavi, during the time of compilation. But the sources for them are not clearly mentioned. Most of the terms that figure in BK, appear to be based on the collections of manuscripts that Kavi procured during his life time. Hence references to some these do not figure in the printed works, probably Kavi's transcripts had not been utilised by the respective editors. In the history of Indian Music, there existed, two or more authors or scholars with the same name. Hence some of the references made by Kavi under the name of a particular author do not seem to match with the respective printed works. In the case of the BK being compiled, largely from the unpublished manuscripts, it is obviously difficult to assign the verse number or the page number of texts. For example, the references to the verses under the name, "Acyuta" in BK, are located in the manuscripts of Tālalakṣaṇam of Acyutarāya, of the Government Oriental manuscripts library, Chennai and the Oriental Research Institute, Tirupati (Premalatha,2022).

6. Conclusion :

Bharatakośa can be called as one of the most useful reference book of a research scholar interested in inquiring knowledge on Indian Musicology. Its exhaustive collection of technical terms along with the extracts of verses from various Samskrta works on music and dance, serves as an eye-opener for every reader. Kavi's abbreviations and other cross references for names of works and authors need deeper scholarly attention to be understood, fully. A serious study at different levels into the book will help all scholars to estimate the underlying efforts that have been made by the author, Ramakrishna Kavi and also the great textual tradition of Indian Music.

7. References :

1. Kavi, Manavalli Ramakrishna (1951), *Bharatakośa,* published by the Tirumala Tirupati Devasthanams, Tirupati.
2. Premalatha V (2010), *"Music Manuscripts and Manavalli Ramakrishna Kavi"* Journal of the Madras Music Academy, Chennai, vol – 80, pp.75-83.
3. Premalatha V (2022) *"Talakshanam of Acyutaraya" – Critical edition and Translation* published by National Mission for Manuscripts, New Delhi, under Prakashika Series, vol-57, ISBN-978-93-0829-88-3.
4. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/
5. http://www.musicresearchlibrary.net/

मामूलीपन में निहित असाधारण कथा कहने वाला कवि : केदारनाथ सिंह

शिवानी शर्मा

शोधार्थी

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डी॰ एस॰ बी॰ परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

शोधसार :

यह शोध आलेख कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं में कथात्मकता की उपस्थिति का अन्वेषण और विश्लेषण करता है। प्रचलित धारणा के विपरीत, कि कविता मुख्यतः आत्म-अभिव्यक्ति और गीतात्मकता का माध्यम है, केदारनाथ सिंह की कविताएँ छोटी-छोटी घटनाओं, चरित्रों, संवादों और दृश्यों के माध्यम से एक व्यापक कथा-संसार का निर्माण करती हैं। केदारनाथ सिंह की कविता में कथात्मकता किसी महाकाव्यात्मक विस्तार में नहीं, बल्कि संवादात्मक भाषा, बिम्बात्मकता, दैनिक जीवन के सामान्य प्रसंगों, साधारण चरित्रों और वस्तुओं के विशिष्ट संयोजन में अभिव्यक्त होती है। उनकी कविताओं में कथात्मकता का स्वरुप विचारपरक और लोककथात्मक है। यह शोध लेख उनकी कविताओं में कथा की उपस्थिति तथा कथा-निर्माण की प्रविधियों की पहचान करने की कोशिश में लिखा गया है।

बीज शब्द :

केदारनाथ सिंह, कथा-तत्व, कथात्मकता, आख्यान, महाकाव्यात्मक, हिंदी कविता, बिम्ब, अनुभव, प्रामाणिकता, यथार्थ, दृश्यात्मकता, नाटकीयता, बहुध्वन्यात्मकता आदि।

मूल आलेख :

कविता में कथा की उपस्थिति कोई नई बात नहीं है। आदिकाल से लेकर भक्तिकाल तक, भारतीय काव्य-परंपरा में प्रबंध काव्यों और आख्यानकों की एक लंबी श्रृंखला मिलती है। वैदिक साहित्य से ही हमें पद्यबद्ध कथाएं देखने को मिलती हैं। हिंदी साहित्य में आदिकाल के रासो काव्य और लौकिक काव्य में, भक्तिकाल में राम तथा कृष्ण चरित काव्य तथा सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्य, रीतिकाल में नायक-नायिका के प्रेम संबंधों पर आधारित श्रृंगारिक काव्य काव्य-रूप में होकर भी विराट कथा-संसार प्रस्तुत करते हैं। हालाँकि, आधुनिक कविता में कथा का स्वरूप बदला है। अब यह महाकाव्यात्मक विस्तार की जगह सूक्ष्म, सांकेतिक रूप में प्रकट होती है।

आधुनिक हिंदी कविता में छायावाद से लेकर

प्रगतिवाद और नई कविता तक, कविता का मुख्य प्रयोजन सामान्यतः कवि के आंतरिक भावों, विचारों और सामाजिक यथार्थ पर उसकी भावात्मक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करना रहा है। इस परिदृश्य में 'कथा' या 'आख्यान' को गद्य की विधाओं, विशेषकर कहानी और उपन्यास का क्षेत्र माना गया। कविता और कथा के बीच एक स्पष्ट विभाजन रेखा खींची जाती रही। परंतु केदारनाथ सिंह इस विभाजन रेखा को अपनी काव्य-भाषा और संवेदना से निरंतर धुँधला करने वाले कवि हैं। केदारनाथ सिंह उस दौर के कवि हैं जब अनुभव की प्रामाणिकता और जीवन के यथार्थ को कविता के केंद्र में लाया जा रहा था। केदारनाथ सिंह इस यथार्थ को केवल विश्लेषित या चित्रित नहीं करते, बल्कि उसमें अन्तर्निहित मानवीय कहानियों को ढूंढ कर उन्हें अपनी कविताओं का आधार बनाते हैं। उनकी कविताएँ पढ़ते हुए यह स्पष्ट होता है कि कविता किसी अमूर्त विचार से आरंभ न होकर, किसी दृश्य, घटना, चरित्र या किसी संवाद से शुरू होती है, जो स्वयं ही एक कथा-बीज की तरह होता है। उनका काव्य-संसार मनुष्यों, पशुओं, नदियों, शहरों और रोजमर्रा के जीवन में प्रयुक्त विभिन्न निर्जीव वस्तुओं की अनकही कहानियों से भरा हुआ है। आज की कविता में आख्यान की उपस्थिति के विषय में राजेश जोशी लिखते हैं- ''इस कविता के आख्यान में सामान्य जीवन का अति सामान्य दृश्य है। उसका अतिपरिचित और अतिसामान्य होना ही शायद उसका असामान्य होना है। उसका सारा विस्मय उसके अविस्मयकारी होने में है।''[1]

राजेश जोशी का यह कथन केदारनाथ सिंह की कविताओं के सन्दर्भ में एकदम सटीक लगता है। केदारनाथ सिंह की कविता का वैशिष्ट्य तमाम अन्य तत्वों के साथ ही उसमें निहित कथात्मकता में है। वे 'छोटी कहानी' के कवि हैं, जो अपने कवि कौशल से जीवन के बिखरे हुए कथा-सूत्रों को एक संवेदनात्मक एकता प्रदान करते हैं।

लीलाधर मंडलोई केदारनाथ सिंह की कविता के विषय में लिखते हैं- ''केदारजी की कविताओं की कुछ विलक्षण खूबियाँ हैं मसलन वे दृश्यात्मक हैं, लोककथा के आस्वाद में पगी, भौतिक-अभौतिक जगत में डूबीं, हिप्नोटाइज करने की ताकत से लैस और आत्मीय सजल भाषा से दीप्त। इन कविताओं में एक मोहक नाटकीय तत्त्व है जैसे 'धूप में घोड़े पर बहस' या कि फिर 'बाघ' में।''[2] यह दृश्यात्मकता और नाटकीयता वास्तव में कथा-तत्व के ही रचनात्मक पहलू हैं। केदारनाथ सिंह की कविता की भाषा बोलचाल की भाषा के करीब होने के फलस्वरूप ही कविता को एक संवादात्मक और किस्सागोई का लहजा प्रदान करने में सफल हुई है। ऐसे ही दृश्यों का संयोजन और अप्रत्याशित मोड़ उनकी कविताओं को एक कथात्मक संरचना प्रदान करने में सहायक होते हैं। केदारनाथ सिंह की कविताएँ बताती हैं कि हर साधारण घटना में एक असाधारण कहानी छिपी होती है और हर कहानी को महाकाव्य होने की आवश्यकता नहीं होती।

केदारनाथ सिंह की आरंभिक कविताएं बिम्ब-बहुल हैं। इन कविताओं में प्रकृति और ग्राम्य-जीवन के चित्र प्रमुख हैं। इन बिम्बों में भी कथा के अंकुर स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनके आरंभिक दौर की कविताओं में गाँव के जीवन, उसके संघर्ष और उसकी जिजीविषा की छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। उनकी कविता 'पानी में घिरे हुए लोग' एक स्थिर चित्र प्रस्तुत करती है, लेकिन इस चित्र के भीतर बाढ़ की विभीषिका, प्रतीक्षा और संघर्ष की पूरी कहानी छिपी है।

''पानी में घिरे हुए लोग/ प्रार्थना नहीं करते/ वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को/ और एक दिन/ बिना किसी सूचना के/ खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर/ घर- असबाब लादकर/ चल देते हैं कहीं और''[3]

पानी में डूबे हुए ये लोग एकदम हताश नहीं होते, वे पानी में रहते हुए भी निरंतर एक मदद की उम्मीद के साथ पानी से निरंतर संघर्ष करते हैं। इस कविता में मात्र बिम्ब नहीं हैं। यह कविता बिम्ब के माध्यम से एक भयावह स्थिति और उस स्थिति में निहित पूरी त्रासदी की कथा कहती है। केदारनाथ सिंह की कविता में बिम्बात्मकता के साथ ही गद्यात्मकता भी कथा की बुनावट में सहायक है। कविता की यह गद्यात्मकता निरी सपाटबयानी न होकर एक नाटकीय संबोधन के रूप में है।

''उसके बारे में कविता करना/ हिमाकत की बात होगी/ और वह मैं नहीं करूँगा/ मैं सिर्फ आपको आमंत्रित करूँगा/ कि आप आयें और मेरे साथ सीधे/ उस आग तक चलें/ उस चूल्हे तक- जहाँ वह पक रही है/......./वह पक रही है/ और आप देखेंगे- यह भूख के बारे में/ आग का बयान है/ जो दीवारों पर लिखा जा रहा है/ आप देखेंगे/ दीवारें धीरे-धीरे स्वाद में बदल रही हैं।''[4]

इस कविता में एक विचारपरक कथा है। इस कविता में कवि रोटी के माध्यम से व्यक्ति की बढ़ती भूख की ओर इशारा करता है। प्राचीन समय में मनुष्य के पास अपनी भूख के लिए शिकार ही एकमात्र विकल्प हुआ करता था। धीरे-धीरे उसे जंगल में उपलब्ध फूलों, फलों का ज्ञान हुआ और बाद में उसने कृषि आरम्भ की। आज के आधुनिक युग में मनुष्य की भूख (लालच) इतनी बढ़ गयी है कि उसके लिए अब हर चीज़ स्वाद में बदल गयी है और वह झपट्टा मारने के क्रम में आगे बढती जा रही है। यह कविता भूख और रोटी प्रतीकों के माध्यम से मनुष्य को दूसरों की भूख (जरुरत) का सम्मान करने की सीख देती है।

इसी क्रम में केदारनाथ सिंह की लम्बी कविता 'बाघ' उनकी कथा-प्रवृत्ति का चरमोत्कर्ष है। यह लंबी कविता, बाघ के मिथक, उसके आतंक, उसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति के माध्यम से सत्ता, भय, प्रकृति और मनुष्य के जटिल संबंधों की एक विराट कथा रचती है।

बाद के संग्रहों में केदारनाथ सिंह की कथा-दृष्टि और भी सूक्ष्म और दार्शनिक हो जाती है। इन कविताओं में वे बड़ी घटनाओं के बजाय स्मृतियों, वस्तुओं और अमूर्त भावनाओं की कहानी कहते हैं। उनकी कविता कपास के फूल एक वस्तुपरक और विचारपरक कथा कहती है। कविता के शीर्षक से लगता है कि किसी वस्तु विशेष पर कविता लिखी गयी है, पर कविता के अंत तक पहुंचते-पहुंचते हम अर्थस्तरों की सघनता को समझ पाते हैं। यह कविता कपास के फूल के माध्यम से हमारे बीच मौजूद ऐसे लोगों की कथा कहती है, जिनकी उपस्थिति हमारे जीवन में बेहद जरुरी और सराहनीय है, पर हम उन्हें भूल जाते हैं। कपास का फूल जिसे किसी ने उपजाया होगा, फिर किसी ने मेहनत से सूत बनाया होगा, किसी ने सी कर वस्त्र बनाये होंगे और इस तरह हम तक पहुंचा अंतिम उत्पाद। और हमें बस वही याद भी रहता है।

''जब फ़ुर्सत मिले/ तो कृपया एक बार इस पर सोचें ज़रूर/ कि इस पूरी कहानी में सूत से सुई तक/ सब कुछ है/ पर वह कहाँ गया/ जो इसका शीर्षक था।''[5]

शीर्षक से मतलब कपास के फूल से भी हो सकता है और अंतिम उत्पाद की शुरूआती प्रक्रिया और उसमें शामिल लोगों से भी हो सकता है। कविता की यही खासियत होती है कि वह मात्र एक अर्थ ध्वनित नहीं करती। केदारनाथ सिंह की कविताओं की एक विशेषता बहुध्वन्यात्मकता भी है। उनकी कविता की तहों में जाए बिना कविता के सभी अर्थ उजागर नहीं हो सकते।

अपनी कविता फसल में वे किसान के जीवन के संघर्ष, उनके जीवन की छोटी-छोटी खुशियों तथा

प्रकृति और किसान के शाश्वत पारस्परिक सम्बन्ध की कथा कहते हैं। केदारनाथ सिंह अपनी कविता में कहते हैं कि किसान के जीवन में उसके पुरखे तो शामिल हैं ही, साथ ही वे सब भी शामिल हैं जो अभी पैदा नहीं हुए हैं। ये जो अभी पैदा नहीं हुए हैं, वे विचारों के रूप में हमेशा किसान के साथ रहे हैं। यह कविता एक अप्रत्याशित और नाटकीय मोड़ के साथ समाप्त होती है और अंत में पाठक के समक्ष एक प्रश्न छोड़ जाती है कि भारत की अर्थव्यवस्था का अधिकांश हिस्सा कृषि पर निर्भर होने के बावजूद भी किसानों को अपनी फसल के उचित मूल्य के लिए क्यों संघर्ष करना पड़ता है? क्यों आज भी किसान आत्म हत्या करने के लिए विवश हैं? कृषि क्षेत्र में हुए तमाम नवाचारों के बावजूद भी किसान आज अपनी आजीविका के लिए संघर्षरत क्यों है? कैसी विडम्बना है कि जिसकी दिन-रात की मेहनत के परिणामस्वरूप हमें अपनी थाली में भोजन मिलता है, वह मेहनतकश किसान अपने परिवार के लालन-पालन में, उन्हें जरुरी सुविधाएँ मुहैया कराने में स्वयं को असमर्थ महसूस करता है! यह असमर्थता केवल इसलिए है क्योंकि उसे उसकी मेहनत का उचित मूल्य नहीं मिलता।

''इधर पिछले कुछ सालों से/ जब गोल-गोल आलू मिट्टी फोड़कर/ झाँकने लगते थे जड़ों से/ या फसल पककर/ झुक जाती थी हवा में/ तो न जाने क्यों/ वह हो जाता था चुप/ कई-कई दिनों तक/ बस यहीं पहुंचकर अटक जाती थी उसकी गाड़ी/ सूर्योदय और सूर्यास्त के/ विशाल पहियों वाली।''[6]

हम सभी समाज में हो रहे अन्याय, अमानुषिक कृत्यों और समाज में फैलती कुरीतियों से अवगत हैं। समाज के जिम्मेदार नागरिक होने के रूप में यह हमारा कर्तव्य बनता है कि हम इन सभी कुरीतियों के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करें। पर आवाज़ उठाने की बजाय समाज में चुप्पियाँ बढ़ती गईं। केदारनाथ सिंह की कविता चुप्पियाँ आज समाज में फैली विसंगतियों के विरुद्ध कुछ न कर पाने की कथा है।

''चुप्पियाँ बढ़ती जा रही हैं/ उन सारी जगहों पर/ जहाँ बोलना जरुरी था/......./और आश्चर्य कि किसी को वह गड़ता तक नहीं/............../ ऐसे में मित्रो,/ अगर बोलता है एक कुत्ता/ बोलने दो उसे/ वह वहाँ बोल रहा है/ जहाँ कोई नहीं बोल रहा।''[7]

यह कविता हम मनुष्यों के सामर्थ्य पर व्यंग्य करती है। हम सोचते हैं कि हमारे अकेले के कुछ करने से क्या ही प्रभाव पड़ेगा। या किसी कृत्य के प्रति मन में घोर अस्वीकृति होने के बावजूद हम हमेशा इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि उसके खिलाफ़ बोलने की शुरुआत कोई और करे, बस इसी के परिणामस्वरूप चुप्पियाँ बढ़ती जा रही हैं। इसी सन्दर्भ में प्रेमचंद का एक कथन उद्धृत करना आवश्यक है- ''आदमी अकेले भी बहुत कुछ कर सकता है। अकेले आदमियों ने ही आदि से विचारों में क्रांति पैदा की है। अकेले आदमियों के कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है।''[8] यह कथन प्रेरणा देता है कि मनुष्य की सामर्थ्य- सीमा के घेरे में बहुत कुछ आता है। वह चाहे तो, संसार में उसके लिए, सब कुछ संभव है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं का विषय बेहद साधारण रहा है। और यही साधारणता उनकी कविताओं को लोकप्रिय बनाती है। वे अपने आस-पास की ही छोटी-छोटी कहानियों को कविता में जगह देते हैं। अपनी कविता लौटते हुए बगुले में वे बगुलों के माध्यम से मजदूरों की व्यथा और सरकार द्वारा उनके हित में लागू की गयी रोजगार योजनाओं की कथा कह देते हैं।

''सुबह के गए/ शाम को लौट रहे थे/ जाने कौन से मालिक के खेत में/ करके निराई/ मनरेगा का ज़माना है/ सो, पूछने का मन हुआ/ क्या मिल गयी मजूरी/ पाई-पाई/ इधर तो हाल यह कि स्त्री

आधा/ (बच्चे चौथाई!)/ पुरुष पूरा/ पर इस पूरे का रेट भी/ अलग-अलग खित्तों में/ अलग-अलग/ ..../गए थे जाने कितनी दूर/ और कीड़ा-केंचुआ/ जो भी मिल गया/ उसी की गठरी भीतर संभाले/ शाम को लौट रहे थे/ खेत मजूर...''[9]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में कथा के सन्दर्भ में राजेश जोशी लिखते हैं- ''जरुरी नहीं कि उनकी लोककथात्मकता का तार किसी परिचित-अपरिचित लोककथा से जुड़ा ही हो। कई बार वे स्वयं ऐसी छोटी-छोटी कहानियां कविता में रचते हैं जिसका स्वाद हमें अपनी लोक-परंपरा से जोड़ देता है।''[10]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में कथात्मकता की शिनाख्त करने के लिए उनकी कविताओं को बारीकी से पढ़ने की जरुरत है। उनकी कविताएं कथा के धागे का शुरूआती सिरा मात्र पाठक को पकड़ाकर उसके अंत तक पहुँचने की मेहनत की अपेक्षा पाठक से रखती हैं। यह अपेक्षा कविता को दुरूह नहीं बनाती, बल्कि पाठक को पंक्तियों के बीच कही बात को भी समझने का अवकाश देती है। केदारनाथ सिंह की कई कविताएं ऐसी हैं, जो छोटी-छोटी कथाएं हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। 'मंच और मचान', 'वह बांग्लादेशी युवक जो मुझे मिला था रोम में', 'पानी की प्रार्थना', 'पानी था मैं', 'पिता के जाने पर', 'इब्राहिम मियाँ ऊँट वाले' उनकी ऐसी ही कथात्मक कविताएं हैं, जिनकी कथा स्पष्ट न होते हुए भी गहन है। राजेश जोशी लिखते हैं- ''कथात्मक वर्णन-शैली के अपने खतरे होते हैं। कई बार इसमें ऐसे वर्णन बढ़ने लगते हैं जो कविता को आगे बढ़ाने के बजाय व्यर्थ के विस्तार की बोझिलता भी देते हैं और कई बार विवरण मात्र सजावटी भी होने लगते हैं। लेकिन कविता से जब जीवन के चित्रों का लोप होने लगता है, ऐसे जोखिम उठाना बहुत अर्थवान हो जाता है। केदारजी में जो मितव्ययिता है वह उन्हें व्यर्थ के विस्तार से बचाती है और हमारे जन-जीवन के अलक्ष्य किये जा रहे चित्रों को एक बार पुनः कविता में स्थापित करती है। ये कविताएँ 'हाँ' के नमक और 'ना' के लोहे से बनी हैं।''[11]

केदारनाथ सिंह ने कविता में जीवन को, जीवन के साधारण प्रसंगों को पुनर्स्थापित करने का ये जोखिम उठाया और भरपूर उठाया। उनकी कविताओं में केवल साधारण लोग ही शामिल नहीं हुए बल्कि जीवन में असाधारण महत्व रखने वाली साधारण वस्तुएं भी कविता के केंद्र में आईं। 'रोटी', 'नमक' आदि उनकी ऐसी ही कविताएं हैं, जो शीर्षक से तो मामूली लगती हैं पर जीवन की समस्त नाटकीयता को कथा रूप में कविता के केंद्र में ले आती हैं। केदारनाथ सिंह की कविताएं किसी सीमित परिदृश्य की कविताएं नहीं हैं। उनकी कविताएं सब तक पहुँचने के साहस से भरी हुई हैं। वे अपनी कविताओं से दुनिया का सामना करने का आग्रह करते हुए कहते हैं :

''अब जाओ मेरी कविताओं/ सामना करो तुम दुनिया का/........./ भरने दो अपने शब्दों में/ सारे शहर की खाक-धूल/ इस यात्रा में वापसी नहीं/ बस चलते जाना है अकूल।''[12]

निष्कर्ष :

केदारनाथ सिंह की कविताओं में कथा की उपस्थिति पारंपरिक आख्यान-पद्धति से भिन्न है। वे एक कुशल कथाकार की तरह दृश्य स्थापित करते हैं और उसे कथारूप में विकसित करने की कुछ सम्भावना पाठक के लिए भी छोड़ देते हैं। वे अपनी कविताओं में कथा सूत्र का लंबा-चौड़ा विवरण नहीं देते, एक-दो मार्मिक पंक्तियों से ही कविता के प्रसंग पाठक के समक्ष कथा रूप में उजागर होने लगते हैं। उनकी कविताओं में मुख्यतः विचारपरक कथा देखने को मिलती है। उनकी भाषा में जो किस्सा कहने का लहजा है, वह अत्यंत सहज और बोलचाल के करीब है। उनकी भाषा पाठक

से सीधे संवाद करती है और उससे कविता की गहनता में उतरने की अपेक्षा रखते हुए उसे भी अपनी कथा का हिस्सा बना लेती है।

सन्दर्भ सूची :

1. जोशी, राजेश, एक कवि की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ॰-89
2. मंडलोई, लीलाधर, कविता में वही पुरबिहा : केदारनाथ सिंह, इन्द्रप्रस्थ भारती, नवम्बर-दिसम्बर 2018, पृ॰-81
3. सिंह, केदारनाथ, पानी में घिरे हुए लोग, इन्द्रप्रस्थ भारती, नवम्बर-दिसम्बर 2018, पृ॰-26
4. सिंह, केदारनाथ, रोटी, इन्द्रप्रस्थ भारती, नवम्बर-दिसम्बर 2018, पृ॰-8
5. सिंह, केदारनाथ, सृष्टि पर पहरा, राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ॰-14
6. वही, पृ॰-30
7. वही, पृ॰-76
8. https://nag.re/a/1ke6/2
9. सिंह, केदारनाथ, सृष्टि पर पहरा, राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ॰-89
10. जोशी, राजेश, एक कवि की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ॰-78
11. वही, पृ॰-82
12. सिंह, केदारनाथ, ताल्स्ताय और साइकिल, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ॰-136

ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों में संगीत

मेघना कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
डिपार्टमेंट ऑफ वोकल म्यूज़िक
फैकल्टी ऑफ परफॉर्मिंग आर्ट विश्वविद्यालय
वाराणसी, उत्तर प्रदेश

डॉ. दीपक सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
प्रदर्शन कला विभाग (स्वर संगीत)
नन्दलाल बोस सुभारती कॉलेज ऑफ
फाइन आर्ट्स एण्ड फैशन डिज़ाइन
स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ (उ॰प्र॰)

शोध सार :

संगीत एक ऐसा तत्व है जिसके बिना कोई भी स्थान, प्रस्तुति, सम्वाद आदि सब अधूरे हैं। बिना संगीत के यदि कोई सम्प्रेषण होगा तो उसमें भाव को स्थापित करना लगभग असम्भव होगा। ऐसी स्थिति में यह सम्प्रेषण अपूर्ण ही रह जाएगा। यदि हम 'लोक' की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाएंगे कि लोक के किसी भी शैली में संगीत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक त्यौहार, ऋतू, उत्सव, कार्य आदि में संगीत सन्निहित है। प्रस्तुत शोध पत्र के शीर्षक में नाट्य शब्द भी उद्घृत है। अतः यदि नाट्य पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि नाट्य की प्राचीन प्रमाणिक ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में संगीत को अत्यंत सम्मानित स्थान दिया गया। 'नाट्यशास्त्र' नाट्य की प्रमाणिक ग्रन्थ होने के साथ ही संगीत की भी एक प्रमाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार की जाती है। 'नाट्य' मुख्य विषय होने के बाद भी नाट्य शास्त्र में संगीत को अत्यंत सूक्ष्मता और सावधानी से प्रस्तुत किया गया है। नाट्यशास्त्र के संगीत सम्बन्धित अध्याय की वृहद और सूक्ष्म प्रस्तुति को वर्तमान संगीत के शोधार्थी एवं संगीत के विद्वान, विशिष्ट प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि नाट्य मुख्य विषय होने के बाद भी संगीत को इतना विशिष्ट स्थान देना यह सिद्ध करता है कि प्राचीन समय से ही नाट्य में संगीत एक विशिष्ट तत्व के रूप में उपस्थित रहा है। नाट्य में कथा के भाव का सम्प्रेषण संगीत के माध्यम से ही किया जा सकता है अथवा इस वाक्य को इस प्रकार कहें कि नाट्य में कथा के भाव का सम्प्रेषण, संगीत जितने प्रभावशाली ढंग से कर सकता है उतना कोई भी अन्य तत्व नहीं कर सकता है। नाट्य के कथा के भाव के सम्प्रेषण में संगीत के प्रभाव को देखते हुए वर्तमान फिल्मों में भी संगीत को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। फिल्मों के आरम्भिक दौर में तो फिल्मों के दर्शकों को आमंत्रित करने के लिए तथा फिल्म के मध्यान्ह में संगीत की विधिवत प्रस्तुती तक होती थी। नाट्य के लोक स्वरूप पर दृष्टिपात करें तब भी संगीत एक विशिष्ट भूमिका में दिखता है। क्योंकि संगीत में भाव को यथावत सम्प्रेषित करने की अद्धुद सामर्थ्य है। प्रस्तुत शोध पत्र में ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों में संगीत तत्व के अध्ययन प्रस्तावित है।

सूचक शब्द :

नाट्य, लोकनाट्य, संगीत, कथानक, विवेचना।

विषय प्रवेश :

लोक नाट्य के सृजन अथवा आरंभन का काल निश्चित रूप से बता पाना अत्यंत कठिन है। इस सन्दर्भ में अनेक विद्वान अपने अलग अलग मत प्रस्तुत करते हैं। श्री राम नारायण अग्रवाल जी कहते हैं ''नाटक के पंचम वेद के उदय से भी पूर्व यहाँ लोक नाटक या लोक धर्मी नाट्य परम्पराएं अपना रूप ग्रहण कर चुकी थीं, जिन्होने नाटक के पंचम वेद की वेदी की निर्माण शिला का काम किया।''[1] पद्मश्री देवी लाल सामर जी कहते हैं ''भारतीय नाट्य का इतिहास लगभग पांच हजार वर्ष पुराना है। नाट्य ग्रंथों में यत्र-तत्र उपरूपकों, संगीतक, भाण, श्री गदित, चर्चरी, रासक आदि नामों से इस प्रकार के नाट्य प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है।''[2] डॉ॰ श्रीमती ज्ञानवती वैद मेहता जी के अनुसार ''लोकनाट्यों की उत्पत्ति विभिन्न धारणाओं के बीच हुई जैसे लोक प्रचलन, लोक विश्वास, वीर पूजा, धार्मिक समारोह, मनोरंजन एवं मांगलिक पर्व इत्यादि।''[3] अतः उक्त विद्वानों के मत के अनुसार कहा जा सकता है कि लोक नाट्य अत्यंत प्राचीन विधा है जो कि नाट्य की सुप्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' की रचना से भी पूर्व विकसित हो चुकी थी।

लोकनाट्य के सन्दर्भ में नाट्य शास्त्र में भरत मुनि कहते हैं :

''स्वभाव भावोपगतं शुद्धं तु प्रकृतं तथा,
लोक वार्ता क्रियोपेतम लीला विवर्जितम।
स्वभावाभिनयोपेतं नाना स्त्री पुरुषात्रयं
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु स्मृतां॥''[4]

अर्थात् लोकधर्मी नाट्य प्राकृत, स्थाई तथा व्यभिचारी भावों से युक्त रहता है। इसमें कल्पना द्वारा कोई परिवर्तन प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह शुद्ध एवं प्राकृत रूप में रहता है। अगहार आदि आंगिक विलास, लीलाओं का प्रयोग नहीं होता। स्त्री एवं पुरुष पात्रों का प्रयोग तो प्रचुरता से होता है। लोक नाट्य में स्त्री द्वारा पुरुष का अथवा पुरुष द्वारा स्त्री का अभिनय नहीं किया जाता है।

लोकनाट्य के सन्दर्भ में अभिनव गुप्त जी के बताते हैं :

''यदा कविर्यथा वृत्त वस्तुमात्रं वर्णमति
नटश्च प्रयुक्त,
न तु स्वबुद्धिकृतं रंजना वैचियं
तत्रानुप्रवेशायस्तदा,
तावात् स काव्यभागः प्रयोगभागश्च
लोकधर्माश्रय तत्रधर्मी।''[5]

अर्थात इस लोक धर्मी रुढ़ि के अनुसार कवि तो यथावत् वस्तु का वर्णन करता है, नट प्रयोग करता है वहां स्वबुद्धि-कृत अनुरंजनकारी वैचित्र्य की कल्पना नहीं होती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं ''ऐसा मान लिया जाता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न हो कर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं वे ही लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक नाट्य, लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जाती है। लोक चित्त से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है जो परम्परा प्रथित और बौधिक विवेचनापरक शास्त्रों और इन पर की गयी टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है।''[6]

लोक नाट्य शैली अत्यंत प्राचीन समय से अमर बेल के समान विकसित हुआ है। लोक नाट्य के द्वारा न केवल मनोरंजन होता है, अपितु सामजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा पौराणिक घटनाओं के सन्दर्भ में भी ज्ञान प्राप्त होता है। लोक नाट्य संस्कृति की वह खदान है जिसमें से नित्य प्रति विविध प्रकार की मणियाँ प्राप्त होती रहती हैं। लोक नाट्य की प्रवृत्ति बहुरंगी तथा प्रयोगशील है। नाट्य का लोक स्वरूप किसी भी नियम के बंधन से पुर्णतः स्वतंत्र होता है। यह लोक जीवन के यथार्थ का चित्रण होता है।

ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्य :

ब्रज क्षेत्र में जन मानस के रंजन में लोक नाटक बड़ी भूमिका निभाते हैं। समय तथा जन सामान्य के स्वाद एवं आवश्यकताओं के साथ ही इन लोक नाट्यों में परिवर्तन होता रहा किन्तु वर्तमान समय तक लोगों ने अपनी इस सांस्कृतिक धरोहर को सहेज के रखा है। ''ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों पर चिंतन के लिए हम इन नाट्यों को पांच श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं :

1. **संगीत नाट्य :** स्वांग, भगत तथा नौटंकी।
2. **धार्मिक नाट्य :** रामलीला, रास लीला तथा नृसिंह लीला।
3. **नृत्य नाट्य :** साखी, चौपाई, तथा डंडेशाही।
4. **स्त्री तथा बालोपयोगी नाट्य :** न्यौरता, टेसूझांझी, खोइया।
5. कठपुतली।''[7]

उक्त वर्गीकरण में देखा जा सकता है कि नाट्य के संगीत प्रधान होने का एक अलग ही वर्ग है। ऐसे तो उक्त सभी वर्गीकरण के लोक नाट्यों में संगीत की विशेष भूमिका है किन्तु संगीत प्रधान नाट्यों में संगीत कि सहायता से ही कथा प्रस्तुत की जाती है। शोधपत्र के अग्र भाग में सांगीतिक नाट्य श्रेणी के अंतर्गत आने वाले नाट्य यथा- स्वांग, भगत तथा नौटंकी में संगीतकी भूमिका पर चर्चा की जाएगी।

ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्य शैलियों में सांगीतिक लोक नाट्य के अंतर्गत आने वाली शैलियों जैसे भगत, स्वांग और नौटंकी की विशेष लोकप्रियता है। इन शैलियों की प्रस्तुति में सम्वाद गेय रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त नाट्यों का संचालन आदि भी सांगीतिक स्वरूप में ही किया जाता है। इस वर्ग के नाट्यों में वृंद गान तथा पार्श्व संगीत, नाटक के भाव को जीवंत कर देता है। मंच पर घूमते हुए, नृत्य करते हुए तथा अभिनय करते हुए गायन करना इन नाटकों को विशेष बनाते हैं। इन नाटकों में मुख्य आकर्षण मधुर संगीत होता है।

लोक नाट्य 'भगत' के आगरा में शुरू होने के सन्दर्भ में श्री राम नारायण अग्रवाल जी लिखते हैं - ''स्वांग के सफलता पूर्वक समापन के बाद परम्परानुसार गायकों ने चुनौती देते हुए कहा कि अब तक आगरा 'भड़ुआ भगत' देखता था हम ने असली भगत प्रस्तुत किया है। अगर कोई माई का लाल हो तो ऐसा भगत कर के दिखाए। हालाँकि यह कथन परम्परागत तरीके से कहा जाता है किन्तु दर्शक दीर्घा में उपस्थित ऊर्दू के प्रसिद्ध शायर तथा ख्याल गायक नजीर अकबराबादी को यह बात लग गयी। उन्होंने अपने साथ के ख्याल गायकों को एकत्र कर के एक भगत अखाड़ा स्थापित किया तथा उस भगत नाटक के जवाब में जवाबी भगत नाटक किया गया।''[8] इस प्रसंग से समझा जा सकता है कि लोक नाट्यों में शास्त्रीय संगीत के साधक भी भाग लेते थे। अतः इस नाट्य के संगीत का माधुर्य तथा नाट्य में संगीत के उपस्थिति के प्रति सजगता एवं गंभीरता को अनुमानित किया जा सकता है।

लोक नाट्यों में शास्त्रीय संगीत के साधकों का उपस्थित होना यह बताती है कि लोक शैली में भी शास्त्रीय संगीत का माधुर्य, एक सीमा तक नियम बद्धता प्रतिविम्बित होती रही है। भगत शैली के अतिरिक्त यदि सांगीतिक नाट्य श्रेणी के दूसरे शैली नौटंकी पर दृष्टिपात किया जाय तो यहाँ भी शास्त्रीय संगीत कि मधुरता लोक शैली के साथ सामंजस्य बनाती हुई दिखेगी। संगीत प्रधान लोकनाट्य शैली नौटंकी अधिकतर सम्वाद गेय रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं जिसमें मुख्यतः छंद दोहा, चौबोला, दौड़ तथा बहरतबील आदि प्रयुक्त होते हैं। गायन में शास्त्रीय पक्ष के समावेश के सन्दर्भ में श्री रामनारायण अग्रवाल जी कटे हैं - ''दोनों नौटंकियां (कानपुरी नौटंकी तथा हाथरसी नौटंकी) संगीत प्रधान हैं फिर भी ब्रज क्षेत्र में प्रचलित हाथरसी नौटंकी में गायन की बारीकी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इनमें शास्त्रीय रागों के

साथ ही उठान तथा आलाप जैसे शास्त्रीय गायन के तत्वों को भी शामिल किया जाता है।''[9] इस कथन से सहमती व्यक्त करते हुए कपिला वात्स्यायन जी कहते हैं- ''हाथरस की नौटंकी में शास्त्रीय संगीत पर अधिक बल दिया जाता है जबकि कानपुर की नौटंकी में सम्वाद तथा उच्च नाटकीयता पर...''[10] नौटंकी में छंदों के अतिरिक्त क़व्वाली, ग़ज़ल, लावानिया आदि भी गई जाने लगीं। नौटंकियों का प्रभुख वाद्य नगाड़ा होता है इसके अतिरिक्त हारमोनियम, ढ़ोलक, सारंगी आदि वाद्य भी प्रयुक्त होते हैं। वर्तमान काल में क्लैरियोनेट तथा किबोर्ड जैसे आधुनिक वाद्यों का भी चलन बढ़ गया है।

निष्कर्ष :

देखा जा सकता है कि जो लोक शैलियाँ ब्रज क्षेत्र में प्रचलित हैं उनमें संगीत को सम्मानजनक स्थान दिया गया है। इन शैलियों में संगीत तत्व के प्रस्तुति तथा श्रवण पर बल दिया जाता है। नाट्य शैली में कथा के भाव को सजीव रूप में अभिनय कर के श्रोताओं के नेत्रों के माध्यम से हृदय में उतारा जाता है तथा नाट्य में संगीत के माध्यम से इस भाव को श्रोता के कर्णपुटों के माध्यम से हृदय में उतार दिया जाता है। ब्रज क्षेत्र में नाट्य तथा संगीत के इस अन्तर्सम्बंध को बहुत पहले ही समझ लिया गया था। ब्रज में प्रचलित लोक शैली के नाट्य में शास्त्रीय संगीत का समावेश ब्रजवासियों के लोक के साथ ही शास्त्रीय संगीत के प्रति लगाव को रेखांकित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. श्री रामनारायण अग्रवाल, संगीत, एक लोक नाट्य परम्परा, पृ॰ सं॰-13
2. डॉ॰ श्रीमती ज्ञानवती वैद मेहता, लोक नाट्यों में संगीत, पृ॰ सं॰-15
3. डॉ॰ श्रीमती ज्ञानवती वैद मेहता, लोक नाट्यों में संगीत, पृ॰ सं॰-15
4. नाट्यशास्त्र 13, 71,72 (डॉ॰ सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, भरत और नाट्य कला, पृ॰-449)
5. अभिनव गुप्त, अभिनव भारती द्वितीय भाग पृ॰-45
6. डॉ॰ रामनिवास शर्मा, लोकं साहित्य का लोकतत्व, पृ॰ सं॰-19, 20
8. श्री भगवान सहाय पचौरी, ब्रज साहित्य का मूल्यांकन, पृ॰ सं॰-227
10. श्री रामनारायण अग्रवाल, संगीत - उदय और विकास, पृ॰ सं॰-85
11. श्री नेमिचंद्र जैन, नटरंग, पृ॰ सं॰-61
13. श्री कपिला वात्स्यायन, पारम्परिक भारतीय रंगमंच, पृ॰ सं॰-135

महाकवि कालिदासप्रणीत श्रुतिसाधनात्मक साहित्य में राष्ट्रीय संचेतना के स्वर

डॉ॰ राजीव रंजन
सहायक आचार्य
संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

सारांश :

यह शोध महाकवि कालिदासप्रणीत श्रुतिसाधनात्मक अर्थात् पाठ, पाठक तथा श्रवण-अनुभूति के त्रिपक्षीय सम्बन्ध पर आधारित साहित्य में निहित राष्ट्रीय संचेतना के स्वरों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के ऐसे अमर रचनाकार हैं जिनकी काव्य-प्रतिभा केवल सौन्दर्यबोध तक सीमित न होकर भारतीय राष्ट्रीय संचेतना की सशक्त अभिव्यक्ति करती है। प्रस्तुत शोध-सार का उद्देश्य महाकवि कालिदास को राष्ट्रीय संचेतना के कवि के रूप में स्थापित करना है तथा यह स्पष्ट करना है कि उनके काव्य और नाटकों में निहित सांस्कृतिक, भौगोलिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक तत्त्व किस प्रकार भारतीय अस्मिता और राष्ट्रबोध को सुदृढ़ करते हैं। कालिदास की रचनाएँ भारतीय जीवन-दर्शन, प्रकृति-प्रेम, सामाजिक समरसता तथा सांस्कृतिक एकता का जीवंत दस्तावेज हैं। कालिदास के महाकाव्य- रघुवंश और कुमारसम्भव, खण्डकाव्य- मेघदूत एवं ऋतुसंहार, तथा नाटक-अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम्- भारतीय राष्ट्रीय संचेतना के विविध आयामों को अभिव्यक्त करते हैं। कालिदास की काव्य-परम्परा को भारतीय सांस्कृतिक स्मृति, दार्शनिक चिन्तन तथा लोकानुभव के संगम-बिन्दु के रूप में स्वीकार करते हुए शोध में यह प्रतिपादित किया गया है कि उनके काव्य में न केवल सौन्दर्य-बोध, शृंगार और प्रकृतिचित्रण है, अपितु भारत की भू-सांस्कृतिक एकता, सांस्कृतिक गौरवबोध और राष्ट्रीय चेतना की गहरी अनुभूति भी अन्तर्निहित है।

श्रुतिसाधनात्मक साहित्य के रूप में रघुवंश, कुमारसम्भवम्, मेघदूत तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् जैसे ग्रन्थों का चयन कर उनमें उपस्थित देश-देशान्तर, तीर्थ-यात्रा, जनपद-वर्णन, पर्वत-नदी-वन एवं नगर-संस्कृति के चित्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि कालिदास भारतभूमि को मात्र भौगोलिक इकाई न मानकर 'पुण्यभूमि' व 'धर्मभूमि' के रूप में देखते हैं, जहाँ उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक विभिन्न प्रदेश एक अखण्ड सांस्कृतिक देह के अंग के रूप में प्रतीत होते हैं।

शोध में यह भी दिखाया गया है कि कालिदास के यहाँ राष्ट्रीय संचेतना केवल प्रत्यक्ष राजनीतिक भाष्य के रूप में नहीं, बल्कि लोकमंगल, धर्मपालन, राजधर्म, प्रजाहित, पर्यावरणीय संवेदनशीलता तथा ऐतिहासिक-पौराणिक चरित्रों की प्रस्तुति के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। राम-रघुवंश, हिमालय-वर्णन, उज्जयिनी, अवन्ती जैसे नगरों का चित्रण, तीर्थ-परम्परा और उत्सव-संस्कृति-ये सभी तत्व समष्टिगत 'भारतीयता' की चेतना को सुदृढ़ करते हैं।

सूचक शब्द :

महाकवि कालिदास, राष्ट्रीय संचेतना, संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रबोध, सांस्कृतिक एकता, रघुवंश, मेघदूत, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, भारतीय अस्मिता।

अनुसंधान पद्धति :

प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाया गया है। अध्ययन का आधार मुख्यतः महाकवि कालिदास की प्रामाणिक संस्कृत कृतियाँ-रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि हैं। शोध में पाठालोचन (Textual Analysis) के माध्यम से राष्ट्रीय संचेतना से सम्बद्ध श्लोकों और प्रसंगों का चयन कर उनका अर्थात्मक एवं भावात्मक विश्लेषण किया गया है। साथ ही, द्वितीयक स्रोतों के रूप में संस्कृत एवं हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचकों, इतिहासकारों तथा साहित्य चिन्तकों के ग्रंथों का सहारा लिया गया है। अध्ययन में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भी अपनाया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि कालिदास के युग की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उनकी रचनाओं में किस प्रकार प्रतिबिम्बित होती हैं। अनुसंधान पूर्णतः ग्रंथाधारित है तथा इसमें तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति का संयोजन किया गया है।

भूमिका :

भारतीय साहित्य परम्परा में महाकवि कालिदास का स्थान सर्वोपरि है। वे न केवल संस्कृत काव्य और नाट्य परम्परा के शिखर कवि हैं, अपितु भारतीय सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय संचेतना के भी सशक्त प्रवक्ता हैं। कालिदास की रचनाएँ सौन्दर्य, भावुकता और कलात्मकता के साथ-साथ भारतीय जीवन-दर्शन, धर्म, नीति, लोकमंगल तथा राष्ट्रबोध की गहन अभिव्यक्ति करती हैं।आधुनिक काल में 'राष्ट्रीय संचेतना' को प्रायः राजनीतिक सन्दर्भों तक सीमित कर दिया जाता है, परन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य में यह संचेतना सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक आधारों पर विकसित हुई थी। कालिदास की काव्य-दृष्टि इसी व्यापक राष्ट्रीय संचेतना को स्वर प्रदान करती है।

श्रुतिसाहित्य में राष्ट्रीय संचेतना के भाव :

राष्ट्र शब्द से हमारा अभिप्राय केवल भूमिखण्ड न होकर समस्त ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता व संस्कृति तथा जो ज्ञान परंपरा की विरासत तक विस्तृत होना चाहिया। राष्ट्र शब्द का प्रथम प्रयोग ज्ञान परंपरा के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्यों में मिलता है।[1] यजुर्वेद के दशम अध्याय में राष्ट्र शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है।[2] यजुर्वेद में तो राष्ट्र की सीमा मनुष्य से आगे बढ़कर पशु, वनस्पति तथा अन्य प्रकृतिप्रदत्त साधन तक विस्तृत है।[3] अथर्ववेद के भूमि सूक्त में भूमि से प्रार्थना है कि 'वह हमारे उत्तम राष्ट्र में तेज और बल स्थापित करें।'[4] इस प्रकार हम देखते है कि प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय संचेतना का तात्पर्य केवल राजनीतिक राष्ट्रवाद नहीं है, बल्कि उसमें सांस्कृतिक एकता, साझा परम्पराएँ, नैतिक मूल्य, भौगोलिक अखण्डता तथा सामूहिक अस्मिता का भाव निहित होता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह संचेतना धर्म, लोकमंगल, कर्तव्यबोध और सामाजिक समरसता से जुड़ी हुई है। कालिदास के काव्य में राष्ट्र किसी सीमाबद्ध भूभाग मात्र नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में उपस्थित है, जहाँ प्रकृति, मानव, देव और समाज परस्पर सामंजस्य में रहते हैं।[5]

महाकवि कालिदास का युग एवं काव्य-दृष्टि :

कालिदास का काल गुप्तयुग माना जाता है, जिसे भारतीय इतिहास का 'स्वर्णयुग' कहा जाता है। यह काल राजनीतिक स्थिरता, सांस्कृतिक उत्कर्ष और साहित्यिक समृद्धि का समय था। इस युग की राष्ट्रीय संचेतना कालिदास की रचनाओं में स्वाभाविक

रूप से प्रतिबिम्बित होती है। उनकी काव्य-दृष्टि में भारतीय जीवन के आदर्श रूप-राजधर्म, नारी-गरिमा, प्रकृति-पूजन, आश्रम-संस्कृति और सामाजिक उत्तर-दायित्व स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

कालिदास के ग्रंथों में राष्ट्रीय संचेतना :

कालिदास का राजा व्यक्तिगत सुख से ऊपर राष्ट्र और प्रजा के कल्याण को रखता है- यह भाव राष्ट्रीय संचेतना का मूल है। महाकवि कालिदास के ग्रंथों में वर्णित सभी शासक अत्यंत कर्तव्य परायण तथा राष्ट्र सेवा को समर्पित होकर राजधर्म का पालन करने वाले प्रतीत होते हैं। रघुवंश महाकाव्य कालिदास की राष्ट्रीय संचेतना का सर्वाधिक सशक्त ग्रन्थ है। इसमें वर्णित सूर्यवंशीय राजाओं की परम्परा आदर्श शासन प्रणाली का प्रतिमान प्रस्तुत करती है। राजा दिलीप, रघु और राम जैसे चरित्र प्रजाहित, त्याग और कर्तव्यनिष्ठा के प्रतीक हैं। रघु का दिग्विजय वर्णन केवल विजय-गाथा नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता का चित्रण है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित राजा दुष्यन्त कठिन परिस्थिति में भी न्याय और धर्म के अनुसार वह राज्य-कार्य में संलग्न है।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्।।[6]

कवि ने दुष्यन्त को समकालीन सामन्तयुगी संस्कृति के अनुरूप भद्रपुरुष के रूप में चित्रित किया है।

राजा दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है। उसकी मनोहर तथा गम्भीर आकृति है। वह प्रभाववान् और मधुरभाषी है- ''चतुरगम्भीराकृतिश्चतुरं प्रियमालपन्प्रभाववानिय लक्ष्यते।'' वह बलिष्ठ और पराक्रमशाली है।[7] साथ ही विनय से शोभित है। वह ललित कलाओं का मर्मज्ञ है। हंसपादिका के संगीत को सुनकर उसका यह कहना ''अहो रागपरिवाहिनी गीतिः''[8] जो उसकी संगीत-कलाभिज्ञता का परिचायक है। सातवें अंक में राजा का चरित्र और ऊपर उठा है। हेमकूट पर्वत पर उसकी पुत्रवत्सलता का परिचय हमें मिलता है।[9] वह अब शकुन्तला के रूप पर मोहित नहीं है बल्कि उसके विरह-व्रत का प्रशंसक हैं। वह स्वयं को धन्य समझता है कि मलिन वस्त्र पहने, एक वेणी धारण किए तथा प्रसाधनहीन उसकी प्रिया उसे पहचानती है- वसने परिधूसरे वसाना..।[10] वह उसके पैरों पर गिरकर क्षमा याचना करता है- सुतनु हृदयात्प्रत्यादेश-व्यलीकरपैतु ते।[11]

दुष्यन्त उच्चकोटि के शासक हैं। उनमें एक सफल शासक के सभी गुण विद्यमान हैं। वह कर्तव्य-परायण, सहृदयी, संयमी, निर्भीक, पराक्रमी और विनीत हैं। वह आश्रम में उपस्थित विघ्नों को दूर करके अपनी कर्त्तव्यपरायणता का परिचय देते हैं।

राजा दिलीप का राजधर्म तथा प्रजापालन :

महाकवि कालिदास के रघुवंशम् महाकाव्य के प्रारम्भिक सर्गों में वर्णित राजा दिलीप इक्ष्वाकु वंश के आदर्श शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका चरित्र राजधर्म और प्रजापालन की प्राचीन भारतीय अवधारणा का जीवंत प्रतिबिम्ब है, जो धर्मशास्त्रों तथा महाभारत के शांतिपर्व में प्रतिपादित सिद्धान्तों से प्रेरित है। दिलीप का राजधर्म केवल बाह्य शासन-व्यवस्था तक सीमित नहीं, अपितु आन्तरिक नैतिकता, त्याग, वचनपालन और लोकमंगल पर आधारित है।

राजा दिलीप को कालिदास ''प्रजानां पितरं''[12] के रूप में चित्रित करते हैं, जो प्रजा को अपने सन्तान के समान मानते हैं। उनका शासन गुणसम्पन्नता पर टिका है- सत्य, दान, यज्ञ, विनय और न्याय। प्रजापालन उनका प्राथमिक कर्तव्य है, जिसमें वे राज्य की सीमाओं से परे जाकर गो-रक्षा, ऋषि-कुल संरक्षण और पर्यावरणीय संतुलन को भी सम्मिलित करते हैं।[13] नन्दिनी गौ की रक्षा के लिए ऋषि वसिष्ठ की आज्ञा स्वीकार कर वे राज्य-कार्य त्यागकर वनवास स्वीकार करते हैं। यह गोपालन को 'नृपकर्म' घोषित कर राजधर्म को व्यापक बनाता है, जहाँ राजा का व्यक्तिगत सुख गौण है। दिलीप कहते हैं कि गौ मेरी प्रजा है, अतः

उसकी रक्षा मेरा धर्म है। यह प्रजावत्सलता का चरम है, जो कौटिल्य के ''प्रजासुखे सुखं राज्ञः''[14] सिद्धान्त को साकार करता है। वह प्रजा से जितना कर लेता है उससे कई गुणा अधिक प्रजा के कल्याण के लिए खर्च करते हैं।[15]

दिलीप का प्रजापालन त्यागपूर्ण है। सिंह-प्रसंग में वे प्राणार्पण की तैयारी करते हैं, घोषणा करते हुए कि राजा का शरीर प्रजा के लिए है। सिंह से कहते हैं- ''मया नृपेण यदि रक्षितव्या प्रजा अस्ति गोऽयं मम देहमाददे।''[16] यह दण्डनीति से ऊपर उठकर करुणा, आत्मबलिदान और वचननिष्ठा का आदर्श है। उनका शासन अहंकाररहित है; वे ऋषि-आज्ञा को सर्वोपरि मानते हैं[17] जो राज्य में आध्यात्मिकता का संचार करता है। दिलीप का राजधर्म सांस्कृतिक एकता पर आधारित है। वे भारतभूमि को पुण्यभूमि मानकर उसके प्रत्येक अंग-नदी, पर्वत, जनपद-की रक्षा करते हैं।[18] उनका पुत्र भरत का जन्म धर्मपालन का फल है, जो वंश-निरन्तरता सुनिश्चित करता है। आधुनिक संदर्भ में दिलीप का मॉडल उत्तरदायी शासन का प्रतीक है, जहाँ शासक प्रजा-पिता के रूप में नैतिकता और सेवा को प्राथमिकता देता है। कालिदास ने दिलीप के माध्यम से राजधर्म को शुष्क नियम न बनाकर जीवन्त जीवन-दर्शन के रूप में स्थापित किया है, जो आज भी प्रासंगिक है।

मेघदूत को सामान्यतः विरह-काव्य माना जाता है, परन्तु इसके भीतर गहन राष्ट्रीय संचेतना निहित है। यक्ष द्वारा मेघ को दिया गया मार्ग-वर्णन सम्पूर्ण भारतवर्ष का सांस्कृतिक एवं भौगोलिक मानचित्र प्रस्तुत करता है। महाकवि कालिदास लिखते हैं- देशं त्यक्त्वा न सुखं भवति।[19] अर्थात् देश को छोड़ कर कोई सुखी नहीं होता है, अपितु यह विरह अत्यंत पीड़ादायक होता है। महाकवि कालिदास देश के भौगोलिक विस्तार से भी सम्यकतया परिचित थे। कालिदास द्वारा वर्णित हिमालय, गंगा, उज्जयिनी, विदिशा, दशार्ण, मालवा- ये सभी स्थल भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं। यह काव्य भारत की विविधता में निहित एकता को उजागर करता है।

महाकवि कालिदास की प्रकृति चित्रण तथा राष्ट्रीय संचेतना :

कालिदास का प्रकृति-चित्रण केवल सौन्दर्यात्मक नहीं, बल्कि राष्ट्रीय संचेतना से जुड़ा हुआ है। ऋतुएँ, नदियाँ, पर्वत और वन भारतीय जीवन के अभिन्न अंग हैं। ऋतुसंहार में ऋतुओं का क्रम भारतीय जीवन-चक्र और कृषि-संस्कृति से सम्बद्ध है। प्रकृति और मानव का यह सामंजस्य भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आधारशिला है। भारतीयता का सबसे उत्कृष्ट भाव महोपनिषद् के प्राप्त होता है जहाँ निज और स्व भाव वाले व्यक्ति को लघुचित्तवृत्ति वाले पुरुष के रूप में व्यक्त किया गया है तथा उदारचरित मनीषियों के लिए सम्पूर्ण वसुधा हीं अपना परिवार है, ऐसा भाव प्राप्त होता है।[20]

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के उन विरल कवियों में हैं, जिन्होंने प्रकृति को मात्र सौन्दर्य का स्रोत न मानकर भारतीय राष्ट्रीय संचेतना का माध्यम बनाया। उनके काव्य में प्रकृति जीवन्त चित्रों के रूप में उभरती है, जो व्यक्तिगत शृंगार से ऊपर उठकर भारतभूमि की सांस्कृतिक एकता, भौगोलिक विविधता तथा आध्यात्मिक गौरव को प्रतिबिम्बित करती है। मेघदूत, रघुवंश, कुमारसंभव और ऋतुसंहार में वर्णित नदियाँ, पर्वत, वन, ऋतुएँ तथा जनपद राष्ट्रीय चेतना के स्वर बन जाते हैं।

कालिदास का प्रकृति चित्रण सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि और काव्यात्मक कल्पना का संगम है। वीणा-ध्वनि और मेघ की गति का ऐसा चित्रण है जो श्रोत्र-स्पर्श को जागृत करता है। हिमालय के बर्फीले शिखर से विंध्य के वनों, गंगा-यमुना से नर्मदा-कावेरी तक का वर्णन भारत के भौगोलिक विस्तार को एक अखण्ड इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है। यह चित्रण केवल यात्रा-वर्णन नहीं, अपितु पुण्यभूमि की यात्रा है, जहाँ

प्रत्येक तत्व-अलकापुरी से उज्जयिनी तक-भारतीय संस्कृति का अंग बन जाता है।

राष्ट्रीय संचेतना का स्वर कालिदास के प्रकृति चित्रण में सांस्कृतिक एकात्मता के रूप में प्रकट होता है। रघुवंश में राजा दिलीप का विशाल भ्रमण भारत को एक सांस्कृतिक देह के रूप में चित्रित करता है, जहाँ पर्वत-नदियाँ प्रजा के समान संरक्षित हैं।[21] कुमारसंभव के हिमालय-वर्णन में शिव-पार्वती विवाह भारत की आध्यात्मिकता को सम्यकतया दर्शाता है।[22] ऋतुसंहार की ऋतु-चक्र[23] यात्रा कृषि-संस्कृति तथा लोकजीवन की निरन्तरता को रेखांकित करती है। कालिदास भारत को 'आर्यावर्त' से परे विस्तृत भूमि मानते हैं, जिसमें दक्षिण के मलय पर्वत से उत्तर के कैलास तक एकरूपता है।

यह प्रकृति चित्रण राष्ट्रीय गौरवबोध का स्रोत है। मेघ को संदेशवाहक बनाकर कालिदास सांस्कृतिक संचार की प्रतीकात्मकता रचते हैं, जो आधुनिक राष्ट्रवाद की भौगोलिक एकीकरण से मेल खाता है। पर्यावरणीय संवेदनशीलता-वन्यजीव रक्षा, जलस्रोत संरक्षण-आज के संदर्भ में प्रासंगिक है। कालिदास ने प्रकृति को शृंगार का माध्यम बनाया, किन्तु उसके माध्यम से राष्ट्रीय संचेतना को श्रुतिसाधनात्मक रूप प्रदान किया, जो पाठक को भारत की सामूहिक स्मृति से जोड़ता है। इस प्रकार, उनका काव्य सौन्दर्य और राष्ट्रभाव का अनुपम संयोग है।

महाकवि कालिदास के ग्रंथों में नारी चेतना और राष्ट्रीय अस्मिता :

महाकवि कालिदास के साहित्य में नारी चेतना भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता का अभिन्न अंग है। उनकी नायिकाएँ-शकुन्तला, पार्वती, यक्षिणी, मालविका-स्वाभिमानी, तपस्विनी और संस्कृति संरक्षक के रूप में उभरती हैं, जो व्यक्तिगत सौन्दर्य से ऊपर उठकर राष्ट्र की सांस्कृतिक निरन्तरता का प्रतीक बनती हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला आदर्श नारी चेतना का प्रतिबिम्ब है। ऋषिकुल में पली, वह पुरुषप्रधान राजसभा में भी सत्यनिष्ठा पर दृढ़ रहती है। दुष्यंत के अस्वीकार पर क्रोधित होकर 'अयं तु मया त्यक्तः' घोषणा कर स्वाभिमान की रक्षा करती है।[24] यह नारी की गरिमा राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ती है, क्योंकि शकुन्तला भरत माता की प्रतीक है-जिससे भारतनामक राष्ट्र का उद्भव होता है। कुमारसंभव की पार्वती तपश्चर्या के माध्यम से नारी शक्ति का प्रतीक है। शिव-परीक्षा में क्रोध प्रकट कर वह पुरुष-प्रभुत्व को चुनौती देती है।[25] विवाह के बाद भी शिव के समकक्ष रहती है। मेघदूत की यक्षिणी विरहिणी नारी की भावुकता से राष्ट्रीय भूगोल का वाहक बन जाती है। अलकापुरी से उज्जयिनी तक मेघ को संदेश देती हुई वह विंध्य, नर्मदा, गोदावरी होते हुए दक्षिण भारत तक पहुँचती है। यह यात्रा नारी की भावना के माध्यम से आर्यावर्त की सांस्कृतिक एकता स्थापित करती है। रघुवंश में इन्दुमती सतीत्व की प्रतीक है, जो राजवंश निरन्तरता सुनिश्चित करती है।[26] कालिदास की नारियाँ धैर्यवान, बुद्धिमान और धर्मनिष्ठ हैं-मनुस्मृति के आदर्श से आगे निकलकर। वे प्रकृति से संनादित हैं, जो पर्यावरणीय चेतना को राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़ती हैं। कालिदास ने नारी को राष्ट्रमाता के रूप में स्थापित किया, जहाँ व्यक्तिगत संघर्ष सामूहिक गौरव में परिवर्तित होता है। आधुनिक नारीवाद के संदर्भ में यह चेतना प्रासंगिक है-स्वावलम्बन, सत्याग्रह और सांस्कृतिक संरक्षण। कालिदास का साहित्य नारी चेतना को राष्ट्रीय अस्मिता का आधार बनाता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध पत्र में महाकवि कालिदास को राष्ट्रीय संचेतना के कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। शोध के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि कालिदास केवल शृंगार, प्रकृति-वर्णन और अनुपम अलंकारशीलता के कवि मात्र नहीं हैं, अपितु वे भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता, राष्ट्रभाव, लोकमंगल और धर्माधिष्ठित राज्यव्यवस्था के सूक्ष्म चिन्तक भी

हैं। उनके काव्य में व्यक्त भारतभूमि की गौरवमयी छवि, देश की भौगोलिक एकता, सांस्कृतिक निरन्तरता और आदर्श राजधर्म की अवधारणा उन्हें 'राष्ट्रीय संचेतना के कवि' के रूप में स्थापित करती है। कालिदास ने भारत को केवल एक भू-खंड न मानकर 'पुण्यभूमि' और 'धर्मभूमि' के रूप में चित्रित किया है, जिसका विस्तृत वसुंधरा-वर्णन, विभिन्न प्रदेशों, नदियों, पर्वतों, तीर्थों तथा जनपदों की सूक्ष्म परिधि में परिलक्षित होता है। मेघदूत, रघुवंश, कुमारसंभव आदि कृतियों में भारत की भौगोलिक रचना का ऐसा सजीव व सप्रेम चित्र मिलता है जो किसी भी आधुनिक 'राष्ट्र-मानचित्र' की भावभूमि का कार्य करता है। इस प्रकार उनके काव्य में न केवल प्रकृति-सौन्दर्य, अपितु राष्ट्र के रूप में भारत की सामूहिक संचेतना मूर्तिमान होती है। शोध से यह भी प्रतिपादित हुआ कि कालिदास की राष्ट्रीय संचेतना मात्र भावुक देशप्रेम नहीं, बल्कि मूल्याधारित राजनैतिक-दर्शन पर टिकी हुई है। रघुवंश में वर्णित रघुनन्दन राजाओं का लोककल्याणकारी शासन, प्रजावत्सलता, दण्डनीति की न्यायपूर्णता, त्याग, सत्य, वचनपालन, करुणा तथा धर्मनिष्ठा जैसे गुण, आदर्श भारतीय राष्ट्र-राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। राजा को 'प्रजा के पिता' के रूप में देखने की उनकी दृष्टि आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य की 'जन-केन्द्रित शासन' की अवधारणा के निकट आती है। कालिदास की राष्ट्रीय संचेतना सांस्कृतिक एकात्मता पर भी आधारित है। वे विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं, देवालयों, आचार-व्यवहारों और लोकप्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए भी समूचे भारत को एक अखण्ड सांस्कृतिक सत्ता के रूप में देखते हैं। शिव-पार्वती, राम-रघुवंश, कार्तिकेय, यक्ष-यक्षिणी, ऋतुओं व उत्सवों के माध्यम से उन्होंने ऐसा सांस्कृतिक संसार निर्मित किया है, जिसमें समस्त भारत की जीवन-धारा समान रूप से प्रवाहित होती है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने उन्हें 'राष्ट्रीय कवि' तथा 'समग्र राष्ट्रीय संचेतना को स्वर देने वाला कवि' कहा है। आधुनिक भारत में राष्ट्रीयता, राष्ट्र-निर्माण, सांस्कृतिक अस्मिता और सुशासन पर चल रहे विमर्शों को समझने के लिए कालिदास का पुनर्पाठ अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उनकी रचनाएँ यह संकेत देती हैं कि मजबूत राष्ट्र वही है, जिसमें भौगोलिक एकता के साथ-साथ नैतिकता, कर्तव्य-बोध, लोकमंगल और सांस्कृतिक गौरव भी समान रूप से प्रतिष्ठित हों। अतः महाकवि कालिदास को राष्ट्रीय संचेतना के कवि के रूप में स्वीकार करना केवल साहित्यिक निर्णय नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवादी चिन्तन की ऐतिहासिक व वैचारिक निरन्तरता की स्वीकृति भी है। साररूप में कह सकते हैं कि- **भारतीयता कालिदासस्य काव्ये नित्यं विराजते।** अर्थात भारतीयता के सभी तत्त्व महाकवि कालिदास के काव्य में परिलक्षित है।

सन्दर्भ सूची :

1. कालिदास – रघुवंश, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. कालिदास – मेघदूत, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी।
3. कालिदास – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. मिश्र, रामावतार – संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा।
5. उपाध्याय, बलदेव – कालिदास और उनका काव्य, साहित्य भवन।
6. आचार्य, हज़ारीप्रसाद, काव्य की भूमिका, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2015
7. आचार्य, हज़ारीप्रसाद, भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय संचेतना, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, 2012.
8. तिवारी, शशि, संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद और भारतीय राजशास्त्र, 2017

फूट नोट :

1. ऋग्वेद, 4/42/1
2. यजुर्वेद, 10/2,3
3. यजुर्वेद, 22/22
4. अथर्ववेद, 12/1/8

5. आचार्य, हज़ारीप्रसाद. काव्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या-125
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-6/23
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-2/4; 3/1
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-5 पृष्ठ संख्या-168
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-7/17
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-7/21
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-7/24
12. रघुवंशम् 1.24
13. रघुवंशम् 1/6-8
14. कौटिल्य अर्थशास्त्र
15. रघुवंशम्- 1/18
16. रघुवंशम् 2/58
17. रघुवंशम् 2/16
18. रघुवंशम् 2/14
29. उत्तरमेघ-40
20. महोपनिषद्- 1/10
21. रघुवंशम्, 2/8-17,26-28
22. कुमारसम्भवम्, पञ्चम् सर्ग
23. ऋतुसंहारम्, छः सर्ग में छः ऋतुओं की विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है।
24. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पञ्चम् अङ्क, पृष्ठ संख्या- 421
25. कुमारसम्भवम्, पञ्चम् सर्ग- 75-83
26. रघुवंशम्, अष्टम सर्ग- 37

Maternal Silence and Violence : A Feminist Reading of A. Revathi's *The Truth About Me : A Hijra Life Story*

Dr. Haripriya R. J. Nair
Head of the Department of English,
Emmanuel College, Vazhichal
Post Doctoral Fellow (PDF) in English,
Institute of Management and Commerce,
Srinivas University, Mangalore

Dr. Manjula K. T.
Research Professor and Guide,
Srinivas University, Mangalore

Abstract :

Motherhood in Indian society is glorified as the highest form of unconditional love. Yet, for many transgender individuals, the mother becomes the first enforcer of silence and shame. A. Revathi's autobiography The Truth About Me: A Hijra Life Story (2010) exposes this contradiction with painful clarity. Born Doraiswamy in Tamil Nadu, Revathi narrates how her mother's neglect, ritual humiliation, and complicity in patriarchal violence shaped her early life. The mother's silence is revealed not as neutrality but as a form of epistemic violence that erased Revathi's voice and agency. Drawing on Gayatri Spivak's theory of subaltern silencing, Judith Butler's notion of gender performativity, and feminist discourses on motherhood, this paper analyzes maternal oppression as depicted in Revathi's text. It argues that Revathi's narration dismantles the sacred aura around motherhood by exposing it as a site of control, thereby reclaiming speech for the silenced subaltern.

Keywords :

Transgender, motherhood, subaltern, oppression, hijra, feminism.

1. Introduction :

In the Indian imagination, the mother is revered as a divine figure who nurtures, protects and sacrifices for her children. From mythological figures such as Kunti, Kaushalya, and Yashoda to cultural proverbs that equate mother with God, motherhood is coded as sacred. However, transgender autobiographies disrupt this idyllic image by revealing mothers who fail to accept, love, or even protect their children.

A. Revathi's *The Truth About Me : A Hijra Life Story* stands as a poignant testimony of such betrayal. While society at large stigmatized her feminine behavior,

it was the silence and violence of her mother that cut deepest. Instead of offering shelter from patriarchal and heteronormative pressures, Revathi's mother mirrored them, becoming complicit in rituals and punishments that sought to erase her child's identity.

This paper focuses on the maternal role in Revathi's memoir, positioning it within feminist theory and subaltern studies. It interrogates how maternal neglect, complicity and silence become central mechanisms of transgender oppression, and how Revathi transforms this pain into a counter-narrative of resistance.[4]

2. Theoretical Framework :

The analysis draws on three interconnected frameworks :

- **Spivak's Subalternity :** Gayatri Chakravorty Spivak's *Can the Subaltern Speak?* (1988) interrogates how marginalized voices are systematically silenced. Revathi's narrative demonstrates how her mother, instead of amplifying her child's voice, became an active agent in muting it. When Revathi longed to express her gendered identity, her mother's response was not dialogue but silence- a silence that reinforced cultural stigma.
- **Butler's Gender Performativity :** Judith Butler (1990) argues that gender is not innate but performed through repeated acts within regulatory frameworks. Revathi's childhood acts of sweeping, drawing kolams, or wearing skirts were attempts to perform her femininity. However, these acts were dismissed by her mother as mere play, reinforcing the heteronormative frame that denied gender variance.
- **Feminist Critiques of Motherhood :** Scholars have emphasized that motherhood, often idealized, can also function as a disciplinary institution. Within patriarchal societies, mothers often enforce conformity to gender and cultural norms. Revathi's mother exemplifies this contradiction: embodying the role of cultural guardian rather than unconditional nurturer.

Together, these frameworks allow us to situate Revathi's personal trauma within larger structures of silence, performativity, and maternal control.[1,2,3]

3. Maternal Neglect in Childhood :

From a very young age, Revathi gravitated toward feminine behaviors. She enjoyed "helping with household work, sweeping the yard, and drawing kolams." She often wore her sister's clothes and describes how she "walked like a shy bride, in a skirt and blouse".[4] These moments represented not only play but a profound articulation of her gender identity.

Yet, her mother dismissed these signs as trivial. She believed that Revathi would "grow out of it with age". Such neglect denied Revathi the possibility of early recognition and affirmation. Instead of naming and validating her daughter's difference, her mother erased it through silence. This initial stage of maternal neglect planted the seeds of alienation.

4. Complicity in Patriarchal Violence :

Neglect soon escalated into complicity in outright violence. When Revathi's brothers discovered her cross-dressing, they beat her mercilessly with a cricket bat. Revathi recalls, *"I was beaten black and blue for daring to wear women's*

clothes." [4]What makes this assault even more painful is not merely the blows of her brothers but the silence and sanction of her mother. Instead of intervening to shield her child, the mother aligned herself with the perpetrators, framing the violence as corrective.

Revathi remembers her mother's chilling words in that moment: *"Beat his bones, otherwise he will never change."* [4]This command transforms maternal care into an instrument of discipline. The phrase "beat his bones"[4] reveals the intensity of the desire to eradicate difference, to crush femininity out of the body itself. What was perceived as deviance had to be inscribed with pain until the subject yielded to heteronormativity. Here, the mother ceases to be protector and becomes the first enforcer of patriarchal order within the domestic sphere.

This moment marks a devastating rupture in the cultural image of motherhood. In Indian society, the mother is often idealized as *shakti*, a symbol of unconditional love and sacrifice. Yet Revathi's narrative demonstrates how this symbolic motherhood is fractured by the weight of cultural shame. The mother, fearing dishonor and social stigma, repositions herself as guardian of tradition rather than advocate for her child. In this sense, she embodies what Gayatri Spivak terms *epistemic violence*: the active denial of her child's truth, legitimizing physical brutality as a means of silencing.

Thus, complicity in patriarchal violence is not a passive omission but an active choice. By siding with her sons, Revathi's mother institutionalizes violence within the family, normalizing it as a necessary corrective. For Revathi, the betrayal was twofold : she was physically brutalized by her brothers and emotionally abandoned by her mother. What should have been a sanctuary became the first site of rejection, where maternal love collapsed into complicity with oppression.

5. Religious Humiliation and Maternal Betrayal :

Perhaps the most haunting episode in Revathi's memoir is the tonsuring ritual at the Samayapuram temple. Revathi was forcibly taken there by her mother and brothers. She writes :

"This act of having my hair cut caused me immense pain, even more so than the physical beating I had endured from my brother earlier."[4]

Here, maternal betrayal reaches its peak. By enforcing ritual erasure, Revathi's mother not only denied her daughter's femininity but also aligned religious authority with domestic control. The sacred temple becomes a site of violence, and the mother becomes its enforcer.

6. Silence as Epistemic Violence :

Revathi repeatedly emphasizes that her family never asked about her struggles or gave her space to articulate her feelings. She laments :

"Nobody from my family was there to ask about my issues or offer support for such a troubled child and her gender crisis. I was all alone in my fight for identity realization."[4]

This silence is not passive; it constitutes what Spivak calls "epistemic violence" - a refusal to acknowledge the existence of the other's knowledge and voice. By refusing to listen, her mother actively

erased her daughter's identity, contributing to the cycle of alienation.

7. Resistance Through Autobiography :

Despite maternal silence, Revathi reclaims voice through her autobiography. By narrating her own story, she resists the erasure imposed upon her. Revathi's text dismantles the sacred aura around motherhood, showing that mothers, too, can perpetuate violence. Her narrative becomes an answer to Spivak: the subaltern *can* speak, not through familial permission but through self-authorship.

8. Conclusion :

Revathi's autobiography lays bare the uncomfortable truth that oppression begins at home. Her mother, instead of embodying unconditional love, enacted silence, complicity, and betrayal. Maternal authority here functioned as an extension of patriarchal and cultural policing, transforming the sacred figure of the mother into an agent of violence.

By highlighting these dynamics, this paper insists on a re-evaluation of motherhood within feminist discourse. To truly protect transgender children, motherhood must be redefined as radical acceptance rather than cultural enforcement. Revathi's voice, carved out of maternal silence, stands as a testament to resilience and the transformative power of testimony.

References :

1. Spivak, G. C. (1988). *Can the Subaltern Speak?* In C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), *Marxism and the Interpretation of Culture*. Macmillan.
2. Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the Intersection of Race and Sex. *University of Chicago Legal Forum*.
3. Butler, J. (1990). *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge.
4. Revathi, A. (2010). *The Truth About Me: A Hijra Life Story*. Penguin Books India.